योगेश्वर श्री शान्तिविजयजी

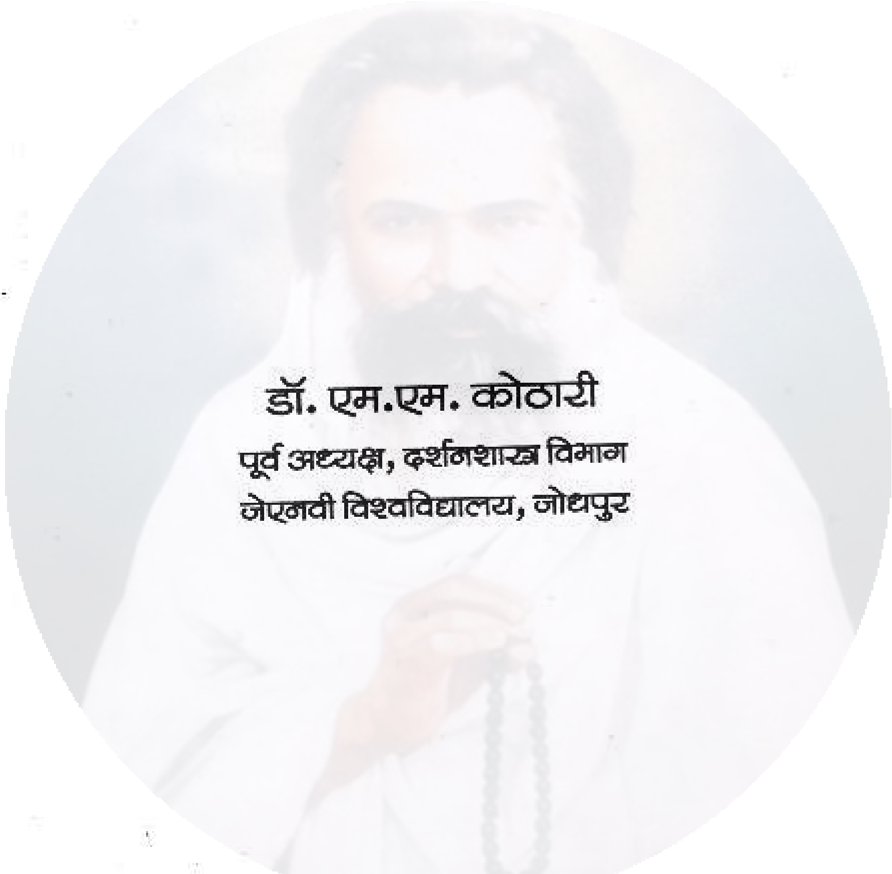

डॉ. एम.एम. कोठारी
पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग
जेएनवी विश्वविद्यालय, जोधपुर

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

प्रकाशक :

राजस्थानी ग्रन्थागार

प्रकाशक एवं वितरक

प्रथम मंजिल, गणेश मंदिर के पास
सोजती गेट, जोधपुर- 342001 (राज.)
Ph: 0291-2623933, 2657531 (0)
E-mail : info@rgbooks.net,
rgranthagar@sify.com
Website : www.rgbooks.net

© सर्वाधिकार लेखकाधीन

डॉ. एम.एम.कोठारी
फोन नं. 0291-2511362
मोबाईल : 09829335405
Email :-kotharidrnarendra@gmail.com

प्रथम संस्करण 2013 मूल्य: ₹ 60.00 (साठ रुपये मात्र)

ISBN : 978-81-86103-03-1

राजस्थानी ग्रन्थागार के लिए कम्पोजिंग समीर कम्प्यूटर्स
एवं भारत प्रिण्टर्स द्वारा मुद्रित ।

Yogeshwar SHRI SHANTIVIJAYJI
By **Dr. M.M. Kothari**
Rajasthani Granthagar, Sojati Gate, Jodhpur
(Raj.) INDIA
First Edition : 2013 Price ₹60.00

अनुक्रमणिका

पुस्तक परिचय.. 5

आध्यात्मिक प्रत्यक्षानुभववादः डॉ. पी.टी. राजू,
डॉ. आर.सी.दीक्षित 11

आध्यात्मिक पृष्ठभूमि **13–21**

श्री धर्मविजयजी, श्री तीर्थविजयजी, श्रीशान्तिविजयजी, आबू पर एकान्त में तपस्या, गुफाओं से प्रकाश में

कुछ अमिट स्मृतियां **22–65**

ब्रिटिश सरकार के भारत में प्रतिनिधि, पाश्चात्य ईसाई विद्वान : हिन्दू, जैन, पारसी, मुस्लिम, संत और विद्वान– राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, आदि के भारतीय नरेश और विद्वान

योग की पराकाष्ठा **56–95**

शेर उनके चरणों में बैठेंगे, भक्तों को अलौकिक दृष्टि में, स्थूल प्रकृति के चमत्कार, आध्यात्मिक प्रत्यक्षानुभववाद, योग और चमत्कार, न दीवार न दूरी, केवल ज्ञान का प्रश्न

ओम शांति का संदेश 96–173

सामाजिक विवाद, धार्मिक रिवाज-- मूर्ति पूजा, बाल दीक्षा, संत और शासक (धर्म युद्ध- केशरियाजी), पशुबलि का निषेध, राजगुरु नेपाल, एकता की अपील, जार्ज के अनुभव, मांडोली में नौ मास, एक निःशब्द यौगिक प्रवाह, ईर्ष्यालु मानव–देवता, विश्व–प्रेम, अनादरा में स्वर्ण जयंति, फिर अचलगढ़ में, सेठ किशनचन्द को अन्तिम निर्देश, निर्वाण, मांडोली को, वचनामृत

एक रहस्यमयी निरन्तरता.. 175

मैं ही गुरु मैं ही शिष्य.. 175

वादे जो पूरे किए.. 179

संशय से श्रद्धा की ओर.. 188

गृहस्थ का महत्व.. 191

भक्ति में ईर्ष्या.. 196

हम 30 साल बाद मिलेंगे.. 205

अभी महापुरुष नहीं होंगे.. 205

प्रभु मुझे चिन्ता दीजिए 216

भक्ति की परीक्षा.. 222

भक्ति में अहंकार.. 225

देवाजी महाराज– महेशरूप में.. 227

विश्राम की तैयारी.. 233

मानव जीवन के कुछ व्यावहारिक पक्ष.. 236

धार्मिक जीवन के कुछ बाहरी पक्ष.. 243

एक गुप्त अवतारी के कुछ संस्मण.. 251–270

पुस्तक परिचय

मानव में अपने परिवेश को समझने और उसे अपनी आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने की क्षमता पृथ्वी के अन्य प्राणियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। साथ ही जो घटनाएं उसकी समझ से परे लगती है उनमें कोई छिपा अति-प्राकृतिक रहस्य मान लेना भी उसका सहज स्वभाव रहा है। अति प्राचीन समय से ही कुछ लोगों के असाधारण कार्यों से आश्चर्यचकित होकर उनके साथियों और प्रशंसकों ने उन कार्यों को चमत्कार के रूप में मान्यता दी जो मानव जाति के विभिन्न धर्मों को बनाने और उनमें श्रद्धा बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं।

पुरानी बाइबल में ऐसे कई प्रकार के चमत्कारों का वर्णन है। प्रथम चमत्कार, जिसे अन्य कई धर्मों ने भी माना है, वह है असत् में से केवल ईश्वर की इच्छा से सृष्टि की रचना। इसके बाद मूसा द्वारा ईश्वर प्रदत्त शक्ति से फरो को बताये गये चमत्कार, अपने जाति के लोगों को समुद्र सुखा कर लालसागर पार करवाना और फरो की फौज को समुद्र में डूबा देना, मूसा की हर कठिनाई के समय चमत्कार द्वारा उसके नेतृत्व में डिगते हुए विश्वास को पुनः जमाना और हेब्रू जाति के सामाजिक और राजनैतिक संघर्षों में पग पग पर उनके नेता मूसा द्वारा बताये गये चमत्कारों का वर्णन है। सेमिटिक लोगों को इन चमत्कारों की सत्यता में गहन विश्वास रहा है।

इस प्रकार प्राचीनकाल से ही चमत्कार दिखाने की शक्ति को आध्यात्मिक महानता का मापदण्ड समझा गया है और हर महापुरुष से चमत्कारों की आशा जारी रही है। नई बाइबल में ईसा स्वयं अपने चमत्कारों की शक्ति को अपने दैविक संदेश के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। (संत मैथ्यू, 11.5; ल्यूक, 7.22) बाद में बाइबल के चमत्कार ही नहीं बल्कि कुछ अन्य संतों के जीवन की असाधारण घटनाएं और अनुभव भी मानव के चमत्कारो में विश्वास का पोषण करते रहे हैं। परन्तु मूसा और ईसा सेमिटिक धर्मों के चमत्कारी महापुरुषों में

उच्चतम स्थान रखते हैं।

दूसरी तरफ विज्ञान ने हमेशा अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयास किया है। वैज्ञानिक हर घटना की प्राकृतिक व्याख्या ढूंढ़ने का प्रयास करता है। किसी भी युग में उस समय के विभिन्न विज्ञानों से उपलब्ध सामग्री के आधार पर जिस घटना या अनुभव की व्याख्या की जा सकती है उसे चमत्कार की संज्ञा नहीं दी जाती। यदि किसी सत्ता का सीधा मानवीय प्रत्यक्ष न भी हो सके, परन्तु कुछ पूर्व निर्धारित अवस्थाओं में उनके निश्चयात्मक परिणाम निकलते हों तो वैज्ञानिक अनुमान के द्वारा उस सत्ता के अस्तित्व को मान्यता दे देते हैं। जैसे, मनुष्य की आंख एक्सरे का सीधा प्रत्यक्ष नहीं कर सकती। परन्तु वैज्ञानिक इसे चमत्कार नहीं बताते क्योंकि वे निश्चित भौतिक विधि के द्वारा इसके कार्यों का निरीक्षण कर सकते हैं। भौतिक जगत के क्षेत्र में लोग चमत्कारों का प्रभाव नहीं ढूंढ़ते। किसी घटना का अस्तित्व या उसकी सत्यता का अर्थ है प्रयोगशाला में समअवस्थाओं में पुनरावृत्ति और उस विषय के विशेषज्ञों द्वारा उनका प्रमाणीकरण।

जड़, जीवन और मनस हमारे साधारण अनुभव के अंग है। जड़ तत्व में जीवन और मनस उत्पन्न होते हुए और मिटते हुए दिखाई देते हैं। ये प्रकृति के बहुत बड़े चमत्कार हैं। दर्शन और विज्ञान का इतिहास इस विशाल रहस्य को समझने का एक निरन्तर प्रयास रहा है। नवीनतावादी विकासवाद (Emergent Evolution) के आधुनिक वैज्ञानिक और दार्शनिक अपनी हार मान कर 'विनम्र भाव'(natural piety) से इसे प्रकृति के चमत्कार बता कर विषय को वहीं छोड़ देते हैं। मनोविज्ञान तो 'मनस' (mind) शब्द में भी रुचि नहीं रखता। उसके अध्ययन का विषय तो मानव व्यवहार के बाह्य पहलू हैं जो निरीक्षण और प्रयोग के विषय हो सकते हैं। आधुनिक विज्ञान मनस और अतिमनस (supermind) की चैतन्य शक्ति के उच्चतर पहलुओं को समझने की स्थिति में नहीं है। दूसरी तरफ हजारों वर्षों से भारतीय विशेषज्ञ मनस और आत्मा का अपने ढंग से ज्ञान प्राप्त करने में लगे हुए हैं। उनका यह दावा रहा है कि आत्मा एक ऐसा तत्व है जिसका शरीर के साथ सम्बन्ध होने पर इन्द्रियों के द्वारा ब्राह्य जगत का ज्ञान प्राप्त होता है। परन्तु आत्मा का विकास होने पर, इन्द्रियों की सहायता के बिना भी, आत्मा को जीव और जगत का पूर्ण ज्ञान या केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है। पतंजली ने इस शोध के परिणाम का योगसूत्र में आंकलन किया है। गहन जिज्ञासा और उत्साह के साथ भारत में अनेक लोगों ने हर युग में इस विज्ञान के अध्ययन और अभ्यास में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया है।

साधारणतया वैज्ञानिक चमत्कारों के दावों में कोई रुचि नहीं रखते और उनका रुख उदासीनता का ही रहता है। परन्तु आजकल उनमें इतनी विनम्रता (humility) अवश्य मिलती है कि यदि विश्वसनीय और पक्षपातरहित स्रोतों से उनको जानकारी मिले तो वे सहानुभूति से सुन लेते हैं। उनकी जिज्ञासा उनको एक प्रश्न पर ले जाती है: 'क्या मुझे भी

यह बता सकते हो ?'

जब विज्ञान के क्षेत्र में भी कोई नई खोज होती है तो वैज्ञानिक स्वयं अनुभव करना चाहता है। वह अपने विषय के विशेषज्ञों के अनुभव को मान्यता देने के लिए तैयार हो जाता हैं। परन्तु आत्मज्ञान और योग के क्षेत्र में साधनों की भिन्नता से कई कठिनाइयां आती हैं। यहां विशेषज्ञ आसानी से नहीं मिलते। जो मिलते हैं वे प्राय: ढोंगी होते हैं जो निम्न स्तर की चालें, तांत्रिक और जादू की क्रियाएं करते हैं। सद्‌गुरु गलियों और बाजारों में चमत्कार दिखाते नहीं फिरते। वे अयोग्य पात्र को ज्ञान नहीं देते। यदि सौभाग्य से सद्‌गुरु मिल जाता है तो भी शिष्य या भक्त को आवश्यक योग्यता प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ी कीमत देनी पड़ती है– वह कीमत है उच्चकोटि का त्याग एवं शरीर और मनस का कठोर अनुशासन। केवल रास्ते चलते की जिज्ञासा ही पर्याप्त नहीं है।

हर व्यक्ति ईश्वर को देखना चाहता है। स्वामी विवेकानन्द जब किसी महात्मा से मिलते तो यही पूछते: 'क्या आपने ईश्वर देखा है ?' उन्होंने अपने गुरु को भी प्रथम मुलाकात में यही प्रश्न पूछा। हम में से प्रत्येक यह प्रश्न पूछना चाहेगा। परन्तु इस चुनौती का सामना करने की योग्यता सभी में नहीं होती। महापुरुषों ने केवल दार्शनिक चर्चा से नहीं बल्कि योग शक्ति के द्वारा अपने भक्तों के मन और हृदय पर विजय प्राप्त की है। जब अन्य साधन नहीं चलते तब चमत्कार दिखाया जाता है। जब योगेश्वर कृष्ण ने देखा कि दार्शनिक शिक्षाओं का अर्जुन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है तब अपनी योगशक्ति का परिचय दिया। रामकृष्ण ने विवेकानन्द को भी कई प्रकार के चमत्कार दिखाये। मूसा और ईसा ने भी ऐसा ही किया।

मैं इस पुस्तक में बीसवीं सदी के एक ऐसे ही महापुरुष, भारत के विख्यात गुरु योगिराज शान्तिविजयजी (1890-1943) के जीवन से सम्बन्धित अनुभव प्रस्तुत करता हूँ। पुस्तक के पहले भाग में प्राय: उन लोगों के अनुभव पर लिखा है जिनमें गुरुदेव से मिलने के पहले कोई श्रद्धा नहीं थी और कई तो उनसे मिलना भी नहीं चाहते थे। जिन लोगों के अनुभवों का मैंने चयन किया है वे जिम्मेदार व्यक्ति हैं। उनमें से कुछ लोग अपने अनुभव की डायरी रखते थे जिससे उनमें एक ताजगी और सजीवता मिलती है जो लम्बे समय के बाद भावना के वेग से स्मृति को दूषित होने से बचाती है।

जैनों में भी उच्चकोटि के महात्मा हुए हैं। उनमें हेमचन्द्र को जैनी आधुनिक युग का सर्वज्ञ (कलिकाल सर्वज्ञ) मानते हैं। श्रीमद राजचन्द्र को कई लोग पचीसवां तीर्थंकर मानते हैं। कई उच्च स्तर के ब्रिटिश अधिकारी यह मानते थे कि शान्तिविजयी के अनुयायियों ने उन्हें जो जगद्‌गुरु का पद दिया था, वे पूर्णत: उसके योग्य थे। कई हिन्दू और मुस्लिम नरेश उन्हें उच्चतम आध्यात्मिक ज्ञान के प्रतिमूर्ति (केवली) के रूप में देखते थे। यदि उनके अनुभवों को कोई पुष्टि की आवश्यकता है तो मैं विनम्रतापूर्वक

इसकी पुष्टि करता हूं। इस पुस्तक के द्वितीय भाग में मैंने मेरे और कुछ अन्य लोगों के श्री देवाजी महाराज से सम्बन्धित अनुभव बताये हैं। 1943 में शरीर छोड़ने के पहले शान्तिविजयजी ने कई बार कुछ भक्तों से कुछ वादे किये थे जिनको एक रहस्यमयी निरन्तरता के रूप में बाद में पूरा करना था।

इनमें वे कई वायदे शामिल है जो श्री देवाजी महाराज के शरीर से पूरे हुए, कुछ अन्य जो हो रहे हैं कुछ वे जो महाराज ने भविष्य में पूरा करने के लिए कहा जिसकी सत्यता अभी काल के अधीन अप्रकट रूप में छिपी है।

जब से प्रोफेसर विलियम जेम्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'धार्मिक अनुभव के विभिन्न रूप' लिखी, कई पूर्व और पश्चिम के विद्वानों ने ऐसी पुस्तकें लिखी हैं, जिनका सम्बन्ध आधुनिक युग के कुछ महात्माओं से है जैसे रामकृष्ण, विवेकानन्द, रामतीर्थ, रमन महर्षि, साईं बाबा, स्वामी शिवानन्द, अरविन्द आदि। प्राचीन महात्माओं की तुलना में इन महात्माओं के बारे में हमें अधिक विश्वसनीय सामग्री मिलती है। अन्ततः इन सभी व्याख्याओं में व्यक्तिगत अनुभव का तत्व प्रमुखता रखता है। उनके कुछ व्यक्तिगत अनुभवों में हमें अव्यैक्तिक का तत्व जब स्पष्ट दिखता है तब हम उस व्यक्तिगत अनुभव को इस प्रकार मान सकते हैं जिनमें व्यैक्तिक और अव्यैक्तिक का भेद नहीं के बराबर रह जाता है। इस पुस्तक में मैंने केवल उन्हीं अनुभवों को चुना है जो व्यक्तिगत होते हुए भी उन्हीं की तरह के दूसरों के अनुभवों की परीक्षा में प्रमाणिक उतर सकते हैं। अर्थात् वर्तमान में या दूर भविष्य में अन्य लोग उन्हें मान्यता दे सकें या जिनका सत्यापन (verification) हो सके।

अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद में मैंने इन अनुभवों पर अपनी व्याख्या दी है। इनके प्रकाश में मेरी यह मान्यता बनी है कि आधुनिक विज्ञान और दर्शन का अनुभववाद, जहां तक उसकी पहुँच है वहां तक ठीक है, परन्तु यह मानव अनुभव के कई महत्वपूर्ण तथ्यों की व्याख्या करने में असमर्थ है। इसका महत्व होते हुए भी इसकी अपनी सीमा है क्योंकि इसके पास अतिमानस या आत्मा के स्तर के तथ्यों को समझाने का कोई साधन नहीं है। इसलिए वैज्ञानिक अनुभववाद की पूर्ति अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद से करनी होगी। यह सामग्री संकीर्ण धारणाओं और मतों से मुक्त धर्म के लिए शक्तिशाली आधारशिला प्रदान करेगी जिसको पारम्परिक धर्मों और सम्प्रदायों के कड़वे आलोचक भी सहानुभूति की दृष्टि से देख सकेंगे।

मैं कुछ ऐसे चमत्कारों को इसमें स्थान नहीं देना चाहता था जो साधारण हैं और निम्न स्तर के हैं। फिर भी ऐसे कुछ अनुभव हैं जिनको बाइबल के आधुनिक विद्वान केवल कल्पित कथा या सांकेतिक चिन्ह के रूप में ही लेते हैं। मैं यह बताना चाहता हूं कि भारत में आज भी ये अनुभव देखने और सुनने में आते हैं। इसलिए गुरुदेव के जीवन सम्बन्धी

अनुभवों में इनका विवरण देने के साथ-साथ बाइबल में उनके समानान्तर अनुभवों का हवाला दिया है और उनकी विशेषता (peculiarity) भी बतलाई है। योग के विशेषज्ञों के इन चमत्कारों के प्रति दृष्टिकोण की व्याख्या करते समय इस सम्बन्ध में योगिराज शान्तिविजयजी और श्री देवाजी के विचारों को भी स्पष्ट किया गया है।

गुरुदेव जिस धर्म में दीक्षित हुए थे वह बहुत प्राचीन है और उसका अपना तत्व दर्शन और नैतिक दर्शन है। तत्व दर्शन के पहलू को जहां तक सम्भव हुआ मैंने दूर ही रखा है। बुद्ध और रामकृष्ण की तरह गुरुदेव भी दार्शनिक विवादों से दूर रहते थे। इसलिए इस पुस्तक में किसी विशेष तत्व-मीमांसा की धारणाओं का पक्ष न लेते हुए भी मैंने, जहां आवश्यक लगा, उन दार्शनिक सिद्धांतों की चर्चा की है जो विभिन्न धर्मों में विभेद इंगित करते हैं। मेरी दृष्टि में जैन और बौद्ध धर्म का सबसे महान योगदान इस बात में है कि उन्होंने जाति-स्मरण की धारणा के द्वारा पूर्व जन्म के ज्ञान को मान्यता दी है। अन्य भारतीय धर्म और दर्शनों ने भी इस सिद्धान्त को मौलिक मान्यता दी है। परन्तु दुर्भाग्य से यह सत्य है कि भारतीय और सेमिटिक धर्मों में आत्मा और पुनर्जन्म सम्बन्धी विचारों में भेद रहा है। इन विवादों में न पड़ते हुए हमारा प्रयोजन यही देखना है कि क्या गुरुदेव सम्बन्धी अनुभवों के प्रकाश में आध्यात्मिक सत्ता के बारे में कुछ कहना सम्भव हो सकता है जिसको वैज्ञानिक दृष्टिकोण पूर्ण सिद्धांत के रूप में नहीं तो कम से कम आदर देने लायक प्राक्कल्पना के रूप में तो मान्यता दे सकता है।

मेरी पुस्तक 'द सेन्ट ऑफ माउन्ट आबू' के अंतिम पृष्ठ पर मैंने यह स्पष्टतया लिख दिया था कि कुछ कारणों से मैंने उस पुस्तक को शांतिविजयजी के निर्वाण के समय तक ही सीमित रखा और आगे की बात आगे के लिए छोड़ दी। उस पुस्तक में मैंने देवाजी महाराज से सम्बन्धित बात को विस्तार से नहीं लिखा क्योंकि देवाजी महाराज अपने बारे में सार्वजनिक चर्चा नहीं चाहते थे। अब जबकि देवाजी महाराज उस शरीर में नहीं है, उनकी महान उपलब्धियों को लिखित रूप में रखने का उचित समय है क्योंकि एक महान आत्मा की दो शारीरिक रूपों में किस प्रकार से एक रहस्यमयी निरन्तरता बनी, उसे समझने के लिए परम आवश्यक है।

आधुनिक भारत के विख्यात दार्शनिक और मेरे विद्यागुरु डॉ. पी.टी. राजू का मैं बहुत आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक के लिए गहन रुचि दिखाई। इस पुस्तक को वर्तमान रूप दिलाने के लिए मैं सेठ किशनचन्द, गुरु प्रसाद व्यास, भोपालचंद भंडारी, डॉ. लीलूभाई, रूपजी भाई और सरोज बहिन का बहुत आभारी हूं जिनमें गुरुदेव की भक्ति की शुद्ध रूप में निरन्तरता बनी रही ताकि वे अपने द्वारा प्राप्त प्रकाश को दूसरों तक पहुंचा सके। इस रूप में मूल अंग्रेजी पुस्तक From No- faith to Faith को हिन्दी में पेश करने का श्रेय

मेरे मित्र श्री सुधीन्द्र गेमावत आई.ए.एस को है जिन्होंने मेरे लिए जो कठिन कार्य था उसे हिन्दी पाठकों तक पहुंचाने के कार्य को सप्रेम पूरा कर दिया। बाइबल और गुरुदेव के जीवन और दर्शन में जिन समानताओं को हमने देखा उससे प्रभावित होकर ईसाई धर्मगुरु बेनिडिक्ट पोप XVI ने मुझे आशीर्वाद का संदेश भेजा यह उनको और गुरुदेव की कृपा ही बताता है इसका मुझे हर्ष है।

मेरी पूर्व पुस्तक *The Saint of Mt. Abu* के प्रकाशक का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने मुझे उस पुस्तक की सामग्री के प्रकाश में एक सृजनात्मक पुनर्व्याख्या की अनुमति प्रदान की जिनमें विभिन्न पूर्व स्रोतों की स्वीकृतियें भी शामिल हैं।

मांगीमल कोठारी

15 फरवरी, 2013
87, अजीत कॉलोनी
जोधपुर। (राजस्थान)

* * *

आध्यात्मिक प्रत्यक्षानुभववाद

डॉ. पोला तिरूपति राजू

प्रोफेसर एमेरिटस दर्शनशास्त्र/ कॉलेज ऑफ वूस्टर/ अमेरिका

शान्तिविजयजी एक महान सद्गुणी और अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न जैन महात्मा थे जिनका अनुभव उनके पूर्व और पश्चिम के अनेक भक्तों ने किया है। महात्मा को उन विषयों का प्रत्यक्ष किस प्रकार हो जाता है जो साधारण लोगों को नहीं हो सकता, यह साधारण विज्ञान की पहुंच से परे है। परन्तु महात्मा के लिए तो वे अनुभव की हुई घटनाएं और विषय हैं। डॉ. कोठारी इस दर्शन को अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद कहते हैं। इस प्रकार का अनुभव केवल उन्हीं आत्माओं के लिए सम्भव है जो तर्क और मनस के क्षेत्रों से ऊपर उठ गये हैं। 'प्रत्यक्षज्ञान किस प्रकार सम्भव है?' ह्यूम के इस प्रश्न के उत्तर में कांट ने कहा था कि यह मनस की विशेष आन्तरिक बनावट से सम्भव होता है। इसी प्रकार अतीन्द्रिय अनुभव भी हमारे मनस या अति-मनस की विशेष आन्तरिक बनावट के कारण सम्भव है जिसे उपनिषदों में महत कहा गया है।

डॉ. कोठारी द्वारा वर्णित अनुभव, यदि सभी सत्य हैं- कोई कारण नहीं कि वे सत्य नहीं हो सकते क्योंकि जगत केवल वैसा ही नहीं है जैसा हमारी खुली आंखों या वैज्ञानिक उपकरणों की सहायता से दिखाई देता है- यह सूचित करते हैं कि मानव अपने भीतर के इस अति-मनस का विकास कर सकता है या कहें कि उसकी उपस्थिति को पहिचान सकता है। यह जरूरी नहीं है कि इन अनुभवों के विषय जादू की रचना हो।

चूंकि अतीन्द्रियानुभव भी अनुभव है, इसलिए डॉ. कोठारी अपने दर्शन को अलौकिक या आध्यात्मिक प्रत्यक्षानुभववाद (Spiritual Empiricism) कहते हैं। यह सोचना गलत है कि अनुभववाद और प्रत्ययवाद विरोधी धारणाएं हैं। न ही वस्तुतंत्रवाद या प्रत्ययवाद का अनुभववाद से विरोध है। ये सब वाद अनुभव पर आधारित हैं। इसलिए अनुभववाद है और ये सभी यथार्थवादी ही है क्योंकि उनका लक्ष्य असत् के विरुद्ध सत्ता के स्वरूप का निर्धारण करना है। ये सभी अनुभववाद के विभिन्न रूप हैं और यथार्थवाद के भी। डॉ. कोठारी ने अपने अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद को मतों और सम्प्रदायों से दूर रख कर एक योग्य प्रयास किया है। यह केवल धार्मिक प्रकृति के लोगों के लिए ही नहीं बल्कि विद्वत समाज के उन लोगों के लिए भी एक शक्तिशाली आकर्षण बन सकेगा जो

आध्यात्मिक अनुभव के बारे में कई तरह के बौद्धिक और वैज्ञानिक प्रश्न उठाते हैं। जो लोग अनुभव का केवल ऊपरी अवलोकन ही करते हैं और उसकी जड़ों में नहीं जाना चाहते, उन्हें हमारे अनुभव के हर स्तर पर इन्द्रियों से लगाकर अतिबौद्धिक तत्वों का भार लदा हुआ मिलेगा। हमारी समस्या यह है कि किस प्रकार मानव की आध्यात्मिक गहराइयों के विभिन्न स्तरों को प्रकट किया जा सके।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक के पढ़ने का लाभ धर्म और आध्यात्मिक जीवन में रुचि रखने वाले विश्वविद्यालय स्तर के दार्शनिक और सामान्य पाठक दोनों को होगा। इन महात्मा पर इतनी अच्छी पुस्तक लिख कर डॉ. कोठारी ने एक शुभ काम किया है। हमें यह नहीं भूलना है कि भारतीय दर्शन की जड़े मुख्यतः महान संतों के आश्रमों में ही थी। उनके दर्शन की तुलना में हमारे कालेज और विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों के दर्शन बहुत ही तुच्छ और जीवन के संकल्प चिह्नों से शून्य लगते हैं। मैं डॉ. कोठारी और उनकी पुस्तक की सफलता की कामना करता हूँ।

26 जनवरी, 1988

द कॉलेज ऑफ वूस्टर — **पी.टी.राजू**

वूस्टर, यू.एस.ए. — **प्रोफेसर एमेरिटस**

* * *

विलियम जेम्स को इस बात का खेद था कि हमारे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमारा अनुभववादी दर्शन पर्याप्त रूप से आध्यात्मिक नहीं है और हमारा आध्यात्मिक दर्शन पर्याप्त रूप से अनुभववादी नहीं है।

डॉ. कोठारी का आध्यात्मिक अनुभववाद जेम्स की अपेक्षाओं की पूर्ति के रास्ते में एक लम्बी दूरी की ओर अग्रसर होता है क्योंकि उसने आध्यात्मिक अनुभव की सामग्री को प्रमाणीकरण के सिद्धान्त (Verification Principle)द्वारा परीक्षा के अधीन लाकर अनुभववाद के क्षितिज को अधिक विस्तृत बना दिया है और इस प्रकार आध्यात्मिक अनुभव के दावों की सजीवता के तत्व को प्रकाशित किया है। यह पुस्तक दर्शन और धर्म को नई दिशा प्रदान करती है और इसके साथ-साथ परा-मनोविज्ञानमें विद्वतीय रुचि रखने वालों को भी प्रेरित करती है।

20 जून 1991 — **डॉ. आर.सी दीक्षित**

प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग जोधपुर विश्वविद्यालय

* * *

आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

हर युग और हर धर्म में सैकड़ों साधक और साधु हुए हैं जो स्वयं के आत्मकल्याण या मोक्ष प्राप्ति और स्वधर्म प्रचार की दृष्टि से कार्यरत रहे हैं, परन्तु महात्मा महापुरुष, तीर्थंकर, अवतार, पैगंबर (Prophets) बिरले ही हुए हैं। सेमिटिक धर्मों में मूसा, ईसा और मोहम्मद को अपने अपने धर्मों के संस्थापक का स्थान मिला है। इसी प्रकार भारत में वेदान्तिक आचार्य, जैनों में रिषभदेव और महात्मा बुद्ध ने विश्व स्तर के धर्मों की नींव डाली। बाद में इन सभी धर्मों को बहुत बड़ी संख्या में लोगों ने अपनाया। जैन जगत में अति प्राचीन समय से ही चतुर्विद संघ की व्यवस्था बन गई थी। बाद में बुद्ध, ईसा और मुहम्मद ने भी अपने मत की निरन्तरता को बनाये रखने के लिए संगठन बनाये और हर धर्म में आचार्य परम्परा भी बनती गई। हजारों लोगों ने साधु जीवन को अपनाया और वे अपने साधु-परिवारों से बंधे हुए अनुशासन में लगे रहे। फिर भी उनमें कभी-कभी असाधारण व्यक्तियों ने अपनी विशेष छाप बनाई और उनको सद्‌गुरु, दादा गुरु, संत शिरोमणी, युग प्रधान आदि विशेषणों से मान्यता मिली। जैन दर्शन में हेमचन्द्राचार्य और पतंजलि ने योगसूत्र में महापुरुषों को उनके सामर्थ्य की परीक्षा के द्वारा असाधारण स्थान दिया है। जब कभी भी किसी धर्म में कोई असाधारण व्यक्ति प्रकट होता है तो उसके अनुयायी अपने ग्रन्थों में उसकी असाधारण विशेषताओं और साथ साथ उनकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को ढूंढ़ कर प्रकाशित करते हैं। उनमें से कईयों की कोई विशेष पृष्ठभूमि नहीं रही है। उनकी महानता अपनी स्वयं की कठोर साधना से ही उन्हें प्राप्त हुई थी।

गुरु धर्मविजयजी

उन्नीसवीं शताब्दी के भारत की धार्मिक जागृति के युग में राजस्थान के विशाल, शुष्क क्षेत्र में, जालोर जिले के मांडोली गांव में धर्मविजयजी नाम के एक महापुरुष हुए। वे अपनी असाधारण योगिक उपलब्धियों के कारण बहुत प्रसिद्ध थे। इस क्षेत्र के लोग एक

* * *

त्रिकाल ऋषि के रूप में उनकी जयजयकार करते थे अर्थात् एक ऐसा व्यक्ति जिसके लिए भूत और भविष्य एक खुली पुस्तक की तरह थे। ऐसा कहा जाता था कि वे कभी-कभी एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर मौजूद रह सकते थे। उनके बारे में कई चमत्कार प्रसिद्ध थे। एक बार वे जब एक लम्बे उपवास पर थे तब उन्होंने यह व्रत लिया कि वे अपने उपवास का उस समय अन्त करेंगे जब एक हाथी उनको अपनी सूंढ से खाना भेंट करेगा। दो माह बाद जब वे एक सड़क पर थे, सामने से एक हाथी आया। उसने अपनी सूंड द्वारा एक दुकान से कुछ मिठाई उठाई। गुरुजी ने उस हाथी के सामने अपना पात्र रख दिया और हाथी ने उस पात्र में मिठाई रख दी। गुरुजी ने उसे ग्रहण किया और अपने उपवास को समाप्त कर दिया।

एक बार मई माह की भयानक गर्मी में धर्मविजयजी अपने भक्तों के साथ रामसीन से विहार कर आगे आ रहे थे। जलाभाव के कारण लोगों के प्राण निकल रहे थे। तब उन्होंने एक स्थान पर मिट्टी में हाथ फेरा और वहां पानी निकल गया। इस प्रकार लोगों ने प्राण बचाये। एक बार जब वे रामसीन में ही थे तब उसी गांव के कुछ लोगों ने उन्हें पालीतना में एक पेड़ के नीचे ध्यानावस्था में देखा। उन्होंने पूछा: 'भगवन् आप यहां कब पधारे?' उत्तर में उन्हें केवल 'ओम शान्ति' शब्द सुनाई दिये। पालीतना के उन यात्रियों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि जब गुरुदेव पालीतना में दिखाई दिये थे तब वे वास्तव में रामसीन में ही विराजते थे। उन्होंने अपनी मृत्यु के समय की भी पूर्व घोषणा कर दी थी। 101 वर्ष के होने पर मृत्यु से एक माह पूर्व ही उन्होंने अपने भक्तों को निर्देश दिया कि उनकी चिता के चारों कोनों में एक नीम का खूंटा लगा देना। अग्नि लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। नीम के खूंटे समय पाकर चार वृक्ष हो जायेंगे। भविष्य में जब कोई महापुरुष प्रकट होगा तब एक नीम का वृक्ष अदृश्य हो जाएगा। कहा जाता है कि जब गुरुदेव शान्तिविजयजी को आत्मज्ञान हुआ तब उनमें से एक वृक्ष समाप्त हो गया। अन्य तीनों वृक्ष अब भी यथास्थान हैं।

गुरु तीर्थविजयजी

तीर्थविजयजी रायका या रेबारी जाति में मणादर में पैदा हुए थे। परिवार में गरीबी थी। जब वे काफी छोटे थे तभी उनकी सगाई हो गई थी तथा आठ वर्ष तक वे अपने ससुराल में ही रहे और गायें चराते थे। एक बार जंगल में एक गाय-खड्ड में गिर गई। सारे दिन प्रयास करने पर भी वे उसे निकाल नहीं सके। शाम को डरते डरते घर जा कर ससुर को कहा। ससुर ने उनको पीटा और कहा कि गाय छोड़ कर क्यों आया? तीर्थविजयजी ने कहा : 'कोई जानवर मुझे मार देता।' ससुर ने कहा: 'हम तुम्हें ढूंढ़ने जरूर आते, तुम ने गाय को अकेली क्यों छोड़ी? तीर्थविजयजी बिना कुछ खाये उसी समय गाय के पास गये। भगवान को हाथ जोड़ा और बोले: 'घर जाऊं तो ससुरा खाये, यहां रहूं तो जानवर खाये।'

रात में वे झाड़ी में छिप कर बैठ गये। देर रात धर्मविजयजी उधर से निकले। तीर्थविजयजी ने सोचा कि कोई चोर आया है। धर्मविजयजी ने पूछा: 'तू कौन है?' तीर्थविजयजी ने कहा: 'मैं रबारी हूं। मेरी गाय खड्डे में गिर गई है और ससुर ने पीटा है।' धर्मविजयजी ने कहा: 'मैं भी रबारी हूँ। हम दोनों मिल कर गाय को निकाल लेंगे। उन्होंने कोशिश की और गाय को निकाल लिया। फिर वे दोनों गांव की तरफ गये। गाँव के पास आने पर धर्मविजयजी ने कहा: 'अब मैं तो जाता हूं।' तब तीर्थविजयजी ने कहा: 'आप जहां रहें, वहीं मैं भी रहूँगा।' इस पर धर्मविजयजी ने कहा: 'यदि मुझ से मिलना चाहो तो मांडोली उपासरे में आना, मैं वहां मिलूंगा।' थोड़ी देर में धर्मविजयजी वहां से चले गये।

तीर्थविजयजी के गांव पहुंचने पर लोगों ने पूछा: 'गाय कैसे निकली?' तब तीर्थविजयजी ने कहा: भगवान का भेजा कोई आया। सफेद कपड़े वाला था। उसने गाय निकलवाई।' फिर तीर्थविजयजी चुपके से मांडोली आ गये। धर्मविजयजी ने कहा : 'आ गया'। तीर्थविजयजी ने कहा : 'मैं आपके साथ रहूंगा।' तीर्थविजयजी के घर पर मणादर में इत्तला कर दी गई। उनकी सगाई छोड़ दी गई और उनकी होने वाली पत्नी को एक छोटे से समारोह में धर्म-बहिन बना दिया गया।

तीर्थविजयजी ने कठोर तपस्या की। परन्तु उनका स्वभाव उग्र था तथा उनकी आंखों की ज्योति कम उम्र में ही चली गई। उनके समय में सियाणा गांव के उम्मेदजी यति धर्मविजयजी के सम्पर्क में आये और आध्यात्मिक विषय में उनसे मार्गदर्शन पाया। धर्मविजयजी ने उन्हें कुछ ग्रन्थ भी दिये और बतलाया कि कुछ कारणों से तीर्थविजयजी तो उनका लाभ नहीं ले सकेंगे, परन्तु कुछ समय में उनका एक अत्यन्त प्रखर बुद्धि वाला शिष्य आयेगा। उसको आध्यात्मिक विषय में मार्गदर्शन करना होगा। इस प्रतीक्षा के समय में गुरुदेव शान्तिविजयजी अपने शैशवकाल में थे।

* * *

सूर्योदय

गुरुदेव शान्तिविजयजी

गुरुदेव शान्तिविजयजी का जन्म विक्रम संवत 1946 की माघ शुक्ला पंचमी (बसन्त पंचमी) तदनुसार 25 जनवरी, 1890 की भोर वेला में हुआ था। उनका पैतृक निवास मणादर में था। परन्तु उनका जन्म उनके ननिहाल वाण गांव (लास के पास) में हुआ था। गुरुदेव अपने पिता तोलाजी और माता वसुदेवी की पहली संतान थे। उनके तीन भाई और दो बहिनें थी। गुरुदेव का लालन-पालन उनके मामा ने किया जो उन्हें बहुत चाहते थे। उनका बचपन का नाम सगता था।

गुरु तीर्थविजयजी उनके चाचा थे। उनको आंखों से कम दिखने लगा तब उन्होंने सगता को अपने पास रखने की इच्छा व्यक्त की। माता वसुदेवी को कहा 'सगता को मुझे दे दो।' मां ने अपना देवर समझ कर कहा 'ठीक है, ले जाओ।' तीर्थविजयजी सगता को अपने स्थान पर ले गये। उसी दिन शाम को आठ बजे वसुदेवी अपने बेटे का हाल जानने के लिए धर्मशाला गई और पूछा 'मेरे बेटे ने रोटी खाई या नहीं?' बेटे ने कहा 'मां मैंने अच्छा भोजन किया।' मां ने कहा 'बेटा घर चलो'। सर्दी पड़ रही है। तुम्हें ठंड लग जाएगी। सगता ने कहा : 'मां मुझे ओढ़ने बिछाने देने को कहा है।' रात को एक जैन के घर से बिस्तर मंगवाये और सगता रात को आनन्द से सोये। सुबह उठ कर गुरुजी को प्रणाम किया। गुरुजी ने कहा: 'तू निपट के आजा।' सगता जंगल गये और वापिस आते समय अपने घर गये। मां ने कहा, 'बेटा घाट खाले' सगता बोले, 'मां, मैं काका के साथ खाऊंगा।' गुरुजी ने सगता के कपड़े बनवाये। आठ दिन बाद फिर मां वापिस गई और कहा 'बेटा घर चलो।' तब तीर्थविजयजी ने सगता को अपने ही पास रखने पर जोर दिया। उस समय गुरुदेव करीब आठ वर्ष के थे। माता पिता ने उनके सिर पर हाथ रख के आशीर्वाद दिया और अपनी अन्तिम स्वीकृति दे दी।

अपने चाचा के सान्निध्य में गुरुदेव ने साधु जीवन के बारे में जानकारी प्राप्त की। सोलह साल की आयु में विधिपूर्वक दीक्षा प्राप्त कर तीर्थविजयजी के शिष्य बन गये। उनकी दीक्षा का समारोह वि.सं. 1961 की बसंत पंचमी (9 फरवरी 1905) को रामसीन

गांव में उल्लासपूर्वक मनाया गया। उनके गुरु ने उनका नाम मुनि शंतिविजय रखा।

दीक्षा के कुछ साल बाद गुरु और शिष्य चातुर्मास के लिए मुडतरा गांव गये। शान्तिविजयजी गोचरी व पानी लेने जाया करते थे। एक बार जब वे पानी लेकर आ रहे थे तब उनका बर्तन नीचे गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। यह जानने पर तीर्थविजयजी को बहुत गुस्सा आया और वे युवा शिष्य के साथ बहुत कठोरता से पेश आये। गुरु का उग्र स्वभाव शिष्य की शान्त प्रकृति के विपरीत था। इस घटना से शिष्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे अब खुद के पैरों पर खड़े होंगे। यह उनके त्यागमय जीवन का सही आरम्भ था, जब उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया। यहां तक कि अपने गुरु को भी। यह अपरिग्रह की पराकाष्ठा थी। वे आबू पर्वत पर साधना करने चले गये। उनको खोजने के काफी प्रयास किये गये, परन्तु लम्बे समय तक उनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिली।

आबू पर्वत पर एकान्त में तपस्या

गुरुदेव ने आबू पर्वत पर एकान्तवास में कठोर तपस्या की। इसी अवधि में वे उम्मेदजी यति से मिले जिन्होंने दादागुरु धर्मविजयजी के निर्देशानुसार उनका मार्ग-दर्शन किया। इस एकान्तवास के बारे में, जो करीब बारह साल तक रहा, बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। कहा जाता है कि कुछ साल बाद उन्होंने गुजरात और काठियावाड़ के जैन तीर्थों की यात्रा की थी और फिर आबू की गुफाओं में चले गए। आबूरोड के पास ऋषिकेश नाम का स्थान है, वहां पर भी गुरुदेव ने ध्यान किया। वहां बड़ी संख्या में सांप रहते है। वहां गुरुदेव की सेवा में भभूताजी नाम का ब्राह्मण रहता था। वह कहता था कि जब मैं बाकुले (आहार) लेकर गुरुदेव को देने जाता, तब कई सांपों को गुरुदेव के पास इधर उधर फिरते देख कर डर जाता था और शीघ्र बैरा कर वापस लौट जाता था।

सन् 1916 में गुरुदेव जसवन्तपुरा के सूंधा पहाड़ी पर विराजते थे। वहां चामुंडा देवी का मन्दिर है। वहां नवरात्रि पर देवी के सामने पशुओं की बलि दी जाती थी। इससे सम्बन्धित लोग गुरुदेव से बहुत प्रभावित हुए और वहां पशु बलि की प्रथा समाप्त करा दी गई।

करीब पांच वर्ष तक गुरुदेव मार्कंडेश्वर में रहे। यह स्थान अजारी गांव के कुछ दूर पहाड़ों के बीच घने वन में है। यहां के प्रसिद्ध सरस्वती मंदिर और पास की पहाड़ियों और गुफाओं में गुरुदेव ने ध्यान किया। उस समय लक्ष्मीशंकर उर्फ ब्रह्माजी नाम के ब्राह्मण उनकी सेवा में रहते थे। वे इस समय के अपने कुछ अनुभव बतलाते रहते है। गुरुदेव ने इस समय तक विश्व के अन्य धर्मों व शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। कहते हैं गुरुदेव ने कभी पेंसिल तक हाथ में नहीं ली। सिर्फ आत्मशक्ति से ही सब ज्ञान प्राप्त कर लिया।

1920 में गुरुदेव शिवगंज में थे। एक दिन गोचरी के समय वे धनरूपजी के घर गये।

उनका लड़का अपंग था। गुरुदेव ने उसके बारे में पूछा। उसके पिता ने बताया कि यह बच्चा कई वर्षों से अपंग है। गुरुदेव ने कहा, 'ओम शांति, ठीक हो जाएगा। लड़का धीरे-धीरे चलने लगा और कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया।

सन् 1921 में गुरुदेव पोनावा में थे। सन् 1922 में वे पुनः गुफाओं में चले गये। इस समय तक मिस एलीजाबेथ शार्प उनके सम्पर्क में आ गई थी तथा लिंबड़ी, निम्बाज और कई अन्य जगह के प्रतिष्ठित व्यक्ति उनके पास आने लग गये थे। भक्तों को संख्या बढ़ रही थी। दुर्भाग्यवश हमारे पास इस समय के महत्वपूर्ण अनुभवों का विस्तृत वर्णन नहीं है। जो लोग गुरुदेव के साथ रहे थे, उन्होंने इस तरफ विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रभुदास अमृतलाल मेहता उर्फ बंशी उन बिरले लोगों में से थे जो गुरुदेव की साधना की पराकाष्ठा पर पहुंचने और बाहर प्रकट होने पर करीब दस साल तक गहरे सम्पर्क में रहे। सन् 1929 तक जो राजा, महाराजा, नेता और विद्वान गुरुदेव के सम्पर्क में आये उननें से कुछ लोगों के अनुभव आपने इकट्ठे किये और 'परम कल्याण मंत्र' नाम की एक पुस्तिका निकाली। यह गुरुदेव के जीवन और अनुभवों से सम्बन्धित प्रथम पुस्तक थी। परन्तु जितना हो सकता था उतना नहीं हुआ। उनका प्रयास इस दृष्टि से सराहनीय है कि अगे बहुत लम्बे समय तक अन्य किसी ने भी इस दिशा में गंभीरता से प्रयास नहीं किया। कुछ भजन और गीतों के संग्रह अवश्य प्रकाशित हुए, परन्तु उनमें प्रायः वे ही अनुभव बार-बार दुहराये गये। 'बंशी' ने अनुभवों और विचारों का संकलन करते समय ऐतिहासिक दृष्टि को सामने नहीं रखा। इसलिए उनके मूल स्रोत का पूरा हवाला (तारीख आदि) नहीं मिलता जो भावी शोधकर्ताओं के लिए एक कमी बना रहेगा। एक तिथि उन्होंने निश्चित रूप से बताई है। वह यह कि गुरुदेव का जन्म संवत 1946 में हुआ था।

गुरुदेव के पास भक्तों और प्रशंसकों के सैकड़ों पत्र और तार आए थे। सेठ किशनचन्द ने आबू पर शान्तिसदन के संग्रहालय में काफी सामग्री रखी थी जो उन्होंने मुझे दी और जिसे मैंने अपनी पूर्व पुस्तक *The Saint of Mt. Abu (1982)* में दिया था। इस पुस्तक में भी उसका उपयोग किया गया है। इस सामग्री का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि उन कई लोगों के अनुभव और गुरुदेव के प्रति उनकी भक्ति कितनी गहन थी, मुख्य रूप से उन लोगों की जिनका धर्म और परम्पराएं जैन जीवन से भिन्न थीं।

गुफाओं से प्रकाश में

गुरुदेव के शुरुआती भक्तों में किंवरली के पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास और चंपकलाल शाह थे। वे काफी समय जीवित रहे और गुरुदेव के बारे में अपने अनुभव सुनाते रहते थे।

शुरू के अन्य भक्तों में जयपुर के स्वर्गीय गुलाबचन्दजी ढढ्ढा पहली बार सन् 1923 में गुरुदेव के सम्पर्क में आये। वे काफी समय आबू में रहे और प्रतिदिन अपनी डायरी लिखा करते थे जिसमें उन्होंने कुछ राजाओं और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आने के बारे में

लिखा है। उनकी डायरी में से जो उनके पुत्र सिद्धराज ढड्ढा ने मुझे देखने को दी थी इस विषय से सम्बन्धित कुछ सामग्री यहां दी जाती है:-

11 मई 1923 : गुरुदेव नाणा गांव से माउंट आबू आये।

22 मई 1924 : लिंबडी नरेश सर दौलतसिंह सवेरे दिलवाड़ा मन्दिर में गुरुदेव के पास आये व उनके साथ दो घंटे तक रहे।

7 जून 1924 : सर प्रभाशंकर पट्टनी व लिंबड़ी नरेश गुरुदेव के दर्शन के लिए आये।

8 जून 1924 : गुरुदेव की माता वसुदेवी और बहिनें आबू आये। उन्हें ढढ्ढाजी के यहां खाने पर आमंत्रित किया।

29 जून 1924: गुरुदेव ने चातुर्मास आबू पर करने की इच्छा प्रकट की। लिंबड़ी नरेश ने 28 तारीख को अपना बहुत सारा समय गुरुदेव के साथ बिताया।

7 जुलाई 1924 : मिस एलिजाबेथ शार्प गुरुदेव के साथ थी। वे गुरुदेव को अप्ना तरनहार मानती हैं तथा बहुत श्रद्धा और भक्ति से उनकी सेवा करती है। वह आज लिंबड़ी जा रही है, अत: अन्तिम बार दर्शन के लिए आई हैं।

12 जुलाई 1924: गुरुदेव दिलवाड़ा से चातुर्मास के लिए अनादरा चले गये।

15 जुलाई 1925 : गुरुदेव देलवाड़ा आते समय रास्ते में मिस शार्प के नये बंगले पर दो घंटे के लिए रुके। मिस शार्प ने सभी उपस्थित लोगों को शर्बत पिलाया और मेवा बांटा।

16 मई 1925 : एजीजी ने राजपुताना की रियासतों के प्रतिनिधियों की एक बैटक बुलाई। एजीजी का मूड खराब था। बैठक के बाद ढढ्ढाजी ने एजीजी को गुरुदेव के आबू आने के बारे में बतलाया और पूछा कि क्या वे गुरुदेव से मिलना चाहेंगे। एजीजी ने ढढ्ढाजी को बाद में फिर याद दिलाने के लिए कहा। 'एजीजी ने न तो आते समय और न जाते समय रियासतों के प्रतिनिधियों से हाथ मिलाया। परन्तु मैंने उन्हें शान्तिविजयजी के बारे में बात करने के लिए रोका तब उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया।'

17 मई 1925 : बीकानेर दरबार गंगासिंहजी तथा लिंबड़ी दरबार शाम को पांच बजे गुरुदेव के दर्शन के लिये आये। बीकानेर दरबार अपनी इस मुलाकात से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गुरुदेव को अपने न्विास पर आने की विनती की।

19 मई 1925: आज सुबह गुरुदेव बीकानेर हाउस पधारे।

23 मई 1925 : मिस शार्प को मौरवी नरेश का गुरुदेव के लिए पत्र मिला।

24 मई 1925 : आज शाम 5.30 बजे जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, भरतपुर, किशनगढ़, कोटा एवं सिरोही रियासतों के प्रतिनिधि गुरुदेव के दर्शन करने आये। लिंबड़ी नरेश तथा मिस शार्प भी गुरुदेव के दर्शनार्थ आये। गुरुदेव को

हलका सा बुखार था।

29 मई 1925 : महाराजा पोरबन्दर सुबह 10 बजे से 1 बजे तक गुरुदेव के पास रहे और उनके भक्त बन गये। उन्होंने कुछ व्रत भी लिये।

30 मई 1925 : दोपहर 2 बजे सिरोही दरबार गुरुदेव के पास आये। उन्होंने गुरुदेव से प्रार्थना की कि चौमासे में आप सिरोही विराजें या कहीं आस पास में ही ताकि वे अधिक दर्शन कर सकें।

10 जून 1925 : पंडित मदनमोहन मालवीय गुरुदेव के पास आये। उनके साथ जमनालाल बजाज भी थे।

12 जून 1925 मौरवी नरेश गुरुदेव के दर्शन के लिये आये।

25 जून 1925 : शाम छह बजे बीकानेर दरबार गंगासिंहजी अपने दोनों पुत्रों, मेजर ओगिल्वी तथा कपूर के साथ आये और एक घंटे से अधिक गुरुदेव के पास रहे।

26 जून 1925 : लिंबड़ी नरेश, उनके पुत्र तथा एलिजाबेथ शार्प गुरुदेव के पास आये और रात्रि के 9.30 बजे तक वहां रहे।

8 अगस्त 1926 : मिस शार्प ने बताया कि गुरुदेव का आदेश है कि वे चौमासे में किसी से नहीं मिलेंगे क्योंकि वे ध्यान के लिए गुरुशिखर जा रहे हैं।

एलिजाबेथ शार्प

इस समय बौद्धिक वर्ग में सर्वप्रथम लिंबड़ी की मिस एलिजाबेथ शार्प उनके सम्पर्क में आई। उसे योग में बहुत रुचि थी और उसने शीघ्र ही गुरुदेव की महानता को पहचान लिया और उनसे मार्गदर्शन लेने लगी। कुछ समय बाद उसने योग पर 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया' (11 मार्च 1928) में अपने एक लेख में लिखा: 'शांतिविजयजी के अद्भुत नेत्र कुदरतन बड़े और तेजस्वी हैं। किसी की ओर देखते ही मानो उसके आन्तरिक भावों को पढ़ लेते हैं। वे श्याम वर्ण हैं, परन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि ध्यान में उनका रंग कई गुना साफ हो जाता है। मैंने स्वयं ऐसा घटित होते हुए देखा। प्रकाश का एक छोटा सा बिन्दु, जिसको संस्कृत में 'तारक बिन्दु' कहते हैं, नाक के ऊपर चक्षु से चक्षु में चमकता हुआ स्पष्टतः दिखाई देता है और योग का दो-पत्ती कमल जिसे आज्ञाचक्र कहते हैं, ललाट पर धुंधला सा दिखाई देता है।''

ज्ञान के शिखर

मिस शार्प ने जयपुर के गुलाबचंद ढढ्ढा को बताया कि उसने मुनिजी में अच्छाई ही अच्छाई देखी है और वे ज्ञान के बहुत ऊंचे शिखर पर पहुंचे हुए हैं। उन्होंने विश्वास प्रकट किया कि अभी हम जो भी बात कर रहे हैं, उसका उन्हें पता है और आगे जब हम आबू में उनसे मिलेंगे तो वे हमें बता देंगे। मैंने भी मिस शार्प को बताया कि एक बार श्रीमती ढड्ढा ने पालीतना में श्री कान्तिविजयजी से प्रायश्चित लिया था लेकिन जानबूझ कर या भूल से एक बात टाल दी थी। मुनिजी ने उसे कहा कि हालांकि वह प्रायश्चित लिया है लेकिन वह यह उल्लेख करना भूल गई। श्रीमती ढड्ढा यह जान कर आश्चर्यचकित रह गई कि उनमे अतीत में झांकने की ऐसी सामर्थ्य है।

एक बार लिंबड़ी नरेश सर दौलतसिंह इंग्लैण्ड में अपने पुत्रों के बारे में चिंतित थे। मिस शार्प उन्हे गुरुदेव के पास ले गई। गुरुदेव ने उनके दोनों पुत्रों के नाम बता दिये और कहा कि छोटा लड़का अपनी पढ़ाई में व्यस्त है। बड़ा लड़का जो जाम साहब के साथ था, तीन महिलाओं के साथ इंग्लैण्ड से बाहर गया है और जाम साहब मछली पकड़ने के लिये गये हैं। बाद में उनके पुत्र की चिट्ठी आई तब उसने लिखा कि जाम साहब किसी लार्ड के साथ मछली पकड़ने गये थे और वह जाम साहब की तीन बहिने और भांजियों के साथ स्कॉटलैंड गया था।

ढड्ढाजी ने बताया कि आगे एक बार लिंबड़ी नरेश गुरुदेव के दर्शन करने गये। मिलने के बाद जब वे जाने लगे तब गुरुदेव ने कहा 'अभी आप मत जाइए। आपको रास्ते में ही ठहरना पड़ जाएगा, इसलिए अच्छा है कि आप यहीं रहें। लेकिन हिज हाइनेस नहीं माने और चल दिए। अनादरा के निकट उनकी मोटर खराब हो गई और उन्हें डाक बंगले में ही रात काटनी पड़ी।'

लिंबड़ी नरेश इस घटना से बहुत प्रभावित हुए और उस बात को वे अपने मित्रों को सुनाया करते थे। उन्होंने गुजरात और काठियावाड़ के कई राजाओं को गुरुदेव के पास जाने के लिए प्रेरित किया। उनमें से कई गुरुदेव के भक्त बन गये। बाद में उन्होंने लिखा:

मैं पिछले छह सात वर्ष से योगनिष्ठ मुनि महाराज श्री शान्तिविजयजी के समागम में आ रहा हूँ और यह कह सकता हूँ कि आप एक उच्चकोटि के महापुरुष हैं। योगाभ्यास से आपको विश्व-दृष्टि प्राप्त हुई है और मेरे जीवन में मैंने इसके दृष्टान्त अनुभव किये हैं। आप सरल प्रकृति के एक योगपरायण संत पुरुष हैं। मेरी यह इच्छा है कि अधिकारी सज्जन आपके पवित्र संसर्ग से आत्मिक उच्चता का लाभ उठावें।

* * *

माउन्ट आबू और जगद्‌गुरु शांतिविजयजी

एक संशयवादी के हार्दिक उद्‌गार

सर आर्थर कनिंघम लोथियान (K.C.I.E., C.S.I. L.L.D.)

(एजेन्ट टु द गर्वनर–जनरल फॉर राजपुताना 1937–42)

मैंने 28 अक्टूबर 1937 को सर ओगिल्वी से आबू पर अपने पद का कार्यभार संभाला। मैंने भारत में कई अन्य प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान देखे हैं, परन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से इससे अधिक रमणीय स्थान अन्य कोई नहीं देखा। यह उत्तरी शीतोष्ण वनस्पति और शुष्क उष्ण कटिबंधीय वनस्पतियों का मिलन स्थान है जो वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से इसे अत्यन्त रुचिकर बना देता है। यह पक्षी–प्रेमियों के लिए तो एक स्वर्ग है क्योंकि भारत की कई दुर्लभ छोटी चिड़ियाँ यहाँ इकट्ठी हो जाती हैं। मेरे कार्यकाल में आबू को अभयारण्य बनाया गया था और यहाँ बाघ और चीते बड़ी संख्या में पाये जाते थे। कई बार गोल्फ क्लब से क्षितिज पर बाघ दिखाई देते थे। आबू अति प्राचीन समय में हिन्दुओं का एक पवित्र स्थान रहा है और जो लोग पुरातत्व विज्ञान और भारतीय कला में रुचि रखते हैं, उन्हें दिलवाड़ा और अचलगढ़ में भारत के कुछ अति सुन्दर मन्दिर देखने को मिलेंगे। यहाँ जंगल के एकान्त में कई संन्यासी रहते हैं। संयोगवश भारत के सबसे अधिक विख्यात गुरु, जगद्‌गुरु शान्तिविजयजी ने भी इसे अपना स्थायी आवास बनाया था।......

मेरे भारतीय मित्र सेठ किशनचन्द लेखराज के आग्रह पर मैं एक बहुत प्रसिद्ध गुरु शान्तिविजयजी के दर्शन करने गया जो उस समय आबू से कुछ मील दूर अपने अचलगढ़ आश्रम में विराजते थे। गुरुजी विश्व प्रेम के दिव्य संदेश का उद्‌घोष करते थे और उनके भक्तों के अनुसार उनमें आत्मज्ञान और भविष्यवाणी की शक्ति थी। मैं धार्मिक विषय में संशयवादी सा रहा हूं। इसलिये मैं इस प्रकार के सम्पर्क के लिये योग्य पात्र नहीं था। फिर भी मेरी पत्नी और मैं इस प्रथम और बाद की मुलाकातों में उनसे प्रस्फुटित होने वाले श्रेय और करुणा से अत्यन्त प्रभावित हुए। जहां तक भविष्य के पूर्वज्ञान की बात है, हम दोनों इस बात के साक्षी हैं कि जापान से युद्ध छिड़ने के तीन माह पूर्व ही उन्होंने हमें इससे अवगत करा दिया था और बता दिया था कि सुदूरपूर्व में हमें भयंकर विपत्तियाँ झेलनी

पड़ेंगी, जिनसे संभलने में हमें देर लगेगी, परन्तु अन्त में विजय हमारी ही होगी। चूंकि मैं जापान जा चुका था और वहां के लोगों से प्रभावित नहीं हुआ था, इसलिये मुझे यह विश्वास ही नहीं हुआ कि जापान के हाथों हमारी ऐसी दुर्दशा हो सकती है। परन्तु हाय ! इतिहास बताता है कि गुरुदेव कितने सही थे। वे अंग्रेजी नहीं जानते थे और एक राजस्थानी भाषा बोलते थे। फलस्वरूप वे अपनी बात सामान्य शब्दों और कथारूप में कहते थे। परन्तु मैंने उन्हें किसी भी बात में कभी भी गलत नहीं पाया। मेरी उनके प्रति गहरी श्रद्धा थी। उनके भक्तों द्वारा उन्हें 'जगद्गुरु' का जो पद दिया गया था, वे पूर्णतः उसके अधिकारी थे। सन् 1943 में उनके असामयिक देहान्त को मैंने अपने जीवन की सबसे भयंकर दुर्घटना समझा। एक वर्ष पूर्व ही वे गिर गये थे जिससे उनके कूल्हे की हड्डी टूट गई, परन्तु उन्होंने कोई इलाज करवाना स्वीकार नहीं किया। यद्यपि मैंने इसके लिए उन पर काफी दबाव डाला, परन्तु वे यही कहते कि (अब) प्रार्थना ही काफी है। अपने समय में शान्तिविजयजी समस्त राजपुताना, काठियावाड़ और गुजरात में एक शुभ शक्ति का विशाल प्रभाव रखते थे और उनकी विस्तृत भक्त-मंडली में बड़े बड़ों से लेकर गरीब जंगलवासी तक थे।

(ए.सी. लोथियान : किंगडम्स ऑफ यस्टरडे, पृ. 151, 172-3)

तार

कोटा **26 दिसम्बर, 1940**

गुरु शान्तिविजयजी

माउंट आबू

नये वर्ष की सभी शुभकामनाएँ। आपका नाम वस्तुतः आशाजनक शकुन समझा जावे।

राजपुताना एजीजी

(आर्थर लोथियान)

* * *

सर जॉर्ज ड्रमॉड ओगिल्वी
(ए.जी.जी. राजपुताना, 1932–37)
c/o इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया
25 ओल्ड ब्रोड स्ट्रीट, लन्दन
11 जनवरी, 1938

प्रिय गुरुजी महाराज,

आपने क्रिसमस के अवसर पर बड़ी कृपा कर मुझे आशीर्वाद का तार भेजा। इसके लिए मैं आपको बहुत बहुत धन्यवाद देता हूँ। मैं इनकी बहुत ही कदर करता हूँ। मैं आपको कभी नहीं भूल सकता और आपको सदा प्रेम और श्रद्धा के भाव से याद रखूँगा। मैं इस समय दक्षिणी फ्रांस में हूँ और फरवरी में इंग्लैण्ड लौटुंगा।.......

मैं आशा करता हूँ कि आप पूर्णतया स्वस्थ होंगे। मैं प्रायः आबू और वहां के मेरे सुखद दिनों की याद करता हूँ।

मेरी शुभतम कामनाओं और आपके आशीर्वाद के लिए धन्यवाद के साथ।

आपका
जी.डी. ओगिल्वी

समर्पण

तांत्रिक योग (हिन्दू और तिब्बतन)
प्रकाशक राइडर एंड कंपनी, लंदन

मेरे गुरु (शांतिसूरीश्वरजी) को

'एशिया ग्रन्थमाला' के इस प्रथम भाग को मैं गुरु श्री विजयशान्ति सूरीश्वरजी महाराज को समर्पित करता हूं। भारत में मैंने आपके दर्शन किये और आपने मुझे शान्ति प्रदान की। आत्मज्ञान की व्याख्या,........

परम आदर के साथ,
जी.मा. राईवीरे
पेरिस।

अप्रेल, 1940

* * *

पवित्र बाइबल सा दृश्य
रॉल बॉप

प्रेया बोटा–फोगा 28
रायो डी जेनेरो, ब्राजील
मार्च 21, 1969

प्रिय डॉ. कोठारी

मुझे आपका पत्र मिलने पर अत्यन्त सुखद आश्चर्य हुआ जिसमें कई वर्षों पहले माउंट आबू पर मेरी महान् योगी श्री शान्तिविजयजी से हुई भेंट के विषय में जिक्र हैं।

उस समय, तीस साल पहले, मैं योकोहामा (जापान) में ब्राजील का कौन्सल थो। छुट्टियों में मुझे भारत की यात्रा करने और पूज्य गुरुदेव को गहरा आदर समर्पित करने का अवसर मिला।

माउंट आबू की मेरी स्मृतियाँ मेरे मन में अभी भी ताजा हैं। दुनियां के विभिन्न स्थानों से आये, सूर्य की उष्णता से तप्त, विनम्र यात्रियों के शान्त मिलन के बीच मैं इस आश्चर्यजनक नई दुनियां में विस्मित सा हो गया। वे छोटे-छोटे समूहों में, पहाड़ की शान्ति में विश्राम कर रहे थे। ये लोग दुनियां के कोने–कोने से मानव जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर गुरुदेव के उपदेश सुनने के लिए आये थे, जो कम शब्दों में होते थे।

कभी-कभी विनम्र प्रश्न भीड़ में हलका सा स्पन्दन उत्तेजित कर देता। परन्तु ऐसा लगता है कि कम से कम वार्ता में बहुत गहरा ज्ञान और विनय समा जाता। कई बार लम्बे समय तक निःशब्दता भी रहती थी। इसी बीच भक्तों के समूह में विराजमान उस महान् योगी ने मेरी तरफ इशारा किया। मुझे उनके पास ले जाया गया। वे मेरे से हिन्दुस्तानी में बोले। मैंने पुर्तगीज भाषा में उत्तर दिया। एक ही भाषा न बोलते हुए भी हमने एक दूसरे को पूर्ण रूप से समझ लिया। अपने श्वेत बालों के मुकुट में पूज्य शान्तिविजयजी सरलता की मोहनी मूरत थे। मुझे लगता है कि गुरुदेव त्रसित जन समुदाय को अत्यन्त सूक्ष्म तरीके से जीवन के आधारभूत मूल्यों की शिक्षा दे रहे थे। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अपनी आँखों के सामने पवित्र बाइबल के किसी पृष्ठ का महान दृश्य देख रहा हूँ।

–रॉल बॉप

* * *

ईश्वर की सही प्रतिकृति

जॉर्ज जुटजेलर, स्वीटजरलैंण्ड (डायरी)

भारत के उत्तरी भाग में, थार के भयानक रेगिस्तान की सीमा पर, माउन्ट आबू नाम का एक पवित्र पहाड़ है। इसकी ऊंचाई पर एक जगह ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों के ग्रीष्मकालीन आवास बने हैं, परन्तु उसके आगे फिर जंगल शुरू हो जाता है। वहां के जंगल और गुफाओं में कई योगी और महात्मा मिलते हैं और मेरा विचार वहां एक महात्मा से मिलने का था। ....

'मैंने एक विख्यात योगी के आश्रम के लिए प्रस्थान करने की तैयारी कर ली है- एक ऐसा महात्मा जिसकी भारत के अनेक आश्रमों में प्रशंसा हो रही है- योगिराज शान्तिविजयजी। लोगों में उनके बारे में चमत्कार की कई बातें प्रचलित है; परन्तु मैं प्राच्य लोगों में काल्पनिक शक्ति की अधिकता के कारण विश्वास नहीं करता। मैं स्वयं इन महात्मा के पास जाकर, देखकर, मिलकर ही इनके बारे में अपनी धारणा बनाना चाहता हूँ।.... मैं बिना किसी पूर्व सूचना के ही चला आया। मलेरिया और कई अन्य स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हालात होने के बावजूद मेरे अन्दर अचानक ही आबू जाने की इच्छा हुई। दिलवाड़ा मन्दिर के दर्शन करने के बाद जब मैं पैदल ही अचलगढ़ की तरफ जा रहा था, मेरे सामने से एक व्यक्ति आकर अच्छी अंग्रेजी में बोला: 'महात्माजी आपका इन्तजार कर रहे हैं। आपको अभी दर्शन हो जायेंगे। आप भाग्यशाली हैं क्योंकि कल शाम को वे जंगल में चले जाएंगे। पता नहीं कहां विराजेंगे। करीब दो महीने तक नहीं मिलेंगे।'

मैंने पूछा: 'परन्तु उन्हें मेरे बारे में कैसे पता? मैंने तो पहले किसी को भी सूचित नहीं किया।'

उस व्यक्ति के सुन्दर मुखमण्डल पर मुस्कुराहट जगी। उसने कहा: 'महात्माजी सब जानते हैं। उन्होंने मुझे इसलिए भेजा है क्योंकि मैं अंग्रेजी जानता हूँ और आपकी भाषा का अनुवाद कर सकता हूं।' इधर मैं कई विचारों से परेशान हो रहा था कि क्या महात्माजी वहां होंगे, क्या मैं उनसे मिल सकूंगा? दूसरी तरफ उन्हें सब कुछ पहले से ही मालूम था और मेरे आने के लिए सभी तैयारी हो चुकी थी। मेरा स्वागत आनन्ददायक रहा और मेरे हृदय में उत्साह की लहरें उमड़ने लगी।

उन महात्मा की कुटियां को पहुंचने के लम्बरूप रास्ते पर हम कठिनाई से चढ़े। एक चट्टान पर बने एक छोटा सा निवास स्थान, पहाड़ी चोटियों के बीच, जहां से दूर के बहुत चौड़े मैदान, भूरे और हरे हैं वे वास्तव में अद्भुत, शांति, सुन्दरता, एकता और प्राकृतिक छटा को व्यक्त करते हैं।

हम अपने लक्ष्य पर पहुंचते हैं। वह युवक अन्दर जाता है और मुझे अपने पीछे-पीछे आने का इशारा करता है। मेरे दाहिनी ओर एक छोटे से तख्त पर आसित एक श्वेत अचल

छाया के अलावा मुझे वहां कुछ भी दिखाई नहीं दिया। हिन्दू रीति के अनुसार मैंने जमीन तक झुक कर प्रणाम किया।.... अपने सामने की आकृति को मैंने ध्यानपूर्वक देखा। योगी स्थिर स्थिति में अपने आसन पर बैठे थे। उनकी दाढ़ी करीब-करीब श्वेत थी। बाल भूरे थे। उनका रंग सूर्यतप्त था परन्तु स्वर्ण सा दिखता था। गहरी भौंहों के नीचे काली आंखें, कभी तीक्ष्ण और ओजस्वी और कभी अवर्णनीय नम्रता से भरपूर दिखाई दी। आकृति सुन्दर और एक अत्यन्त उच्च आर्य रूप की थी। सामान्य प्रभाव शुभता और सरलता का था। मैंने अन्य कई दंभ और घृणा से पूर्ण साधु देखे हैं। परन्तु इस महात्मा में उन लोगों से कितनी सुखद भिन्नता थी। अपने अन्तरंग में वे एक गहरे जीवन में लीन थे। वे बहुत गहरे विद्वान लग रहे थे और चारों तरफ नम्रता और शुभता का वातावरण फैला हुआ था। मेरे मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि ऐसा व्यक्ति उन अशिक्षित और साधारण लोगों के बीच कैसे रहता है, जो उनके आस-पास रहते हैं या दर्शन के लिए आते हैं। निश्चित ही वह किसी अतिमानव स्तर के लगते हैं। हमारी बातचीत के बीच-बीच में कई बार गहरी मौन की स्थिति हो जाती। वे अपनी आंखें बन्द कर लेते और अपनी आत्मा की गहराई में एकरूप हो जाते जहां उन्हें ताजा शक्ति और प्रकाश मिलता। इसके परिणाम स्वरूप उन प्रश्नों का भी उत्तर दे देते जो मैंने उन्हें नहीं पूछे परन्तु जिनको मैं अपने मन में ही पूछ रहा था। मैंने उनके और मेरे बीच में एक सीधे सम्पर्क का अनुभव किया जो मुझे समझ में नही आ रहा था। ऐसा लगा कि मैं अपने आप को जितना समझ पाया उससे भी अधिक अच्छी तरह से वे मुझे जानते थे।....

मुझे एक ऐसा हिला देने वाला अनुभव हुआ जो मैं कभी नहीं भूल सकता। मेरे ऊपर जो शांति छा रही थी, उसमें मैंने धीरे-धीरे एक गहरा और आशातीत संवेग का अनुभव किया। ऐसा लगा जैसे एक शक्तिशाली तरंग में मेरी चेतना धीरे-धीरे डूबती जा रही है और मुझे एक नवीन अवस्था की ओर ले जा रही है- ऐसी अजीब स्थिति जैसी मैंने पहले कभी अनुभव नहीं की। जितना अधिक मैं अपने आपको नियंत्रित करने की कोशिश करता, उतना ही अधिक गहरा और डरावना संवेग मुझे हिला देता। आखिर उस तूफान का वेग इतना भयानक हो गया कि मैं उसे सहन नहीं कर सका और मुझे लगा कि मैं मर रहा हूं। एक शून्य की स्थिति। केवल एक मुस्कान से मेरी बुद्धि और इन्द्रियाँ शून्य की स्थिति में उतर जाती।....

मैंने उस पहाड़ी पर मृत्यु तक दबा देने वाली स्थिति की मौन व्यथा से गहन संघर्ष किया। आखिर मैंने महात्माजी की तरफ देखा। उनके सुन्दर चेहरे पर मुस्कान प्रकाशित थी। उन्होंने आंखे खोली और मेरी तरफ एकटक देखा और वह स्थिति एक दम समाप्त हो गई। यह सब क्या हुआ ? उनके और मेरे बीच कौनसा पवित्र बन्धन बन गया ? उस दर्द की स्थिति से बाहर आ जाने पर मैं पहले जैसा मनुष्य नहीं रहा।.....

मैं जानता हूं कि उस भयानक घड़ी के बीच होकर पुनः गुजरने का सामर्थ्य रखता हूं।

महात्माजी ने मुझे एक संस्कृत श्लोक दिया है जिसे गुरुमन्त्र कहते हैं। मैं अपनी आत्मा की गहराई में जब इसका जप करता हूं तब शान्ति, आनन्द और एक भूले हुए स्वर्ग की तरफ आत्मा के प्रवेश का पुनः अनुभव करता हूं। मुझे लगता है कि मेरे स्वामी वहां है जो स्पष्टतया मेरे समक्ष है और जो लगातार मेरा ध्यान रख रहे हैं।....

हमारी बातचीत काफी देर तक चली और दूसरे दिन भी हुई। उनके उत्तर कोई ऐसे व्यक्ति के नहीं लगते थे जो अपनी स्मृति में बने बनाये वाक्यों की तलाश करते हैं। उनके विचार एक अद्‌भुत माधुर्य में लिप्त थे। उनके सामने बैठे हुए मुझे स्पष्ट लगता है कि मेरे द्वारा प्रश्न पूछने के पहले ही उनको उन प्रश्नों का ज्ञान हो जाता था और वे उनके सामने रखने के पहले ही उनका उत्तर दे देते थे।....

अब मुझे उनसे विदाई लेनी होगी। इसलिए वहां से जाने के कुछ घंटे पहले मैं उनके पास गया। उस समय मुझे काफी नजदीक बुला कर एक विशेष प्रकार से गुरुमंत्र दिया जिसके बारे में मैंने ऊपर बताया है। वहां से जाते जाते मैंने कई बार पीछे मुड़ कर आश्रम की तरफ देखा, जहां मैं एक ऐसे व्यक्ति से मिला जैसा भारत कभी कभी ही पैदा करता है और जो ईश्वर की सही प्रतिकृति है। (डायरी)

राजपुताना के हृदय में

(श्रीमती माइकेल पीम. हेराल्ड ट्रिब्यून, न्यूयार्क)

हेराल्ड ट्रिब्यून के मि. हॉलकोम ने मुझे एक सेवा के अधीन भारत भेजा। मैंने कई देशों की यात्रा की और समाज के हर स्तर के लोगों के बीच एकाकी होकर रही। मैंने पाश्चात्य जगत में व्याप्त मानसिक कपट की तीव्रता को महसूस किया। इतने अधिक बड़े बड़े लोग, जो मैंने देखे, केवल बातें ही बातें करते... भारत में भी महान गुरु बहुत ही कम है। आज मुझे पाश्चात्य जगत में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता जिसको भारत में गुरु के रूप में मान्यता मिल सके। *(The Power of India, pp. 17, 161)*.....

श्रीमती पीम अपनी भारत यात्रा के दौरान कुछ समय आबू में ठहरी। वह मानसिक दृष्टि से मौलिक परन्तु पूर्णतया तर्कयुक्त थी और साधरणतया किसी से प्रभावित हो जाने वाली नहीं थी। परन्तु गुरुदेव से वह बहुत प्रभावित हुई। बाद में उसने अपनी पुस्तक ***'दी पावर ऑफ इण्डिया 1930'*** में अपने आबू के अनुभव पर लिखा। जिसे गुरुदेव के नाम 'गहन स्नेह' से समर्पित की, जिसमें लिखाः

एक दूसरा पक्ष, एक रहस्यमयी धारा, जो राजपुताना में समाई हुई है, जो उसे जीवन

और शान्ति देती है, वह मुझे आबू पर्वत पर एक महात्मा के चरणों में कई दिन बैठने पर प्राप्त हुई। जो पूर्व के देशों में रहे हुए हैं वे जानते हैं कि वहां तर्क से ज्ञान प्राप्त नहीं होता। वहां ज्ञान प्रास होता है दिन प्रतिदिन शान्ति से बैठ कर केवल ध्यान से देखने पर...

मैं बैठी रहती और देखा करती कि किस प्रकार बड़े -बड़े महाराजा और महारानियां इस महात्मा के पास आया करते थे। कलकत्ता व बम्बई के बहुत धनी व्यापारी, राजपूत सरदार, साधारण किसान और ग्रामीण स्त्रियां- ये सभी आया करते थे। बस एक व्यक्ति के दर्शन के लिये, जो कभी पहाड़ी गुफा में बैठा रहता, कभी मन्दिर के एकान्त में और कभी जंगलों में.....

बाद में जब मैं उन्हें अच्छी तरह जानने लगी, मैंने पाया कि वे कई कई दिनों तक गायब हो जाया करते थे। मैं कभी नहीं कह सकती कि वे अगले क्षण कहां पर होंगे। वे चले जाते और उन तक कोई नहीं पहुंच पाता था....

उन्होंने किसी बड़े सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया। वे कोई करिश्में नहीं दिखाते थे जैसे वस्तुओं को हवा में उड़ा देना या अपंगों द्वारा बैसाखियाँ छोड़ देना। वे न तो किसी से पैसा स्वीकार करते, न जवाहरात, व बहुमूल्य वस्त्र। केवल थोड़ा सा खाना, शायद कुछ फल जो लोग जबरदस्ती रख देते, उसका भी कुछ भाग वहीं भक्तों को दे देते थे। उनकी बोली में कोई वाक्-पटुता नहीं थी। फिर भी.....

उनकी उपस्थिति में एक असाधारण पवित्रता और शान्ति का अनुभव होता था। अपने जूते उतार कर उनके पास जाने और सभी श्रेणी के भारतीयों के बीच फर्श पर बैठने पर धीरे धीरे ऐसा मालूम होता था जैसे कहीं भीतर में प्रकाश जगमगा रहा हो, जिससे सारी जिज्ञासाएँ शांत हो जाती। सारे अनावश्यक विचार, अनावश्यक इच्छाएँ, चिन्ताएँ और उदासी इस प्रकार समास हो जाती जिस प्रकार कि एक पेड़ से सूखी पत्तियाँ झड़ जाती हैं। कभी कभी विचार विमर्श होता। कई लोग चुपचाप बैठे रहते। उन्हें वहां बैठे रहने में ही सन्तोष था। भारत की शानदार व्यावहारिकता में अनावश्यक बोलना जरूरी नहीं है क्योंकि बिना कहे ही बहुत कुछ समझाया जा सकता है। एक या दो कम सूक्ष्म परन्तु अधिक नाटकीय चीजें मैंने देखी। परन्तु यह शक्ति मेरे लिये अधिक प्रभावशाली थी।

यहां आकर श्रीमती पीम यकायक अपना कथन यह कहकर समास कर देती है- 'कुछ कारणों से मैं आगे अधिक नहीं लिखना चाहती। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि राजपुताना के हृदय में एक योगी के हाथ ने पर्दा उठा लिया है। अर्द्धचेतन अवस्था में हम दूसरे जगत में चले जाते हैं।'

* * *

मानव सम्राट
नीला कुक, न्यूयार्क

नवम्बर 1931में एक अमरिकन नीलाक्रेमकुक माउंट आई। वे प्रतिदिन कई घंटे दिलवाड़ा में गुरुदेव, भक्तों तथा यात्रियों के बीच बिताया करती थी। बाद में अपनी पुस्तक माई रोड टू इण्डिया में उसने आबू यात्रा का विशद वर्णन किया है। वे लिखती हैं-

'राजपुताना जाने के मैं अनेक कारण बता सकती हूँ परन्तु मैं इस बात का कोई जवाब नहीं दे सकती कि रास्ते में बिना कहीं रुके सीधे माउंट आबू ही क्यों जाऊँ? मेरे मन में इस प्रकार की गहरी प्रेरणा हुई कि मुझे कहीं देर न हो जाए या मैं इधर-उधर न रह जाऊँ, जैसे मुझे किसी अतिआवश्यक कार्य के लिए कहीं पहुंचना है, जहां मैं किसी को नहीं जानती थी। आबू पर मिस स्टुअर्ट ने मुझे गुरुदेव शान्तिविजयजी पर एक लेख दिखाया। मैं दिलवाड़ा की दिशा में तुरन्त ही रवाना हो गई। मिस स्टुअर्ट ने मुझे सलाह दी कि दोपहर की गर्मी कम होने तक प्रतीक्षा करो। परन्तु मैं एक मिनट भी इन्तजार नहीं कर सकी। शान्तिविजयजी महाराज-शान्ति के सम्राट- मैं सड़क पर भागती हुई चली गई। बंगले, खजूरों के वृक्ष.... एक छोटा-लड़का अपने खुद के जितनी लम्बी पगड़ी में मिला और मुझे नमस्कार किया। वह मन्दिर की सभी रस्मों को जानता था और निर्देश देने वाला कोई पादरी नहीं था। जैनों के अनुसार हर व्यक्ति अपना स्वयं का पादरी या पुरोहित होता है और वह और उसके अन्य साथी अकेले में रहने के लिए मन्दिर में आते हैं। एक बच्चे का भी सभी रस्मों का ज्ञाता होना इस बात की गारंटी है कि कोई भी व्यक्ति अन्य किसी भी व्यक्ति के ऊपर अपनी आज्ञा नहीं थोपेगा। मन्दिर में नाचना, गाना, प्रार्थना और भजन बोलना या मौन ध्यान करना- सभी ठीक समझे जाते थे और हर कोई वह कर सकता था जो उसे अच्छा लगता था।

जब उस लड़के ने मुझे सब बता दिया तब मैंने उसे शान्तिविजयजी महाराज के बारे में पूछा तब वह खुश हुआ और जोर से बोला 'गुरुदेव' और मुझे नीचे की तरफ एक छोटे से कमरे में ले गया।

जय गुरुदेव, वह बोला। दरवाजा खुला और एक शानदार व्यक्ति दिखाई दिया। 'ओम शान्ति' कह कर उन्होंने मेरा सत्कार किया। फिर हिन्दी में कहा, 'तुम सीधी और जल्दी आ गई।' वे पत्थर की फर्श पर बैठ गये और मुझे भी बैठने का इशारा किया। इसी बीच कई दूसरे यात्री भी आ गये। प्रथम क्षण में ही जबकि वे मेरी ओर देखकर मुस्कुराये, मैंने यह अन्दाज लगा लिया था कि मेरा माउंट आबू में अतिआवश्यक रूप से मिलना उन्हीं से था। परन्तु दोपहर तक मैं इस मामले में सुनिश्चित हो गई। वे कोरी जमीन पर, नंगे पांव और साधारण सफेद ऊनी कपड़े में अपने आपको लपेटे हुए थे। लाखों भक्तों द्वारा उनको 'सम्राट' का जो पद दिया गया था, वह उनकी महानता और मृदुल व्यक्तित्व को व्यक्त

करने के लिए पर्याप्त नहीं था। गुरुदेव देव गुरु थे।

मेरे एक या दो घंटे वहां शान्तिपूर्वक बैठने के बाद उन्होंने कहा: 'बहिन ओम शान्ति! मैं तुम्हें एक नया मंत्र दूंगा। जो तुम्हारे पास है, वह तुम्हें ऊपर की मंजिल की तरफ ले जाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।'

मैंने उन्हें अपना मंत्र नहीं बताया था। वह केवल चार अक्षरों का ही था। उन्होंने जो मुझे दिया वह सात अक्षरों का था। उन्होंने धीरे से मुझे बताया– 'ध्यान करो'। 'ध्यान करो', यही उनकी पसन्द का उपदेश था। मुझे गुरुदेव से बात करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। ज्योंही मेरे मन में कोई विचार आता त्योंही वे हिन्दी में उसका जवाब दे देते। वे उन लोगों की मूर्खता पर मुस्कुराते जो यह समझते हैं कि बातचीत के लिए भाषा आवश्यक है। फिर उन्होंने गुजराती में कुछ कहा और मनु ने अनुवाद करना शुरु किया....

'गुरुदेव कहते हैं कि उन्हें उस समय से पता है कि तुम उनके पास आओगी जब तुम्हारी दादी ने तुम्हारे लिए एगप्लांट (बैंगन) पका दिया था।'

'क्या?'

मुझे इस बात का कोई ख्याल नहीं था कि हिन्दी मे एगप्लाट को क्या कहते हैं? गुरुदेव हंसे और मनु ने कहा, 'गुरुदेव कहते हैं कि तुम भूल गई कि तुमने किस प्रकार एगप्लांट से एक गुड़िया बनाई थी और तुम्हारी दादी ने उसको पका दिया था।'

मैंने वर्षों तक इस बारे में कभी नहीं सोचा था। यह तब की बात थी जब मैं पांच वर्ष की थी और मेरी मां और दादी के पास होलीवुड में रहती थी। मैंने एगप्लांट को अपने पास रखा था। हालांकि उसको पहचानने के लिए उस पर कोई निशान नहीं था जिससे कि मेरी दादी को यह मालूम हो सकता कि यह एक गुड़िया थी, फिर भी मैंने मेरी दादी को इसको पकाने के लिए कड़वे शब्दों में दोष दिया और फिर कई वर्षों तक मैंने एगप्लांट नहीं खाया। 'गुरुदेव कहते हैं कि यह वही दिन था जब तुम्हें स्मरण हुआ कि सभी जीव एक हैं और उसी दिन से उन्हें यह पता था कि तुम यहाँ आओगी।' मैं आश्चर्यचकित रह गई कि गुरुदेव को उस एगप्लांट के बारे में कैसे ज्ञात हुआ? मैंने स्वयं भी वर्षों तक इस बारे में कभी नहीं सोचा और न दुनिया में इस बारे में किसी को भी बताया।

'गुरुदेव कहते हैं कि तुम्हें वो भाषा आती है। फिर क्यों पूछती हो?' गुरुदेव के कमरे में उनके पास केवल एक सूत का झाडू (ओधा) था जिससे कि वे कीड़े-मकोड़ों को मरने से बचाने के लिए जमीन साफ किया करते थे। कोई भी जान बूझकर कीड़ों को नहीं मारता, किन्तु जैन साधु उससे भी आगे जाते हैं और जमीन साफ किया करते हैं ताकि वे सुनिश्चित हो सकें कि कोई चींटी भी अनजाने में नहीं मारी जाए। दूसरे दिन मैं दोपहर जल्दी में ही दिलवाड़ा चली गई। गुरुदेव के बारे में यह कहा जाता था कि दिलवाड़ा आने से पूर्व कई वर्ष उन्होंने जंगल में बिताये थे। मंदिर में उनका कोई पद नहीं था। वहां कोई पुरोहित नहीं थे। जैनों के लिए गुरुदेव दिलवाड़ा से भी अधिक महत्वपूर्ण तीर्थ थे....

गुरुदेव गुफा में इसलिए जाते थे कि वे उन चीजों से दूर हो जाएं जो लोग उनके लिए करना चाहते थे। एक पारसी होटल वाले की पत्नी उनके लिए कम्बल लेकर आई थी और वे उसे समझा रहे थे कि उनको कम्बल की आवश्यकता नहीं और वे जमीन पर बिना कम्बल के ही सोने के अभ्यस्त हैं, परन्तु वो काफी गुस्से में जोरों से अपनी बात तब तक कहती रही जब तक कि उन्होंने उसकी भेंट को इस शर्त पर स्वीकार नहीं कर लिया कि वे उसे उसी कम्बल को आशीर्वाद के रूप में प्रसाद कह कर नहीं लौटायेंगे। गुरुदेव का यह तरीक था। जो भी उन्हें दिया जाता था वे उसे लौटा देते। किसी को उनके लिये फलों का उपहार ले जाने का सौभाग्य मिलता और वे प्रसन्नतापूर्वक उसे ही अपना उपहार लौटा देते थे। जब जोधपुर की महारानी ने उनको एक बड़ा अनार का पार्सल भिजवाया तो उन्होंने उसे पांच मिनट में ही बांट दिया। राजपुताना और काठियावाड़ के कई राजा लोग उनके चरणों में साधारण लोगों के साथ बैठा करते थे और सभी के साथ वन्दना करते थे। परन्तु केवल एक ही उपहार ऐसा था जो गुरुदेव को लेने के लिए तैयार कर सकते और वे थी मालायें जो वे दूसरे भक्तों को देने के लिए रख लेते थे।....

एक रात मुझे एक भयंकर दृश्य दिखाई दिया। मैंने स्वप्न में मेरे पिता और माता के मृत शरीर के टुकड़े चारों ओर देखे। जब मैं दोपहर में गुरुदेव के पास गई, तब मैं उन शब्दों के बारे में सोचने लगी जिससे कि उनको यह बात कहूँ। परन्तु उन्होंने ही मुझे कह दिया, 'ओम शांति, बहिन, इस बारे में चिन्ता मत करो। मृत लोग।' परन्तु मुझे ऐसा सपना क्यों आया?' 'ओम शांति, घर जावो।' उस रात जब मैं सोई हुई थी तो लगा कि अचानक जग गई। गुरुदेव प्रकाश के रूप में मुझ पर मुस्करा रहे थे। अनंत आनंद और स्वतंत्रता इस प्रकार अनुभव हो रही थी मानो कहीं अनंत गहराई से हल्का नीला प्रकाश उठ कर चारों ओर फैल रहा हो। उस अनुभव का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है, और न मैंने पहले कभी इसका प्रयास भी किया है। दुनिया में किसी को भी इसके बारे में बतलाना इसे अपवित्र करना है। परन्तु मैं माउन्ट आबू के बारे में लिखते हुए इसके बारे में कह ही गई। दूसरे दिन प्रातः काल मैं दिलवाड़ा गई। मेरे बोलने से पहले ही गुरुदेव ने कहा: 'बहिन, ओम शांति। रात कितनी मधुर थी। हर रात ऐसा नहीं हो सकता; परन्तु यह सदा के लिए है..... 'तुमने एक रात मृत शरीरों को देखा और दूसरे में जीवित शरीर।' गुरुदेव रातें जंगलों में अकेले ही बिताया करते थे जहां चारों ओर रींछ और चीते शिकार की तलाश में छुपे रहते थे।.......

उस समय मेरे पास अमेरिकन प्रोटेस्टेंट लोगों से क्रोध से भरे पत्र आ रहे थे। उनके साथ अखबारों की कटिंग भी थे जिनमें यह बताया गया कि मुझे महात्मा गांधी ने गंगा में डुबकी लगवा कर हिन्दू बना दिया है। एक दिन जब मैं जंगल में गुरुदेव के दर्शन को गई, तब मैं उनमें से कुछ पत्रों के कारण बहुत नाराज थी। कुछ भक्त उनके चारों ओर बैठे हुए थे। यद्यपि मैंने अमरीकन पत्रों या मेरे गुस्से के बारे में उन्हें कुछ नहीं कहा, परन्तु गुरुदेव

ने हमें एक कहानी कही, जिसमें एक हीरे की चोरी हो गई थी और झूठे गवाह आये थे। 'जब लोग बिना कुछ जाने हिन्दुत्व के बारे में कोई बात करते हैं तो उससे तुम्हें नाराज या आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए।

दिलवाड़ा में एक राजा के पास भी एक साधारण व्यक्ति की तरह ही व्यवहार किया जाता था। माउंट आबू सिरोही की राजपूत रियासत के क्षेत्र में था। एक दिन मैंने देखा कि सिरोही के राजा बिना किसी अनुचर के गुरुदेव के पास जमीन पर बैठे हुए थे। गुरुदेव के लिए हम सब एक समान थे। वे एक चींटी को भी उतना ही प्यार करते थे जितना कि मुझे। उनके अंग्रेजी प्रशंसक उन्हें उतने ही प्रिय थे जितने की भारत के परम भक्त। अंग्रेजी अधिकारी और उनकी पत्नियां, छोटे और बड़े, उनके पास आया करते थे। वे मुझे बतलाते थे कि गुरुदेव के सान्निध्य में उन्हें शांति और कल्याण की अनुभूति होती थी जो समझ से परे थी।

यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता था कि गुरुदेव मन की बात जान सकते हैं और दूरी पर क्या हो रहा है उसे देख सकते हैं, परन्तु ये लोग उनके पास केवल चमत्कारों की भूख के कारण नहीं आते थे। जब वे अपने झगड़े लेकर आते तो यह जानते थे कि कोई भी पक्ष उनके सामने झूठ नहीं बोल सकता। वे गुरुदेव को एक अच्छा जासूस समझ कर नहीं बल्कि उनके घाव मिटाने वाला समझ कर ही आते थे। आपसी घृणा के घावों को सिर्फ 'भाई, ओम शांति, बहिन ओम शांति' कह कर ही मिटा देते थे।

जनवरी माह में श्रीमती फर्गुसन माउंट आबू आई। वह गुस्से की हालत में थी क्योंकि न्यूयार्क में किसी ने उसका फर्नीचर स्टोर में रख दिया था। वह स्टॉक मार्केट पर भी क्रोधित थी जिसने उसकी आय को कम कर दिया था और वे बम्बई की एक बैंक से भी नाराज थी जिसने डालर को रुपयों में बदलवाने में उसके साथ धोखाधड़ी की थी। यही नहीं, वह उस ट्रेन पर भी नाराज थी जिससे माउंट आबू आते समय उसे भयंकर सर्दी लग गई थी। दूसरे दिन सुबह जब वह मेरे कमरे में आई तब बिल्कुल शांत थी। प्रसन्न थी। उसका जुकाम भी मिट गया था और गुस्सा भी। उसने कहा: 'नीला कल रात को एक अत्यंत अविश्वसनीय घटना घटी। मैं यह बता दूं कि मैं सनकी नहीं हूँ। मैंने पूछा, 'क्या हुआ'? वह बिस्तर में बैठी हुई सारी दुनिया को गालियां देती हुई अपना वसीयतनामा बदल रही थी। अचानक छत गायब हो गई और उसने तारे देखे। उसने कहा: 'मैं उठी और अपना मुंह धोया और मैंने देखा कि स्नानागार के ऊपर भी कोई छत नहीं है। मैं कमरे में चारों ओर चलने लगी और ऐसा लगा कि जैसे मैं कहीं बाहर हूँ। मैं तुम्हें ठीक बता सकती हूँ कि ये तारे कौन से थे। यह तब तक चलता रहा जब मैं आराम और शांति के साथ सोने चली गई। ....

आज सुबह मेरा जुकाम भी चला गया यद्यपि तुम जानती हो कि कल रात कैसी हालत थी। कल ही तो मुझे हुआ था और एक सप्ताह से पहले ऐसा जुकाम कभी ठीक नहीं

हुआ। मैं तुमसे कहती हूँ कि यह एक अजीब देश है। अब मैं समझ गई कि तुम पागल नहीं हो क्योंकि मेरे साथ भी ऐसा हो रहा है।

मानव सम्राट

उस दोपहर मैं उसे दिलवाड़ा ले गई और वह गुरुदेव से मिलकर प्रसन्न हो गई। 'मानव सम्राट' केवल यही नाम था जो उसने उनके लिए उचित पाया। मिसेज फर्गुसन बिल्कुल ही धार्मिक प्रकृति की नहीं थी। जब बाबू चन्दरमल ने गुरुदेव द्वारा उसके लिए कहे शब्दों को अनुवादित किया तो उसे सुनकर वह आश्चर्यचकित हो गई, 'बहिन, ओम शांति, तारों का दृश्य बन्द करने के लिए छत क्यों बनाई जाए?' उसने मुझे पूछा, 'नीला, क्या तुमने उन्हें बतलाया?' मैंने कहा, 'नहीं, पूरे दिन तुम मेरे साथ रही हो और जब से मैं कमरे में आयी, मैंने कुछ नहीं बोला। मैंने तो उन्हें कुछ नहीं कहा।'

गुरुदेव ने आगे कहा: 'छत तो अनावश्यक बातों पर समय खराब करने और बैंक, फर्नीचर तथा अन्य लोगों की भूलों से बनती है। तुम उसे खुद ही बनाते हो और तारों का दृश्य बन्द करते हो।...'

आबू छोड़ने के कुछ माह बाद कुक को कुछ अनुभव हुए। उसने लिखा 'अक्टूबर माह के प्रारंभ में रात को मैं थकी हुई बिस्तर में गई। जब भी मैं जल्दी सोने जाती हूं तो जगाने वाली घड़ी में आधी रात में रुद्राक्ष के लिए उठाने के लिए चाबी लगा देती हूँ। उस रात मैं चाबी लगाना भूल गई। मैंने बिस्तर के पास रखी लैम्प को बुझा दिया और सोने चली गई। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब आधी रात को लैम्प अपने आप जल उठा। मकान के उस भाग के आसपास कोई नहीं था और लैम्प दीवार में एक प्लग के अलावा किसी से भी लगा हुआ नहीं था। वर्ष का अंतिम दिन था। मैं नींद में सो गई और जो कुछ नींद में हुआ उसका मैं सही प्रकार से वर्णन नहीं कर सकती। मैं अचानक जाग गई जिस प्रकार की एक बार आबू में हुआ जब गुरुदेव ने दर्शन दिये थे। उसे बाद में आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ। मेरे चेतन मन, स्वप्न का मन तथा वह मन जो गहरी नींद में खो जाता है– ये तीनों अचानक एक साथ थे और ऐसा लग रहा था मानो परम आनंद के ज्वर की लहर झूम रही हो। मुझे ऐसा लगा कि दीवारें लोप हो रही हैं और आकाश अनन्त सुख और शान्ति में खुल रहा है। ऐसी शांति जिसमें जीवन और कम्पन है, फिर भी स्थिरता है। .....

वेरी लेडी बर्डवुड
स्लोन, 1708, लंदन
9 जनवरी, 1967

प्रिय डॉ. कोठारी

मेरे पिताजी के नाम आपका 28 दिसम्बर का पत्र मिला और मुझे दु:ख के साथ लिखना पड़ रहा है कि गत अक्टूबर में उनका देहान्त हो गया। आपके पत्र से सम्बन्धित विषय में मेरी भी रुचि थी क्योंकि एक बार 1937 में मैं अपने पिताजी के साथ श्री शान्तिविजयजी महाराज के दर्शन के लिए गई और वहां उनसे कुछ समय बात हुई। मैं उस मुलाकात से इतनी प्रभावित हुई कि मैंने इसके बारे में एक छोटा लेख लिखा जो 'बरमिंघम पोस्ट' में प्रकाशित हुआ। आज मैंने अपने पुराने कागज सम्भाले तब उस लेख की एक प्रतिलिपि मिल गई जिसे मैं इस पत्र के साथ भेज रही हूं।.... मैं इस बात की पुष्टि कर सकती हूं कि मेरे दिवगंत पिताजी गुरुदेव के बड़े भक्त थे और माउंट आबू पर हर अवसर मिलने पर उनके दर्शन के लिये जाते थे।

–वेरी बर्डवुड (पुत्री, सर जी.डी. ओगिल्वी)

* * *

एक महात्मा के दर्शन

बरमिंघम पोस्ट

महात्माजी ध्यान करने के लिए आबू आए थे। शीघ्र ही बाजार में यह खबर फैल गई कि गुरुजी आबू आ गये हैं। कुछ दिन वे भक्तों से मिलेंगे, फिर वे गुफा में ध्यान के लिये चले जाएंगे। यह पूर्व (East) है जहां लोग एकान्त का आदर करते हैं।

एक दिन हम भी भक्तों की लंबी पंक्ति में पहाड़ी पर चढ़ने के लिये शामिल हो गए। ऊपर एक छोटा श्वेत मन्दिर दिखाई देता था जहां गुरुजी अपने भक्तों को दर्शन देने के लिए विराजते थे। करीब एक सौ पत्थर की सीढ़ियों पर मन्दिर था। पचासवीं सीढ़ी पर हम हमारी बारी की इंतजार में बैठ गये। पहाड़ की हवा ताजी और शीतल थी और जहां हम बैठे थे वहां से दृश्य बड़ा शानदार लगता था। हमने आराम किया और शान्ति प्राप्त की। फिर महात्माजी के पास जाने के लिए हमें बुलावा आया।

वे हमसे मिलने के लिए खड़े हुए। सत्कार के प्राचीन हिन्दू ढंग के अनुसार उनके दोनों हाथ शामिल थे। उस छोटे कमरे में फर्श पर कुछ सहरी चटाईयों के अलावा और कुछ भी

नहीं था। उन्होंने हमें बैठने के लिए इशारा किया। हमने अपने पैरों को नीचे की ओर कठिनाई से समेटा जबकि सत्तर साल के महात्मा बड़ी सुगमता के साथ पैरों को समेट कर हमारे सामने चटाई पर बैठ गये।

मेरे पिताजी पहले भी 'उनके चरणों में बैठते थे।' उन्होंने धीरे से गुरुजी की भाषा में ही बात की। स्वास्थ्य और कुशलता के बारे में पूछताछ के बाद राजनैतिक कलह और आध्यात्मिक शांति के विषय पर बात हुई। मैं पास में बैठी देखती और सुन रही थी। मुझे इस वृद्ध पुरुष की शक्ति पर आश्चर्य हो रहा था जिसने सभी सांसारिक कामनाओं को त्याग कर आध्यात्मिक जगत से सम्पर्क साध लिया था। आज के युग का एक महापुरुष जिसकी आध्यात्मिक उपलब्धियों से उसे हिन्दुओं में यश और आदर मिला। एक सच्चा योगी पैर ढकने की एक श्वेत धोती और खुले कंधों पर एक श्वेत काश्मीरी शाल-यही उनके वस्त्र थे। उनकी दाढ़ी और बाल काफी मोटे, मजबूत और भूरे और चांदी के तार की तरह थे।

उन्होंने मेरी तरफ देखा और एक दो शब्द (ओम शांति) कहे। उनका दाहिना हाथ उठा हुआ था और हथेली नीचे की ओर थी। 'आप तुम्हारी मानसिक शान्ति के लिए आशीर्वाद दे रहे हैं।' मेरे पिताजी ने मुझे कहा क्योंकि उनके शब्दों को समझना मेरे लिए कठिन था। मैंने मेरा सिर झुकाया और उनकी आध्यात्मिक शक्ति को मेरी तरफ प्रवाहित होने दिया। पांच मिनट, दस मिनट बीत गये। हम मौन बैठे रहे। वृद्ध पुरुष की आँखें बन्द थी। पहले मैंने सोचा कि उन्हें नींद आ गई है। धीरे-धीरे हम एक पूर्ण सन्तोष के भाव से भर गये और तब मुझे लगा कि वे सो नहीं रहे थे बल्कि हमें शांति प्रदान करने के लिए अपनी आध्यात्मिक शक्ति को जागृत कर रहे थे। विदाई की विधि लम्बी थी। अपने पास के ढेर से उन्होंने कुछ पीले, मधुर सुगन्ध वाले, पवित्र चंपा के फूल लिये। उन्होंने इन फूलों को अपनी मुट्ठी में बन्द रखा और सिर नीचे करके धीरे से अपनी भाषा में कुछ पाठ किया और सामने झुक कर कुछ पंखड़ियों को मेरे हाथें में रख दिया। फिर पास के एक पात्र में से उन्होंने कुछ मिठाई ली जिसे कुछ समय अपने हाथ में रख कर पवित्र करके फिर हमें दिया। हमने उसे खा लिया यह सोच कर कि उसमें कोई कीटाणु नहीं होंगे क्योंकि हम उनके धर्म के नहीं थ। जब हम जाने के लिए खड़े हुए तब उन्होंने मुझे एक अम्बर की माला दी। ताजा और शान्त होकर हम उस पहाड़ी मार्ग से नीचे उतरे। बाद में मैंने माला के दाने गिने। उनकी संख्या 27 थी। उस समय मैं 27 साल की थी।

-वेरी बर्डवुड

* * *

परमयोगीश्वर

सुधीन्द्र गेमावत, एम.ए.आई.ए.एस

मेरे मित्र डॉ. एम.एम. कोठारी से बातचीत के दौरान मेरे बचपन की वे स्मृतियां जाग्रत हुई जब मुझे शांतिविजयजी के दर्शन का विशेष अवसर प्राप्त हुआ था। मेरे परिवार को उनके आशीर्वाद के कई अवसर प्राप्त हुए थे। उनमें से एक ऐसी घटना से सम्बन्धित है जब मेरे पिताजी की शादी का अवसर आया और एक बड़ी समस्या पूज्य गुरुदेव के आशीर्वाद से हल हो गई।

शाम के समय मेरी माताजी और अन्य औरतें शान्तिविजयजी की आरती और भजन गाया करते थे। मुझे सिरोही में उनके अंतिम दर्शन उस समय हुए जब उनके पार्थिव शरीर को दाह के लिए मांडोली ले जाया जा रहा था।

यद्यपि गुरुदेव जैन धर्म व्यवस्था में दीक्षित थे, परन्तु वे सदा जात-पांत और राष्ट्रीयता के विचारों से ऊपर उठे हुए थे। उनके संपर्क में आने वाले सभी लोग- अमीर, गरीब, राजा और प्रजा, बिना किसी भेदभाव के उनको पूज्य मानते थे। एक गहन चिन्तन और साधना के द्वारा उन्होंने अलौकिक, आध्यात्मिक ऊंचाइयों को प्राप्त कर लिया था जिससे उन्हें योगेन्द्र चूड़ामणि, जगद्गुरु का पद मिला। यह एक सुखद आश्चर्य की बात है कि उन्हें गुफाओं से प्रकाश में लाने वालों में कई प्रमुख ईसाई विद्वान, हिन्दू और मुस्लिम नरेश और पारसी थे जो उन्हें साक्षात् ईश्वर की तरह मानते थे। ब्रिटिश सरकार के कई प्रमुख प्रतिनिधियों का कहना था कि गुरुदेव को उनके सम्मान में दिये गये जगद्गुरु के उच्च पद के पूर्णत अधिकारी थे। वे उनके चरणों में माउन्ट आबू की गुफाओं में बैठते थे, जो भारत के इतिहास में अनोखे दृश्य थे।

मैं जानता हूं कि उनकी महानता को शब्दों द्वारा व्यक्त करना कठिन है। उनके शरीर छोड़ने के 40 साल बाद तक उनके जीवन का विद्वत स्तर पर कोई सुव्यवस्थित प्रकाशन नहीं हुआ। इसलिए मुझे यह देख कर प्रसन्नता हो रही है कि मेरे मित्र डॉ. कोठारी ने इस कमी को पूरा किया है और इससे दार्शनिक जगत लाभान्वित होगा।

जुलाई, 16 1986,
जवाहर नगर, जयपुर

* * *

मैं आपके हाथों में हूँ :महाराजा गंगासिंह

लिंबड़ी नरेश बीकानेर दरबार गंगासिंह के काफी नजदीक थे। दोनों के माउंट आबू पर ग्रीष्मकालीन आवास थे। एक बार उन्होंने गंगासिंहजी को गुरुदेव के दर्शन के लिये कहा। गंगासिंहजी ने पूछा कि गुरुदेव का धर्म क्या है? जब उन्हें यह मालूम हुआ कि गुरुदेव एक जैन साधु हैं तो उन्होंने इस बात में कोई रुचि नहीं दिखाई। परन्तु कुछ समय पश्चात् उन्होंने स्वयं ही गुरुदेव को लिखा कि वे उनसे मिलने के उत्सुक हैं। गुरुदेव से मिलते ही उनके चरणों में साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा: 'मैं अपने को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। मैं आपके हाथों में हूँ।' किसी को पता नहीं कि उनकी इच्छा में परिवर्तन कैसे हुआ। बाद में वे गुरुदेव से कई बार मिले और बीकानेर का राज-परिवार उनका भक्त बन गया। बाद में बामनवाड़ में गंगासिंहजी ने मोतीभाई (पालनपुर) को कहा था कि 'पहले मैं जैन साधुओं को घृणा की दृष्टि से देखता था किन्तु गुरुदेव शान्तिविजयजी के दर्शन करने पर मुझे भान हुआ कि जिस धर्म में ऐसे दिव्य महात्मा हैं उस धर्म के सिद्धान्त कितने उन्नत होंगे।'

तुम्हें तो बुलाना था: प्रो. दशरथ शर्मा

उस समय बीकानेर हाउस, माउंट आबू में एक डॉ. दशरथ शर्मा भी थे (जो बाद में जोधपुर विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के अध्यक्ष और 'डीन' बने थे।) जिनकी गुरुदेव से मिलने में कोई रुचि नहीं थी। परन्तु उन्हें भी आखिर जाना पड़ा। उन्होंने मुझे बताया कि दरबार गुरुदेव के बड़े भक्त थे इसलिए सारा बीकानेर राज-परिवार उनका आदर करता था। परन्तु मैं कभी नहीं गया। एक बार ऐसा हुआ कि मैं नक्की झील से बीकानेर हाउस जा रहा था। मैंने देखा कि एक गाड़ी में गुरुदेव का एक बड़ा चित्र ले जाया जा रहा है। कुछ समय में ही गाड़ी अदृश्य हो गई और मुझे गुरुदेव के अलौकिक दर्शन (vision) हुए। जब मैं नजदीक गया तो वह दृश्य भी नहीं रहा। अब मैं समझा कि यह मेरे लिये बुलावा है। उनके पास जाने का निर्देश है। दूसरे दिन मैं उनके पास गया। वहां कई लोग बैठे हुए थे। मैंने पिछले दिन का अनुभव गुरुदेव को बताना चाहा परन्तु उन्होंने मुझे बीच में ही 'ओम शान्ति' कह कर रोक दिया। फिर कुछ ठहर कर कहा: 'तुम तो कभी आये ही नहीं। तुम्हें बुलाना पड़ा।'

* * *

जो कभी न देखा, न सुना, न पढ़ा– अगरचन्द नाहटा

अगरचन्द नाहटा एक प्रसिद्ध जैन विद्वान थे। वे लिखते हैं- संवत् 1984 की बसन्त पंचमी को जैनाचार्य कृपाचन्द्र सूरिजी बीकानेर पधारे। उस समय के लगभग परम कल्याण मंत्र नामक एक पुस्तक मेरे देखने में आई और शांतिसूरिजी के दर्शन एवं समागम की इच्छा जाग्रत हुई। हम तीर्थ-यात्रा को निकले तब सुखसागरजी आदि ने आबू की यात्रा करने पर शान्तिविजयजी के दर्शन की प्रेरणा दी। संयोग से जब हम माउन्ट आबू से देलवाड़ा जा रहे थे तब शान्तिविजयजी स्वयं सामने से एक श्रावक के साथ रास्ते में ही मिल गए। हमने अपना बड़ा अहोभाग्य माना। वन्दना करके जब हम उनके सामने खड़े हुए तो उनके मुंह से निकला कि ऊँ अर्ह नमः का जप व ध्यान करते रहो। ऊँ शांति। हमने फिर दर्शन के लिए पूछा तो सहज ही उनके मुंह से निकल पड़ा कि 'अब आने का प्रयास न करना। मिलना नहीं होगा।' फिर भी हम पहाड़ों में भटकते भटकते पूछताछ करते हुए लिंबड़ी कोठी पहुंचे जहां वे उन दिनों रहते थे। पूछने पर एक व्यक्ति ने कहा कि योगिराज तो गुफा में ध्यान करने चले गए हैं। हमने पूछा कब पधारेंगे तो उत्तर मिला- कोई ठिकाना नहीं। आवे और न भी आवें। कभी कभी तो एक-दो दिन भी गुफाओं में ही ध्यान मग्न बैठे रहते हैं। योगियों का क्या पता ?' हम निराश हो वापस लौट गये। मन में विचार हुआ कि उन्होंने पहले ही ना कर दी थी। बाद में उनकी प्रसिद्धि दिनों दिन बढ़ती ही गई। विद्वान और नास्तिक व्यक्ति भी उनकी मुद्रा व वाणी से प्रभावित होकर नतमस्तक हो जाते। जैन धर्म का सर्वोच्च पद 'युग प्रधान' उन्हें दिया गया। पर वे इन सब पदों से निर्लिप्त और ऊंचे पहुंचे हुए व्यक्ति थे।

बाद में उम्मेदपुर में मणिसागरजी के साथ मैं सूरिजी के पास पहुंचा। वे प्रसन्न हुए। उस समय फूलचन्दजी झाबक भी वहीं बैठे हुए थे। एक आर्य समाजी पति-पत्नी भी उनके दर्शनार्थ आए हुए थे। सब भीड़ को हटाकर दरवाजा बन्द कर दिया। वे गुरुदेव द्वारा मूर्तिपूजा के पक्ष में संस्कृत और प्राकृत में लिखे शास्त्रों पर आधारित विचारों को सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। ऐसा लगा मानो देवी सरस्वती उनके मुंह से ही बोल रही हो। उनसे हमने वह सुना जो हमने न कभी देखा, न कभी सुना, और न कभी शास्त्रों में ही पढ़ा था।

वे वास्तव में एक विश्व पुरुष हैं। कई आलोचक जो शुरू में उनको हल्का करके लेते थे, उनके पास कुछ मिनट बैठकर और सुनने पर उनके भक्त हो गये। एक बड़ी संख्या में राजा,महाराजा और अजैन भी उन्हें अपने गुरु के रूप में मानते थे, वास्तव में ईश्वर के अवतार के रूप में । (श्वेताम्बर जैन, 16 दिसम्बर 1966)

* * *

योगीश्वर

सुधीन्द्र गेमावत

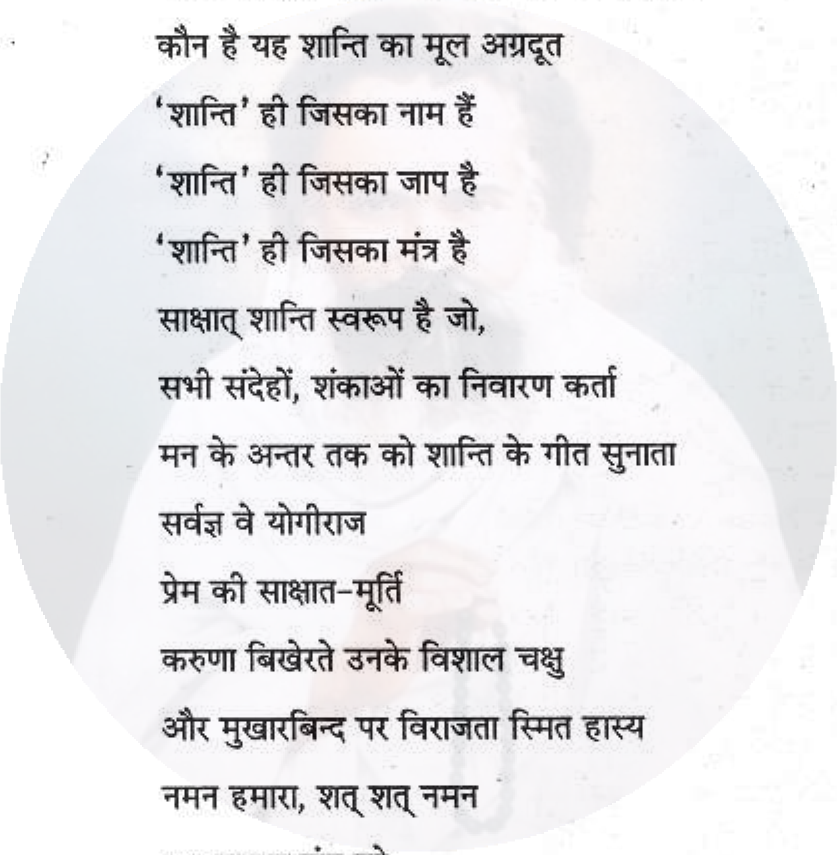

अर्बुदगिरी पर यह कैसा स्वर्णिम प्रकाश?
कौन देव उतर आया है इस धरा पर?
कैसी अद्‌भुत आभा और कैसा दिव्य स्वरूप?
कौन है यह शान्ति का मूल अग्रदूत
'शान्ति' ही जिसका नाम हैं
'शान्ति' ही जिसका जाप है
'शान्ति' ही जिसका मंत्र है
साक्षात् शान्ति स्वरूप है जो,
सभी संदेहों, शंकाओं का निवारण कर्ता
मन के अन्तर तक को शान्ति के गीत सुनाता
सर्वज्ञ वे योगीराज
प्रेम की साक्षात–मूर्ति
करुणा बिखेरते उनके विशाल चक्षु
और मुखारबिन्द पर विराजता स्मित हास्य
नमन हमारा, शत् शत् नमन
उस प्रकाश पुंज को
विश्व वंद्य श्री शान्ति सूरी को
योगीराज उस त्यागीश्वर को।

* * *

एक महान आत्मा

रणजीतमल मेहता (जज, मुख्य न्यायालय, जोधपुर)

श्री शान्तिविजयजी एक महान आत्मा थे। एक लम्बी और अद्वितीय साधना के द्वारा उन्होंने अपने आपको एक उच्च आध्यात्मिक स्तर पर पहुंचा दिया और आश्चर्यजनक शान्ति प्राप्त की। आज भारत के संतों में उनका एक विशिष्ट स्थान रहा और लाखों भारतीय-राजा, महाराजा, नवाब, धनी और गरीब से गरीब- ने उनका आदर किया और गुरु के रूप में माना। कई यूरोपियन अधिकारियों ने भी उनके प्रति गहन श्रद्धा और आदर दिखाया।

अप्रेल 1929 में मैं श्री नौरतनमल मेहता और श्री जसवंत मेहता के साथ यंग, वित्त मंत्री, जोधपुर द्वारा बुलाई गई बैठक के सम्बन्ध में आबू गया। उस समय गुरुदेव दिलवाड़ा विराजते थे। मैंन गुरुदेव के दर्शन के लिए इसे अच्छा अवसर समझा। हमारे साथ के सब लोग गुरुदेव के दर्शन करने गये। परन्तु मैं उन्हें अकेले में मिलना चाहता था। दूसरे दिन मैं अकेले ही उनसे मिलने गया और कुछ समय वहां बैठा। उनसे मिलने के पहले ही अन्य लोगों के द्वारा वे मुझे जानते थे। उन्होंने मुझे एलिजाबेथ शार्प से मिलने का कहा। मैं लिंबड़ी हाउस गया। शार्प ने मुझे कहा कि मैं इतनी व्यस्त थी कि आज किसी से भी मिल नहीं सकती थी, परन्तु क्योंकि गुरुदेव की आज्ञा है इसलिए मैं आपसे मिलने को उत्सुक हूँ। मैंनें करीब एक घंटे उनसे बात की।

मेरी यह इच्छा थी कि जितनी बार हो सके उनके दर्शन करूं। एक बार मैं उनके पास 50 दिन ठहरा। इस अवधि में कई लोग गुरुदेव के दर्शन के लिए आए थे। नेपाल के राणा अपने परिवार के साथ दर्शन के लिए आए थे। उनमें गुरुदेव की बहुत भक्ति थी।

जिस समय मैं वहां था सी.डी.देशमुख भी गुरुदेव के दर्शन को आए थे। उस समय वे रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के गवर्नर थे। उनके जाने के बाद गुरुदेव ने कहा 'इनका भविष्य उज्ज्वल है और ये भारत के एक विशिष्ट व्यक्ति होंगे।' बाद में देशमुख भारत के वित्तमंत्री बने।

एक बार गुरुदेव ने मुझे ए.जी.जी. की जानकारी के लिए धर्म पर लेख लिखने को कहा। मैंने कुछ हिचकिचाहट दिखाई। तब गुरुदेव ने कहा, 'देख लेना'। फिर बोलेः 'आप बाहर बैठिये। मैं ध्यान कर रहा हूँ।' उन्होंने दरवाजा बन्द कर दिया। मैं बाहर बैंच पर बैठ गया। मुझे अपने जवाब के लिए खेद हुआ। मैंने कागज और पेन मंगाया और एक बार में ही एक लम्बा लेख लिख डाला। मुझे ऐसा लगा कि कोई शक्ति मुझे धकेल रही है। जब मैंने लेख पूरा कर लिया, तब भी मुझे सन्तोष नहीं हुआ। उसी समय जॉर्ज वहां आ गये। मैंने उनको यह लेख दिखाया। जॉर्ज बहुत प्रभावित हए और कहा, 'बहुत बढ़िया।' फिर गुरुदेव ने दरवाजा खोला। मैंने मेरे प्रयास के बारे में कहा। गुरुदेव ने कहा

पढ़ो। लेख अंग्रेजी में था। जब मैंने पूरा पढ़ लिया, गुरुदेव ने कहा 'यह लम्बा है। कुछ छोटा कर दो।' उनकी आज्ञा से मैंने वह लेख जोधपुर के शिक्षा और विधि मंत्री ठाकुर चैनसिंह को दिखाया जो उस समय वहीं थे। उन्होंने इसे पसन्द किया।

गुरुदेव ने फरमाया कि ए.जी.जी. का अचलगढ़ आने का है और इसलिए मुझे भी उस समय पास रहने के लिए कहा। उन्होंने बाद में फिर इस विचार को दोहराया। मुझे इस मुलाकात के समय आमंत्रित होने की बहुत खुशी हुई। ए.जी.जी. अचलगढ़ आने वाले थे, परन्तु यह संदेश भेजा गया कि सर लोथियान भृगु आश्रम में ही गुरुदेव से मिलेंगे। जब सर लोथियान आये, उनके लिए एक चद्दर बिछाई गई। परन्तु उन्होंने उस पर बैठने से इनकार कर दिया। गुरुदेव एक पेड़ के नीचे विराजमान थे। सर लोथियान और उनकी पत्नी बड़े आदर के साथ गुरुदेव के चरणों में जमीन पर ही बैठे। गुरुदेव ने प्रशंसा के साथ ए.जी.जी. से मेरा परिचय कराया। सर लोथियान ने गुरुदेव से कहा कि कर्नल वेलिंगटन भी मेरी तारीफ करते थे।

मैं गुरुदेव के दर्शन के लिए अनादरा, मांडोली और अन्य कई स्थानों पर भी गया। उनके दर्शन का अवसर मिलने पर मैं उसे कभी भी खोना नहीं चाहता था। एक बार मैं जब उनसे विदा ले रहा था तब उन्होंने कहा कि आप 15-20 दिन बाद फिर आना। मैंने सोचा यह सम्भव नहीं होगा। परन्तु गुरु कृपा से कुछ ऐसी परिस्थितियां बन गई कि मुझे उस समय तक दर्शन के लिए आने का अवसर मिल गया।

गुरुदेव सभी के प्रति दया भाव रखते थे। उनकी दृष्टि में जाति और धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। उनके दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण अन्य धर्म के मानने वालों ने भी पूरी सराहना की और वैसी ही परस्परता दिखाई। मतों और रिवाजों से ऊपर उठकर विभिन्न धर्मों की आधारभूत एकता को उन्होंने अपने अन्दर आत्मसात किया। वे उच्चतम अर्थ में एक सच्चे धार्मिक व्यक्ति बन गये।

* * *

मेरी शंकायें मिट गई

मोतीलाल कोठारी, जज, पालनपुर

मेरे पिताजी की धर्म में रुचि होने से मैं कई साधुओं के सम्पर्क में आया। मैंने देखा कि एक पूर्ण पुरुष के बारे में शास्त्रों में जो गुण बताये हैं वे प्राय: उनमें नहीं थे। मेरे लोगों ने आबू के महात्मा शान्तिविजयजी के बारे में भी बताया।

मैंने सुना था कि राजा महाराजा गुरुदेव से मिलने के लिए बाहर बैठा करते हैं। इसलिए मैंने सोचा कि मेरे जैसे साधारण आदमी का उनसे मिलना मुश्किल होगा, इसलिए मैंने

वहां जाने का विचार छोड़ दिया। बाद में दिलवाड़ा में कुछ लोगों के साथ हम कमरे के बाहर खड़े हो गये। गुरुदेव ने पूछाः कौन है ? हमने कहा कि हम सब पालनपुर से आये हैं। हमने वन्दना की। उन्होंने बैठने को कहा। उन्होंने हमें शुभ साधनों से पैसा कमाने और दूसरों की भलाई के लिए काम करने का उपदेश दिया। पांच मिनट बाद उन्होंने हमें फिर कभी आने के लिए कहा और ध्यान में लग गए। मुझे अब महसूस हुआ कि इस व्यक्ति के लिए कोई फर्क नहीं पड़ता है कि उसके पास कोई राजा बैठा है या साधारण नागरिक। मेरी शंका मिट गई।

मैं उनकी सहजता और पवित्रता से प्रभावित हुआ। उनके प्रति मेरी श्रद्धा हर दर्शन के साथ बढ़ती रही। उन्हें सब पता रहता था कि कौन व्यक्ति उनके पास क्यों आया है ? मैं थोड़े थोड़े अन्तराल से गुरुदेव के पास जाया करता था। कभी कभी महीने में दो बार भी। मैंने जिस बात के बारे में बहुत समय पहले सोचा था उसके सम्बन्ध में वे मुझे बता कर परोक्ष रूप से मार्गदर्शन कर देते।

एक बार विजयकेसरसूरीजी पालनपुर आये। वे योगशास्त्र के विशेषज्ञ थे। मैंने गुरुदेव के बारे में उनके विचार पूछे। उन्होंने उत्तर दिया कि उन्होंने भी गुरुदेव के बारे में सुना था और उनसे मिलना भी चाहते थे, परन्तु फिर व्यंग में कहाः 'वे तो मारवाड़ के हैं।' मुझे यह अच्छा नहीं लगा और मैंने बात बदल दी। फिर मई 1928 में वे अपने शिष्यों के साथ मार्कंडेश्वर आये और सरस्वती मंदिर में गुरुदेव से मिले। वहां से रोहिड़ा के लिये विहार किया। गुरुदेव उन्हें विदा करने उनके साथ चले। रास्ते में मैंने उन्हें धीरे से गुरुदेव के बारे में पूछा। उन्होंने कहा, 'जो वे जानते हैं, मैं नहीं जानता।' विदाई के समय गुरुदेव ने आचार्यश्री को श्रद्धापूर्वक नमन किया। इस पर उन्होंने गुरुदेव से कहा 'मुझे आप को नमन करना चाहिये, न कि आप मुझ को।' यद्यपि नियमानुसार आचार्य का पद उच्च होता है, परन्तु उन्हें यह अनुभव हो रहा था कि उनका यह पद गुरुदेव की आध्यात्मिक उपलब्धियों के सम्मुख कुछ भी नहीं। बाद में गुरुदेव ने मोतीभाई से कहा, 'मोतीभाई यदि हम एक दीये से सौ दीये जलायें तो– क्या इससे पहले का प्रकाश कम हो जाता है ? वस्तुतः जितने अधिक दीये जलेंगे उतना ही अधिक प्रकाश बढ़ेगा।'.....

गुरुदेव लम्बे भाषण नहीं देते थे। वे थोड़े शब्दों में ही काम की बात कह देते और वह आने वाले के हृदय में सीधी प्रवेश कर जाती थी। उनके ज्ञान का कोई पार नहीं था। मेरी बुद्धि उसे नहीं माप सकती। कई जैन साधु गुरुदेव की आलोचना करते थे और कहते कि गुरुदेव ने कुछ अशुभ शक्तियों की उपासना से चमत्कारिक शक्तियां प्राप्त की है। जैन साधु ऐसा नहीं करते हैं। इस प्रकार की आलोचना करने वाले अल्प बुद्धि रखते हैं और उनको आत्मज्ञान के बारे में कुछ भी पता नहीं है !....' मोती भाई के कुछ विशेष अनुभवों का अन्य जगहों पर भी उल्लेख किया गया है।

कुछ समय बाद आचार्य केसरसूरीजी के शिष्य प्रभाविजयजी के दीक्षा समारोह पर

आचार्यश्री और अन्य संतों ने रोहिड़ा गांव (सिरोही) में गुरुदेव को आचार्य की पदवी स्वीकार करने के लिए बहुत आग्रह किया। परंतु गुरुदेव ने यह कहते हुए मना कर दिया कि 'जो मुझे चाहिये वो आप में से कोई मुझे दे नहीं सकता और जो पदवी आप मुझे देना चाहते हैं, उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है।'

गुरुदेव ने आचार्यश्री की यह इच्छा पूर्ण कर दी कि उन्हें अपनी मृत्यु का समय पहले ही बतला दिया ताकि वे समाधि में देह त्याग कर सकें। यह तथ्य आचार्यश्री ने अपने अन्तिम समय में अपने शिष्यों को बतलाया। आचार्य का देहान्त गुरुदेव से उनके निवेदन करने के तीन साल बाद 2 सितम्बर, 1931 को हुआ।

कई विद्वान और यति उनके पास आया करते थे। उन्होंने आधुनिक यतियों की स्थिति के बारे में बताया और यतियों के सम्मेलन में कुछ निर्देश भेजे। पालनपुर के नवाब की उनमें गहन श्रद्धा थी और वे मुझे समय समय पर गुरुदेव से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए भेजते थे।

मुझे विश्वास है कि गुरुदेव में आकाशमार्ग से उड़ने की शक्ति थी। मैंने कई लोगों से उनके इस प्रकार के अनुभव के बारे में सुना। उनके ज्ञान की गहराइयों को कोई नाप नहीं सकता। केवल उच्च आत्माएं ही यह जान सकती है। मेरा अहोभाग्य है कि मैं उस पवित्र अमृत के मेरे ऊपर प्रवाह को देख सका।

* * *

मेरे साक्षात भगवान

सेठ किशनचंद लेखराज

'मैं सनातन धर्म सभा का अध्यक्ष रहा हूं और जैन साधुओं के लिए मेरे मन में कोई श्रद्धा नहीं थी। मेरी पत्नी के पैर में तकलीफ थी, इसलिए मैं उसे इलाज कराने के लिए विदेश ले गया। डॉक्टरों ने पैर कटवाने का सुझाव दिया। मैं निराश होकर लौट आया। मैं कुछ दिन विश्राम के लिए आबू ठहरा। यह 1929 की बात है। मेरी पत्नी के तीव्र पीड़ा थी इसलिए वह दिलवाड़ा मन्दिर के नजदीक एक चट्टान पर बैठ गई। उस समय गुरुदेव उधर से निकले और मेरी पत्नी को तकलीफ में देख कर उसे कहा, 'तुम ठीक हो जाओगी। चिन्ता मत करो।' यह कह कर वे चले गये। हमें दूसरे दिन आबू से चलना था। मेरी पत्नी इस बात पर जोर दे रही थी कि हम उन साधु से मिलने चलें। पहले तो मैंने उसकी बात को हंस कर टाल दिया, परन्तु जब उसने जिद की तो मैंने उनके बारे में दिलवाड़ा में पता लगाया। वे मुझे एक छोटे से कमरे में बैठे हुए मिले। मैं अपनी पत्नी को ले आया और हम उनके सामने बैठ गये क्योंकि वे ध्यान में थे। करीब 15 मिनट में उन्होंने आंखें खोली और फिर वही शब्द दोहराये: 'तुम तीन महीनों में ठीक हो जाओगी, चिन्ता मत करो।' रवाना

होने से पहले हम फिर दर्शन के लिये गये। तब उन्होंन कहा 'बेटी, जब तुम ठीक हो जाओ, तब आना।' उन्होंने पैर पर सरसों के तेल की मालिश करने का निर्देश दिया।...

हम वहां से रवाना होकर हैदराबाद सिन्ध आ गये। वे चिकित्सक जो सब तरह से इलाज करके हार गये थे, यह देखकर आश्चर्यचकित हो गये कि एक महीने में ही बिना किसी दवाई के केवल मालिश से ही काफी सुधार हो गया। तीन माह में पूर्णतः ठीक हो गई। डॉक्टरों ने कहा कि यह तो चमत्कार है जो उनके अनुभव के विपरीत है।

मेरी पत्नी ने फिर माउंट आबू में उस महात्मा के दर्शन करने की तीव्र इच्छा प्रकट की। मैं अब भी उसके विचार की हंसी करता रहा और कहा कि उसकी बीमारी उन महात्मा के आशीर्वाद से ठीक नहीं हुई, बल्कि उसके माता-पिता के आशीर्वाद से हुई है। मैं उसे जापान और पूर्व एशियाई देशों में ले गया। जब हम भारत लौटे तो उसने पुनः माउंट आबू के महात्मा के पास जाने के लिए जोर दिया, परन्तु मैंने मना कर दिया। कुछ समय पश्चात् गुरुदेव ने अपने एक भक्त को मुझे नारियल का प्रसाद हैदराबाद (सिंध) भिजवाने के लिए कहा, यद्यपि उन्हें मेरा पता मालूम नहीं था। पार्सल खोलते ही मेरे सारे पूर्वाग्रह और दुराग्रह समाप्त हो गये और मेरे मन में भी उनके दर्शनों की इच्छा जागृत हुई। मैंने अपने सचिव को दिलवाड़ा भेजा, परन्तु गुरुदेव उस समय बामनवाड़ में विराजते थे। मेरे सचिव ने गुरुदेव से सम्पर्क किया। गुरुदेव ने उससे कहा : 'तुम अपने सेठ को तुरन्त आने का कह दो।' हम बामनवाड़ गये। हमने उन्हें देखा और उनके सामने सिर झुकाया। नतमस्तक होते समय मैंने जो कुछ देखा उसका वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। मैंने शंख, चक्र, गदा और कमल उनके मस्तक पर स्पष्ट रूप से देखे जो कि भगवान विष्णु के चिह्न हैं। मैं उठ नहीं सका, परन्तु किसी अदृश्य शक्ति ने मुझे उठाया। मैं पुनः उनके चरणों में गिर पड़ा और उन्हें साक्षात् भगवान मान लिया। तब से मैंने कई बार उनके दर्शन किये हैं और अनेकानेक चमत्कार देखे हैं।

बाद में मैं प्लूरिसी रोग से पीड़ित हो गया। मैं इलाज के लिये शिमला जाने वाला था। इससे पूर्व कुछ दिनों के लिए गुरुदेव के पास जाना चाहता था। इसलिये हम मांडोली पहुंचे। चूंकि मेरा प्रोग्राम शिमला जाने का था, इसलिये मैंने गुरुदेव से शिमला जाने की आज्ञा मांगी। मेरे डॉक्टर और अन्य लोग पहले ही वहाँ पहुंच चुके थे। परन्तु गुरुदेव ने आज्ञा नहीं दी। मैं अनुरोध करता रहा। दो सप्ताह बीत गये। एक महीना बीत गया। मुझे उनसे पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। गुरुपूर्णिमा के बाद मैंने उन्हें पुनः निवेदन किया, परन्तु आज्ञा नहीं मिली।

इसी बीच मेरी सास हैदराबाद में बहुत बीमार हो गई और मुझे तुरन्त वहां पहुंचने के लिए तार मिला। फिर भी आज्ञा नहीं मिली। मेरी पत्नी बुरी तरह से रोने लगी क्योंकि उसकी मां गंभीर रूप से बीमार थी। गुरुदेव का अस्पष्ट उत्तर था 'बहुत जल्दी, बहुत जल्दी।' शीघ्र ही हमें एक तार मिला कि मेरी सास ठीक हो गई। अब तीन महीने बाद हमें

हैदराबाद लौटने की अनुमति मिली। मेरी पत्नी गुरुदेव की फोटो वाली एक नैकलेस पहिने हुए थी जो उसके जैकेट से बाहर दिखता था। जब उसकी माँ ने यह फोटो देखा तो जोर से चिल्लाई: 'यह कौन है ?' यही वह साधु है जो मेरे पास आया था जब मैं बहुत बीमार थी और कहा 'चिन्ता मत करो, तुम ठीक हो जाओगी।' उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और मुझे साधारण दैनिक कार्य शुरू करने को कहा। जरा सोचिये, एक 60 साल की स्त्री जिसने कभी गुरुदेव को फोटो तक में नहीं देखा था, इस फोटो को देख कर इस प्रकार चिल्लाने लगी। अब हमें समझ में आया कि गुरुदेव ने किस कारण हमें मांडोली में ठहराये रखा।'

* * *

चिन्ता नहीं करना

डॉ.आर.सी. देसाई

'मैं गुरुदेव से सन् 1928 में कालन्दरी में मिला था। मैं वहां चिकित्सा अधिकारी था। यद्यपि गुरुदेव एक जैन साधु थे और मैं अजैन था, फिर भी उन्होंने मेरे आध्यात्मिक प्रेम के भावों को स्पर्श कर लिया था। मैं यह समझ नहीं पाया कि मैं इन जैन साधु की ओर क्यों इतना आकर्षित हो रहा हूँ। मुझे ऐसा लगा कि वे एक महान आत्मा है। वे केवल जैन धर्म तक ही सीमित नहीं थे बल्कि विश्व प्रेम में एकाकार हो चुके थे।

हम पूरी तरह स्वस्थ व प्रसन्न थे। बड़ोदा के लिए रवाना होने से पूर्व मैं उनसे मिलने गया। उन्होंने ध्यान के बीच में कहा कि मेरी पत्नी पर विपत्ति आने वाली है, परन्तु चिन्ता की कोई बात नहीं। हम बड़ोदा पहुंच गये और मैंने अपनी पत्नी को वहां छोड़ दिया और गुरुदेव की चेतावनी को भूल गये। कुछ दिन बाद मुझे पत्नी की गंभीर बीमारी का तार मिला। मैं उसे देखने के लिए गया तो वह बुरी हालत में थी। प्रसिद्ध चिकित्सकों ने, जो उसका इलाज कर रहे थे, उसके जीवन की आशा छोड़ दी थी। अचानक मुझे गुरुदेव के शब्द याद आये। मैंने उन्हें आशीर्वाद के लिए प्रार्थना का तार भेजा। दूसरे दिन उनका जवाब आ गया: 'आर्शीवाद। चिन्ता न करें।' जो डाक्टर मेरी पत्नी का इलाज कर रहे थे, अचानक ही उसके स्वास्थ्य में सुधार देख कर चकित हो गये। कुछ समय में वह बिल्कुल ठीक हो गई। उनकी आध्यात्मिक शक्तियों और दूरभविष्य को स्पष्ट रूप से देखने की शक्तियों को जानने के हमें कई अवसर मिले। ऐसा ही एक मुझ से सम्बन्धित भी है जिनका मैं उल्लेख करता हूँ।

सिरोही (1929-39) में मैं अपनी आय से खुश नहीं था। इसी बीच मुझे कई बेहतर भविष्य के अवसर मिले परन्तु पूज्य गुरुदेव की आज्ञा के बिना मैं उन्हें स्वीकार करना नहीं चाहता था। परन्तु जब कभी मैंने इस सम्बन्ध में गुरुदेव से प्रार्थना की, उनका जवाब 'न।

ही था। उन्होंने कहा, 'अभी तुम यहीं ठीक हो, पीछे बड़ोदा चले जाना।' वे क्या बताना चाहते थे मैं न तो समझ सका न कल्पना ही कर सकता था। परन्तु कई साल बाद जो घटित हुआ उससे लगा कि गुरुदेव अक्षरशः ठीक थे। मेरी तनख्वाह भी बहुत बढ़ गई। मैं सिरोही राज्य में मुख्य चिकित्सा अधिकारी बन गया। बाद में रियासतों के विलय पर मैंने गुजरात राज्य के लिए विकल्प दिया जिससे 1951 में मेरा तबादला बड़ोदा हो गया। मैंने फिर बड़ोदा से ही अवकाश प्राप्त किया। यदि गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध में कोई अन्य पद ले लेता तो मेरा हाल खराब होता।

ऐसे ही अनेक लोगों के अनगिनित अनुभव हुए हैं। गुरुदेव की दृष्टि से अमीर, गरीब, छोटे-बड़े, राजा-रंक, सभी बराबर थे। इसीलिए सभी लोग उनका आदर करते हैं। मेरी यह व्यक्तिगत धारणा है कि यदि उन्हें ईश्वर का अवतार बताया जाए तो इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

* * *

एक शाक्त का रूपान्तर

एम.सी. भट्टाचार्य

शाक्त सम्प्रदाय के अनुयायी एम.सी. भट्टाचार्य अपने एक लेख में लिखते हैं: गुरुदेव के निर्वाण के करीब छह माह पहले मैं अचलगढ़ में गुरुदेव से मिला। मेरे जैन मालिक के परिवार के साथ एक दिन के लिए घूमने गया। परन्तु यह मेरे आन्तरिक जीवन को नया मोड़ देने वाली एक आध्यात्मिक खोज हुई। गुरुदेव के पवित्र सान्निध्य में जीवन के प्रति मेरे दृष्टिकोण में यकायक परिवर्तन हो गया....

मैं शाक्त परिवार में बड़ा हुआ। मैं जैन जीवन से बहुत दूर था और गुरुदेव जैसे जैन साधु के महत्व को समझने की योग्यता बिल्कुल नहीं थी। मुझे पता नहीं था कि एक जैन साधु भी ऐसी आध्यात्मिक ऊंचाई पर पहुंचा हुआ है जहां से वह एक अजैन के जीवन को प्रभावित कर सकता है।

मैं बाहर दरवाजे के सामने करीब एक घंटे इंतजार करता रहा। परन्तु मुझे अन्दर नहीं बुलाया गया। मुझे लगा कि गुरुदेव मुझसे मिलना नहीं चाहते और ऊंचे पदों पर रत लोगों और मुख्यतः दूर विदेश से आये हुए लोगों से मिलना पसन्द करते हैं। मुझे इस पक्षपातपूर्ण व्यवहार से घृणा हो गई और मैं इन्तजार करने वालों की भीड़ से हटकर जाने की सोच रहा था कि अचानक दरवाजा खुला और मुझे कुछ अन्य लोगों के साथ भीतर बुलाया गया। मैं कमरे के अन्दर दूर जा बैठा था। गुरुदेव ने मुझे अपने पास बुलाया और आगे की पंक्ति में बिठाया। फिर धीरे से मुझे बताया कि उन्होंने बड़े लोगों को पहले क्यों बुलाया। मेरे मन में एक झटका लगा। मैंने उनके चरण स्पर्श किये। उन्होंने कहा: 'यदि कोई

गर्वनर, कलेक्टर या जज में आध्यात्मिक सुधार हो जाता है तो उससे अन्य लाखों को लाभ मिलता है।'... मेरा तर्क और दर्शन पिस गये। गुरुदेव ने मुस्करा कर मेरी भावनाओं को इस प्रकार शान्त किया जो केवल मैं ही जान सकता हूं। उस जागृति के बाद मैं दो सप्ताह तक उनके चरणों में रहा। एक अन्य अवसर हाथ आया। मैसूर के मुख्यमंत्री गुरुदेव के भक्त थे और उन्हें गुरुदेव से बात करने के लिए दुभाषिये की आवश्यकता थी। मुझे यह काम सौंपा गया और इस प्रकार मुझे सभी प्रकार के दर्शनार्थियों के बीच कमरे में ही रहने की मंजूरी मिली। जोधपुर उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रणजीतमलजी मेहता भी कई बार गुरुदेव और अंग्रेजी फौजी अफसर, विदेशी राजनीतिज्ञ और विद्वानों से बातचीत के समय मौजूद रहते थे। उनको सुनने से आत्म विकास होता.... गुरुदेव एक दृष्टा थे। वे आन्तरिक जगत और बाह्य जगत दोनों का ज्ञान रखते थे। अपनी योग शक्ति से वे घने भौतिक द्रव्य में से देख सकते थे। वे बन्द सन्दूक के अन्दर की चीजें देख सकते थे और बन्द पत्र की बाते पढ़ सकते थे। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि वे मेरी भावना को आसानी से जान सकें। तब मैं समझ गया कि केवल अपरा विद्या से हम मानव के बारे में पूर्ण सत्य प्राप्त नहीं कर सकते। यह तो वे ही जान सकते हैं जो उस आध्यात्मिक जगत में रहते हैं।..... गुरुदेव सीमित और मिथ्या जगत से ऊपर उठे हुए थे।... वे मुक्तात्मा बन चुके थे। वे भक्तों के जीवन को ऊपर उठा सकते थे।...

* * *

एक पूर्ण पुरुष की तलाश

डॉ. लीलूभाई मेहता

मैं बचपन में पूर्ण रूप से आस्तिक था। मेरे दादा को श्रीमद् राजचन्द्र का प्रत्यक्ष समागम हुआ था और उनकी रचनाओं से मुझे प्रेरणा मिली। परन्तु हमारे आचार्यों का आचरण धार्मिक महानता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। उनकी स्वच्छन्दता को देखकर और उनके द्वारा अपने अनुयायियों को आपस में तिथि जैसी मामूली बात में लड़ा कर, मुंबई के गोडीजी मंदिर में खून बहता हुआ देखकर मैं सम्पूर्ण नास्तिक बन गया था।

गोवा के एक मित्र ने हरेन्द्रनाथ चटर्जी से मेरा परिचय करवाया। उन्होंने पांडिचेरी में अरविन्द घोष से मेरी मुलाकात कराई। वहां से मैं अरुणाचल में रमन महर्षि के पास गया। अरविंद स्वयं जिस मार्ग से आगे बढ़े, उतना ही अधिक से अधिक मार्ग दर्शन कर सकते हैं और मौन साधना से सबको लाभ नहीं मिल सकता अतः उनको आठ आना ही समझा। रमन महर्षि मौन नहीं होने से सामान्य जनता को भी लाभ मिल सकता है। अतः उनको दस आने समझा। अब पूरे रुपये की उत्सुकता होने लगी जो खंडन मंडन नहीं करे और किसी को भी उसकी भाषा में उसके धर्म का सही मार्गदर्शन कर सके- ऐसा सर्वज्ञ ही पूरा

रुपया जो हरेन्द्रनाथ ने मुझे योगेश्वर शांतिविजयी का कहा। उनको सभी जैनेतर भी भगवान मानते हैं। उनको मानने वालों को अपना धर्म भी छोड़ना नहीं पड़ता है।

1930 में मेरी माता के देहान्त के बाद मैंने आम और मिठाई और बाद में नमक का उपयोग छोड़ दिया। मैंने निश्चय किया कि आबूदर्शन करने के पहले अनाज भी नहीं खाना और नंगे पैर जाना।

शांतिविजयजी के दर्शन करते ही उन्होंने मुझे जल्दी ही भोजन करने के लिए कहा। खाने की सामग्री मेरे लिए निषेधात्मक थी। इसलिए मैं बिना खाये ही लौट रहा था। तब गुरुदेव की आवाज मेरे कानों तक पहुंची। अपना हट छोड़ो। अब जो है सब खा लो। अत: मैंने भोजन किया और गुरुदेव के पास गया। दरवाजे बन्द थे, अत: मैं वहां चक्कर काट रहा था। जार्ज से मेरी बात हुई। उसने अपने कुछ अनुभव बताए।

थोड़ी ही देर में वहां लोग एकत्रित हुए और गुरुदेव के भजन गाने लगे। मैंने सोचा कि गुरुदेव के सामने ही गुरुदेव के भजन गवाये यह तो अनुचित है। परन्तु थोड़ी ही देर में मैं भी भजन सुनने में तल्लीन हो गया। भजन समाप्त होते ही सब चले गये। मैं बैठा ही रहा। फिर गुरुदेव की आवाज सुनाई दी। योगश्चित वृति निरोध-चित्त की प्रवृति का निरोध करना ही योग कहलाता है। जितने समय सब भजन में थे, उतने समय योग में ही थे।

दूसरे दिन मैंने गुरुदेव से विनती की कि मुझे योग सीखना है। तब गुरुदेव ने कहा: 'संसार में रहकर भी क्या नहीं हो सकता?' शाम को अनुमति मांगने का विचार मन में कर रहा था तब मुझे बुलाकर कहा 'आप जा सकते हो'। मैं उनके पैरों में गिर पड़ा और कुछ मिनट तक समाधिस्थ हो गया। मेरे जीवन में पलटा हो गया। बाद में फरमाया कि सूखी रोटी का टुकड़ा, पीने का पानी, और सोने के लिए खुली जमीन मिले तो भी संतोष हो, उसके लिए इन्द्र का वैभव भी तुच्छ ही है। बाकी तृष्णा तो ऐसी है जो कदापि पूरी न होकर दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है।

मेरे अंदर आये परिवर्तन को देखकर मेरे बड़े भाई को कहा: लीलूभाई को यहां से ले जा। उसे तुम्हारी सेवा करनी चाहिए। मेरे भाई के अंतिम समय में आठ दिन रह गये तब मुझे भाई की अंतिम सेवा करने के लिए भेज दिया।

अमृत की गंगा

प्रभुदास अमृतलाल मेहता बंशी

आत्मा को साक्षी रख कर कहता हूं कि मुझे मेरे जीवन में सच्चा आनंद उस समय मिला जब मैंने महात्मा शान्तिविजयजी के दर्शन किये। भूतकाल में जो महापुरुष हुए उनकी श्रेणी में वे सहज ही आते हैं। ऊपर से तो बाबा बच्चे की तरह दिखाई देते हैं, परन्तु अन्दर से एक गहन, उत्तम, गतिशीलता का तत्व रखते हैं। बहुत योग्य व्यक्ति को भी इस

महापुरुष को समझने में काफी समय लग सकता है। कौन कहता है कि भारत में 'अमृत की गंगा' नहीं है? कौन कहता है कि दुनिया में कल्पवृक्ष नहीं है?

पहले मैंने सोचा कि ये कोई मंत्रवादी देवी उपासक होंगे। परन्तु ये तो अलौकिक योग का सच्चा अनुभव रखने वाले महान पुरुष है। अरे! इतने समय तक मेरी बुद्धि भुलावे में रह गई। मेरी समझ और कल्पना ने मुझे धोखा दिया। मुझे उनकी महानता को समझने में इतना समय लग गया। मैं जगत को अंधकार से प्रकाश में लाने के लिए इस सत्य का संदेश देता हूँ। इस महापुरुष के गुण तो बहुत है- कहां तक बयान करूं? वे सबके अन्दर के भाव जानते हैं। मैं नहीं जानता कि किन शब्दों से उन्हें संबोधित करूं?

* * *

मेरा सौभाग्य

मुझे श्री शान्तिविजयजी महाराज से समागम का तथा उनके उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे एक उत्तम योगी पुरुष है और उनका चरित्र बहुत उच्च कोटि का है। जिस प्रकार औषधि से शरीर का दर्द और मलिनता दूर होकर शरीर आरोग्य और निर्मल होता है, उसी प्रकार ऐसे महापुरुष के उपदेश सुनने से समाज की मानसिक मलिनता दूर होकर उसका जीवन स्वस्थ और सुखी हो जाता है।

महाराजा-लखधीर जी
मोरबी स्टेट

सौम्य से भी सौम्य, सुशील, सरल स्वभाव वाले, अखिल विश्व में अभेदभाव रखने वाले, अज्ञानांधकार का नाश करने वाले, कान्त (सुन्दर) एवं शान्त स्वरूप श्री विजयशान्तिसूरी महाराज को मैं नमस्कार करता हूँ।

महाराणा जसवन्तसिंह रणमलसिंह
ठाकुर साणंद (गुजरात)

* * *

सर प्रभाशंकर पट्टनी

मुख्यमंत्री, भावनगर स्टेट

आप एक उच्चकोटि के महापुरुष है फिर भी आपका हृदय बालक के समान निर्मल और सरल है। शास्त्रों में महानता के लक्षण लिखे हैं, परन्तु बुद्धि और हृदय का सरल बाल भाव के साथ सुन्दर सम्मिश्रण भाग्य से कहीं देखने को मिलता है। इनके साथ मेरा जो परिचय हुआ उससे मुझे लगा कि यही महात्मापन का यथार्थ स्वरूप है। जब जब मैं इनके

पास गया हूँ, इनके सान्निध्य में मैंने मस्तिष्क और हृदय के भावों की विशिष्ट एकता का अनुभव किया और उनके निरन्तर दर्शन करने और उपदेश सुनने के सिवाय और कोई इच्छा मन में उत्पन्न ही नहीं होती। मैंने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति, जो आपके दर्शन के लिए आता है, ऐसा ही अनुभव करता है। महात्मापन की उच्चता को व्यक्त करने वाले और क्या लक्षण हो सकते हैं ? लोकेषणा की इच्छा से आप बहुत परे हैं। मुझे कई महात्माओं से सम्पर्क में आने के अवसर मिले हैं किन्तु आपका सान्निध्य बिल्कुल आश्चर्यजनक लगा। यह महानता कितने प्रयास से प्राप्त हुई होगी।

* * *

प्रेम का दिव्य संदेश

जीवनचन्द धर्मचन्द

संसार के सर्व प्रपंचों से दूर रह कर पवित्रता की साक्षात मूर्ति श्री शान्तिविजयजी का निस्पृही, सरल और निराडंबरी जीवन, निरागी और सात्विक आत्मा की सुवास, अडोल शान्ति और निर्दोष आनन्द पर जमाई हुई सत्ता समागम में आने वालों का सोये हुए आत्मा को मौन भाषा में मधुर कण्ठ से जागृत करने की कला, सामने वाले के हृदय पर शांति का सिंचन करने की सिद्धि.... अपने को उनके चरणों में मस्तक नमन करने को बाध्य करते हैं।.... संसार की प्रत्येक उपाधि से निवृत्त होकर..... योग साधना में तल्लीन रहते हैं।.... उसमें विराजित विश्व वात्सल्य देख कर खूनी की आंख में भी प्रेम के अश्रु भर आवें ऐसा जादू उनमें दिखता है।.... पुस्तकों को पढ़ कर पुस्तकों में रखने के योग्य ज्ञान का त्याग कर सरलतायुक्त जीवन व्यतीत कर उसमें से सहज प्रकट आत्मज्ञान को ग्रहण करना शुरू किया है।.... उनके समागम में आने वाले प्रत्येक राजा, महाराजा, विद्वान या कृषक, गरीब या अमीर सबको उनका एक ही संदेश है:

'प्रमाद न सेवो। जीवन में जितने पल ॐ अर्हम् के जाप में व्यतीत करोगे, वे तुम्हारे अमोल पल है। यही तुम्हारे जीवन का भाता है। अतएव जितना हो सके उतनी निवृत्ति होकर आत्म-चिन्तन में और ॐकार के जाप में तल्लीन बनो।'

* * *

एक दिव्य रत्न

सरदार माधवराव विनायकराव कीबे, इन्दौर

एक बार इन्दौर से आबू जाते मैंने टाइम्स ऑफ इण्डिया में पढ़ा कि आबू में एक महात्मा शांतिविजयजी हैं, जिनमें अद्भुत शक्ति है और सभी लोग- यूरोपियन, पारसी,

मुलसमान, जैन और हिन्दू-उनका आदर करते हैं। मेरी भी उनसे मिलने की इच्छा हुई। मैं कभी भी व्यक्ति पूजा में विश्वास नहीं रखता था। मैं उनके पास गया और ज्यों-ज्यों अनुभव बढ़ता गया मैंने देखा कि वास्तव में मनुष्य रूप में देव पुरुष हैं। जैसी-जैसी हमारी भावना होती है वैसे-वैसे रूप में वे हमको दिखाई देते है।

आज की दुनियाँ ऊपर के दिखावे से अंध श्रद्धा में फंस जाती है और जब वास्तविकता का पता चलता है तब श्रद्धाहीन बन जाती है। केवल साधु के नाम की पवित्रता से ही साधु पवित्र नहीं हो जाता। रामकृष्ण, जरस्तू, मोहम्मद या जीसस जैसे नाम धारण करने से ही कोई महापुरुष नहीं हो जाता। यदि साधु के वेष से ही वह पूजा के लायक हो जाता है तो यह नाटक के राजा, राणी की तरह ही होगा। दुनियाँ के धर्माचार्य यदि सच्चे संत होते तो आज दुनियाँ स्वर्ग हो जाती और महापुरुषों को पहचान लेती।

जिन लोगों के लिए बड़े-बड़े डाक्टरों ने आशा छोड़ दी वे भी गुरुदेव के आशीर्वाद से ठीक हो गये।.... मैं तो उन्हें दुनियाँ का महान योगेश्वर मानता हूं। ऐसे महान पुरुष से मिलना कोई साधारण बात नहीं है। हर व्यक्ति को एक बार उनके दर्शन के लिए जाना चाहिये। वे रास्ता बनाते हैं, वह सच्चा रास्ता है। वे यही कहते हैं कि 'जो मेरा है वह सत्य नहीं, बल्कि जो सत्य है वह मेरा है।' वे प्राणी मात्र के लिए समभाव रखने का उपदेश देते हैं और विश्व कल्याण की भावना रखते हैं।

जैन जीवन, 29-2-29

* * *

विनम्रता की साक्षात मूर्ति

श्रीमती पीम : केरला के स्वामी रामदास अपने भारत भ्रमण के दौरान आबू आये और मिस शार्प के यहां ठहरे थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'इन द विजन ऑफ गोड' में लिखा: 'मदर एलिजाबेथ एक जैन मुनि श्री शान्तिविजयजी को, जो आबू की कन्दराओं में रहते थे, अपना गुरु या आध्यात्मिक शिक्षक समझती थी। वे रामदास को गुरुदेव के पास ले जाना चाहती थी। परन्तु रामदास ने इसमें कोई रुचि नहीं दिखाई, अतः उनसे मिलने का विचार त्याग दिया गया। परन्तु अचानक एक सुबह महात्माजी स्वयं ही उनके घर आ गये। मदर शार्प ने उनसे रामदास का परिचय करवाया। वे उसके एक कमरे में फर्श पर आसन लगा कर बैठे हुए थे। रामदास उनके पास गये और उन्हें खुशी से गले लगा लिया। उन्होंने भी प्रसन्न होकर उन्हें गले लगाया। फिर रामदास उनके पास बैठ गये। वे विनम्रता की साक्षात मूर्ति थे। वे मजबूत व छोटे कद के थे तथा उनके भरी हुई काली दाढ़ी थी। उनके कन्धों पर केवल एक ही कपड़ा पड़ा हुआ था। उनकी आँखें कही दूर ध्यान में मगन लगती थी। उनसे पवित्रता और शान्ति प्रस्फुटित हो रही थी। ...' बाद में स्वामी रामदास ने गुरुदेव को पत्र लिखे जिसमें गुरुदेव की महानता का गुणगान किया। रिषभदास स्वामी

के अनुसार उन्होंने गुरुदेव को लिखा कि 'आप महानतम से महान, पवित्रतम से पवित्र और उच्चतम से उच्च हैं।'

आध्यात्मिक ज्ञान के भंडार

एक बार प्रसिद्ध जैन सन्त, लेखक और योगशास्त्र के विशेषज्ञ आचार्य विजय केसरसूरीजी आबू में गुरुदेव से मिले। उस समय गुरुदेव की अपेक्षा उनके पास जैन धर्म के कई उच्च पदवियाँ थी, परन्तु गुरुदेव से मिलने के बाद वे अपने आपको उनसे लघु समझने लगे। बाद में 'जैन जीवन' में उन्होंने लिखा: 'यदि मेरे जीवन में मैंने कोई अद्‌भुत वस्तु देखी है तो वे योगनिष्ठ महात्मा शान्तिविजयजी हैं। बाहर से वे साधारण दिखते हैं जिससे उनकी महानता को समझने में भूल हो सकती है। परन्तु मुझे तो लगा कि ये उच्च कोटि के आध्यात्मिक ज्ञान के भंडार है। इन महापुरुष को हम सहज में समझ नहीं सकते। आज के साधुओं में ये ही योगक्रिया और आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में सभी से अग्रणी है।

आबू की शोभा

माजी राणी प्रतापबाई, जोधपुर

गुरु शान्तिसूरीजी बड़े स्वामी है जिनकी कीर्ति नव खंडों में व्याप्त है। उन्होंने प्रथम चमत्कार यह दिखाया कि किशोर कुंवर के रोग का निवारण किया और सिद्धों के वचन को सार्थक किया। उनके दर्शन से शान्ति प्राप्त होती है और भव भव के अज्ञान का नाश होता है। समस्त कर्मों के बन्धन से मुक्ति मिलती है। ऐसे सन्त आबू पर शोभित होते हैं और गिरिराज की महिमा का ज्ञान करवाते हैं। जहां वे विराजते हैं वहां पुण्यहीनता दृष्टिगत नहीं होती। उनके चरणों में समस्त कष्टों का निवारण होता है। भक्तों के कष्टों का वे प्रतिपल निवारण करते रहते हैं। यह माजी राणी प्रताप का कहना है।

* * *

श्रीमती पीक, न्यूयार्क: मैं कई महान आत्माओं से मिली हूं। अन्त में मैं गुरुदेव शान्तिविजयजी से मिली। यह सही है कि पाश्चात्य लोग किसी बात को तब मानते हैं जबकि वह बुद्धिगम्य हो। हम पाश्चात्य लोग हर चीज का कारण जानना चाहते हैं। 'मदर इण्डिया' की लेखिका मिस मेयो ने वह किताब लिख कर बहुत भारी भूल की है। भारत में इस प्रकार के बहुमूल्य देवरत्न आज भी विद्यमान है। समझ में नहीं आता वह किस प्रकार इस तरह की पुस्तक लिखने के लिए प्रेरित हुई। मैं उसकी बातों का जवाब दूंगी ताकि उन्हें वस्तुस्थिति का ज्ञान हो सके तथा दुनियां सत्य को पूर्णतः समझ सके। गुरुदेव वास्तव में ईश्वर के अवतार है और इस बात में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं हो सकती।

लाला लाजपतराय गुरुदेव के पास आये। उन्होंने अपने उर्दू पत्र 'वन्देमातरम' (लाहोर) में लिखा: 'विश्व के आदर्श पुरुषों में श्री शान्तिविजयजी श्रेष्ठ हैं। गुरुदेव में सभी दैविक शक्तियाँ हैं। यदि कोई व्यक्ति सच्चा गुरु होने का दावा कर सकता है, तो वे श्री शान्तिविजयजी ही हैं।'

* * *

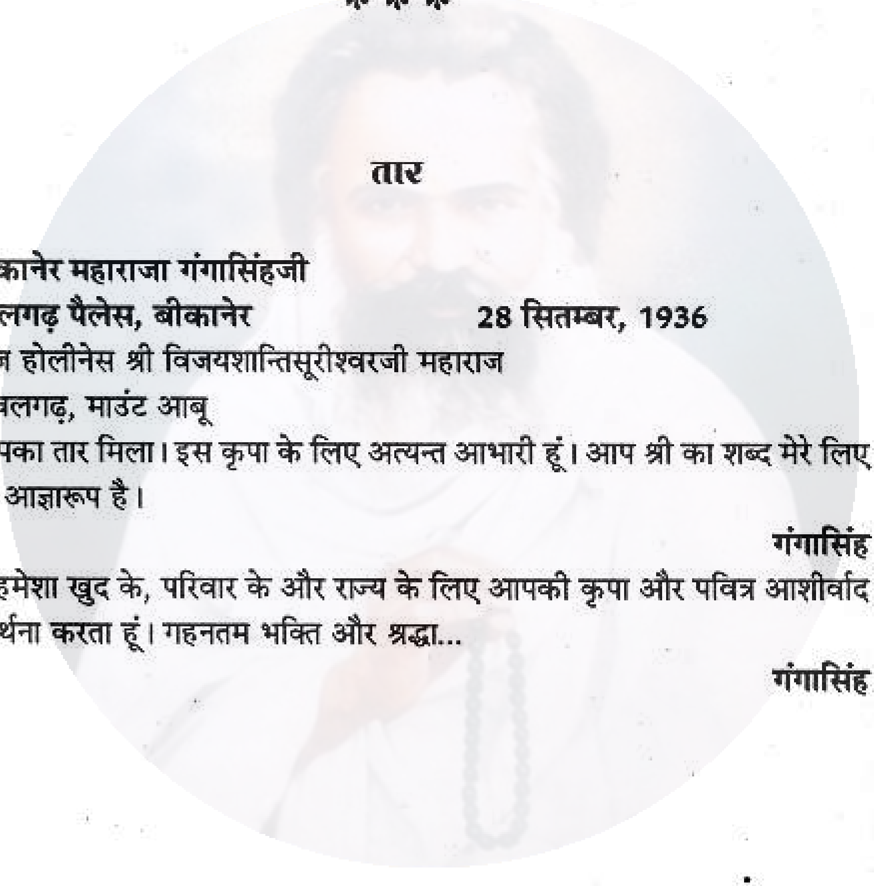

तार

बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी
लालगढ़ पैलेस, बीकानेर **28 सितम्बर, 1936**
हिज होलीनेस श्री विजयशान्तिसूरीश्वरजी महाराज
अचलगढ़, माउंट आबू

आपका तार मिला। इस कृपा के लिए अत्यन्त आभारी हूं। आप श्री का शब्द मेरे लिए हमेशा आज्ञारूप है।

गंगासिंह

मैं हमेशा खुद के, परिवार के और राज्य के लिए आपकी कृपा और पवित्र आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूं। गहनतम भक्ति और श्रद्धा...

गंगासिंह

* * *

मेरी वन्दना

जॉर्ज जुटजेलर (स्वीटजरलैण्ड)

सर्वप्रथम मैं परम पवित्र, जगद्गुरू, आचार्य सम्राट दुनियां के श्रेष्ठ योगिराज श्री विजयशांतिसूरीश्वरजी को विनम्र श्रद्धापूर्वक वन्दना करता हूँ। मैं उनके पवित्र चरणों में अपने को आत्म-शुद्धि के लिए समर्पित करता हूँ। राजयोग या प्राकृतिक योग सभी योगों में श्रेष्ठ है।

सद्गुरू भगवान् पर निरन्तर श्रद्धा रख कर, हृदय में प्रेम रखकर और पूर्ण रूप से उनकी आज्ञा पालन करने पर धीरे-धीरे हमें सद्गुरू भगवान् की कृपा महसूस होगी और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

हे प्रभो, आपको पहचानने के लिए लाखों जन्मों की आवश्यकता होती है, परन्तु आपकी कृपा हो जाए तो सहज में ही आपको पहचान सकते हैं। आपके वचनों में सभी शास्त्रों का सार रहता है। विश्व प्रेम ही आपका शास्त्र है। जाति, धर्म और देश का भेदभाव न रखते हुए आप सभी को अपनाते हैं। मैंने स्वयं पाश्चात्य दार्शनिक और शिष्ट लोगों को गुरुदेव के पवित्र चरणों में अपना आदर प्रस्तुत करते हुए देखा है।

मैं खुशी के साथ अपने सभी मित्रों, यात्रियों और अन्वेषकों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहता हूँ कि यदि सद्गुरू भगवान् की भक्ति और कृपा प्राप्त हो जाए तो यहीं पर उनकी दुनिया की यात्रा के ध्येय की पूर्ण प्राप्ति हो जायेगी।

* * *

पूर्ण पुरुष

बीसवी सदी के इस अद्वितीय भारतीय को मेरी विनम्र और प्रेममयी श्रद्धांजलि। वे उन अमर आत्माओं की जोड़ के थे जिन्हें आगे की पीढ़ियों ने तीर्थंकरों या पूर्ण पुरुषों की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया क्योंकि उन्होंने जीवन को तटस्थता से और सम्पूर्णता में देखा है।

एस.एस.एल. चौरडिया
प्राध्यापक, अंग्रेजी विभाग
नागपुर विश्वविद्यालय

* * *

योग की पराकाष्ठा

शेर उनके चरणों में बैठेंगे

अभी तक मैंने गुरुदेव के बारे में विशेष प्रकार के अनुभव जैसे अवधि और मन:पर्याय ज्ञान के विषय, दूर स्थानों पर भक्तों को अलौकिक दृष्टि में दर्शन, भावी की पूर्व दृष्टि, आत्मशक्ति द्वारा रोगमुक्ति आदि का वर्णन किया है जिनका सम्बन्ध अधिकतर उन लोगों से था जिनको पहले गुरुदेव में कोई श्रद्धा नहीं थी, जो आलोचक थे या विदेशी और अन्य धर्मों के अनुयायी थे। अपनी जाति, धर्म या सम्प्रदाय का आकर्षण उन्हें गुरुदेव के पास नहीं लाया, बल्कि एक उच्चकोटि की योग साधना जिसके फलस्वरूप उनके चारों ओर एक आध्यात्मिक क्षेत्र प्रस्फुटित होता था। श्रीमती पीम के शब्दों में यह एक विद्युत प्रस्फुरण था जिसके कारण किसी को भी यह लग सकता था कि यह कोई महान् आत्मा है। केवल मनुष्य ही नहीं, जंगली जानवर भी उनके पास में शान्ति का अनुभव करते थे। उन दिनों सर्व साधारण के मुंह पर यह बात थी कि जब गुरुदेव आबू के जंगलों में ध्यान करते हैं तब शेर, चीते उनके पास आकर बैठ जाते हैं। कई पाठकों को यह बात अजीब सी लगेगी परन्तु कुछ अनुभव ऐसे हैं जिनसे इसकी विश्वसनीयता की पुष्टि होगी।

माउंट आबू और उसके आस पास कई पवित्र स्थान हैं जहां गुरुदेव कुछ कुछ समय के लिए जाते रहते थे। वे दिन में आश्रम में रहते जहां भक्त उनके दर्शन किया करते थे। परन्तु रात के समय वे खुले जंगलों में ध्यान करने चले जाते थे जहाँ कई तरह के जंगली जानवर रहते थे। आबू में सूर्यास्त के बाद लोग बिना सावधानी के अधिक दूर नहीं जाया करते थे। अचलगढ़ के तालाब में रात को हिंसक जानवर पानी पीते हुए दिखाई देते थे। इन्हीं जंगलों में बैठकर गुरुदेव ध्यान किया करते थे। कई लोग बताते थे कि उन्होंने गुरुदेव को चीतों, बघेरों और सांपों के बीच में देखा। उनमें से कुछ लोगों को यहां उद्धृत किया जा रहा है जो विश्वसनीय साक्षी होने के कारण उनकी बात को प्रामाणिक माना जा सकता है।

सुप्रसिद्ध जैन साध्वी प्रमोदश्रीजी लिखती हैं: 'सन् 1938 के दिसम्बर में हम गुरुदेव के साथ खीवाँड़ी जा रहे थे। रास्ते में हम लोग उत्पाल गांव में विश्राम कर रहे थे। रात में भगत हमें बुलाने के लिये आया। हमने जाने से मना कर दिया क्योंकि हम जानते थे की

गुरुदेव रात में नहीं मिलते हैं। कुछ देर में एक अन्य व्यक्ति हमें बुलाने के लिए आया। वे हमें गुरुदेव के पास ले गये। वहां जाकर हम क्या देखते हैं? गुरुदेव के चारों ओर चीते, सांप और बिच्छु बैठे हैं। मैंने गुरुदेव से पूछा: 'भगवन् मैं यह क्या देख रही हूँ?' गुरुदेव ने उत्तर दिया: 'सारा विश्व हमारा परिवार है।'

'श्वेताम्बर जैन' के सम्पादक जवाहरलालजी लिखते हैं: 'एक बार गुरुदेव माउंट आबू की एक गुफा में ध्यानमग्न थे। उनके एक तरफ शेर और दूसरी ओर हिरण बैठा हुआ था। दो भक्तों ने गुफा में प्रवेश करते हुए यह दृश्य देखा। वे डर कर बाहर आ गये और सुरक्षित स्थान पर छिपकर बैठ गये। कुछ समय बाद शेर गुफा के बाहर आया और जंगल की तरफ चला गया। फिर दोनों भक्त गुरुदेव के पास गये और उन्हें अपनी बात बताई। गुरुदेव ने कहा: 'वह भी तो एक प्राणी है। यहां आया, उसे शान्ति मिली इसलिये कुछ समय ठहरा, फिर चला गया।'

भैरूसिंह बचपन में काफी समय गुरुदेव के पास रहे थे। उन्होंने बताया कि एक बार मैं गुरुदेव के साथ भृगु आश्रम में था। बाहर तालाब पर एक चीता आया। उसने पानी पिया और जोर से दहाड़ने लगा। दिन का समय था। आश्रम के नाथजी और मैं डर गये और कमरा बन्द कर दिया। गुरुदेव ने हमें बाहर बुलाया परन्तु हम अन्दर ही रहे। गुरुदेव चीते की तरफ गये और उसकी पीठ थपथपाई। उसने दहाड़ना बन्द कर दिया। फिर हमारा डर मिटाने के लिए उसका कान पकड़ कर खिलाते हुए हमारे पास ले आये। करीब 15 मिनट तक चीता हमारे सामने बैठा रहा। गुरुदेव ने मुझे कहा: 'इसके ऊपर हाथ फेरो। यह भी अपनी तरह एक प्राणी है। यह हमें नुकसान नहीं पहुंचायेगा।' कुछ समय खेलने के बाद उन्होंने चीते को कहा 'जाओ।'

कुछ सन्देह करने वालों ने इस प्रकार के अनुभवों की सत्यता की परीक्षा लेने के प्रयास भी किये। ऐसी अनेक घटनाएं सुनने में आई हैं। उनमें से दो उल्लेखनीय हैं:-

सन् 1940 में गुरुदेव अनादरा में विराजते थे। छह स्थानकवासी जैन साधु वहां आये। दोपहर का समय था। गुरुदेव अपने स्थान पर ध्यान में थे। उनमें से दो साधु कुछ यात्रियों से गुरुदेव के उस फोटो के बारे में बात कर रहे थे जिसमें गुरुदेव ध्यान की मुद्रा में शेर, चीते, जैसे जंगली जानवरों और गाय, कुत्ता और हिरण आदि के बीच बैठे थे। उन साधुओं ने कहा : 'हमें तो विश्वास नहीं होता। यह सब बनावटी है। यह तो भक्तों की रचना है।' उनमें से एक ने यात्रियों से पूछा-कि क्या तुम में से किसी ने इस प्रकार का दृश्य देखा है? यात्रियों ने कहा कि हमने तो नहीं देखा परन्तु कुछ लोगों ने ऐसा देखा है। कुछ ही देर बाद गुरुदेव ने उन साधुओं को शाम को अपने पास प्रतिक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। शाम को जब वे गुरुदेव के पास बैठे हुए थे, दो शेर वहां आये और गुरुदेव के पास बैठ गये। पहले तो उन साधुओं के मन में आया कि यह कोई जादू का दिखावा है। वे यह निश्चित कर लेना चाहते थे कि यह कोई दिखावामात्र तो नहीं है। यह

जानने के लिए कि ये वास्तविक शेर है, उन्होंने उन पर हाथ फेरा। दूसरे दिन गुरुदेव के व्याख्यान के बाद उन साधुओं ने श्रोताओं के सम्मुख कुछ शब्द कहने की अनुमति मांगी। गुरुदेव की अनुमति मिलने पर उनमें से एक बोलने के लिए खड़े हुए। उनका प्रथम वाक्य था: 'हमारे मन में एक शंका थी कि..... । उनका वाक्य पूरा होने से पहले ही गुरुदेव वहां से उठ कर अपने स्थान को चले गये और दरवाजा बन्द कर दिया। गुरुदेव को जाते देख कर सभी श्रोतागण भी वहां से जाने लगे और मुनि अपनी बात पूरी नहीं कर सके। बाद में कुछ लोगों ने उन साधुओं से पूछा कि बिना उनकी बात सुने गुरुदेव बीच में उठकर क्यों चले गये? तब उन्होंने कहा कि एक दिन पूर्व उनके मन में यह शंका उठी थी कि चित्र में जो दृश्य दिखाया गया है वह बनावटी है। फिर उन्होंने रात का अपना अनुभव बताया और कहा कि वे अपने भाषण में इसके बारे में कहना चाहते थे। परन्तु महापुरुष अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते, इसलिए गुरुदेव वहां से चले गये। जब गुरुदेव स्वयं वहां से चल दिये तो अन्य लोग हमारी बात सुनने की परवाह क्यों करते? इसलिए सभी चले गये।'

दूसरा अनुभव जोधपुर के जैतराजजी मोहनोत का है। उन्होंने बताया कि गुरुदेव रात में ध्यान करने के लिए जंगल में जाया करते थे। किसी को पता नहीं कि वे कहां तक जाते थे और वहां क्या करते थे। मैं इस बारे में जानने को उत्सुक था। एक रात कलकत्ता वाले आनन्दचंदजी सिपानी और मैंने गुरुदेव के पीछे जाने का तय किया। हम उसी रास्ते से चले जिस ओर गुरुदेव गये थे। परन्तु कुछ देर बाद उनका कोई पता नहीं रहा। हम जंगल में काफी दूर चले गये। मैंने अपने साथी से कहा कि अब और आगे बढ़ना ठीक नहीं है। इसलिए अच्छा यही है कि हम लौट जायें। इस पर सिपाणी ने कहा, 'तुम जोधपुर के लोग डरपोक हो। अपना विचार मजबूत रखो। मैंने आज गुरुदेव के गुप्त स्थान को मालूम करने का दृढ़ निश्चय कर रखा है।' अपने प्रयास में हम काफी दूर चले गये। अचानक हमने गुरुदेव को एक चट्टान पर बैठे देखा। दो शेर उनके पास बैठे हुए थे। शेर गरजने लगे और हम घबरा गये। गुरुदेव ने पुकारा 'तुम कौन हो? इधर आ जाओ।' हमें कुछ साहस मिला और हम उनके पास चले गये। हम कुछ घंटों तक उनके पास बैठे रहे। फिर गुरुदेव ने हमें चले जाने को कहा। परन्तु हमें उन जानवरों से डर लग रहा था और हम रास्ता भी भूल गये थे। गुरुदेव कुछ समय तक हमारे साथ चले और फिर हमें नजदीक का मार्ग बता दिया। हम अपने स्थान पर सुरक्षित लौट आये। दूसरे दिन जब हम गुरुदेव के दर्शन को गये तो उन्होंने हमें डांट कर कहा 'तुम लोग इस तरह मेरा पीछा क्यों करते हो और मेरी शान्ति भंग करते हो? इस बार तो तुम बच गये हो। आगे कभी इस प्रकार पीछा नहीं करना।'

रिषभदास स्वामी लिखते हैं 'हम अचलगढ़ के तालाब में शेर और भालुओं जैसे जंगली जानवरों को पानी पीते हुए देखते थे। वे हिरण और बकरियों की तरह हमारे पास से होकर

निकल जाते थे। एक बार मैं ध्यान करने एक गुफा में गया वहां एक शेरनी अपने दो बच्चों के साथ बैठी थी। पहले तो मैं चौंका परन्तु मंत्र का जाप शुरू किया तो तुरन्त शेरनी अपने बच्चों को लेकर मेरे पास होकर चली गई।

डॉ. लीलूभाई लिखते हैं: जिस दिन मैंने अचलगढ़ छोड़ा उसके पूर्व की रात को मैं जंगल में एक पहाड़ी पर सोया हुआ था। तब एक शेर आकर मेरे पैर चाटने लगा। इससे मैं जग गया। सुबह गुरुदेव के दर्शनार्थ जाते ही मुझे कहा। 'जंगली मांसाहारी प्राणी भी मात्र अपनी भूख मिटाने अथवा स्वरक्षा हेतु ही हिंसा करते हैं, बाकी मनुष्य तो मात्र तृष्णा के कारण गला काटते हैं और लड़ाई करके अनेकों का संहार करते हैं। हिंसक पशुओं में भी प्रेम भरा हुआ होता है।

योग की पराकाष्ठा:

योगसूत्र (2:35) के अनुसार : अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर त्याग: अर्थात् अहिंसा की पूर्ण स्थिति होने पर उसके समीपवर्ती प्राणियों में भी वैर का त्याग हो जाता है। हिंसक स्वभाव वाले पशु भी हिंसत्व भाव को त्याग देते हैं। ऐसे महापुरुष के चरणों में शेर भी मेमने की तरह बैठ जाते हैं। (योगसूत्र 3:46) उपरोक्त घटनाएं इस बात को सिद्ध करती हैं कि गुरुदेव उस स्थिति पर पहुंच चुके थे।

इस प्रकार के महपुरुष को बाइबल में शान्ति का सम्राट (The Prince of Peace) कहा है। उसके राज्य में हर व्यक्ति का हृदय पिघल जाएगा।

मेरे पवित्र पहाड़ पर कोई हिंसा न करेगा,
न किसी को चोट पहुंचायेगा।
भेड़िया और मेमना साथ रहेंगे,
चीता और बकरा, बाघ और बछड़ा
पास लेटेंगे.....

They shall not hurt nor destroy
In all my holy mountaion.
The wolf shall dwell with the lamb
The leopard shall lie down with the kid,
The calf, the young lion and the fatling....

-Isaiah, 11.6-9

* * *

भक्तों को अलौकिक दृष्टि में

जिसने योग की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया है, वह चाहे जहां पहुँच सकता है। ईसा की मृत्यु के बाद उनके शिष्यों को किस प्रकार से उनके दर्शन हुए, इसका विशद वर्णन बाइबल में आता है। (जॉन 20, 21) योगी जीवित अवस्था में और मृत्यु के बाद भी ऐसा कर सकते हैं। कहते हैं कि देह त्याग के बाद श्री रामकृष्ण ने अपनी पत्नी शारदा देवी को दर्शन दिये और उन्हें विधवा का वेश धारण करने से मना किया। विवेकानन्द के अनुसार उन्हें भी गुरु के देहत्याग के बाद दर्शन हुआ करते थे।

ऊपर गुरुदेव से सम्बन्धित उन घटनाओं का उल्लेख किया गया है जिसमें उन्होंने शरीरावस्था में स्वयं बहुत दूर बैठे अलौकिक दृष्टि में सेठ किशनचन्द लेखराज, उनकी सास, डॉ. दशरथ शर्मा और कुछ अन्य लोगों को, जो उनके पास दर्शन के लिए जाने की इच्छा भी नहीं रखते थे, उन्हें अलौकिक दृष्टि (vision) में दर्शन दिये। इस प्रकार के कुछ अन्य अनुभव भी यहां उल्लेखनीय है।

'उठो तुम्हारे घर में आग लग गई है'

सेठ किशनचन्द ने बताया कि एक बार मैं बम्बई में अपने मकान में आराम से सो रहा था। आधी रात के बाद बिजली के तार में अचानक आग लग गई। उसी समय गुरुदेव ने मुझे दर्शन दिये। उन्होंने मुझे गहरी नींद से जगाया और कहा, 'उठो', तुम्हारे घर में आग लग गई है।' मैं घबरा कर उठा और आग लगती हुई देखी। गुरुदेव का एक फोटो भी कमरे में था जिसके नजदीक आग पहुंच चुकी थी, परन्तु फोटो बच गया। मैं तुरन्त बाहर भागा और कुछ लोगों को बुलाया। कुछ देर में आग बुझा दी गई। मैंने रात्रि में गुरुदेव के दर्शन की बात और किसी को भी नहीं बताई। दो महीने बाद मैं दिलवाड़ा गया तब गुरुदेव ने स्वयं ही उस आग के बारे में चर्चा की। मैंने कहा, 'आपने मुझे जीवन दिया है।' गुरुदेव ने कहा: 'तुम मेरे अनन्य भक्त हो।'

आपका समय आ गया है

ऐसी ही एक घटना प्रसिद्ध जैन महात्मा विजयकेसरसूरीजी से सम्बन्धित है। उनके अन्तिम दिनों में वे अहमदाबाद में एक धर्मशाला में विराजते थे। उन्हें दस्तों की बीमारी

हुई। हालत खराब होती गई। जीवन के अन्तिम दिन उनकी हालत में कुछ सुधार हुआ। उन्होंने अपने शिष्यों को पास बुलाया और बताया कि गुरुदेव शान्तिविजयजी ने उन्हें दर्शन देकर आवश्यक सूचना दी है। गुरुदेव उस समय आबू पर विराजते थे। एक शिष्य ने पूछा कि क्या सूचना दी। जवाब में आचार्यश्री ने कहा कि समय शीघ्र ही पूरा होने वाला है। केवल कुछ ही घंटे हैं। अब तुम तैयारी करो। आगे आचार्यश्री ने कहा कि जब मैं शान्तिविजयजी से मिला था तो उन्हें प्रार्थना की थी कि मेरे अन्तिम समय में मेरी खबर लिरावें ताकि ध्यान की स्थिति में जाऊं। उसी के अनुसार आज सुबह उन्होंने मुझे दर्शन दिये और बताया कि मेरा समय पूरा होने को है। शाम को 6.35 पर वे ध्यान की स्थिति में बैठ गये। दस मिनट बाद तीसरी हिचकी में आत्मा ने शरीर छोड़ दिया।

अदृश्य होने की शक्ति

लोगों को अलौकिक दर्शन देने की शक्ति के साथ-साथ उनमें अदृश्य होने की शक्ति भी थी। यह विचार बहुत व्यापक था कि गुरुदेव कभी-कभी दृष्टि से विलुप्त हो जाते थे। एक बार एक योगी गुरुदेव के पास आया। उसके पास कोई तांत्रिक वस्तु थी। जब वह उसे अपने मुंह में रख लेता तो दूसरों की दृष्टि से ओझल हो जाता था। उसे इसका गर्व था। गुरुदेव ने उससे पूछा: 'यदि यह गुटिका खो जाय तो? मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है। अब मेरी तरफ देखो। क्या तुम मुझे देख सकते हो?' एक ही क्षण में वे अदृश्य हो गये। वह योगी उनके सामने नम्र हो गया।

श्रीमती पीम ने भी इस बात की पुष्टि की है। उसने लिखा कि मुझे कभी यह पता नहीं होता कि वे अगले क्षण कहां होंगे। केवल वे चले जाते और उन तक कोई पहुँच नहीं पाता। यात्री प्रायः कहते थे कि वे उन्हें अपने कमरे में जाते देखते थे। कमरे में एक ही दरवाजा था। परन्तु कुछ समय बाद जब लोग उनसे मिलने अन्दर जाते, तो उन्हे वहां नहीं पाते। कुछ अन्य लोग यह भी बतलाते थे कि उन्होंने गुरुदेव को उसी समय किसी अन्य स्थान पर देखा था। जोधपुर विश्वविद्यालय के डॉ. कन्हैयालाल कल्ला ने बताया कि वे 6 मार्च 1935 को गुरुदेव से आबू पर मिले थे। परन्तु अन्य तथ्य इसके विपरीत थे। गुरुदेव उन दिनों आबू में नहीं बल्कि बामनवाड़ में थे जहां 7 मार्च को जामनगर के महाराजा और उनकी बारात ने उनके दर्शन किये। जब मैंने डॉ. कल्ला को यह बताया तो उन्हें याद आया कि गुरुदेव ने उन्हें यह कहा था कि इस समय मेरा आबू में नहीं होने का है। मेरा प्रोग्राम कहीं दूसरी जगह है। यहां तो मैं विशेष कारण से हूं।

ऐसा ही एक अनुभव भैरूसिंह ने सुनाया। वे भृगुआश्रम में गुरुदेव के पास रहते थे। एक बार गुरुदेव ने उन्हें अचलगढ़ से कोई दवाई की पुड़ियां लाने को कहा। वे भूल गये। काफी रात होने पर उन्हें याद आया तो अकेले ही अचलगढ़ चल दिये। वहां से लौटते समय रास्ते में जॉर्ज मिल गये। जॉर्ज ने सारी बात पूछी और उन्हें भृगुआश्रम तक पहुंचा

दिया। दूसरे दिन जब वे जॉर्ज से मिले और रात्रि में उनके साथ के बारे में चर्चा की, तो जॉर्ज ने कहा कि मैं तो कल कहीं नहीं गया। तुम्हें और कोई मिला होगा। बाद में भैरूसिंहजी ने गुरुदेव को कहा: 'भगवान कल रात मैं अचलगढ़ गया तब जॉर्ज ने मुझे वापिस यहां तक पहुँचाया। परन्तु आज जब मैंने पूछा तो कहता है कि मैं वहां नहीं था। ये इतना झूठ बोलता है। यह क्या साधना करेगा?' इस पर गुरुदेव मुस्कुराये और कहा, 'ओम शान्ति'। तब भैरूसिंहजी को लगा कि वो वास्तव में जॉर्ज नहीं था। जॉर्ज के रूप में कोई अन्य शक्ति थी।

निर्वाण के बाद भी दर्शन

भक्तगणों से हमने कई बार सुना है कि गुरुदेव के देहत्याग के बाद भी उन्हें गुरुदेव के दर्शन हुए हैं। गुरुदेव का शरीर मांडोली ले जाया गया। अन्त्येष्टि सुबह हुई और अग्नि सारे दिन जलती रही। शाम को आरती के समय उसी जगह उपस्थित भक्तों को गुरुदेव के दर्शन हुए। यह घटना हमें बाइबल के उस वृत्तान्त की याद दिलाती है कि ईसा ने सूली चढ़ने के बाद भी अपने शिष्यों को अलौकिक दृष्टि से दर्शन दिये।

हीराचन्द गुलेच्छा ने कुछ भक्तों के ऐसे ही अनुभव बतलाये हैं जो अन्त्येष्टि में भाग लेने नहीं आ सके परन्तु जिनके दु:ख को शान्त करने के लिए गुरुदेव ने दर्शन दिये थे। अन्तयेष्टि के बाद जॉर्ज बहुत निराश हो गये थे। उन्होंने उपवास करना शुरू कर दिया और आबू की लाल गुफा में ध्यान में बैठ गये। उपवास के तीसरे दिन गुरुदेव ने उन्हें दर्शन देकर कहा: 'जॉर्ज, ओम शान्ति। शान्ति ही सच्चा योग है।'

उपरोक्त संदर्भ में मेरा भी एक प्रत्यक्ष अनुभव है। मेरे पिताजी बीमारी की अवस्था में जब आबू गये तब गुरुदेव ने उन्हें आबू पर ही ठहरने का आदेश दिया और कहा 'यदि तुम यहां रहोगे तो ठीक हो जाओगे। परन्तु वे नहीं ठहरे और जोधपुर जाने की आज्ञा मांगी। गुरुदेव ने कहा, भले ही जाओ। 'जब तक मैं हूं तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।' गुरुदेव के शब्दों में एक गहरा अर्थ छिपा था। गुरुदेव ने सितम्बर 1943 में शरीर छोड़ा था और मेरे पिताजी का देहान्त अक्टूबर 1944 में हुआ। मृत्यु के कुछ घंटे पहले मेरे पिताजी को गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने उस समय उस वीजन का हमें विषय विवरण दिया और कहा: 'गुरुदेव भगवान पधार गये हैं। अब मैं जा रहा हूं। इतना कहकर उनकी जुबान बन्द हो गई और कुछ घंटों में शरीर छोड़ दिया। हम लोग जो उनके पास बैठे थे उनमें से अन्य किसी को भी गुरुदेव की वह विजन नहीं हुई।

* * *

आकाश गमन

योग साहित्य में और हेमचन्द्राचार्य के योगशास्त्र (९) में पानी पर चलने की यौगिक शक्ति का वर्णन मिलता है। बाइबल में भी ईसा द्वारा पानी पर चलने का उल्लेख है। आधुनिक समय में भी हम इसके बारे में पढ़ते हैं।

योगसूत्र में आकाशमार्ग से उड़ कर जाने की शक्ति का उल्लेख है। रामायण के अनुसार हनुमान आकाश मार्ग से रातों रात उड़ कर लंका से हिमालय जाकर लक्ष्मण के उपचार के लिए जड़ी बूटियां लेकर आ गये। आधुनिक बुद्धिवादी इस प्रकार के वर्णन को काल्पनिक बताते हैं। परन्तु शांतिविजयजी के बारे में लोगों का विश्वास बन गया था कि उनमें इस प्रकार की शक्ति थी। सिरोही के ही एक विश्वसनीय मित्र सरदारमल शाह ने मुझे लिखा :

'हम दिलवाड़ा की एक धर्मशाला में ठहरे हुए थे। वहीं से हमारा प्रोग्राम करीब 6 मील दूर अचलगढ़ जाने का था। इस यात्रा के लिए गुरुदेव ने हमें स्वीकृति दे दी। उन दिनों इस तरह की सड़कें नहीं थी कि वहां से कोई वाहन ले जा सकें। हमें सड़क के रास्ते ही पैदल जाना था। जब हम अचलगढ़ पहाड़ी के नजदीक थे तब हम गुरुदेव को हमारे ऊपर से उड़ कर जाते हुए देखा। अभी तक हमने यह सुना ही था कि गुरुदेव आकाश में उड़कर एक जगह से दूसरी जगह चले जाते थे। गुरुदेव प्राय: बामनवाड़ा, दिलवाड़ा और अचलगढ़ में रहते थे। परन्तु लोगों ने कभी भी उन्हें पैदल यात्रा कर इस रास्ते पर जाते हुए नहीं देखा। लोगों को यह पता ही नहीं पड़ता कि गुरुदेव कब कैसे नीचे की पहाड़ियों से ऊपर के शिखरों पर पहुंच जाते।

* * *

अपने देवों को देखो

गुरुदेव अपने जीवन में और देह त्याग के बाद भी भक्तों को दर्शन देते थे। इतना ही नहीं, उनमें यह भी शक्ति थी कि वे भक्तों को अन्य दिवगंत आत्माओं और उनके धर्म के दूतों और देवताओं के दर्शन भी करा देते थे। जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं वे सेठ किशनचन्द को भगवान् विष्णु के रूप में दिखाई दिये क्योंकि सेठ विष्णु को छोड़ कर अन्य किसी के सामने झुकने को तैयार नहीं थे।

एक अंग्रेज अफसर ने अपने एक राजपूत साथी को बताया कि मैं एक बार प्रभु ईसा का ध्यान करते हुए सो रहा था। यकायक मैंने प्रकाश देखा। उठा तो ऊपर ईसा के दर्शन हुए। थोड़ी देर में उन्होंने आबू में विराजमान जैन साधु शान्तिविजयजी का रूप धारण कर लिया।

इस बात ने उस राजपूत को गुरुदेव के सम्पर्क में आने को प्रेरित किया। परन्तु उसकी पत्नी को यह अच्छा नहीं लगा। वह दत्तात्रेय को मानती थी। उसे डर था कि जैन मुनि मेरे

पति को वश में कर लेंगे। एक दिन दोनों गुरुदेव के पास आये। उसकी पत्नी को कभी गुरुदेव दिखते तो कभी दत्तात्रेय। अब उसका भ्रम दूर हो गया।

एक अन्य भक्त शान्तिलाल वीरचन्द भगत ने मुझे लिखा कि 'मैं 1942 में अचलगढ़ गया था। पारसियों के एक बड़े धर्मगुरू आबूरोड़ से बस में मेरे साथ बैठे थे। हम आबू के बारे में बात कर रहे थे। उन्होंने आबू गाइड में गुरुदेव का फोटो देखा और मुझसे पूछा कि क्या मैं जानता हूं कि ये महात्मा कहां रहते हैं। मैंने जवाब दिया कि मैं इन महात्मा के पास ही जा रहा हूं और अचलगढ़ में उनके पास ही ठहरूंगा। उन्होंने कहा कि मैंने कई साधु देखे हैं परन्तु कोई भी मुझे प्रभावित नहीं कर सका। उन्होंने पूछा कि क्या वे मुझे सन्तुष्ट कर सकते हैं ? मैंने उत्तर दिया कि वे पूर्ण ज्ञानी हैं, परन्तु यह उन पर निर्भर करता है कि वे आपकी शंकाओं को दूर करें या नहीं। मैं कोई वादा नहीं कर सकता। बाद में वे पारसी धर्मगुरु अचलगढ़ आये। उस समय गुरुदेव व्याख्यान दे रहे थे। गुरुदेव के पास उस समय पांच या छह अन्य पारसी भक्त भी बैठे थे। व्याख्यान समाप्त होने पर मैं गुरुदेव के पास गया और उनसे निवेदन किया कि एक पारसी धर्मगुरु आपसे मिलना चाहते हैं। गुरुदेव ने उन्हें अन्दर बुला लिया और वे कुछ समय गुरुदेव के पास रहे। बाहर आने पर वे बहुत प्रसन्न नजर आ रहे थे। उन्होंने मुझे कहा: 'गुरुदेव ने मुझे जोरास्टर के दर्शन करा दिये। अब मेरे लिए देखने को कुछ भी नहीं रहा।' मेरे प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रगट करते हुए उन्होंने कहा: 'आपने मुझे आज जोरास्टर के दर्शन करवा दिये हैं।' मैंने कहा: मैंने क्या किया है ? यह तो आपके ही शुभ कर्मों से सम्भव हुआ है।'

इन्दौर के सरदार कीबे को ऐसा लगता था कि मैं रामकृष्ण परमहंस के पास ही बैठा हूं। जो चिह्न रामकृष्ण परमहंस के चेहरे पर नजर आते थे वैसे ही चिह्न गुरुदेव के चेहरे पर नजर आते थे।

गुरुदेव अपने भक्तों को अभी भी अलौकिक दृष्टि में दर्शन देते हैं। जोधपुर के स्वरूपराजजी भंसाली ने मुझे बताया कि कुछ वर्ष पहले, जब वे जालोर में सेशन जज थे, तब गुरुदेव ने उन्हें दर्शन दिये। अब मैं इस विषय को समाप्त करने के पहले एक अत्यन्त ही अद्‌भुत और रोचक अनुभव का वर्णन करूंगा जो हंगरी की प्रसिद्ध कलाकार मिस एजिलाबेथ ब्रूनर को हुआ। इसके बारे में स्टेट्समेन, देहली (30 सितम्बर, 1983) के संवाददाता ने लिखा और बाद में ब्रूनर ने स्वयं मुझे इससे अवगत कराया।

एलिजाबेथ ब्रूनर

हंगरी में सन् 1930 में इन्हें एक दाढ़ी वाले महात्मा के अलौकिक दृष्टि में दर्शन हुए और उन्होंनें ब्रूनर को भारत जाने का निर्देश दिया। एलिजाबेथ और उसकी माता ने इस अनुभव के बारे में रवीन्द्रनाथ टैगोर को लिखा। टैगोर ने अपने उत्तर में उन्हें लिखा कि इस दर्शन का गहरा आध्यात्मिक महत्व है और उन्हें भारत से प्रकाश प्राप्त करने को कहा।

शीघ्र ही मां और बेटी भारत आ गये और टैगोर के साथ रहने लगे। वे भारत के सामान्य आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित हुए और उनकी कलाकृतियों से भारत में और बाहर से उन्हें बहुत यश मिला।

सन् 1943 तक वह भरत में करीब 13 साल तक रह चुकी थी। परन्तु तब तक भी वे दाढ़ी वाले सन्त, जिन्होंने उन्हें भारत आने को प्रेरित किया, एक रहस्य बने रहे। इस समय गुरुदेव शान्तिविजयजी का यश दूर–दूर तक फैल चुका था। परन्तु भारत में रहते हुए भी ब्रूनर कभी गुरुदेव के दर्शन करने नहीं आई। सन् 1943 में जब गुरुदेव के निर्वाण का समय आया, ब्रूनर एक सवेरे उठी और उस समय गुरुदेव शान्तिविजयजी ने उसे दर्शन दिये। वह इस अद्‌भुत दृष्टि में इतनी लीन हो गई कि उसने पास में पड़ा केनवास का एक टुकड़ा लिया और उस पर उस दृष्टि का चित्रण करती गई। उसका यह चित्र गुरुदेव से बिलकुल मिलता है। उस समय तक भी उसे यह पता नहीं पड़ा कि ये 'स्वामीजी' कौन हैं जिन्होंने उसे दर्शन दिये। इस घटना के 41 साल बाद गुरुदेव के एक भक्त ने ब्रूनर के यहां जब इस चित्र को देखा और उसको बताया तब उसे पता पड़ा कि ये आबू के प्रसिद्ध महात्मा शान्तिविजयजी हैं। तब ब्रूनर को यह भी पता चल गया कि उसे यह दर्शन उस समय हुए जब शान्तिविजयजी इस संसर से विदा हो रहे थे।

सन् 1948 में ब्रूनर अपनी माता के साथ किसी पार्टी में गई हुई थी। घर लौटने पर उसने देखा कि लोग उसके घर में लगी आग बुझा रहे हैं। उसके कमरे की अन्य सभी वस्तुएं जल गई। केवल गुरुदेव के चित्र को कोई आँच नहीं आई।

ब्रूनर के पास अपनी कलाकृतियों का खजाना था जिसके लिए भारत सरकार, हंगरी और अन्य लोगों की बड़ी मांग थी, परन्तु उसने स्वयं इस सोने के भंडार में कोई रुचि नहीं बताई। 'इसका समय अभी नहीं आया है' उसने शांतिविजयजी की फोटो की तरफ देखते हुए स्टेट्समेन के प्रतिनिधि को इस तरह कहा मानो वह इसके लिए गुरुदेव की आज्ञा का इन्तजार कर रही हो।

जब मैंने स्टेट्समैन (सितम्बर 30, 1983) में इस आशय का लेख पढ़ा तब मैंने उसे मेरी पुस्तक 'द सेन्ट ऑफ माउंट आबू' की एक प्रति भेजी। प्रत्युत्तर में उसने लिखा "अत्यंत अद्‌भुत पुस्तक। मुझे और मेरे मित्रों को इसे पढ़कर प्रसन्नता हुई।" आपने इस महात्मा का इतनी गहराई से अध्ययन किया, यह अत्यंत प्रशंसनीय है।

ब्रूनर कभी भी मांडोली या आबू नहीं गई। वह गुरुदेव के शान्त भक्तों में रही और गुरुदेव के चयनित कृपापात्रों में। मैं उसके द्वारा 1943 में बनाये गुरुदेव के चित्र की कापी दे रहा हूं। विश्व के रहस्यवादी साहित्य में विभिन्न वर्णन मिलते हैं। उन सबको ब्रूनर की कृति पीछे रखती है।

* * *

स्थूल प्रकृति के चमत्कार (Nature Miracles)

योगशक्ति में सिद्धियों के चमत्कार भी आते हैं। ऐसी अनेक बातें गुरुदेव के भक्तों के अनुभव में आई हैं। उनमें से कुछ घटनाओं का यहां उल्लेख होगा जो प्रमाणित हैं और जिनकी उस समय के अखबारों में भी व्यापक चर्चा हुई थी।

सभी को खिलाओ

एक घटना बड़ी संख्या में लोगों को भोजन कराने के सम्बन्ध में है जिसका उल्लेख स्टेट्समेन, कलकत्ता (7 जनवरी, 1936) में हुआ था। गुरुदेव मारवाड़ में सरस्वती आरण्य में थे। उस समय एक धनी व्यापारी गुरुदेव के दर्शन के लिए आया। उसने करीब एक हजार यात्रियों के खाने की व्यवस्था की। परन्तु उस दिन अप्रत्याशित रूप से करीब पांच हजार लोग गुरुदेव के दर्शन के लिए आ गये। व्यवस्था करने वाले घबरा गये और गुरुदेव से निवेदन किया कि उपलब्ध सामग्री से सभी को खिलाना संभव नहीं है। गुरुदेव ने उनके डर को शान्त किया और कहा: 'खाना परोसना शुरू करो। सबको खिलाओ। निडर होकर जो जितना चाहे उसे दो।' सारे समूह को अच्छी तरह खाना खिलाया गया और करीब 500 लोगों को खिला सके उतनी सामग्री फिर भी बच गई। इस बात का पता शाम तक सभी को लग गया और सर्वत्र आश्चर्य की लहर दौड़ गई। इस प्रकार की घटना का उल्लेख बाइबल में भी दो बार आता है। ईसा ने केवल पांच रोटी और दो मछली से 5000 लोगों और सात रोटी और कुछ मछली से 4000 से अधिक लोगों को भर पेट भोजन करवाया। (St. Matt. 14.17. 15.36)

मोतीलाल पोरवाल (बागरा) लिखते हैं– मेरा विचार खाना बनवाने का था परन्तु पास पूरे पैसे नहीं थे। हमारा विचार 500 रुपए तक ही था। गुरुदेव ने कहा कल बनवा लेना। तुम्हारे मन में है उससे कुछ कम ही खर्च होगा। पंचों ने खाना बनवाया। गरासियों (आदिवासियों) को खिलाया। कुल खर्चा 499.75 रुपए हुआ।

सन् 1940 में उम्मेदराजजी मेहता (जोधपुर) ने अचलगढ़ में 300 यात्रियों के लिए भोजन की व्यवस्था की। परन्तु अनायास खाने वालों की संख्या एक हजार से भी अधिक हो गई। इस स्थिति में मेहताजी बहुत चिंतित हुए और गुरुदेव के पास जाकर प्रार्थना की। गुरुदेव रसोई में गए, खाने पर दृष्टि डाली और उसे कपड़े से ढक देने का निर्देश दिया। शाम तक सभी यात्रियों ने भरपेट भोजन किया और करीब 300 लोगों के खाने लायक भोजन फिर भी बच गया। खाना बढ़ने सम्बन्धी चमत्कारिक अनुभवों की चर्चा और भी कई भक्तों से सुनी गई है। उपरोक्त दोनों घटनाएं पूर्ण रूप से विश्वसनीय साक्षियों द्वारा बतलाई गई है।

एक चमत्कारिक अनुभव, जिसकी उस समय दूर-दूर चर्चा हुई वह मई 1935 में विसलपुर (मारवाड़) का है जहां जैनों के एक धार्मिक उत्सव में भाग लेने के लिए हजारों

यात्री एकत्रित हुए थे। इस छोटे से गांव में गर्मी के मौसम में हर वर्ष पानी की बहुत कमी रहती है। विसलपुर के लोग चिंतित थे कि इतने लोगों को वे किस प्रकार पानी पिला पाएंगे। उन्होंने अपनी परेशानी से गुरुदेव को अवगत कराया। जवाब में गुरुदेव ने कहा: 'ओम शान्ति। इसके बारे में कोई चिन्ता मत करो।' वास्तव में जब गुरुदेव विसलपुर पहुंचे तो वहां पानी की समस्या समाप्त हो चुकी थी और ऐसे स्थानों में काफी मात्रा में पानी निकल गया जहां उसके प्राप्त होने की कोई संभावना नहीं थी। जब तक यह उत्सव चलता रहा भरपूर पानी प्राप्त होता रहा। गुरुदेव ने वहां से विहार किया उसके कुछ घंटों बाद वहां पानी उसी स्तर पर उतर गया जो उनके आने के पहले था।

इस प्रकार के लब्धिजन्य चमत्कार प्रकृति की सामान्य रचनाओं, क्रियाओं या विधानों के विपरीत या उनके उल्लंघन से प्रतीत होते हैं। परन्तु योगशक्ति की प्रकृति का अंग है। उसके अपने नियम हैं। निम्न स्तर के चमत्कार भी, जो जादू की श्रेणी में आते हैं, कुछ नियमों के अनुसार होते हैं। यही कारण है कि उनके द्वारा कुछ समय के लिए कुछ अजीब रचना का प्रत्यक्षानुभव साधारण लोगों को कराया जा सकता है परन्तु यह हमेशा के लिए नहीं रहता। योगी स्वयं जानते हैं कि यह शक्ति निरपेक्ष या असीमित नहीं है अन्यथा वे इसके द्वारा पृथ्वी पर भूख की समस्या का सर्वदा के लिए निराकरण कर देते। इस प्रकार की रचनाएं तो योग शक्ति के विशेष बचाव कार्य ही होते हैं।

योगशक्ति द्वारा रोगमुक्ति (spiritual healing) के उदाहरण भी प्राकृतिक चमत्कारों की एक महत्वपूर्ण श्रेणी में आते हैं। धर्मग्रन्थों में इस प्रकार के उदाहरण भरे पड़े हैं जिससे साधारण व्यक्ति के मन में यह विश्वास जम जाता है कि किसी भी प्रकार का रोग या शारीरिक अपंगता, जिसका वैज्ञानिक साधनों से उपचार नहीं हो सकता, आध्यात्मिक शक्ति से ठीक किये जा सकते हैं। साधारणतया लोग इस शक्ति को असीमित समझ लेते हैं क्योंकि वे ईश्वर को सर्वशक्तिमान मानते हैं और आत्मशक्ति को भौतिक शक्ति से श्रेष्ठ समझते हैं। आत्मशक्ति या दैविक शक्ति से रोगमुक्ति के धारणा के बारे में भारतीय दृष्टिकोण ईसाई दृष्टिकोण से कुछ भिन्न रहा है। इस पर कर्म के सिद्धान्त का प्रभाव अधिक है जिसके अनुसार व्यक्ति के पूर्व जन्मों के कर्मों से उसका वर्तमान व्यक्तित्व बनता है। वे इस प्रकार की रोगमुक्ति के उदाहरणों को प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन नहीं मानते। यह सत्य है कि महापुरुष कभी –कभी ऐसा करते हैं जिससे प्रतीत होता है कि ऐसा किया तो जा सकता है। परन्तु उनकी यह क्रिया प्रकृति के विरुद्ध नहीं होती। यह तो कुछ सीमाओं में प्राकृतिक और आध्यात्मिक विज्ञान के कुछ निश्चित नियमों में सहायता प्रदान करती है। इसका प्रयोग निरपेक्ष या असीमित न होकर केवल आंशिक ही होता है। यह सभी बच्चों को बराबर मिठाई बांटने जैसी बात नहीं है। सेमिटिक धर्मों का इसके बारे में भिन्न मत है क्योंकि वे जीव के पूर्व जन्मों और उसके पूर्व संचित कर्मों को इस जीवन

की निर्धारक शक्ति के रूप में नहीं मानते। ईसा द्वारा लोगों को रोगमुक्त करने के बाइबल में जो उदाहरण हैं उनके अध्ययन से प्रतीत होता है कि उनके अनुयायियों ने आध्यात्मिक शक्ति द्वारा रोगमुक्ति की बात को बहुत बढ़ा चढ़ा कर बताया है। संत मार्क के अनुसार ईसा ने 'कई' लोगों को रोगमुक्त किया था जिसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने सभी रोगियों को ठीक नहीं किया। उनके पास जाने वाले कई लोग रोगमुक्त हो गये, परन्तु केवल वे ही हुए जिनमें ईसा के प्रति श्रद्धा थी। इस प्रकार उनकी कृपा का सीमित उपयोग ही हुआ। जो उनके पास नहीं जा सके या जिनका उनमें विश्वास नहीं था वे इस शक्ति का लाभ नहीं ले सके। जहां श्रद्धा नहीं थी या जो विरोधी थे, वहां चमत्कार नहीं बताया गया। नजारीत में एक भी अन्धे की आंख नहीं खुली। इसके अलावा ईसा इस प्रकार की किसी भी रोगमुक्ति को अपने ऊपर नहीं लेते थे। ऐसे हर रोगमुक्त को वे यही कहते: 'तुम्हारी श्रद्धा से तुम ठीक हुए हो।'

एक बीमार औरत को ईसा में गहरी श्रद्धा थी। उसने ईसा के कपड़े को छू लिया। इससे ईसा काफी बेचैन हो गये और उन्हें लगा कि उनके पुण्य उनके बाहर जा रहे हैं। इससे लगता है कि यह कोई प्राकृतिक कारण की बात नहीं थी। संभवत: इसमें कारण आध्यात्मिक था इसलिए इलाज में असामान्य तरीका अथवा आध्यात्मिक शक्ति का व्यय हुआ। यह स्पष्टीकरण इस भारतीय दृष्टिकोण से मेल खाता है कि केवल सीमित सहायता ही की जा सकती है। योग प्रणाली के अनुसार इस उपचार में योगी अपने स्वास्थ्य को उस रोगी में डाल देता है और उसके दु:ख को स्वयं ले लेता है। बाइबल के शब्दों में 'हमारी कमजोरियों को उसने अपने ऊपर ले लिया और हमें रोगमुक्त कर दिया।' (संत मेथ्यू, 8.17) कहा जाता है कि जब गुरुदेव किसी भक्त की मदद करते थे तो उसके दु:ख को अपने ऊपर ले लेते थे। परन्तु यह केवल सीमित स्तर पर ही किया जाता था जिसमें रोगी के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की बनावट का उल्लंघन नहीं होता। जब उसके कर्म मदद के लायक नहीं होते तो वे ऐसा नहीं करते थे।

यदि कोई रोग प्राकृतिक कारणों से होता है तो डाक्टर उसका इलाज कर सकता है और योगी भी दवाई या बिना दवाई से भी कुछ कर सकता है। यदि वह दवा की सहायता से कुछ करता है जिसका प्रभाव वही जानता है अन्य कोई डाक्टर नहीं, तो हम उसे एक अधिक अच्छा डाक्टर ही कहेंगे। यदि वह बिना किसी दवाई के ठीक करता है तो वह आध्यात्मिक उपचार हुआ। रुकमणीदेवी के पैर का उपचार तुरन्त नहीं हुआ। गुरुदेव ने तीन महीने तेल की मालिश का सुझाव दिया था। परन्तु जिन लोगों के सुधार नहीं होने का था, उनको वे कुछ नहीं कहते थे। इस सम्बन्ध में सैकड़ों भक्तों के अपने अनुभव हैं जिनमें से कुछ का यहां उल्लेख करेंगे जो इस समस्या के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने के लिए पर्याप्त होंगे।

गुरुभक्त मणिबहिन बीमार थी। बम्बई के विशेषज्ञों ने इसे कैंसर बताया। उन्हें इससे

बचने की कोई आशा न रही। वे गुरुदेव के अन्तिम दर्शन के लिए आई। गुरुदेव ने उन्हें कहा कि वे अमरीकी शल्य चिकित्सक डॉ एलड्रिक से मिलें और उसकी सलाह पर कार्य करें। 'यदि वो यह कहे कि यह एक छोटी गांठ है जो मामूली ऑपरेशन से ठीक हो सकती है तो करवा लेना। यह कैंसर नहीं है। चिन्ता मत करो।' एलड्रिक का निदान और उपचार वही था जैसा गुरुदेव ने बताया था। ऑपरेशन किया गया और वे पुनः स्वस्थ हो गई।

जोधपुर नरेश सुमेरसिंहजी की पुत्री किशोरकुंवर क्षय रोग से पीड़ित थी जो उन दिनों बहुत खतरनाक और प्राणनाशक रोग समझा जाता था। वह अपनी माता प्रतापबाई के साथ आबू आई। गुरुदेव ने कहा: 'तुम कुछ समय में बिल्कुल ठीक हो जाओगी। अभी कुछ महीने यहीं रहो। दवाई की कोई आवश्यकता नहीं है।' वह कुछ महीने आबू रही और उस भयानक रोग से मुक्त हो गई।

एक बार किशोर के पति, जयपुर के महाराजा, बहुत बीमार थे। दुखी होकर किशोर ने गुरुदेव के पास जाने का निर्णय किया। अपने सचिव और दो नौकरानियों के साथ वे एक शाम को जयपुर से कार द्वारा रवाना हो गए। भैरूसिंहजी, जो उस समय गुरुदेव के पास रहते थे, कहते हैं कि रात को करीब 10 बजे गुरुदेव ने मुझे कहा कि वे ध्यान में बैठ रहे हैं। मुझे कमरे से बाहर बैठने को कहा क्योंकि कुछ लोग आने वाले थे। रात को करीब 11 बजे किशोरकुंवर वहां पहुंची और गुरुदेव के बारे में पूछा। मैंने उन्हें कमरे के बाहर ही बैठने को कहा क्योंकि गुरुदेव ध्यान में थे। कुछ देर मे गुरुदेव ने दरवाजा खोला। किशोर बुरी तरह से रोती हुई गुरुदेव के चरणों में गिर पड़ी और कहा 'आपने मुझे जीवन दिया। अब मेरा सुहाग आपके हाथ में है।' गुरुदेव ने कहा 'ओम शांति' और उनके पति के शीघ्र ठीक होने का आशीर्वाद दिया। थोड़ी देर बात करने के बाद गुरुदेव ने उन्हें तुरन्त ही जयपुर लौट जाने की आज्ञा दी ताकि सूर्योदय से पहले ही वे जयपुर पहुंच सके क्योंकि वे अपने परिवार में बिना किसी को बताए आबू के लिए चली आई थी। उनके जयपुर पहुंचने पर उनके पति का स्वास्थ्य सुधरने लगा, परन्तु गुरुदेव अचानक बीमार हो गए और कुछ समय बीमार रहे। ऐसा लगता था कि गुरुदेव ने उनके पति का कष्ट अपने ऊपर ले लिया और उनका दर्द जल्दी मिटा दिया।

नारायणदास मेहता I.C.S. जो राजस्थान की किशनगढ़ रियासत के गृहमन्त्री थे, लिखते हैं कि सन् 1943 में मेरे बायें पांव में जोर का साइटिका का दर्द हुआ। बहुत इलाज किया परन्तु ठीक नहीं हुआ। आखिर मुझे लम्बी छुट्टी लेने का कहा गया। मैंने मन में गुरुदेव का स्मरण किया और एक दो दिन बाद ही दर्द काफी ठीक हो गया और मैं दफ्तर जाने लगा। बाद में मैं गुरुदेव के दर्शन करने गया। वहां पहुंचते ही मेरी आंखों में आंसू आ गये। गुरुदेव उसी पैर की मालिश करवा रहे थे जिस पैर में मेरे दर्द था। मुझे बड़ा दुःख हुआ कि मेरी तकलीफ भगवान् ने अपने ऊपर ले ली है और मेरे कारण महान विभूति को इतना कष्ट हो रहा है। मैं कुछ बोल ही नहीं सका। गुरुदेव ने स्वयं ही फरमाया, 'दुःख

मत करो, ऐसा तो होता है।

एक बार बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी अपनी पुत्री सुशीला की बीमारी से बहुत चिंतित थे। उन्होंने तार द्वारा गुरुदेव से अपनी चिन्ता प्रकट की। गुरुदेव ने जवाब भिजवाया, 'राजकुमारी सुशीला की बीमारी प्राकृतिक कारणों से है' और आशीर्वाद कहा। यह वाक्य बहुत महत्वपूर्ण अर्थ रखता है। इसका अर्थ है कि प्राकृतिक कारणों से होने वाले कष्ट आध्यात्मिक कारणों अर्थात् पूर्व कर्म से होने वाले कष्टों से भिन्नता रखते हैं। पहले वाले मामलों में सहायता सम्भव है और प्रभावशाली हो सकती है, परन्तु दूसरे प्रकार में नहीं। यही बात एक अन्य घटना से भी स्पष्ट हो जाती है। जब महाराजा गंगासिंहजी कैंसर से पीड़ित थे, तब उन्होंने अपने सचिव को गुरुदेव के पास जल्दी ठीक होने के लिए आशीर्वाद लेने भेजा। परन्तु गुरुदेव ने आशीर्वाद नहीं दिया और केवल यही कहा 'ओम शान्ति'। जब सभी चिकित्सा प्रभावहीन हुई तो महारानी स्वयं अचलगढ़ गई। परन्तु गुरुदेव उनसे नहीं मिले।

मोतीभाई कोठारी (पालनपुर) अपनी डायरी में लिखते हैं: 'जून 1927 में गुरुदेव आरणा में विराजते थे। मैं अपनी बीमार माता को गुरुदेव के पास आशीर्वाद के लिये लाया। गुरुदेव ने कहा : 'ओम शान्ति' परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि वे ठीक हो जाएगी। कुछ रोज बाद मेरी माताजी शान्तिपूर्वक संसार से विदा हो गई।

जीवनराज हर्ष बीकानेर के माने हुए चिकित्सक थे। वे एक प्राणघातक बीमारी से पीड़ित थे। उन्होंने गुरुदेव के पास अपना संदेशवाहक भेजा। गुरुदेव ने कहा, 'वे ठीक हो जाएंगे परन्तु तुम जानते हो कि शरीर नाशवान है।' वह चिकित्सक शीघ्र ही ठीक हो गया। अन्य डाक्टरों को बहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु कुछ समय बाद वह चिकित्सक किसी अन्य कारण से मर गया।

सन् 1934 में गुरुदेव राजपुताना की उदयपुर रियासत के शासकों से खुले विरोध में आ गये जिसके बारे में बाद में विवरण दिया जाएगा। पंडित सुखदेवप्रसाद गुरुदेव के पास आये और उन्हें कहा कि वे अपनी शक्ति से अपंग महाराणा भूपालसिंहजी को पैरों से चला कर अपने पास बुला कर बतायें। गुरुदेव ने उनकी इच्छा का चमत्कार तो नहीं बताया, परन्तु एक दूसरा ही चमत्कार दिखाया। उन्होंने पंडितजी को कहा 'महाराणा की अपंगता तो उनके प्रारब्ध का फल है जिसे इस शरीर में तो मिटाया नहीं जा सकता। परन्तु आप ये बुरे कर्म क्यों करते हो? आपके तो जीवन का अन्त नजदीक आ रहा है। अधिक समय नहीं है। इस थोड़े समय में जो भी शुभ कर्म कर सको, करो।' उसी दिन पंडितजी बीमार हो गये और उनका स्वास्थ्य कभी नहीं सुधरा। दो साल के भीतर उनका देहान्त हो गया।

कल यहां एक दुर्घटना होगी

जोधपुर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. कल्ला योग साधना में बहुत रुचि रखते थे। उन्होंने अपना अनुभव सुनाया: 'मैं सैकड़ों साधु और योगियों से मिला हूं, परन्तु शान्तिविजयजी के समान मैं किसी से भी प्रभावित नहीं हुआ। मैं नखी झील के पास एक गुफा में उनसे मिला था। जाते समय मैंने उनसे कहा कि मैं अगले दिन फिर दर्शन के लिए आऊंगा। तब गुरुदेव ने कहा: 'कल नहीं आना। परसों आना क्योंकि कल इधर लोगों का आना जाना अधिक रहेगा जिससे शान्ति नहीं रहेगी। मैं जानना चाहता था कि यदि दूसरे लोग वहां आ सकते हैं तो मैं क्यों नहीं आ सकता? इस पर गुरुदेव ने कहा: 'कल यहां एक भयानक दुर्घटना होने वाली है इसलिए पुलिस और अन्य लोग यहां आते जाते रहेंगे जिससे धार्मिक चर्चा के लिए आवश्यक वातावरण नहीं रहेगा।' मैंने पूछा 'क्या वह दुर्घटना रोकी नहीं जा सकती?' उनका उत्तर था: 'नहीं ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि कर्म ऐसे ही है।' उनके शब्द सही निकले। उनके ही एक भक्त के परिवार का व्यक्ति अगले दिन उस स्थान के पास दुर्घटना में मर गया।'

एक बार सिरोही नरेश के निजी सचिव चन्दूलाल पटेल गुरुदेव के दर्शन के लिए आये। उन्होंने चंपकभाई को बताया कि 15 दिन पहले गुरुदेव ने फरमाया कि आज से 15वें दिन सिरोही महाराजा के आकस्मिक दुर्घटना होगी। आज ऐसा हो ही गया। दरबार खुद मोटर चला रहे थे और सिगरेट जलाने के समय मोटर गड्डे में जा गिरी। दरबार को अस्पताल में छोड़ कर मैं गुरुदेव से जाकर गुफा में मिला। गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया। थोड़े ही दिनों में सिरोही नरेश ठीक हो गये।

गुरुदेव को अपनी मृत्यु के बारे में भी जानकारी थी। भक्तों के दबाव के बावजूद उन्होंने डाक्टरी इलाज नहीं करवाया। सर लोथियान को यही कहा कि अब प्रार्थना ही काफी है। शरीर छोड़ने के कुछ घंटों पहले मृत्यु के विषय पर उपदेश देते हुए उन्होंने इन्द्र द्वारा महावीर को आयु बढ़ाने के लिए की गई प्रार्थना की चर्चा की जिसके जवाब में महावीर ने कहा कि आयु को बढ़ाया नहीं जा सकता। कुछ भक्तों ने प्रार्थना की कि इस विषय पर आप आगे कल सुबह बतलाना। गुरुदेव ने कहा: 'अभी सुन लो।' उनका मतलब था: 'या तो अभी या फिर कभी नहीं।' इन शब्दों का महत्व उन भक्तों को उस समय मालूम हुआ जब उसी रात गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया।

ऊपर लिखी हुई घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि महापुरुषों में मृत्यु और बीमारी के पूर्व-प्रत्यक्ष की शक्ति होती है। इसके साथ-साथ आध्यात्मिक शक्ति से रोगमुक्ति की सीमाओं और मृत्यु को टालने या उसमें विलम्ब करने के प्रयासों की निरर्थकता पर भी प्रकाश मिलता है। यहां मृत्यु और शव को जीवित करने के विषय में भारतीय दृष्टिकोण को बतलाना असंगत नहीं होगा। भारत के सन्त और योगी कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास

रखते हैं। इसलिए एक बार एक देह में पूर्व निर्धारित जीवनपथ को पूरा करने के बाद उस यंत्र को फिर से चालू करने या उसमें जीवन संचार करने में उन्हें कोई समझ नहीं दिखाई देती। शव को पुन: जीवित करने के बाइबल में उदाहरण मिलते हैं। (संत ल्यूक, 7.14-15) ऐसे उदाहरण भारतीय धर्मग्रन्थों में भी कई जगह मिलते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध भक्त कवि तुलसी द्वारा एक विधवा को सुहाग का आशीर्वाद दिए जाने का है जब वह अपने पति के शव के साथ सती होने के लिए जा रही थी। जब तुलसी को पूरी बात का पता चला तब उन्होंने अपने प्रभु राम को इस आशीर्वाद को संभालने की प्रार्थना की और उसी समय वह व्यक्ति जीवित हो गया। धर्मगुरु इस उदाहरण को योग द्वारा पुनर्जीवन देने की शक्ति के अस्तित्व को मान्यता प्रदान करने के लिए नहीं देते। उनका आशय तो भक्ति संप्रदायों की मूल धारणा, शुद्ध भक्ति की शक्ति की महिमा बतलाना है। लेजारस के कब्र में पड़े शव को पुन: जीवित करने की घटना को ईसा ने स्वयं अधिक महत्व नहीं दिया क्योंकि जब उनको लेजारस की बीमारी के बारे में बतलाया गया तब उन्होंने यह कहा: 'इस बीमारी से मृत्यु नहीं होनी है, यह तो केवल ईश्वर की महिमा बतलायेगी ताकि ईश्वर के पुत्र का इससे गौरव बढ़े।' (जॉन, 11.4)

* * *

हठयोग और अवास्तविक मृत्यु

हठयोग योगविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। हठयोग का विषय भौतिक शरीर है। इसके अनुसार शरीर का एक भी स्नायु तंत्र ऐसा नहीं है जिस पर मनुष्य अपना नियंत्रण नहीं कर सकता। अभ्यास के द्वारा हृदय को भी अपने नियंत्रण में कर सकता है यहां तक कि उसकी इच्छा से उसकी धड़कन को, धीरे या तेज या बिल्कुल रोका जा सकता है। परन्तु इसमें कोई अति प्राकृतिक नहीं है। प्रकृति में कई स्थूल और सूक्ष्म प्रक्रियाएं होती हैं। सहजज्ञान, बुद्धि और अतिमनस सभी एक मनस में ही है।

स्वामी रामतीर्थ ने कुछ दृष्टान्त दिए हैं। वह कहते हैं, एक व्यक्ति अपनी चेतना को पांच मिनट के लिए रोक सकता था। परन्तु कई ऐसे योगी भी है जो छह महीने तक मृत्यु की सी अवस्था में अपने को रख सकते हैं। यह आध्यात्मिकता नहीं है बल्कि एक सच्ची शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है। यदि आजकल के डाक्टर इसके बारे में नहीं जानते, तो उनको इस विज्ञान के बारे में अपने ज्ञान के विकास में वृद्धि करनी होगी।

स्वामी योगानन्द ने हरीदास नाम के एक योगी का उदाहरण दिया जो शरीर की अनियन्त्रित प्रक्रियाओं पर भी नियंत्रण कर सकता था। सन् 1838 में महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में उसके शरीर को जमीन में गाड़ कर कई महीने तक रखा गया। डॉक्टरों ने उसे

मृत घोषित कर दिया। उसे जब बाहर निकाला गया तो उसके शरीर पर पुनः नियंत्रण प्राप्त हो गया और बाद में वह कई वर्षों तक जीवित रहा।

योगी थोड़े या लम्बे समय के लिए मृत्यु जैसी अवस्था पैदा कर सकते हैं। योगसूत्र (3.39) के अनुसार योगी किसी अन्य जीवित या मृत शरीर में प्रवेश कर सकता है और उस शरीर से कर्म कर सकता है। परन्तु योग की उस उच्च स्थिति पर पहुंचने के बाद शव को जीवन देने या मृत्यु में देरी करने जैसी बातों में उनकी रुचि नहीं रहती। देह त्याग तो उनके लिए वही महत्व रखता है जैसा शरीर के लिए वस्त्र परिवर्तन। बेकार हुए वस्त्र को फिर से उपयोगी बनाने का आध्यात्मिक दृष्टि से अपने आप में कोई मूल्य नहीं है। ईसा ने अपने शरीर को जीवित रखने में कोई रुचि नहीं दिखाई हालांकि, जैसा उन्होंने सूली पर दावा किया था, वे देवताओं के बारह से अधिक सैन्यदल अपनी रक्षा के लिए बुला सकते थे। (संत मैथ्यू, 26.53) न उन्होंने सूली लगने के दैहिक परिणामों से अपने आप को बचाकर चमत्कार का एक नया उदाहरण प्रस्तुत करने का विचार ही किया।

यदि योगी किसी अन्य शरीर के द्वारा कार्य करना चाहता है और लम्बे समय तक उस शरीर को साधन बनाना है तो नया जन्म लेने की बजाय वह ऐसे शरीर में प्रवेश कर जाता है जो उसके इच्छित कर्मों के अनुकूल हो। इस प्रकार के परकाया प्रवेश करने वाले योगी भी जीवन से लगे सभी सम्बन्धों को काटने के लिए उस देह का त्याग तो कर ही देते हैं ताकि आगे नये रूप में बचे हुए कर्मों के अनुकूल रचना की जा सके। परन्तु महापुरुष साधारणतया अपनी शक्ति का ऐसा उपयोग नहीं करते। फिर भी स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि अतिमनस के अध्ययन के विषय को हम उसी तरह ले सकते हैं जिस प्रकार की कोई अन्य विज्ञान को।

* * *

आध्यात्मिक प्रत्यक्षानुभववाद (Spiritual Empiricisn)

अब तक हमने कुछ विशेष प्रकार के चमत्कारिक अनुभवों का विवरण दिया है और संक्षेप में मृत्यु और शव को पुनः जीवन देने के सम्बन्ध में भारतीय और ईसाई दृष्टिकोण का हवाला भी दिया है। अब हम अलौकिक प्रत्यक्ष के दार्शनिक महत्व पर विचार करेंगे।

बाइबल के चमत्कार

सेमिटिक लोगों के लिए मूसा और ईसा के चमत्कार इतने अद्‌भुत और प्रभावशाली हैं कि वे यह सोचे बिना नहीं रह सकते कि ईश्वर प्रदत्त शक्ति के फलस्वरूप ही ऐसा सम्भव हो सकता है। प्रसिद्ध दार्शनिक ऑगस्टाइन ने कहा: 'केवल इन चमत्कारों के कारण ही मैं ईसाई हूं, अन्यथा मैं ईसाई नहीं होता।' कुछ महापुरुषों ने अपने दैविक दावों का

औचित्य बतलाने के लिए अपनी चमत्कार दिखलाने की योग्यता या ईश्वर द्वारा उनको कोई विशेष संदेश दिए जाने को आधार बनाया। जब जॉन को ईसा के दावों की सत्यता पर संदेह हुआ और उसने इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने शिष्यों को भेजा तब ईसा ने अपनी दैविकता के पक्ष में अपने चमत्कारों का प्रमाण प्रस्तुत किया (मैथ्यू, 11.5) परन्तु बाइबल में ऐसे उदाहरण भी हैं जब ईसा ने चमत्कार बताने से साफ इन्कार कर दिया। जब उन्हें भूख लगी तब शैतान ने कहा कि यदि तुम्हारे अन्दर शक्ति है तो उन पत्थरों को रोटियाँ बना दो। परन्तु ईसा ने वैसा नहीं किया और उसे डांट दिया। (मैथ्यू 4.3) भूतों को भगाने की शक्ति के बारे में उनके विरोधी यह कहते थे कि ईसा के अन्दर भूतों का सरदार बीलजीबब रहता है जो छोटे-मोटे भूतों को भगा देता है। कई जगह पर ईसा ने स्वयं यह चेतावनी दी है कि भविष्य में कई ढोंगी ईश्वर के दूत होने का दावा करेंगे और चमत्कार दिखा कर लोगों को धोखा देंगे। (मैथ्यू, 24.5, 11, 24) भारत में भी कई जादूगर और तांत्रिक इस प्रकार की चीजें करते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि ईसा द्वारा रोगमुक्ति या पानी को शराब बनाने के चमत्कार केवल अधिक गति देकर की हुई प्राकृतिक प्रक्रियायें ही हैं। परन्तु यह तर्क सत्य को ठीक तरह से नहीं समझा सकता क्योंकि फिर असत् में से सत् वस्तुओं को पैदा करने के चमत्कारों के दावों का औचित्य किस प्रकार बताया जा सकता है? ईसा और गुरुदेव ने असत् में से खाना उत्पन्न नहीं किया, बल्कि थोड़े से भोजन को विकसित रूप में दिखा दिया और खाने वाले लोगों में भूख से तृप्ति की स्थिति बन गई। ऐसी बातें सामान्य नहीं हैं और साधारण लोगों के बस की नहीं हैं? फिर भी भारत में ऐसी बातें कई बार सुनने में आई हैं। विवेकानन्द ने एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है जिसमें एक योगी ने असत् में से बहुत बड़ी मात्रा में ताजे फल बना दिये और वहां पर बैठे लोगों ने उन्हें पेट भर कर बड़े चाव से खाये। परन्तु जब विवेकानन्द ने उस योगी को इसका रहस्य पूछा तो उत्तर मिला कि यह तो केवल हाथ की सफाई है। (Vol. II p. 10, 12) सांई बाबा के भक्त विभूति और घड़ियें, फल और मछली जैसी चीजों का असत् में से भौतिकीकरण के वर्णन करते हैं। प्रसिद्ध भारतीय जादूगर पी.सी. सरकार भी वस्तुओं के भौतिकीकरण की शक्ति का प्रदर्शन किया करते थे। व्यवसायी जादूगर यह तो मानता है कि यह एक दिखावा मात्र है और इसकी भी एक विद्या है।

योग और चमत्कार

भारत में जादू के स्तर के चमत्कारों का एक विज्ञान के रूप में अध्ययन हुआ है। यद्यपि साधारण लोग इन चीजों से प्रभावित होते हैं, परन्तु भारत में इस प्रकार के चमत्कारों के प्रदर्शन की शक्ति को आध्यात्मिक विकास का मापदण्ड नहीं समझा गया। हवा में ठहरना, विषयों का भौतिकीकरण आदि बातों में कोई अति-प्राकृतिक तत्व नहीं है।

विवेकानन्द के अनुसार ये सभी असाधारण शक्तियें मनुष्य के मनस में हैं और अध्ययन और अभ्यास से प्राप्त की जा सकती हैं। (II p. 12) पानी और आग पर चलने के उदाहरण, तूफान, पेड़ और पत्तियों को शाप देने के उदाहरण भारत के धार्मिक साहित्य में प्रायः मिलते हैं, परन्तु उनके बारे में चर्चा करने के साथ ही सच्चे योग की दृष्टि में उनकी निन्दा ही की गई है क्योंकि उनका कोई आध्यात्मिक महत्व नही हैं और न वे आत्म विकास में ही सहायक हैं। सत्य तो यह है कि ईसा स्वयं इस प्रकार के चमत्कारों को महत्व नहीं देते थे। वे भी यह मानते थे कि इस प्रकार के कई चमत्कार तो केवल जादू की क्रियाएं हैं क्योंकि ढोंगी साधु और पापी भी ऐसा कर सकते हैं। इसके अलावा एक बात यह भी है कि काल की दृष्टि से इन चमत्कारों का सीमित प्रभाव ही होता है। ईसा ने कहा कि मूसा और अन्य दूतों ने इतने चमत्कार बताये, परन्तु लोगों में कितना परिवर्तन आया ? (संत लूक, 16.31) सूली पर चढ़ी हुई हालत में उनके विरोधियों ने ललकार कर कहा कि अब अपनी दैविकता सिद्ध करने के लिए कोई चमत्कार बताओ, तब उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार का एक उदाहरण सिख गुरु और उनके शिष्यों का है, जिन्होंने मुगल सम्राट औरंगजेब के सामने चमत्कार की शक्ति का प्रदर्शन करके अपने जीवन की रक्षा करने से साफ इंकार कर दिया। रामकृष्ण ने योगशक्ति के दुरुपयोग की बहुत निन्दा की है। अमेरिका के अखबार ने विवेकानन्द को चुनौती दी कि अपने धर्म की श्रेष्ठता को चमत्कार के द्वारा सिद्ध कर सकते हो तो करो। परन्तु विवेकानन्द ने ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया। भारतीय ऋषियों ने स्वयं कई बार चमत्कार बतलाये हैं, परन्तु दार्शनिक दृष्टि से इसे महत्व नहीं दिया। उनके लिए थोमस फूलर के शब्दों में चमत्कार तो आध्यात्मिक बचपन को समेटे हुए रखने का वस्त्रमात्र हैं।

निम्न कोटि के जादू और उच्च कोटि के आत्म-शक्ति के चमत्कारों में यह अन्तर है कि जादू के हर रूप में चमत्कारिकता का तत्त्व होता है, परन्तु सभी प्रकार के चमत्कार केवल जादू मात्र नहीं होते। जादू एक निम्न स्तर का चमत्कार है जिसमें ऐसे प्रत्यक्ष दिखाने की शक्ति है जो वास्तव में भ्रम या विभ्रम ही होते हैं। यह मनस की शक्ति का विकास करके प्राप्त किया जा सकता है। परन्तु आत्म-शक्ति के चमत्कार एक उच्चतर चैतन्य की स्थिति को प्राप्त करने पर ही सम्भव होते हैं। यह भेद गुणात्मक है। जब कि जादूगर केवल दिखाने के लिए और लोगों को ठगने की भावना से प्रेरित होते हैं, योगी दया और करुणा से प्रेरित होकर कुछ विशेष अवस्थाओं में प्रकृति को सहयोग देकर ऐसा करते हैं जिस प्रकार कि डाक्टर असहनीय कष्ट की अवस्था के समय दर्द मिटाने वाली दवाई देते या सुई लगाते हैं। कोई भी विचारशील व्यक्ति चमत्कार के बारे में सुनने पर यह सोचता है कि यदि यह सत्य है तो प्रकृति के नियमों का उल्लंघन है। परन्तु क्योंकि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता, वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि चमत्कार की सब बातें काल्पनिक हैं। इस आलोचना के वेग को सहन करने में असमर्थ

कुछ धर्मशास्त्रियों ने बाइबल में लिखे ईसा के चमत्कारों की रूपक की दृष्टि से व्याख्या की है। रिचर्डसन भोजन सामग्री के चमत्कार को आध्यात्मिक भोजन के रूप में देखते है पानी का शराब में परिवर्तन यहूदियों के शुद्धिकरण का द्योतक है। रोगमुक्ति का अर्थ टूटे हुए दिलों को ठीक करना है। ईसा ने जिस पेड़ को शाप दिया वह यहूदी धर्म का प्रतीक है, लेजारस उस मानव जाति के लिए है। जिसे ऊपर उठाना है। अंधों की दृष्टि का अर्थ आत्म दृष्टि है। समुद्र को शान्त करना हमारे संवेगों को शान्त करना बतलाता है, आदि। परन्तु इस प्रकार शास्त्रों को घुमाना तथ्यों से बचने के लिए दूर भागने की तरह है। *(A. Richardson: The Miracle Stories Of The Gospels, p. 131 f.)*

दूसरी तरफ हम संत जॉन की व्याख्या देखते हैं। उसकी यह मान्यता थी कि ईसा ने जो चमत्कार बताये वैसे अन्य किसी भी व्यक्ति ने नहीं बताये। यह व्याख्या इन लोगों में इस प्रकार की शक्ति होने का निषेध करती है।

योग दर्शन उपरोक्त दोनों व्याख्याओं से सहमति नहीं रखता। इसके अनुसार यह शक्ति विशेष व्यक्ति का एकाधिकार नहीं है। यह तो गुप्त रूप में प्रत्येक में विद्यमान है। आधुनिक समय में कई योगी इस प्रकार के चमत्कारों की संभावना से इंकार नहीं करते। उनके अनुसार हमारे अन्दर आत्मा नाम का एक सूक्ष्म तत्व है जिसका गुण चैतन्य है। आत्म विकास के साथ यह चैतन्य उच्चतर स्तरों को प्राप्त करता जाता है और असाधारण शक्तियाँ स्वत: ही उसके साथ चली आती हैं। पतंजलि के अनुसार योगी को निम्नलिखित शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

उसे भूत और भविष्य का ज्ञान हो जाता है (3-16)
उसे अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान होता है। (3-18)
वह दूसरों के मन में प्रवेश करने की शक्ति रखता है। (3-19)
उसमें अदृश्य होने की शक्ति होती है जिससे उसके शरीर को कोई देख नहीं सकता। (3-21)
उसे अपने अन्त समय का पता रहता है। (3-23)
वह बहुत दूर की चीजों और अति सूक्ष्म विषयों (जैसे परमाणु) को देखता है। (3.26)
उसे खगोल के विषयों का ज्ञान होता है। (3.33)
वह अन्य किसी जीवित या मृत शरीर में प्रवेश कर सकता है। (3.39)
वह वजन में हल्का हो जाता है। पानी में डूबता नहीं है। (3.40)
मीलों दूर कही हुई बात वह सुन सकता है। (3.42)
रुई की तरह हल्का हो कर हवा में चल सकता है। (3.43)
शेर उसके चरणों में मेमने की तरह बैठ जाता है। (3.46)

वह सर्वज्ञानी हो जाता है। (3.50)
वह सारे जगत को अपनी हथेली में रखे फल के समान देखता है। (3.55)

इस चैतन्य के भी कई स्तर है। अरविंद चार स्तर बतलाते हैं। (*Life Divine p. 1116*) आत्मा जिस अवस्था तक पहुँचती है उसी के अनुरूप उसके प्रत्यक्षों और अनुभवों की हद निर्धारित होती है। मेहर बाबा के अनुसार ऐसे सात स्तर हैं। जादू की क्रियायें पहले, दूसरे और तीसरे स्तर पर संभव होती है। परन्तु यह कार्य बेकार हैं और आध्यात्मिक दृष्टि से नुकसान कर सकते हैं ? करने वालों को खतरा रहता है। परन्तु इसके ऊपर के स्तर को प्राप्त किया हुआ व्यक्ति दूसरों के लिए शुद्ध प्रेम के फल स्वरूप चमत्कार बता सकता है और उसको कोई खतरा नहीं रहता। (*C.B. Purdom : The God- Man, p. 441*) वेदांत इस उच्चतम अवस्था को ब्रह्मज्ञान कहता है जिसे प्राप्त करने पर व्यक्ति सर्वज्ञानी हो जाता है। न्याय दर्शन ने इसकी सत्ता को मान्यता दी है और इसे योगज प्रत्यक्ष अर्थात् योगियों का प्रत्यक्ष कहा है। जैन दर्शन के अनुसार अवधि और मनः पर्याय उच्चतर स्तर के ज्ञान है, परन्तु केवलज्ञान सर्वोच्च है जो देश और काल की किसी सीमा से बंधा नहीं है।

यह अलौकिक अनुभव की स्थिति लम्बी योग साधना से प्राप्त हो सकती है। बहुत प्रयत्न के बावजूद भी साधक असफल हो सकता है। ईसा के अनुसार यह शक्ति श्रद्धा अर्थात् भक्ति के द्वारा प्राप्त होती है। संत मार्क के अनुसार यह शक्ति उपवास और प्रार्थना से प्राप्त होती है। (मेथ्यू : 17.20; 9.29) भक्ति सम्प्रदायों की मान्यता है कि यह प्रार्थना और भक्ति से प्राप्त होती है। जैन मत के अनुसार यह तप, जिसमें उपवास को बहुत महत्व दिया गया है, और पंच महाव्रत का निरपेक्ष पालन करने से प्राप्त होती है। कभी-कभी यह शक्ति गुरु द्वारा शिष्यों में डाली जाती है, जिन्हें शक्तिपात कहते हैं। इसमें बहुत कुछ देने वाले की क्षमता और लेने वाले की योग्यता या परिपक्वता पर निर्भर करता है। ईसा ने ऐसी कुछ शक्तियाँ अपने शिष्यों को दी थी। (संत मैथ्यू: 10.1) कहते हैं कि शरीर छोड़ने के पहले रामकृष्ण ने अपनी सभी शक्तियाँ विवेकानन्द में डाल दी थी। (*Gospel of Ramkrishna p. 977, 981*)

कभी-कभी पूर्वजन्मों की साधना और पुण्य के फलस्वरूप बिना चेष्टा किये भी व्यक्ति में इन शक्तियों का विकास हो जाता है। ऐसी हालत में यह अनुभव एक विस्फोट की तरह होता है। योगियों के अनुसार कुंडलिनी जागृत होने पर ऐसा हुआ करता है। इसके भी कई स्तर हैं। कभी-कभी व्यक्ति को यकायक प्रकाश, आवाज और दृष्टि के अजीब अनुभव होते हैं और जो इस विज्ञान को नहीं समझता वह इस अनुभव और उसके साथ मिलने वाली शक्तियों से चकित हो जाता है। यदि उस समय सही राह दिखाने वाला नहीं मिलता तो वह व्यक्ति ठोकर खा जाता है और बहुत नुकसान कर सकता है। साधना

के निम्न स्तर पर चलने वाले ऐसे कुछ लोगों ने अपने आप को ईश्वर का दूत समझ कर सम्प्रदाय चला दिये जिससे उन्होंने अपना खुद का और दूसरों का बहुत नुकसान किया है।

इस विषय पर गुरुदेव श्री शान्तिविजयजी के विचार बिल्कुल स्पष्ट हैं। जॉर्ज अपनी प्रथम मुलाकात के बारे में लिखते हुए कहते हैं। 'मैंने गुरुदेव को पाश्चात्य लोगों के आध्यात्मिक असंतोष के बारे में बताया, मेरी भारत यात्रा का अभिप्राय, एशिया के बारे में सुनी हुई ज्ञान के भण्डार की वास्तविकता को ढूंढने की दिशा में मेरे प्रयास, विभिन्न योगियों से मेरी भेंट।''तुम किस तरह के योगियों से मिले?'' गुरुदेव ने पूछा।

'उनमे से कुछ ज्ञानयोग, कुछ भक्तियोग और अन्य अधिकतर हठयोग की साधना करते थे, 'मैंने जवाब दिया।'

'मैं हठयोग की सलाह नहीं देता' उन्होंने कहा। रास्ता लम्बा और कष्टप्रद है। शरीर पर नियंत्रण करके उसमे दैविकता के प्रवेश की तैयारी करना तो ठीक है, परन्तु यदि आत्मा में शांति नहीं तो शारीरिक पूर्णता को प्राप्त करने में इतना बहुमूल्य समय क्यों खराब किया जाए? वह रास्ता नहीं लेना। बहुत से लोग इसमें खो गये हैं।.... हठयोग की साधना से तुम हवा में उड़ सकोगे और पानी पर चल सकोगे। परन्तु इसके लिए भी कई वर्षों के निरंतर अभ्यास की आवश्यकता है, जबकि राजयोग के द्वारा जो ध्यान का रास्ता है, तुम्हें वही शक्तियाँ बिना चाहे ही प्राप्त हो जायेंगी- एक प्रकार की अतिरिक्त प्राप्ति....'

गुरुदेव साधकों को ध्यान के लिए अर्हम का महत्व बतलाते थे। ऊं कोई विशेष भाषा या विशेष धर्म का आरक्षित शब्द नहीं है। सभी धर्म के लोग किसी न किसी रूप में ऊँ शब्द का आदर करते हैं। कदाचित इसको बोलते हुए उच्चारित करते शब्दों में थोड़ा बहुत परिवर्तन दिखाई दे सकता है फिर भी वस्तुत: आखिर में ऊँ उनकी भावनाओं में छा जाता है। हिन्दू, मुस्लिम, जैन, पारसी, ईसाई उसको किसी न किसी रूप में पवित्र मानते हैं। यह अकल्पनीय गुप्त शक्तियों का भंडार है। यह सर्व प्रकार की ऋद्धि, सिद्धियों के दरवाजे खोलने की चाबी है। ऊँ का लगातार स्मरण करने से अपने आसपास एक प्रकार का मजबूत किला बन जाता है जो हमारे अन्तर और बाहर को बदल देता है।

हेमचन्द्राचार्य ने इसको ज्ञान, सिद्धि और वैभव देने वाला बताया है। बुद्धों की प्रार्थना में यह प्रथम शब्द है, ''ओम मणि पद में हम।'' बाइबल और कुरान में उनके हजरत अब्राहम का नाम अर्हम शब्द से मिलता जुलता है।

योग सूत्र (3.38) में स्पष्ट चेतावनी दी गई है कि योगी का वास्तविक लक्ष्य इन शक्तियों की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए। हालांकि अन्य विकास के साथ ये शक्तियाँ बिना मांगे ही आ जाती है परन्तु ये आत्म विकास की राह में रुकावटें बन सकती हैं। ये रास्ते में ही मिल जाती हैं। सच्चे योगी को निम्न स्तरों पर ही उनके प्रति तिरस्कार की दृष्टि रखनी चाहिये। अगर उसमें इनके लिए आकर्षण हो जाता है तो उसकी प्रगति रुक जाती है।

गुरुदेव स्वयं इस प्रकार के चमत्कारों को महत्व नहीं देते थे। लोग चमत्कारों से आकर्षित होकर धर्म की ओर झुकते हैं इसलिए धार्मिक जीवन के लिए भावना पैदा करने के लिए योगी कभी-कभी चमत्कार दिखाते हैं। गुरुदेव कहते थे कि इनमें कुछ नहीं रखा ह। यह तो बच्चों के लिए किया जाता है। उन्होंने एक योगी का उदाहरण दिया जो नदी पर चलता था। इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए उसने बहुत लम्बे समय तक अभ्यास किया जो व्यर्थ था। यदि आत्म विकास नहीं हुआ तो आध्यात्मिक दृष्टि से यह उपलब्धि निरर्थक है। इस गूढ़ रहस्य को गुरुदेव ने सरल और रोचक उपमा के द्वारा समझाया। उन्होंने कहा कि नौ बजे के समय घड़ी का कांटा घुमाकर बारह कर देवें तो अच्छा नहीं है। उसी तरह कोई मनुष्य केवल हठयोग के द्वारा समाधिस्थ होना चाहे तो ठीक नहीं है। सहज समाधि ही ठीक है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति की जादू या योगशक्ति के द्वारा कुछ विशेष प्रकार की रचना करने या क्रियाएं दिखाने की योग्यता का आध्यात्मिक दृष्टि से महत्व नहीं है। महत्वपूर्ण बात उसके द्वारा प्राप्त उच्चतर चैतन्य की है- उसकी दृष्टि जो मानव जाति की सामान्य प्रत्यक्ष की सीमाओं से परे फैली हुई है। अभी तक हमने कई प्रकार के चमत्कारों के विषय में लिखा है परन्तु इस पुस्तक में हमारा मुख्य सम्बन्ध उन चमत्कारों से ही रहा है जो प्रमाणशास्त्र की दृष्टि से उपयोगी हैं और जिनमें जादू के तत्व को स्थान नहीं है, अर्थात् जो आत्मा की सुप्त शक्ति के उच्चतर विकास के फलस्वरूप अतिमनस (supermind) के स्तर को प्राप्त होने पर ही सम्भव हो सकते हैं। इसका केन्द्र बिन्दु आत्मा में प्रत्यक्ष अनुभव की शक्ति के विकास का विषय रहेगा जिसको हम अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद कहेंगे। इस प्रकार के अनुभवों की परीक्षा या मूल्यांकन करते समय हम वही मापदंड लागू करें जिनसे हम साधारण और वैज्ञानिक अनुभवों की परीक्षा करते हैं और उनके आधार की सत्ता और उसके स्वरूप के बारे में अनुमान करते समय अपनाते हैं जब इन्द्रिय प्रत्यक्ष से उन पर निर्णय नहीं किया जा सकता। यह मापदंड वही हैं जो सुप्रसिद्ध आधुनिक अमरीकी दार्शनिक सी.एस. पर्स ने प्रचलित किया जो फलवाद या अर्थक्रियावाद (Pragmaticism) नाम से प्रसिद्ध है। इसका अर्थ है: जड़ के स्वरूप को समझने के लिए उसके फल के लक्षणों को समझो, मूल (essence) को उसके काया (existence) के द्वारा, सुप्त सत्ताओं को उनके प्रकट रूपों (manifestations) के द्वारा समझो। अतिमनस की परीक्षा के लिए भी यही मापदंड होगा।

न दीवार, न दूरी

गुरुदेव त्रिकालदर्शी थे अर्थात् एक दृष्टा जो काल (time) में से देख सकते थे केवल वर्तमान की दीवारें और दूरी ही नहीं बल्कि भूत और भविष्य की भी। हमने देखा कि उन्होंने नीला कुक को बताया कि उसकी दादी ने बैंगन की गुड़िया को भून दिया जब वह

पांच साल की थी। मोतीलाल पोरवाल लिखते हैं:-

मेरी आयु बीस साल की थी। किसी मंदिर में ध्यान करते हुए आवाज आई कि कुछ ही दिनों में मुझे दुनिया के महान संत के दर्शन होंगे। एक साल बाद आबू जाने का विचार आया। परन्तु एक मित्र ने मना कर दिया। उसने गुरुदेव की बुराई की। तब मैं नहीं गया। बाद में फिर आवाज आई 'दुनिया के महानतम पुरुष को छोड़ दिया।' तब फिर जाने का निश्चय किया। जब गुरुदेव के पास गया, तो गुरुदेव ने कहा: 'पूना से आये हो?' फिर कहा अभी जाओ। दोपहर को आना।' फिर जाने पर गुरुदेव ने कहा: लोग भड़काते रहते हैं- अपनी श्रद्धा कम नहीं करना।

एक बार मेरे ससुर ने गुरुदेव की बहुत आलोचना की। मेरा ससुर से झगड़ा हो गया। हम दोनों गुरुदेव के पास गए। गुरुदेव ने उनकी सब बातें जो उन्होंने मुझे कही थी, बता दी। बाद में गुरुदेव ने मुझे कहा: 'अपने ससुर से मिच्छामि दुक्कड़म कह कर माफी मांगो।'

एक बार गुरुदेव ने मुझे चार महीने अपने पास रखा। तब मेरे मन में कई विचार आये। मैंने सोचा अब यहां रहने में कोई फायदा नहीं है। तब गुरुदेव ने कहा 'घर चले जाओ। अब यहां रहने में कोई फायदा नहीं है।'

माउंट आबू में बीकानेर के प्रतिनिधि बुधसिंह वैद्य (1928-32) लिखते हैं कि एक बार राजपुताना के रेजीडेन्ट गुरुदेव से मिलने आये। उनकी पत्नी इंग्लैण्ड में बीमार थी, परन्तु काफी समय से उसका कोई समाचार नहीं आ रहा था। इसलिए वे बहुत चिंतित थे। गुरुदेव ने उनसे कहा 'आप उनकी चिन्ता मत करें। इस समय वे आपको पत्र लिख रही हैं।' रेजीडेन्ट ने वह समय और तारीख नोट कर ली जो अक्षरश: सत्य निकली।

बीकानेर की प्रसिद्ध चिकित्सक डा. शिवकामु एक दिन रोती हुई गुरुदेव के पास गई। उन्होंने 'इवनिंग न्यूज' में ऐसोसिएटेड प्रेस की यह खबर पढ़ी थी कि उनका भाई तंजोर में एक तालाब में डूब कर मर गया है। वे दूसरे दिन तंजोर जाने वाली थी। गुरुदेव ने उनसे कहा कि यह समाचार गलत है और उनका भाई बिल्कुल ठीक है। डॉ. शिवकामु ने सोचा कि गुरुदेव यह सब उसको सांत्वना देने के लिए कह रहे हैं। चम्पक भाई ने उन्हें विश्वास दिलाया कि गुरुदेव की बात गलत नहीं हो सकती। दूसरे दिन वे खुशी से गुरुदेव के पास आई। उन्होंने कहा कि बीकानेर दरबार ने यही कहा कि गुरुदेव के वचन खाली नहीं जाते और एक जवाबी तार देने की सलाह दी। 'आज तार का जवाब आया है और मेरा भाई बिल्कुल ठीक है।' फिर समाचार मिला कि कॉलेज के तीन विद्यार्थी तालाब में डूब गये थे, परन्तु उनके भाई का नाम भूल से उसमें छप गया था। शीघ्र ही यह बात सारे आबू में फैल गई और कई अंग्रेज और भारतीय अधिकारी इस बारे में पूछताछ करने बीकानेर हाउस पहुंचने लगे।

आगरा के सिरेमल कटारिया लिखते हैं: 'मेरा आठ वर्ष का लड़का अचानक बीमार हो

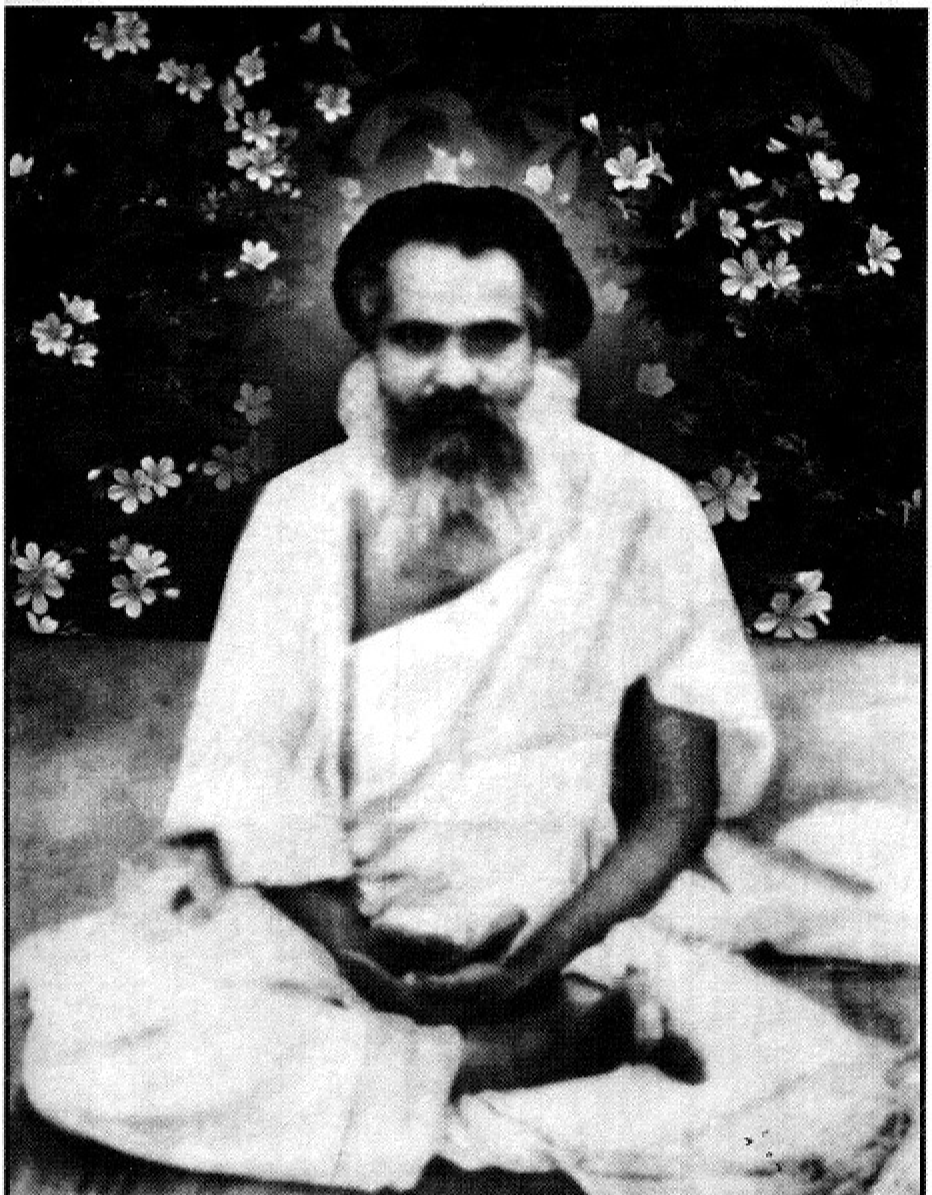

योगीराज श्री शान्ति विजयजी, माउण्ट आबू
(1890-1943 ई. सन्)

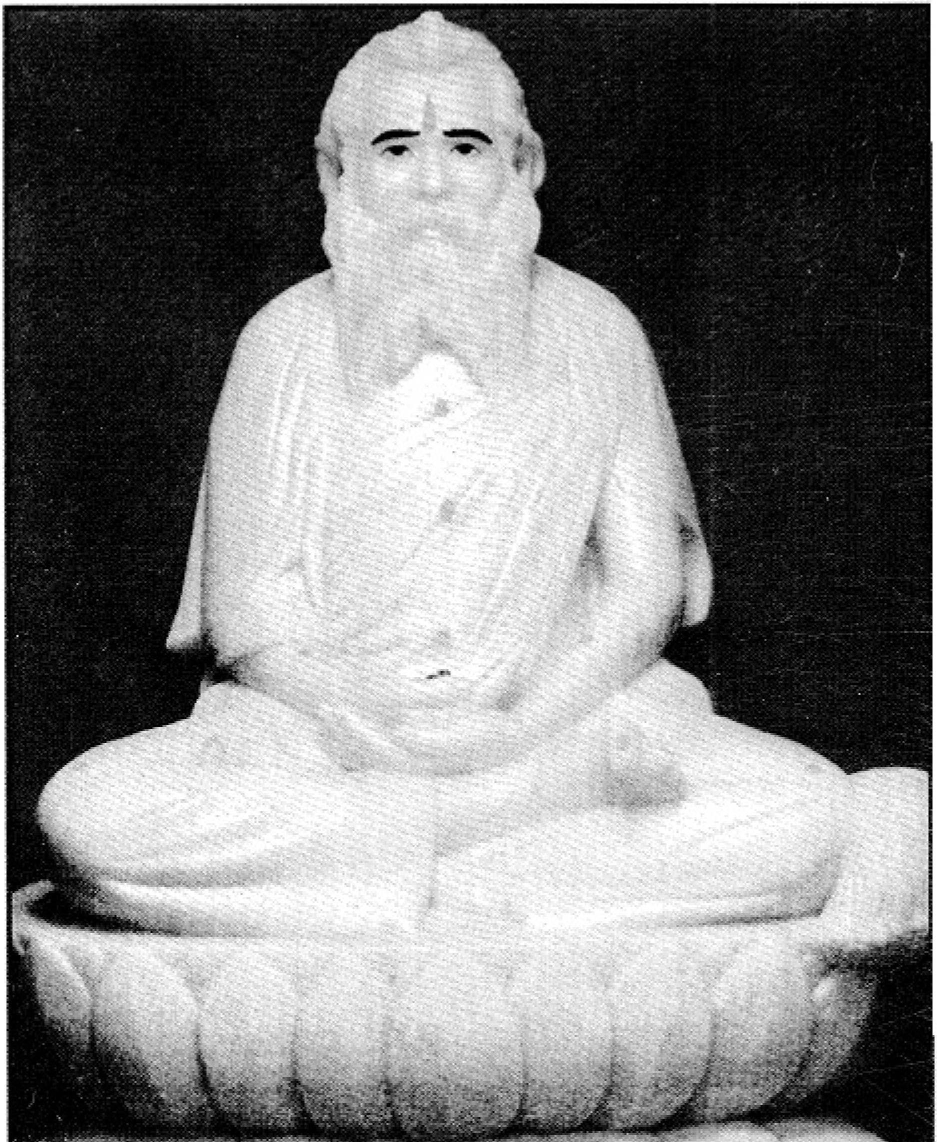

श्रीश्री आचार्य सम्राट जगद्‌गुरुश्री 1008 श्रीविजयशान्तिसूरीश्वरजी की प्रतिमा
प्रतिष्ठापक सेठ किशनचन्द लेखराज खियानी तथा उनकी धर्मपत्नी रुकमणि बहन
सिन्ध-हैदराबाद माघ शुक्ल 5, गुरुवार, वि. सं. 2001
प्रतिष्ठासाक्षी श्रीविजयजिनेन्द्रसूरीजी महाराज, मांडोलीनगर जालोर (राज.)

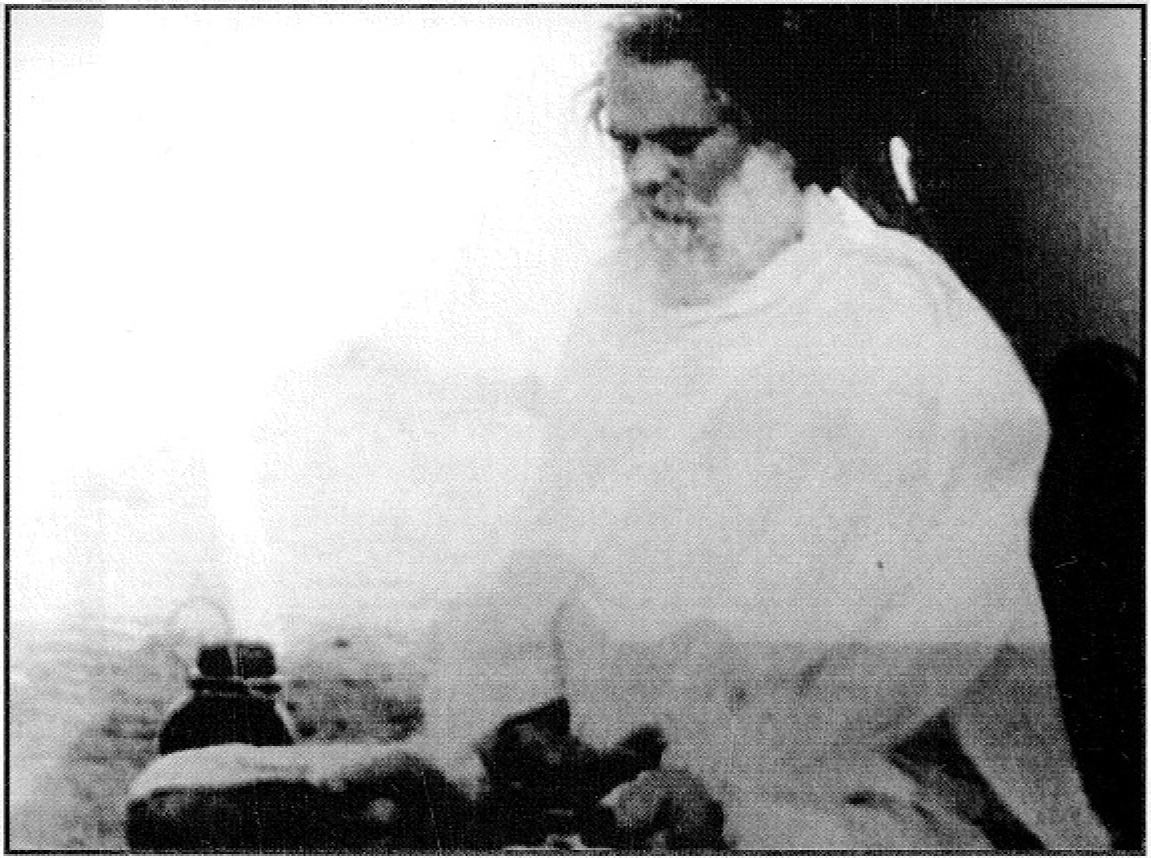

योगीराज श्री शान्ति विजयजी, माउण्ट आबू

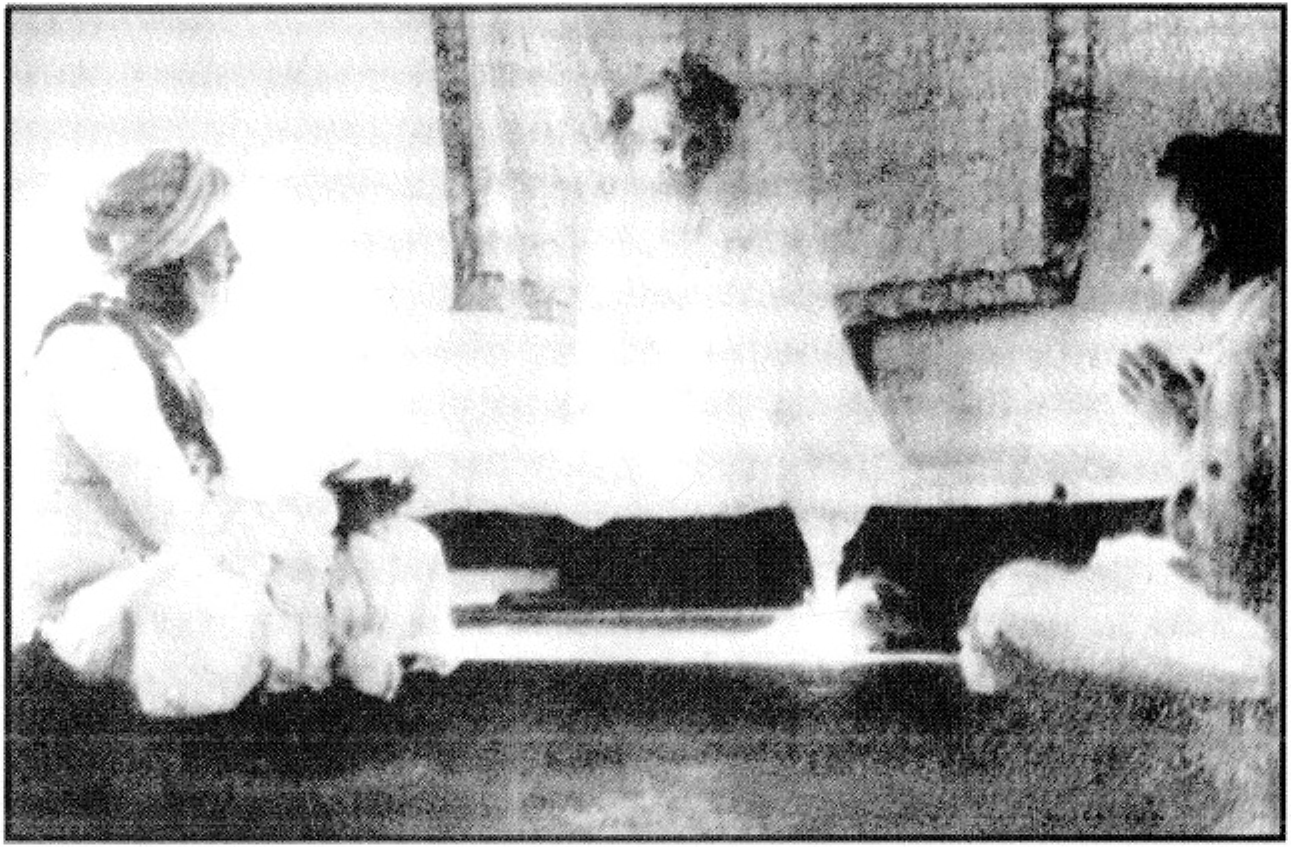

बायें से राणा हरिसिंहजी, वाव रियासत, बनासकांठा मध्य में योगीराज श्री शान्तिविजय जी एवं सेठ किशनचंद लेखराज खियानी, सिंध-हैदराबाद

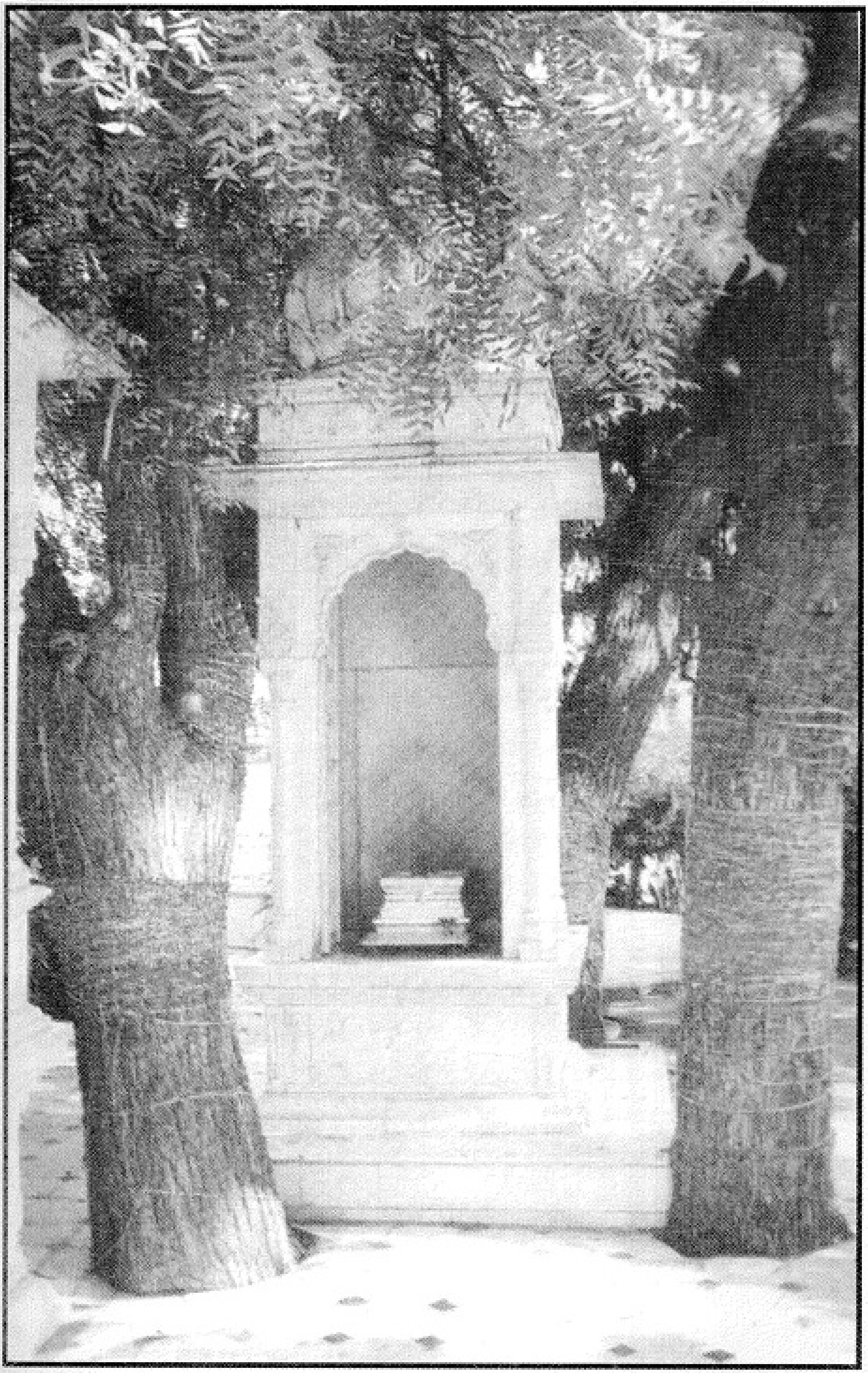

श्री धर्मविजयजी का समाधि-स्थल, माण्डोली नगर, जालोर

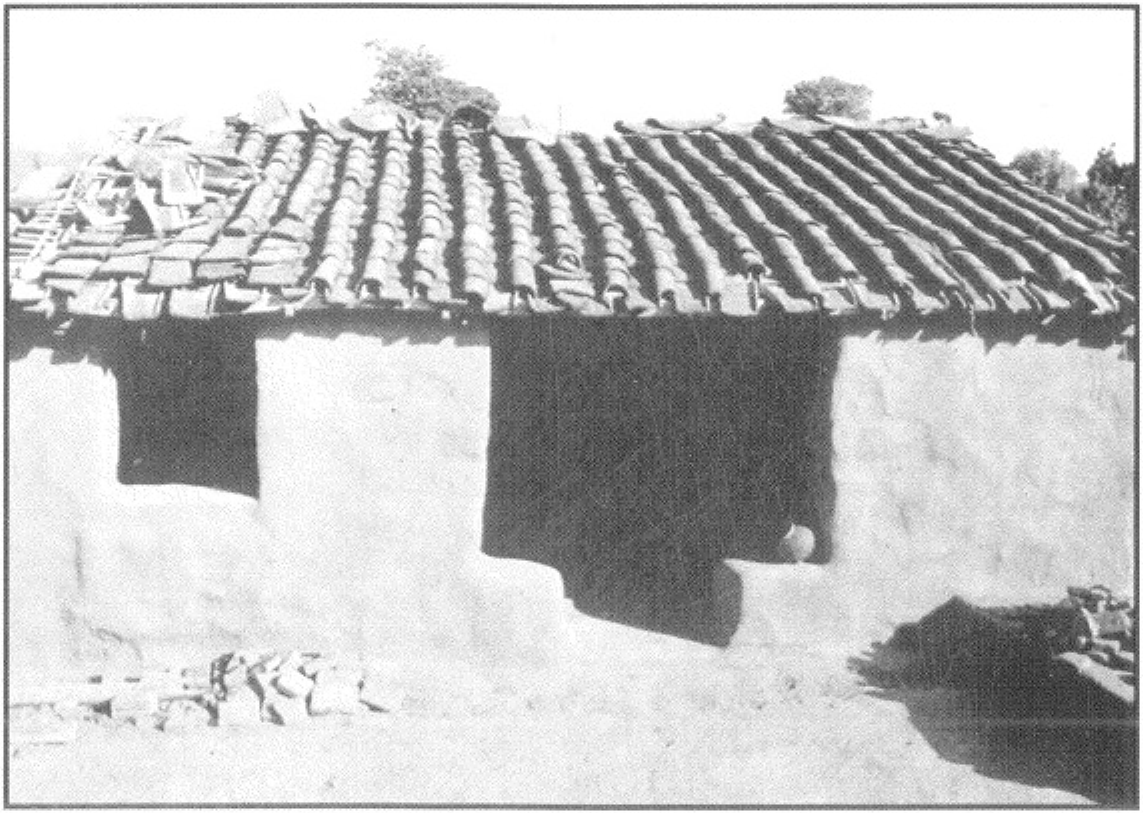

योगीराज श्री शान्तिविजयजी का जन्म-स्थल, मणादर, जिला-सिरोही (राजस्थान)
जन्म तिथि : माघसुदी 5, (बसंत पंचमी) वि. सं. 1946 दिनांक 25.1.1890

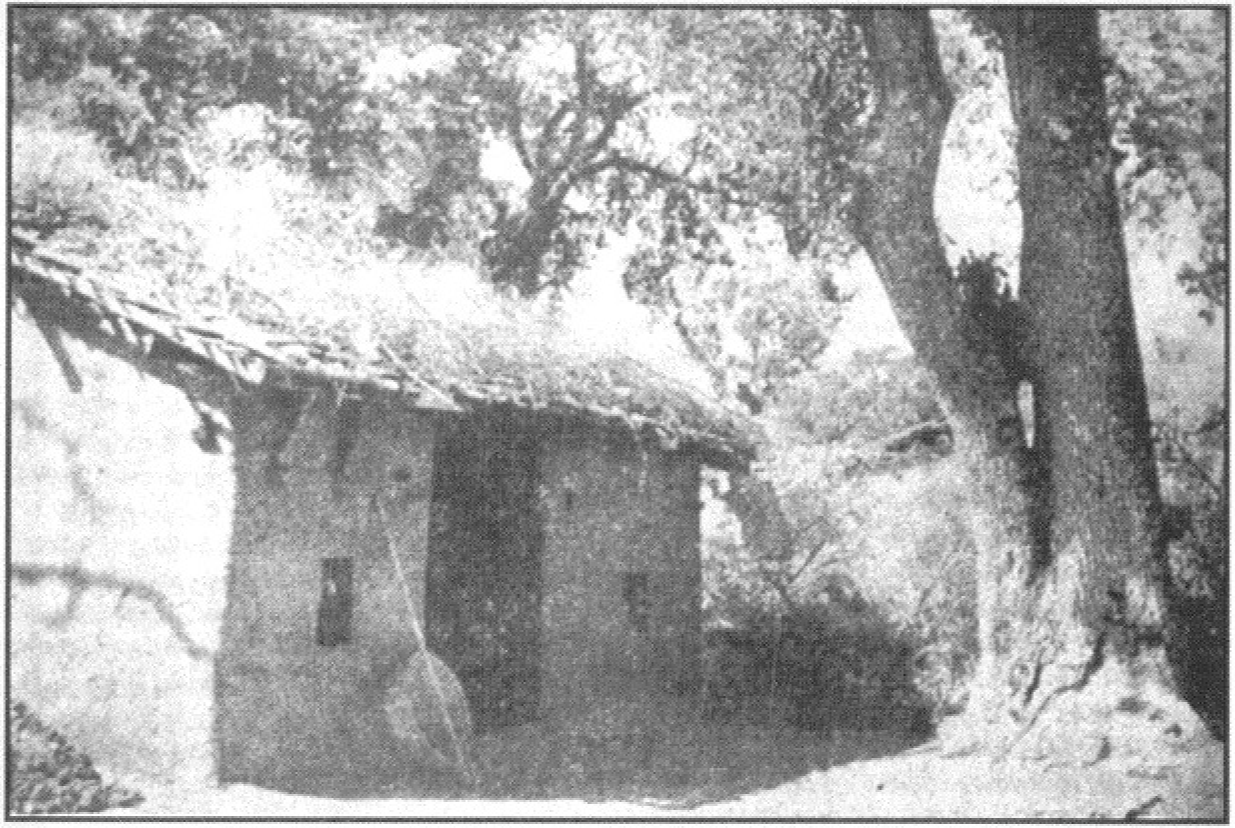

योगीराज श्री शान्तिविजयजी का दीक्षा-स्थल, रामसीन, जालोर (राज.)

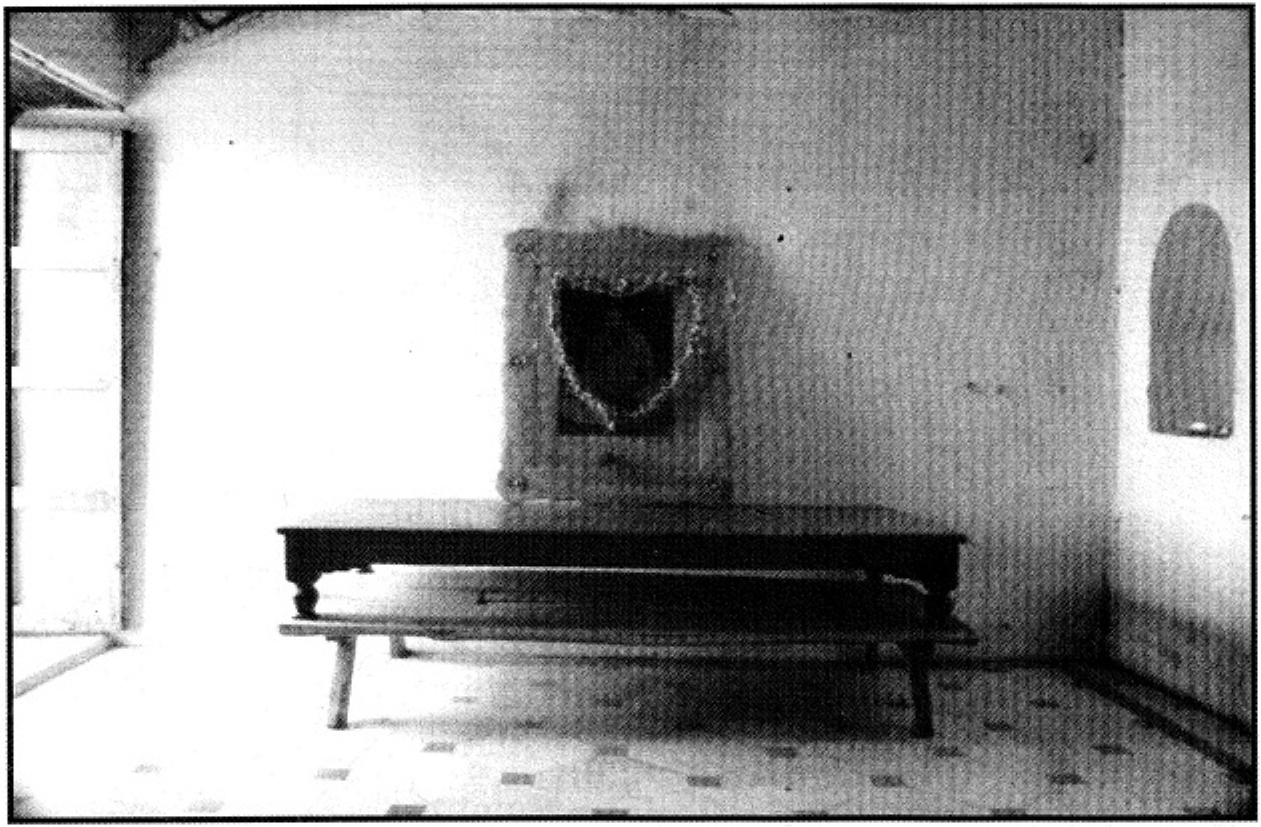

योगीराज श्री शान्तिविजयजी का निर्वाण-स्थल, अचलगढ़, माउण्ट आबू (राजस्थान)

निर्वाण दिवस : आसोज वद 10 वि. सं. 2000 दिनांक 23.9.1943

गया और मर गया। कुछ समय बाद मेरा दूसरा लड़का बीमार हो गया तब मेरी बहिन के द्वारा गुरुदेव से आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने कहा कि लड़का बचना मुश्किल है और सलाह दी कि शान्ति रखो और यहां आ जाओ। मुझे यह पत्र लड़के के मरने के बाद दूसरे दिन मिला।'

बीकानेर के राव गोपालसिंह वैद्य की लड़की के एक लड़का था। उन्होंने गुरुदेव से पूछा कि लड़के का क्या नाम दिया जाए। गुरुदेव ने कोई जवाब नहीं दिया और केवल यही कहा 'ओम शान्ति'। फिर वैद्य ने कहा कि लड़के का नाम शान्तिकुमार रखना चाहते हैं। गुरुदेव बोले: 15 वर्ष के बाद। ठीक पन्द्रहवें वर्ष में उस लड़के का देहान्त हो गया।

एक बार गुरुदेव ने जोधपुर के सुमेरचन्दजी मेहता की पत्नी के सामने आत्महत्या के विषय पर काफी चर्चा की। उन्होंने अपने पति को सब बात बताई और कहा कि पता नहीं आज गुरुदेव ने आत्महत्या के विषय पर इतना क्यों कहा। कुछ ही वर्षों बाद इस स्त्री ने आत्महत्या कर ली तब उनके पति को गुरुदेव द्वारा कही गई बातों का महत्व समझ में आया।

रिषभदास स्वामी के अनुसार उदयपुर के महाराणा फतेहसिंहजी की बीमारी पर कुछ लोग गुरुदेव से आशीर्वाद लेने आये। गुरुदेव नें कहा रिषभदास इनको क्या कहें? आने वाली एकादशी को महाराणा का देहान्त हो जाएगा। गुरुदेव की सलाह पर हमने उनसे कहा कि जितना संभव हो भगवान की भक्ति करो। एकादशी के दिन दाराशाहजी ने आकर हमें महाराणा की मृत्यु की सूचना दी। महाराणा का देहान्त 24 मई 1930 को हो गया।

चन्दनमल नागौरी भी इस घटना के बारे में लिखते हैं। गुरुदेव ने उनसे कहा कि महाराणा का अन्त नजदीक है। 'नजदीक' शब्द अस्पष्ट था। इसका तात्पर्य पूछा तब गुरुदेव ने कहा: 'आठ दिन से अधिक नहीं।' यह पूछने पर कि क्या अन्त शान्तिपूर्ण होगा। गुरुदेव ने कहा: 'कष्टमय'। 'जब मैं सादड़ी गया तब मैंने वहां के मजिस्ट्रेट विश्वनाथ से यह बात कही। परन्तु उन्होंने इसे गंभीरता से नहीं लिया। मैं दिन गिन रहा था। छठे दिन की शाम को तार मिला जिसमें यह दुखद समाचार था।'

आनन्दचन्द सिपाणी गुरुदेव के भक्त थे। उन्होंने गुरुदेव को कहा। भगवान मेरी इच्छा है कि आपके चरणों में ध्यान करते हुए ही मेरा अन्त हो। गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया। बाद में उनके लड़के की नागौर में शादी होने वाली थी। गुरुदेव ने उन्हें संदेश भेजा कि आप बारात के साथ नहीं जाना। दूसरे लोग वर के साथ जा सकते हैं। इसलिए सिपाणी अपनी पत्नी के साथ अपने कलकत्ता के मकान में ही रहे। शादी शान्तिपूर्ण सम्पन्न हो गई। शादी के बाद दूल्हा गुरुदेव के दर्शन करने सीधा बावनवाड़ चला गया। उस समय सिपाणी की कलकत्ता में तबियत ठीक थी। परन्तु गुरुदेव ने कलकत्ता में ही एक सुबह प्रकट होकर उन्हें दर्शन दिए और अपने अन्त समय के लिए तैयारी करने का आदेश दिया। उन्होंने यह बात अपनी पत्नी को बताई। वे गुरुदेव के ध्यान में बैठ गये और अन्तिम सांस ली।

सन् 1937 में जग्गूभाई और उनकी पत्नी वीणा बहिन गुरुदर्शन के लिए दिलवाड़ा आये। गुरुदेव ने कहा: जग्गूभाई, तुम्हें जो मांगना है, मांग ले। जग्गूभाई ने कहा मेरी इच्छा है कि मेरा अन्त आपके चरणों में हो। कुछ दिनों बाद उसे तेज बुखार आया। उसके देहान्त के कुछ मिनट पहले गुरुदेव उसके कमरे में आये। जग्गूभाई ने उठने की कोशिश की और अपना सिर गुरुदेव के चरणों में झुकाना चाहा। गुरुदेव ने उन्हें रोक दिया। गुरुदेव नवकार मंत्र का उच्चारण करने लगे। जैसे जैसे गुरुदेव उच्चारण करते गये, जग्गूभाई के चेहरे की ज्योति क्षीण होती गई। मंत्र समाप्त हो गया। गुरुदेव कमरे से बाहर आये तब तक जग्गूभाई ने अन्तिम सांस ले ली। इस प्रकार उनकी अन्तिम इच्छा पूर्ण हो गई।

जो लोग गुरुदेव के पास आते वे कोई न कोई आश्चर्य का अनुभव अवश्य करते, चाहे उनके दर्शन के पहले, या बाद में, या वहां ठहरने के समय। कभी-कभी भक्त रहना चाहते थे, परन्तु गुरुदेव कह देते: 'तुरन्त वापिस चले जाओ।' कभी भक्त स्वयं जल्दी चले जाना चाहते थे, परन्तु गुरुदेव उन्हें रोक देते। यह सामान्य विश्वास था कि जो व्यक्ति उनके आदेशों की अवहेलना करता, उसके साथ कोई न कोई दुर्घटना हो जाती जिससे उसे पश्चाताप होता। गुरुदेव के लाखों भक्तों में प्रत्येक को इस प्रकार का कोई न कोई अनुभव अवश्य हुआ है। ऐसे कुछ अनुभव यहां पेश किये जाते हैं:

एक बार अनादरा में एक परिवार के लोग अपनी लड़की के विवाह पर आशीर्वाद लेने आये। शादी के लिए एक सप्ताह बाकी था। उन्होंने गुरुदेव से जाने की अनुमति मांगी। परन्तु गुरुदेव ने अनुमति नहीं दी। उन्होंने विदाई की तैयारी कर ली और गुरुदेव के दर्शन के लिये आए। परन्तु दिन भर गुरुदेव ने दरवाजा नहीं खोला। वे प्रतीक्षा करते रहे। दूसरे दिन दरवाजा खुला परन्तु अनुमति नहीं मिली। वे बड़ी परेशानी की हालत में थे। आखिर उन्हें एक तार मिला जिसमें दूल्हे के मरने का समाचार था। सेठ किशनचन्द ने बतलाया कि अब उस परिवार को समझ में आया कि गुरुदेव उन्हें जाने की आज्ञा क्यों नहीं दे रहे थे।

आज्ञा की अवहेलना

एक बार कुछ जैन मुनि आबू आये और कुछ समय वहां ठहरे। वहां से जाने के पहले वे गुरुदेव के पास आये। गुरुदेव ने उनको कुछ समय ठहरने के लिए कहा। उनमें से कुछ ने गुरुदेव के आदेशों पर टीका-टिप्पणी की। 'हम हमारे प्रोग्राम से चलते हैं, गुरुदेव इसमें क्यों दखल देते हैं?' गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध वे वहां से चल दिये। रास्ते में उन्होंने एक शेर देखा। वे घबरा कर आश्रम की ओर वापिस दौड़े। गुरुदेव सामने एक पहाड़ी पर खड़े थे। हाथ हिलाते हुए उन्होंने कहा 'अब आप जा सकते हो। रुकने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैंने विशेष कारण से ही रोका था।'

बीकानेर के पूज्य चारित्रसूरीजी (श्री पूज्यजी) बामनवाड़ में थे। गोपालसिंहजी वैद्य

उनसे मिलने गये। श्री पूज्यजी ने उन्हें बतलाया कि वहां से चलने के लिए वे गुरुदेव के पास अनुमति मांगने गये थे। गुरुदेव ने कहा 'आज मत जाओ'। कोतवालजी ने उनकी बात को गंभीरता से नहीं लिया और कहा कि महाराज तो यों ही कहते रहते हैं। वे कार से रवाना हो गये। कुछ दूर जाने पर उनका एक्सीडेंट हो गया। श्रीपूज्यजी के तो मामूली खरोंच आई लेकिन कोतवालजी को चोट ज्यादा लगी। वे लौट कर गुरुदेव के पास आ गये। उन्होंने कहा कि अब हम गुरुदेव की आज्ञा होने पर ही जायेंगे।

जोधपुर के श्री इन्द्रचन्द भंडारी अचलगढ़ में थे। उन्होंने जोधपुर जाने के लिए गुरुदेव से आज्ञा मांगी। गुरुदेव ने कहा। ऐसी जल्दी क्या है? परन्तु उनके जोर देने पर गुरुदेव ने कहा जैसी तुम्हारी इच्छा। रास्ते में उनका बिस्तर सड़क पर गिर गया। पीछे आने वाली किसी बस के चालक ने उसे गुरुदेव को दे दिया। आबू रोड पर भंडारीजी को पता पड़ा कि बिस्तर नहीं है। वे लौट कर अचलगढ़ आये। गुरुदेव ने उन्हें कहा कि कोई बिस्तर को वहां लाकर रख गया है।

किसी भक्त का बुरा समय नजदीक जानकर गुरुदेव करुणावश संक्षेप में इशारा कर देते थे। किन्तु वह यदि उसे गंभीरता से नहीं लेता तो दुबारा आग्रह नहीं करते। हीराचन्दजी गुलेच्छा ने लिखा है कि फलोदी के एक भक्त ने सट्टे में लाखों रुपये कमा लिये। तब गुरुदेव ने सम्पतलालजी कोचर (अहमदाबाद) के द्वारा उनको फोन करवाया कि तुम आज से ही सट्टा बन्द कर दो। पर वे नहीं माने। कुछ महीनों में उनका बहुत पैसा नुकसान में चला गया।

चम्पालाल शाह एक बड़ा रोचक अनुभव लिखते हैं। उन्हें बम्बई जाना था। परन्तु गुरुदेव के पास देर हो गई। जब गुरुदेव ने आज्ञा दी तब उन्होंने कहा: 'अब मुझे बस कहां मिलेगी? मुझे कोई विशेष टैक्सी करनी पड़ेगी' गुरुदेव ने कहा : 'तुम्हे कोई गाड़ी नहीं मिलेगी, केवल बस ही मिलेगी।' माउंट आबू पर बस सर्विस के मैनेजर ने कहा: 'सोरी, बस तीन मिनट पहले ही निकल चुकी है। अन्य किसी गाड़ी की व्यवस्था नहीं हो सकती क्योंकि सब गाड़ियां आबूरोड पर हैं। शाह बेचैन थे। कुछ समय में जो बस निकल गई थी, वापिस लौट आई क्योंकि मैनेजर की पत्नी जो उसी बस में जा रही थी, अपनी दवाईयां माउंट आबू पर भूल गई थी जो उन्हें अपने साथ पालनपुर ले जानी थी। तब मैनेजर ने उसी बस में शाह को सीट दिलवा दी। वे बहुत प्रसन्न हुए।

चम्पकभाई की डायरी से एक अन्य अनुभव भी इसी प्रसंग में देने लायक है। जब गांधीजी गोल मेज कान्फ्रेंस से लौटे तब राजनैतिक उथल पुथल के बीच बड़े पैमाने पर सत्याग्रहियों की धर पकड़ हुई थी। फरवरी 1931 में गुरुदेव ने चम्पकभाई को एक लेख लिखने को कहा जिसमें यह बतलाया गया कि गांधी-इरविन वार्ता के फलस्वरूप एक फार्मूला निकलेगा जिससे 3 मार्च को सत्याग्रही रिहा कर दिए जायेंगे। यह लेख अंग्रेजी और गुजराती पत्रों में प्रकाशित हुआ। परन्तु 3 मार्च 1931 के अखबारों में गांधी-इरविन

वार्ता के असफल होने के समाचार पढ़ कर उन्हें बहुत निराशा हुई। कई लोगों ने पत्र और टेलीफोन पर कहा कि गुरुदेव की बात असत्य सिद्ध हुई। उसी शाम को वे आबू चले गये और गुरुदेव को कहा कि उस लेख के लिए लोग मेरी हंसी उड़ा रहे हैं और मैं बड़े मानसिक तनाव में यहां आया हूं। गुरुदेव मुस्कुराये और शान्त रहे। 5 मार्च को एक भक्त 4 मार्च 1931 के इवनिंग न्यूज की एक प्रति लाया जिसमें गांधी–इरविन समझौते की खबर थी और सरकार द्वारा सभी राजनैतिक बन्दियों को रिहा करने के निर्णय का लिखा था। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वार्ता 3 मार्च को ही सफल हो चुकी थी।

जब यह लेख काफी चर्चा का विषय हो गया, तब एक सीआईडी अधिकारी रिपोर्ट लेने के लिए दिलवाड़ा आया। गुरुदेव भक्तों को सम्बोधित कर रहे थे। गुरुदेव ने उस अधिकारी को बुला कर प्रथम पंक्ति में अपने पास बिठाया। जब व्याख्यान समाप्त हो गया तब गुरुदेव ने सांकेतिक भाषा में कहा कि उनकी इच्छा यह थी कि 'चूहे मौत से बचें तथा बिल्ली पाप से कलंकित न हो।' अर्थात् उनकी शुभकामनाएं जनता और सरकार दोनों के लिए थी। इससे वह अधिकारी संतुष्ट हो गया। उसे लगा कि गुरुदेव कोई महान आत्मा है, राजनीतिज्ञ नहीं।

गुरुदेव ने यह संकेत भी कर दिया था कि 1945 के बाद अंग्रेज भारत छोड़ने की तैयारी शुरू कर देंगे। इस बात का उल्लेख मोतीभाई कोठारी (पालनपुर) की डायरी में भी मिलता है।

सन् 1941 में कुछ लोगों ने गुरुदेव से कहा कि सर हुक्मीचन्द जैन श्वेताम्बर सम्प्रदायों का खुलकर विरोध करते हैं। तब गुरुदेव ने कहा कि उनका ऐश्वर्य तो जब तक अंग्रेजों का शासन भारत में है, तब तक ही रहेगा। पीछे धीरे धीरे सब क्षीण हो जाएगा। वक्त ने इसे सही सिद्ध कर दिया। परन्तु उस समय यह असम्भव लगता था कि ऐसे कुबेर लुढ़क जायेंगे। अंग्रेज 1947 में भारत छोड़ कर चले गये, परन्तु 1941 में तो कोई ऐसा सोच भी नहीं सकता था।

सेठ किशनचन्द के कोई संतान नहीं थी। डाक्टरों ने स्पष्टतया कह दिया था कि उनके मां–बाप बनने की कोई संभावना नहीं है। इसलिए वे बड़े दुखी थे। सन् 1941–1942 में सेठ बीमार हो गये। उनके शब्दों में 'मेरे बचने की कोई उम्मीद नहीं थी। मेरी पत्नी गुरुदेव के पास गई और उनके चरणों में झुक गई। गुरुदेव ने कहा: 'तुम चिन्ता क्यों करती हो? अभी तुम्हारे पति को कई काम करने हैं। तुम्हारे घर लक्ष्मी (लड़की) आने वाली है। मई 1948 में, गुरुदेव के देहान्त के पांच वर्ष बाद, सेठ किशनचन्द के लड़की हुई।

सन् 1932 में दिग्विजयसिंहजी, जो बीकानेर दरबार के काफी निकट थे, गुरुदेव के दर्शन के लिए दिलवाड़ा आये। जब वे कमरे में घुसे तब गुरुदेव ने कहा, 'आओ, जाम साहब' उस समय जामनगर के जाम रणजीतसिंह जिन्दा थे। उनके कोई सन्तान नहीं थी और यह निश्चित नहीं था कि उनके बाद गद्दी पर कौन बैठेगा। दिग्विजयसिंहजी बहुत

खुश हुए और उन्होंने चम्पकभाई से, जो उस समय वहीं थे, कहा कि वे सावधानी रखें और यह बात अन्य किसी को न बतायें। कुछ ही समय में रणजीतसिंह का देहान्त हो गया और दिग्विजयसिंहजी को जामनगर का राज्य मिल गया।

एजीजी खड़े ही रहे

एक बार गुरुदेव ने चम्पकभाई को रेजीडेन्सी जाकर सर ओगिल्वी से मिलने को कहा। ओगिल्वी राजपुताना के रेजीडेन्ट नियुक्त होकर आये थे। गुरुदेव ने कहा: 'उन्हें यह माला दे देना और आशीर्वाद कहना।' चम्पकभाई को कई शंकाए हुई। पहले से समय लिए बिना एजीजी से मिलना नहीं हो सकता था। राजपुताना के राजाओं को भी उनसे मिलने के लिए समय लेना पड़ता था। रेजीडेन्सी पहुंचने पर एजीजी के सचिव ने भी उन्हें अपनी गलती बता दी। तब चम्पकभाई ने कहा कि पूर्व नियुक्ति लेने के लिए मेरे पास पर्याप्त समय नहीं था। मैं अपने किसी निजी कार्य के लिए नहीं आया हूं। मुझे तो पूज्य गुरुदेव ने एजीजी के लिए संदेश देकर भेजा है। जब सचिव ने गुरुदेव के आदेश की बात सुनी तो बैठने को कुर्सी दी। उसने बतलाया कि वह स्वयं गुरुदेव का भक्त है और एजीजी से मुलाकात करवा देगा। मैंने एक कागज पर लिखा कि मुझे गुरुदेव ने उनसे मिलने के लिए भेजा है। जब सचिव वह परची लेकर गये तब सर ओगिल्वी सीढ़ियाँ उतर रहे थे। परची देखते ही बहुत खुश हुए और मुझे बड़े स्नेह से मिले। मैंने उन्हें गुरुदेव का आशीर्वाद कहा और माला दी। वे मुझे अपने कमरे में ले गये और मुझे गुरुदेव के बारे में अपने अनुभव सुनाने को कहा। मैंने अपने कुछ अनुभव सुनाये और उनके अनुभव के बारे में पूछा। तब सर ओगिल्वी ने कहा: 'एक बार मैं बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी से मिलने आबू आया था। उन्होंने मुझे गुरुदेव से मिलने के लिए प्रेरित किया। तब गुरुदेव ने मुझे बतलाया कि मेरी अगली नियुक्ति एजीजी राजपुताना के पद पर होगी। मैंने यह बात अपनी डायरी में नोट की और यह निश्चय किया कि जब भी यह नियुक्ति होगी, मैं पहले गुरुदेव के दर्शन करूंगा और बाद में रेजीडेन्सी का चार्ज लूंगा। परन्तु बाद में मैं यह बात भूल गया और इस पद का कार्यभार संभालने ही वाला था। परन्तु गुरुदेव की कृपा से अन्तिम क्षणों में मैं सचेत कर दिया गया हूँ। अब मैं उनके दर्शन करके ही चार्ज लूंगा। इसीलिए सारी बातों में मैं कुर्सी पर नहीं बैठा और खड़े खड़े ही बात की। फिर वे सीधे गुरुदेव के दर्शन के लिए गए।

रसोई में मांस नहीं

राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बरकतउल्लाखान का परिवार गुरुदेव का भक्त था। आबू पर गुरुदेव कभी-कभी-बिना सूचना के उनके घर गोचरी के लिए चले जाते थे। उनके घर में मांस का प्रयोग होता था। परन्तु जब कभी भी गुरुदेव उनके यहां जाते,उस दिन उनके घर मांस नहीं बनता था। इस सम्बन्ध में कभी भी कोई निर्देश नहीं दिए जाते

थे। बरकतउल्ला की मां को पक्का विश्वास था कि जब कभी गुरुदेव उनके घर आएंगे तो उस दिन वहां मांस नहीं मिलेगा।

'सर' शिष्टाचार विरुद्ध

रणजीतमलजी मेहता (जोधपुर) ने बताया कि एजीजी का एक आदमी उन्हें अचलगढ़ पर मिला। मैंने उसे पूछा कि एजीजी कब आने वाले हैं। उसने कहा कि गुरुदेव का जवाब लिफाफे में है जो बन्द है। उसने मुझे लिफाफा दिखाया। उस लिफाफे पर सर.ए.सी. लोथियान लिखा था। वस्तुत: उस समय तक लोथियान को 'नाइटहुड' नहीं मिली थी। मैंने सोचा कि नाम के पहले 'सर' लगाना शिष्टाचार के विरुद्ध है। परन्तु आश्चर्य की बात यह हुई कि इस घटना के तीन सप्ताह बाद ही, सम्राट के जन्म दिवस पर, एजीजी को नाइटहुड से सम्मानित कर दिया गया। ऐसा लगता है कि गुरुदेव ने जान बूझ कर 'सर' लिखवाया था।

सिंह नहीं, दास

नारायणदास मेहता (आईसीएस) लिखते हैं: सन् 1940 में मैंने गुरुदेव को दिलवाड़ा में देखा था। बातों ही बातों में गुरुदेव :ने मुझसे पूछा कि किशनगढ़ का गृहमंत्री कौन है? मैंने कहा पिछले छह महीने से नारायणसिंह इस पद पर कार्य कर रहे हैं। तब गुरुदेव ने कुछ असहमती के साथ कहा: 'सिंह नहीं, दास।' दूसरे दिन उन्होंने फिर इस बात को दोहराया। फिर भी मैं समझ नहीं पाया क्योंकि मैं सोच भी नहीं सकता था कि मुझे गृहमंत्री बनाया जाएगा। कुछ दिनों बाद किसी मानसिक बीमारी के कारण सिंह लम्बी छुट्टी चले गए और मुझे गृहमंत्री बना दिया गया। जो मुझे असम्भव लगता था वो इस प्रकार संभव हो गया। बाद में जब मैं गुरुदेव से मिला तो उन्होंने मेरे गृह विभाग के भविष्य के बारे में भी संकेत दिया। उन्होंने कहा 'मैं उस समय तक की स्थिति देख रहा हूँ जब तुम किसी समुद्र तट पर बन्दूक हाथ में लिए खड़े होंगे और तुम्हारे दोनों ओर मारी हुई चिड़ियों का ढेर लगा हुआ होगा।' मैं यह सुनकर अवाक रह गया। प्रथम तो राजपुताना के विशाल रेगिस्तान में समुद्री किनारे के बारे में सोचना, फिर एक जैन होने के नाते मैं चिड़ियों के शिकार के बारे में कैसे सोच सकता था। यह सब मेरे लिए अकल्पनीय बातें थी। परन्तु 1948 में, गुरुदेव के देहान्त के पांच वर्ष बाद, मुझे किशनगढ़ के महाराजा की पार्टी के साथ संरक्षक बना कर पालीतना भेजा गया। वहां से हमें भावनगर ले जाया गया जहां राज परिवार ने समुद्र के किनारे चिड़ियों का शिकार किया। वहां मेरी मजाक उड़ाने के लिए मुझे मारी हुई चिड़ियों के ढेर के बीच में बन्दूक देकर खड़ा किया गया और मेरा फोटो लिया। इसके बाद शीघ्र ही राजपुताना के राज्यों के विलीनीकरण के कारण मेरा गृह मंत्रालय भी समाप्त हो गया।

हिटलर की बढ़ती हुई शक्ति और उसकी धमकियों से लोग युद्ध की चिन्ता से ग्रस्त हो

रहे थे। जॉर्ज जुटजेलर ने अपनी प्रथम मुलाकात (1937) में गुरुदेव के समक्ष इस विषय की चर्चा की। वे अपनी डायरी में लिखते हैं: 'पश्चिम के बारे में विचार करते हुए मुझे उन राजनैतिक समस्याओं का विचार आया जो यूरोपवासियों को परेशान कर रही थी। मैंने गुरुदेव से पूछा, 'महाराज, क्या यूरोप में युद्ध होगा?' गुरुदेव ने उत्तर नहीं दिया। उनकी आंखें मुझ पर स्थिर हो गई और मैंने उनकी आंखों में गहरा दर्द देखा। एक छाया सी गुजरी जिससे उनके चेहरे पर विषाद और कठोरता की अभिव्यक्ति हुई। उनका मौन बहुत भयानक लगने लगा। 'तुम भविष्य के लिए क्यों चिंतित होते हो? क्या तुम उसके लिए जिम्मेदार हो?' उन्होंने पूछा। फिर कहा : 'पागल लोग अन्य पागलों का नेतृत्व करते हैं और जो अपने आप पर नियंत्रण नहीं रख सकते वे दूसरों पर नियंत्रण करते हैं। अपने नेताओं के उदाहरणों से भड़क जाने पर लोग एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने को उतारू हैं। मौत और पीड़ा के बदले मौत और पीड़ा ही मिलती है। यह सामान्य सिद्धान्त है। पश्चिम ने इन नियमों को नहीं समझा है और अब भयानक अनुभव की तैयारी कर रहा है।'

जब मित्र राष्ट्र यूरोप में हिटलर के हाथों करारी मात खा रहे थे तब गुरुदेव ने सर लोथियान को कहा कि शीघ्र ही रूस के उनके साथ मिल जाने पर युद्ध का पलड़ा उनकी तरफ भारी हो जायेगा। सर लोथियान को विश्वास नहीं हुआ कि ऐसा हो जायेगा। उन्होंने यह बात बीकानेर दरबार को कही। दरबार के सचिव ने यह बात चम्पकभाई को बताई। जून 1941 में रूस हिटलर के विरुद्ध युद्ध में आ गया जिससे मित्र राष्ट्रों की युद्ध की स्थिति को नया मोड़ मिल गया।

जापान द्वारा पर्ल हार्बर पर हमला करने के तीन माह पूर्व की बात है। सर लोथियान किसी आवश्यक कार्यवश आबू आये थे। गुरुदेव अचलगढ़ से दिलवाड़ा आये और सेठ किशनचन्द को उनके पास भेज कर इसकी सूचना दी और कहलाया कि वे केवल उसी दिन दिलवाड़ा में मिल सकते हैं और उसी शाम को अचलगढ़ चले जाएंगे। एजीजी को भी शाम को अजमेर जाना था। वे अपने कार्यक्रम रद्द करके लेडी लोथियान और कुछ अन्य लोगों के साथ गुरुदेव के दर्शन के लिए दिलवाड़ा आ गये। वे एक घंटे से अधिक गुरुदेव के साथ रहे। वे यूरोप में युद्ध के हालात से बहुत चिंतित थे। उस समय गुरुदेव ने चेतावनी दी कि शीघ्र ही पूर्व में जापान युद्ध छेड़ देगा जिससे मित्र राष्ट्रों की हालत बहुत खराब होगी और संभलने में काफी समय लगेगा, परन्तु यह आश्वासन भी दिया कि आखिर विजय तुम्हारी ही होगी। बाद में एजीजी ने यह बात अपनी पुस्तक में लिखी। गुरुदेव ने एजीजी को एक निवेदन पत्र दिया जिसमें ब्रिटिश सरकार को सचेत किया गया कि उनके आगे और भी खराब समय आने वाला है इसलिये भारत में गो हत्या बन्द करके कुछ पुण्य प्राप्त करें। कहते है कि सर लोथियान ने गर्वनर जनरल को इस विषय में मनाने के लिए काफी प्रयास किया और इस आशय का प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार को भिजवाया गया। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उसे स्वीकार नहीं किया। बाद में सन् 1943 में सुदूर-पूर्व में मित्र राष्ट्रों

की हालत बहुत खराब हो गई और भारत की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया, तब लोथियान ने वायसरॉय को गुरुदेव की बात याद दिलाई। इस पर लॉर्ड लिनलिथगो ने गुरुदेव को आशीर्वाद के लिए तार भेजा और लिखा कि आप हमारे लिए प्रार्थना करें और सरकार को उनके प्रस्ताव पर विचार करने के लिए फिर लिखा जायेगा। जब इस तार का संदेश गुरुदेव को पढ़कर सुनाया गया तब गुरुदेव ने कहा: 'अब तो बहुत देर हो चुकी है। यदि उस समय उन्होंने मेरी बात मान ली होती, तो मैं कुछ कर भी सकता था। अब मैं कुछ नहीं कर सकता क्योंकि अब मेरे पास समय नहीं है।' जो लोग पास बैठे थे वे 'समय नहीं होने' का तात्पर्य नहीं समझ सके। उनका तात्पर्य यह था कि उनका जीवनकाल जल्दी ही समाप्त होने को था। गुरुदेव ने फिर भी उनकी अन्तिम विजय के लिए वायसरॉय को आशीर्वाद लिखवा दिया। इसके बाद जल्दी ही गुरुदेव का देहान्त हो गया। दो साल बाद जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया।

भाषा तो पोदगलिक है

यह सर्व विदित है कि गुरुदेव के पास विश्व के अनेक भागों से लोग आया करते थे जो भिन्न-भिन्न भाषाएं बोलते थे। एक बार मोतीभाई कोठारी (पालनपुर) ने गुरुदेव से पूछा: 'भगवन् आपने पश्चिमी भाषाओं का अध्ययन तो नहीं किया, फिर आप उन विदेशियों से जो हिन्दी व अंग्रेजी नहीं जानते, किस प्रकार बात करते 'और वे आपको किस प्रकार समझ लेते हैं?' गुरुदेव ने मुस्कराकर कहा: ''मोतीभाई, भाषा तो भौतिक है। शब्द तो पुदगल हैं। पारस लोहे को सोना बना देता है, परन्तु उसके सम्पर्क में आने से पूर्व लोहे को मिट्टी और जंग से साफ करना होता है। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति की भावना शुद्ध होनी चाहिये। वार्ता केवल उन आत्माओं के बीच होती है जिन्होंने कुछ पवित्रता प्राप्त कर ली है। तब भाषा वार्तालाप में बाधा नहीं बनती।'' एक बार गुरुदेव ने मुझे रेजीडेन्ट के लिए एक पत्र का प्रारूप बनाने के लिए कहा। जब मैं सही शब्द के लिए अटक रहा था, तब गुरुदेव ने मुझे कुछ साधारण से सुझाव दिये जिससे मुझे उपयुक्त शब्द मिल गया।

स्वर्गीय इन्द्रनाथजी मोदी (जज, राजस्थान हाईकोर्ट, जोधपुर) ने ऐसा ही एक अनुभव हमें सुनाया। एक बार गुरुदेव ने उनसे दुधारू पशुओं के वध पर प्रतिबंध लगाने के लिए अपील का प्रारूप बनाने के लिए कहा। मोदीजी अंग्रेजी भाषा के अच्छे ज्ञाताओं में माने जाते थे। उन्होंने प्रारूप बनाया। गुरुदेव ने पूछा: 'क्या ड्राफ्ट तैयार है?' उन्होंने जवाब दिया 'जी हां।' गुरुदेव ने कहा : 'पढ़ो'। यह सोच कर कि गुरुदेव अंग्रेजी नहीं जानते, इसलिये उनकी अंग्रेजी समझ नहीं पायेंगे, उन्होंने उत्तर दिया, 'गुरुदेव यह तो अंग्रेजी में है।' इस पर गुरुदेव ने फिर कहा: 'आप पढ़ो'। जब मोदीजी उसे पढ़ रहे थे तब गुरुदेव ने उन्हें एक स्थान पर रोका और एक शब्द के बारे में पूछा। 'मोदीजी, यदि इस शब्द के बजाय यह (दूसरा) शब्द लगायें तो कैसा रहे?' मोदीजी यह सुनकर आवाक् रह गये।

उन्होंने यह स्वीकार किया कि गुरुदेव द्वारा बतलाया गया शब्द वास्तव में अधिक उपयुक्त था।

इसी प्रकार के कई अनुभव अन्य लोगों के भी हैं जैसे, नीला कुक, श्रीमती पीम, जॉर्ज आदि, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। रॉल बॉप से गुरुदेव ने हिन्दी में कुछ कहा और उसने पुर्तगाली भाषा में जवाब दिया। वे लिखते हैं: 'बिना एक दूसरे की भाषा जानते हुए भी मुझे लगा कि हमने एक दूसरे को पूरी तरह समझ लिया है।'

एक बार एक जर्मन कलाकार अपनी पत्नी के साथ गुरुदेव के पास आया। वे जर्मन भाषा में एक दूसरे से बातें कर रहे थे। वे कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे। गुरुदेव ने उन्हें बीच में ही रोक कर जो आवश्यक था उन्हें बतला दिया। वह जर्मन कलाकार खुशी से झूम उठा। उसे आश्चर्य हुआ कि गुरुदेव उनकी भाषा कैसे समझ गये?

गुरुदेव को आगन्तुक की भाषा जानने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि उनको तो सब पता रहता था। उनका उत्तर हमेशा संक्षिप्त होता था। या तो आगन्तुक की भाषा के कुछ शब्द या कुछ ऐसे शब्द जिससे आगन्तुक भली भांति परिचित होता था- ऐसे एक या दो शब्द में ही काफी सार आ जाता था और वे उस व्यक्ति के लिए पर्याप्त होते थे। हेमचन्द्राचार्य के अनुसार देवता, मनुष्य, और पशु भी योगी की वाणी को अपनी भाषा में समझ लेते हैं।

शंका का समाधान

लोग प्राय: अपने मन में कोई न कोई समस्या लेकर आते थे। कुछ लोग गुरुदेव के बारे में संदेह के भाव लेकर भी आते थे। परन्तु वहां से विदा होने से पहले उनके सन्देह दूर हो जाते थे।

एक जैन साधु, हरिसागरसूरी अपने शिष्यों सहित गुरुदेव के पास आये। बाद में उन्होंने एक शिष्य को कहा: 'यहां तो ढोंग ही लगता है। लोग गुरुदेव के बारे में इतनी सारी बातें करते हैं, परन्तु हमने तो कुछ नहीं देखा।' दूसरे दिन जब वे गुरुदेव से मिलने गये तो गुरुदेव ने पिछली रात को जो वार्ता उन गुरु-चेलों के बीच हुई थी, उन्हें पूरी सुना दी और पूछा कि आपको किस बात में ढोंग लगा? यह सुन कर हरिसागरजी बहुत शर्मिन्दा हुए और गुरुदेव से बहुत प्रभावित हुए।

सेठ किशनचन्द ने गुरुदेव से हुई प्रथम मुलाकात के समय अपने मन में सोचा कि जब बड़े-बड़े डॉक्टर रूकमणी को ठीक करने में असमर्थ रहे, तो यह महाराज क्या कर सकेंगे? उन्हें सन्देह था कि यह महाराज कुछ मांगेगे। दूसरे दिन जब वे दर्शन के लिए गए तब गुरुदेव ने रूकमणी से हीरे की बहूमूल्य अंगूठी, जो वो पहने थी, मांगी। सेठ ने मन में कहा : 'मेरा सन्देह सही निकला।' रूकमणी ने तुरन्त ही अंगूठी उतार दी और वो गुरुदेव को देने वाली थी कि गुरुदेव ने रोक दिया और कहा 'हम जैन साधु है। हम ऐसी

वस्तुओं को छूते भी नहीं।'सेठ मन ही मन लज्जित हुए और अपने भ्रम के लिए उन्हें पछतावा हुआ। उन्हें यह समझ में आ गया कि यह घटना उनकी शंका को निर्मूल करने के लिए ही रची गई।

योगियों के स्थाई आवास नहीं होते

ऐसा ही एक अनुभव सेठ किशनचन्द ने बतलाया। उन्होंने कहा 'एक बार जब मैं बामनवाड़ में था तब सिरोही महाराजा गुरुदेव के दर्शनों के लिए आए। गुरुदेव ने उनसे मेरा परिचय करवाया और मेरे बामनवाड़ में ठहरने की व्यवस्था करने को कहा। महाराजा ने अपने सचिव को इस बारे में निर्देश दे दिये। परन्तु मैं किसी अन्य के साथ ठहरना नहीं चाहता था और अपनी व्यवस्था स्वयं करना चाहता था। मेरे लिए एक विशेष बंगले की व्यवस्था की गई। परन्तु मैं बामनवाड़ के पास अपना अलग बंगला बनाने का विचार कर रहा था। मैंने महाराजा के सचिव से इस विषय पर बात की। उसने कहा 'कोई खास बात नहीं है। यह तो हो सकता है।' दूसरे दिन सुबह जब मैं गुरुदेव के पास गया, तब गुरुदेव ने मुझे कहाः 'सेठजी, मैं तो एक योगी हूँ। योगियों के कोई स्थाई निवास नहीं होते। हम एक स्थान पर कुछ समय रहते हैं, फिर दूसरे स्थान को चले जाते हैं। आप अपने ठहरने के लिए यहाँ स्थाई निवास क्यों बनाना चाहते हैं ? मैंने सिर झुका लिया परन्तु कहा कुछ नहीं। जब मैं बंगले पर आया, मैंने महाराजा के सचिव को बुलाया और उससे अपनी नाराजगी जाहिर की कि जो निजी बात हम दोनों के बीच हुई उसे उन्होंने गुरुदेव को क्यों बतला दिया। इस पर सचिव को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने कहा 'सेठ साहब, आप कहते हैं कि मैंने गुरुदेव से बात की है। सच तो यह है कि जब से हमारी बात हुई, मैं गुरुदेव से मिला भी नहीं।

एक बार गुरुदेव जंगल में एक पेड़ के नीचे ध्यान कर रहे थे। रात के करीब आठ बजे थे। वेर्जींगजी (साँथू) के मन में आया कि गुरुदेव ऐसे अंधेरे में जंगल में कैसे बैठ गये हैं जबकि जैन साधु संध्या के बाद अपने ठिकानों से बाहर नहीं जाते। उन्होंने गुरुदेव से कुछ नहीं कहा। परन्तु गुरुदेव ने स्वयं ही उनसे कहा कि प्राचीन समय में महात्मा लोग जंगलों में रहते थे। ध्यान करने के लिए जंगल के एकान्त में बैठने में कोई बुराई नहीं है। (आचारांग सूत्र 1.8.2)

दूसरे दिन एक गांव वाला कुछ भोजन बना कर गुरुदेव के पास बेहराने के लिए लाया। बेर्जींगजी के मन में आया कि जैन साधु तो गोचरी के लिए स्वयं जाते हैं और लाई हुई चीज को ग्रहण नहीं करते। उनके बिना कुछ कहे ही गुरुदेव ने फरमाया कि कुछ अवस्थाओं में योगी गृहस्थ के द्वारा लाई गई चीज को ले सकते हैं।

सन् 1943 में जामनगर की महारानी अचलगढ़ आई। राजकुमारी साथ थी। उसने मन में सोचा कि गुरुदेव तो जैन साधु है जो उसके धर्म के नहीं है। इसलिए केवल महारानी

ही दर्शन के लिए अन्दर गई। राजकुमारी बाहर ही बैठी रही। तब गुरुदेव ने ऊंची आवाज में राजकुमारी को बुलाया और कहा कि आत्मा न जैन है, न वैष्णव।

केवल ज्ञान का प्रश्न

एक बार दिलवाड़ा में श्रीमद राजचन्द्र के एक भक्त ने पूछा कि क्या इस काल में केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है? इसके उत्तर में गुरुदेव ने कहा कि जेठ महीने में मारवाड़ में भयंकर गर्मी पड़ती है, परन्तु उन्हीं दिनों में हिमालय पर ठंड होती है।

गुरुदेव के जीवनकाल में कई भक्त इस विषय पर चर्चा किया करते थे। एक बार अनादरा में पूनमजी ने वेर्जींगजी (साधूं) से कहा कि यह समझा जाता है कि इस युग में कोई केवलज्ञानी नहीं है। 'क्या गुरुदेव उस स्थिति को पहुँचे हुए हैं? हम इस बात की परीक्षा करें। तब हमने तय किया कि हम रात के नौ बजे गुरुदेव के कमरे के बाहर सोते हैं और यदि गुरुदेव ने हमें ठीक एक बजे जगा दिया तो हम मान जायेंगे कि वे केवली है। रात के ठीक एक बजे गुरुदेव ने दरवाजा खोला और हमें भीतर बुला कर कहा, 'यदि तुम्हें कोई शंका हो तो पूछ सकते हो।' फिर उन्होंने हमें केवलज्ञान पर उपदेश दिया।'

बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी ने जैन समाज के एक नेता को कहा: 'तुम जैन लोग गुरुदेव शान्तिविजयजी को केवली नहीं मानते पर मैं तो मानता हूँ।' ऐसी ही धारणा पूर्व और पश्चिम के कई लोगों की थी जो गुरुदेव के पास आये थे।

इस विषय पर और अधिक उदाहरण देकर मैं इस पुस्तक का वजन बढ़ाना नहीं चाहता। उपरोक्त घटनाएं और अनुभव अलौकिक प्रत्यक्षानुभव की वास्तविकता और गुरुदेव द्वारा उसकी प्राप्ति के बारे में किसी प्रकार का संशय दूर करने के लिए पर्याप्त हैं, परन्तु जब इन अनुभवों की व्याख्या या मूल्यांकन का विषय आता है तो लोग अपने ज्ञान के आधार पर नहीं बल्कि भावना के आधार पर मूल्यांकन करते हैं। इस विषय पर मैंने कई जैन सन्तों और अन्य दार्शनिकों से बात की। केवलज्ञान से सम्बन्धित विचार तत्व दर्शन और प्रमाण दर्शन के अन्तर्गत आते हैं जिन पर मैंने अलग से अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद (Spiritual Empiricism) नाम की पुस्तक में विस्तार से विचार किया है। यहां पर मैं इसे दार्शनिक दृष्टि से अधिक जटिल नहीं बनाना चाहता इसलिए प्रसंगानुवश सूक्ष्म में ही अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करता हूँ।

विभिन्न धर्म, जिस रूप में मानव जाति को दिये गये हैं, दार्शनिक दृष्टि से दो पक्षों में विभाजित किये जा सकते हैं- ईश्वर-केन्द्रित दर्शन और आत्म-केन्द्रित दर्शन। ईश्वर केन्द्रित दर्शन-सेमेटिक और भारतीय जो मूलतः भक्तिमार्गी रहे हैं, ज्ञानमार्गी नहीं-केवल ईश्वर को ही सर्वज्ञ मानते हैं, आत्माओं को नहीं, चाहे कोई आत्मा आध्यात्मिक दृष्टि से कितनी ही ऊंची उठी हुई क्यों न हो। इसलिए उनके विचार में ईश्वर पुत्र (Son of God) या पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि पैगम्बर, दूत या महापुरुष (prophets) की ज्ञान

की पहुंच वहीं तक होती है जितनी ईश्वर ने कृपा करके उन्हें प्रदान की है, अर्थात् उनके ज्ञान की सीमा होती है। उसे हम पूर्णज्ञान नहीं कह सकते।

दूसरी तरफ आत्म-केन्द्रित दर्शन, जो मुख्यतया भारतीय है, ईश्वर के अस्तित्व के बारे में या तो उदासीन रूख रखते हैं या उसे तत्व दर्शन में कोई स्थान देना नहीं चाहते। वे आत्मा के अनन्त ज्ञान (पूर्णज्ञान, सर्वज्ञान, केवलज्ञान) की संभावना और कुछ में यथार्थता को मान्यता देते हैं। इनमें जैन दर्शन विशेष स्थान रखता है। जैन धर्म और दर्शन भक्तिमार्गी नहीं है। उपनिषदों की तरह वे मूलतः ज्ञानमार्गी हैं। उन्होंने हमेशा केवलज्ञान की वास्तविकता को माना है। उनके अनुसार उनके तीर्थंकर केवलज्ञानी थे, जिन्हें जीव और अजीव तत्व अर्थात् सभी द्रव्य और उनके पर्यायों का पूर्ण ज्ञान था।

विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमें उनमें कई मौलिक बातों में साम्य की अपेक्षा विभेद अधिक नजर आते हैं जो केवल नैतिक धारणाओं और व्यवहार में ही नहीं बल्कि उनके द्रव्य विचारों में भी परस्पर विरोध को प्रकट करते है- जैसे, ईश्वर का अस्तित्व, आत्मा का पूर्व जन्म, कर्म का सिद्धान्त और मोक्ष का स्वरूप। महावीर और बुद्ध समकालीन थे और दोनों के अनुयायी उन्हें पूर्णज्ञानी मानते हैं। वेदान्ती उपनिषदों के रचयिताओं को ब्रह्मज्ञानी या सर्वज्ञानी मानते हैं। जब एक से अधिक लोगों के लिए केवलज्ञानी होने का दावा किया जाता है और वे परस्पर विरोधी बातें करते हैं, तब एक निष्पक्ष दार्शनिक (जो पहले कठिनाई से मिलते थे) जिनका किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष से लगाव नहीं है, यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि ये सभी सर्वज्ञानी नहीं हो सकते। विभिन्न धर्म ग्रन्थों में जो अतर्कसंगत, अवैज्ञानिक और परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं, वे उनके भावुक अनुयायियों को तो प्रेरणा दे सकती हैं, परन्तु आधुनिक विचारशील व्यक्ति को अपील नहीं करती। सब धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के बाद यह मालूम करना कि उनमें कौन सा दावा सत्य है, मानव बुद्धि के लिए सम्भव नहीं है।

हम भौतिक वस्तुओं की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई और भार माप सकते हैं और बहुत हद तक मनुष्य के मानसिक विकास का भी माप कर सकते हैं। किसी व्यक्ति की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से उससे उच्चतर स्तर का होना चाहिये। जैसे, किसी परीक्षा (बीए, एमए आदि) में विद्यार्थी को नम्बर देने वाला परीक्षक उस विद्यार्थी से ऊंची योग्यता वाला होना चाहिये। महापुरुषों पर निर्णय देने वाले लोग=मुख्यतया उनको केवलज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी या सर्वज्ञ होने का प्रमाणपत्र देने वाले लोग साधारण मानव बुद्धि ही रखते थे और अपर्याप्त ज्ञान या अज्ञान के आधार पर ही ज्ञान की पराकाष्ठा के प्रमाणपत्र देते आये हैं।

सभी धर्म, यहां तक कि जो ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते, एक बिन्दु पर एकमत हैं- वह है वर्तमान में आत्माओं का अस्तित्व। इस सम्बन्ध में जो तर्क दिए गए हैं वे पर्याप्त नहीं है क्योंकि किसी वस्तु के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए तर्क नहीं बल्कि

प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता होती है। तर्क तो केवल सम्भावनाओं को इंगित कर सकते है, अनिवार्यता को नहीं। आत्मा के अस्तित्व पर विचार करते समय एक ही बात उनके पक्ष में जाती है और वह है योगज प्रत्यक्ष, अर्थात् योगियों या महापुरुषों द्वारा आत्माओं का अलौकिक प्रत्यक्षानुभव। ऐसा प्रत्यक्ष अभी तक निश्चित रूप से विज्ञान की परिधि से बाहर है। परन्तु ऐसे महापुरुष आज भी विद्यमान हैं जिन्हें देश और काल की सीमाओं से परे जीव और अजीव तत्वों के भूत, वर्तमान और भावी व्यवहार का ज्ञान है। धर्मशास्त्रों में उन्हें त्रिकालदर्शी कहा गया है। परन्तु क्या यह ज्ञान काल की दृष्टि से निरपेक्ष है अर्थात् भूत और भविष्य की दृष्टि से अनन्त या सीमारहित है ? यह एक खतरनाक प्रश्न है। कई दार्शनिक इस प्रकार के ज्ञान के अस्तित्व का निषेध करते हैं। योगी स्वयं यह मानते हैं कि साधारण प्रत्यक्ष ज्ञान की तरह अलौकिक ज्ञान की भी अपनी अवधि या सीमा होती है और एक व्यक्ति की ऐसे ज्ञान की सीमा दूसरे व्यक्ति से भिन्न हो सकती है। यदि आत्मज्ञान की प्राप्ति के कई स्तर हैं तो यह सोचना उचित है कि साधारण बुद्धि से ऊपर हर स्तर से उच्चतर स्तर की एक सीढ़ी है, परन्तु उच्चतम स्थिति या शिखर (summit) को किसने प्राप्त किया है जिसके ऊपर अब प्राप्त करने को बाकी कुछ नहीं बचा है, अर्थात् ब्रह्मज्ञान या केवलज्ञान किसने प्राप्त किया है ? यह प्रमाणपत्र देने की योग्यता किसी भी साधारण मानव बुद्धि में नहीं है। हमारे पास ऐसी कोई स्केल भी नहीं है जिससे आध्यात्मिक महानता का तुलनात्मक दृष्टि से माप किया जा सके। हां, तर्क और तथ्यों के आधार पर उनकी गलतियों, सीमाओं और अपूर्णता को बता कर उनकी सर्वज्ञता के दावों को निरस्त कर सकते हैं। जहां हमें आलोचना के लिए कोई विशेष वजनदार सामग्री नहीं मिलती और जहां तक उनमें अतिमनस की महानता की झलक मिलती है, वहां तक हम उनकी महानता को मान्यता भी दे सकते है, परन्तु पूर्णता के परस्पर विरोधी दावों पर अन्तिम रूप से निर्णय नहीं दे सकते।

जैन सन्त और विद्वान यह मानते आये हैं कि उनके अन्तिम केवली के बाद अन्य कोई (केवली अब नहीं होगा, इसलिए वे शान्तिविजयजी को भी वह स्थान नहीं देना चाहते। (अन्य धर्मों में भी इस प्रकार की धारणाएं और विश्वास पाये जाते हैं।)

मैंने कई जैनों को यह कहते हुए सुना है कि रामकृष्ण परमहंस को तो केवल देवी का इष्ट था। जैन लोग शान्तिविजयजी के लिए भी ऐसा कहते हैं। जैन समाज के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति (जो अपने सम्प्रदाय के अन्य लोगों की तरह मानसिक संकीर्णता से ग्रसित थे) ने मुझे कहा कि शान्तिविजयजी के पास सिद्धियें तो थी। यहां 'तो' से उनका अभिप्राय केवल सिद्धियों की शक्ति से था, सच्चे आत्मज्ञान से नहीं। मैंने इसके उत्तर में कहा कि यह बात तो हम किसी भी महापुरुष के लिए कह सकते हैं जो हमें पूर्णतया पसन्द नहीं हों।

हम इस उलझन में नहीं पड़ना चाहते कि आत्मज्ञान के सोपान पर गुरुदेव कहां तक

पहुंचे थे। हम यह भी नहीं कह सकते कि पूर्व में जितने भी तथाकथित पैगम्बर या तीर्थंकर हुए हैं, वे कहां तक पहुंचे हुए थे और क्या उनकी पहुंच से भी ऊंचा कोई स्तर है, अर्थात् क्या उनकी स्थिति शास्त्र परिभाषित केवलज्ञान की थी या उससे कम, इस सम्बन्ध में वैध निर्णय देने की योग्यता न किसी प्रचारक (Apostle), न किसी आचार्य और न किसी श्रीसंघ (Church Council) में कभी थी, न आज भी है। वे केवल अपने अज्ञान और भक्ति की मस्ती में ही ऐसा करते आये हैं। यह प्रश्न कि क्या गुरुदेव केवलज्ञानी थे, उतना ही अनावश्यक है जितना कि यह पूछना कि क्या तीर्थंकर केवलज्ञानी थे ? क्या मूसा और ईसा, याज्ञवल्क्य और कपिल, शंकर और रामकृष्ण केवलज्ञानी थे ? काल की दूरी, प्रमाणों की स्वाभाविक अपर्याप्तता और भक्ति के वेग में ज्ञान के अवमूल्यन का इतिहास सत्य निर्णय में बाधा डालते हैं। फिर भी स्यादवादी दृष्टिकोण से हम उन्हें, यदि हमें आलोचना के लिए कोई ठोस प्रमाण न मिले, महापुरुष तो मान ही सकते हैं, पूर्ण-पुरुष न सही। उच्चतम या श्रेष्ठतम को हम यदि उच्च ही कहें तो दार्शनिक सुरक्षा की दृष्टि से उचित ही होगा और उसे उनका अनादर नहीं समझना चाहिये क्योंकि इस प्रकार हम अतिशयोक्ति और गलत निर्णय की संभावना से बचे रहेंगे। यदि किसी ने केवलज्ञान प्राप्त कर भी लिया हो तो अन्य कोई व्यक्ति उसका प्रमाण-पत्र नहीं दे सकता।

सिद्धान्ततः सर्वज्ञानी को जगत और जीवों के पूर्व भव और भावी जन्मों का ज्ञान भी होना चाहिये। उनके ज्ञान में सारे जगत की टी.वी. कैसेट होनी चाहिये। परन्तु देश और काल की दृष्टि से उसकी कोई सीमा है या असीम है इस विषय पर हमें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार का एक उच्चकोटिका ज्ञान जगत की वास्तविकताओं में है, यह हमें गुरुदेव शान्तिविजयजी से सम्बन्धित अनुभव मानने को बाध्य कर देते हैं। अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद की धारणा के अनुसार हमें तथ्यों के आधार पर, न कि भक्ति या भावना के मूड में, महापुरुषों का अध्ययन करना चाहिये। बाइबल में बार-बार यह चेतावनी दी गई है कि धर्म के नाम पर कई ढोंगी लोगों को गुमराह करेंगे। इसलिए मूसा ने सच्चे महापुरुष के लक्षणों के बारे में यह कहा है कि वह वचनसिद्ध होता है, अर्थात् वह जो बात कहता है वह होकर रहती है। परन्तु यदि उसका कथन गलत निकल जाता है तो वह ढोंगी या अज्ञानी होगा। इस पुस्तक के अनुभवों का इस मापदंड से मूल्यांकन किया जाए तो ये अनुभव इतने बलशाली लगते हैं कि केवल तप या साधना की दृष्टि से ही नहीं, चारित्र की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ज्ञान की दृष्टि से भी गुरुदेव को एक उच्चकोटि का स्थान देने के लिए पर्याप्त हैं। नीला कुक अलौकिक प्रत्यक्षानुभववाद की दृष्टि से उन लाखों लोगों के मूल्यांकन का प्रतिनिधित्व करती है जब वह यह कहती है कि मैं इस बात से अभ्यस्त हो गई हूँ कि गुरुदेव के लिए न दूरी है न दीवार।

धर्म तब तक अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि वो चुनौतियों का उसी भावना से सामना नहीं करता जिस तरह विज्ञान करता है। इसके सिद्धान्त सनातन हो सकते हैं परन्तु उन सिद्धान्तों को व्यक्त करने के तरीके में निरन्तर विकास की आवश्यकता होती है।

– ए.एन. वाइटहेड

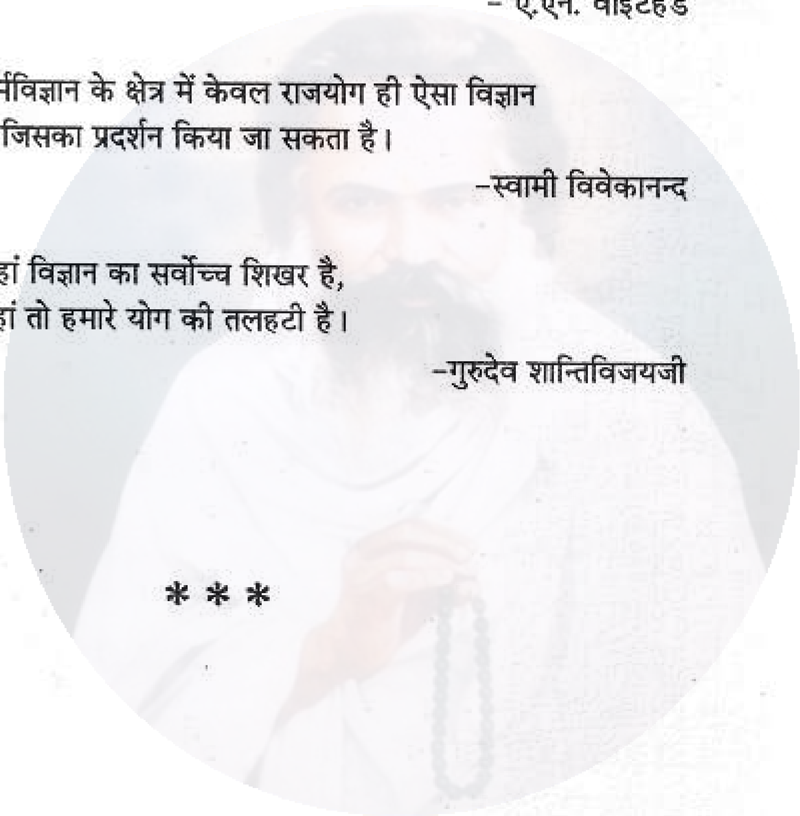

धर्मविज्ञान के क्षेत्र में केवल राजयोग ही ऐसा विज्ञान है जिसका प्रदर्शन किया जा सकता है।

–स्वामी विवेकानन्द

जहां विज्ञान का सर्वोच्च शिखर है,
वहां तो हमारे योग की तलहटी है।

–गुरुदेव शान्तिविजयजी

* * *

ओम शांति का संदेश

जीव या आत्मा के स्वरूप और स्वभाव, भाग्य या प्रारब्ध के सम्बन्ध में विविध मतों के बावजूद जीवों की बहुधता की धारणा धर्म और दर्शन की सभी शाखाओं में मूलभूत रही है। सभी ईश्वर -केन्द्रित और आत्म-केन्द्रित दर्शनों में जीव की लौकिक और अलौकिक ज्ञान की क्षमता को मौलिक माना गया है। जीव अपनी वर्तमान दशा में अपने ज्ञान के विभिन्न स्तर की सीमाओं में रहते हैं। योगसूत्र के अनुसार हर आत्मा सर्वज्ञता को प्राप्त करने की योग्यता रखती है। आचरण की शुद्धता से आत्मज्ञान की निरन्तर वृद्धि होती है। कर्म के बन्धन से छुटकारा सिद्धावस्था की ओर अग्रसर करता है। उनके जीवन में शान्ति रहती है। परन्तु उनमें से कुछ लोग क्रियाशील भी रहते हैं और मानवता की भलाई के लिए कार्य करते हैं। बुद्धधर्मी उन्हें बोधिसत्व कहते हैं। जैन उन्हें अरिहन्त या तीर्थंकर कहते हैं। इस अर्थ में गुरुदेव शांतिविजयजी को तीर्थंकर (जगद्गुरू) माना जा सकता है। यौगिक साधना में उच्चता अर्थात् सिद्धत्व प्राप्त करने के बाद गुरुदेव गुफाओं में ही सीमित नहीं रहे और प्रकाश में आ गये। परन्तु बुद्ध और महावीर की तरह प्रचार के कार्य के लिए उन्होंने संस्थाएं नहीं बनाई।

समाज और महात्मा

लोग उनके पास व्यक्तिगत रूप में आते थे और कभी-कभी भीड़ के साथ भी, परन्तु उनका मूल स्वभाव भीड़ से दूर रहना ही था। साधुओं को भी वे ऐसा उपदेश देते थे। स्थानकवासी मुनि श्री मंगलचन्दजी महाराज उनके साथ रहना चाहते थे। गुरुदेव ने उन्हें कहा 'चातुर्मास के बाद आना। आओ तब अकेले ही आना। समूह लेकर मत लाना।'

किसान और राजा सभी उनके चरणों में बैठते थे। वे उनको विश्व भ्रातृत्व और ओम शान्ति का पाठ पढ़ाते थे।

कई समाज सुधारक यह चाहते थे कि महात्माओं को गांधी की तरह खुले में आकर जनता के बीच क्रियाशील रहना चाहिए। मणिलाल इस बात से खुश नहीं थे कि महान योगी समर्थ होते हुए भी हिमालय, गिरनार और आबू पहाड़ों में गुप्त रहते हैं। वे क्यों नहीं प्रकट होकर विश्व कल्याण के कार्यों में गति देते? इस पर गुरुदेव ने कहा कि समर्थ

योगी, महात्मा विश्व के कल्याण के लिए केवल संकल्प शक्ति से अदृश्य वाइबरेशन भेजते हैं। वह सांसारिक लोगों को दिखाई नहीं देती। ये महापुरुष संकल्प, देश काल और द्रव्य के अनुसार फलीभूत होते हैं। इस प्रकार प्रकट और अप्रकट दोनों रूपों में महापुरुष जगत के कल्याण के लिए कार्य करते ही रहते हैं।

ऋषिकेश के प्रसिद्ध महात्मा स्वामी [illegible] भी लिखते हैं: "जो महात्मा हिमालय की गुफाओं के एकान्त में [illegible] आध्यात्मिक [illegible]इब्रेशन के द्वारा उन साधुओं से अधिक दुनिया [illegible] पर उपदेश देते हैं। आध्यात्मिक वाइब्रेशन बहुत लम्बी [illegible] लोगों को शान्ति और शक्ति प्रदान करते हैं। अज्ञानी लोग यह [illegible] कि जो साधु गुफाओं में ध्यान करते हैं, वे स्वार्थी हैं।

गुरुदेव ने यह एक दृष्टान्त देकर समझाया। एक मनुष्य रेडियो पर अपना संदेश प्रसारित करता है परन्तु यह वहीं सुना जा सकता है जहां उसे ग्रहण करने वाला रेडियो सेट है। इसी प्रकार महात्मा लोगों की भलाई के लिए अपने अदृश्य वाइब्रेरशन्स भेजते हैं परन्तु वे उन्हीं को मिलते हैं जिनकी आत्माएं पवित्र हो।

समाज सुधारकों की विफलता

हम बड़ी संख्या में समाज सुधारकों को देखते है। बुद्ध, महावीर और गांधी ने विशाल स्तर पर प्रयत्न किये। परन्तु सफल नहीं हुए। जो अपने अन्तिम सांस के पहले पृथ्वी पर स्वर्ग ले आने की कामना करते थे, असफल हुए। सुधारवादी आंदोलन असफल क्यों हुए? रसल ने ठीक कहा है कि कोई भी सुधार टिकाऊ नहीं रहता जब तक कि वह व्यक्ति की भावनाओं का परिवर्तन नहीं कर सकता। हमें व्यक्ति के स्तर पर बहुत ही ऊंचे आदर्श का पाठ नहीं पढ़ाना चाहिये। साधारण गृहस्थ पर साधु के आदर्शों को मत थोपो। उन्हें उतना ही दो जितना उनमें झेलने की क्षमता हो। उदाहरण के लिए उन्हें अणुव्रत से शुरू करो। गुरुदेव व्यक्ति के स्तर पर कार्य करते थे और उसको वही देते थे जो उसके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त हो। उदाहरण के लिए कई लोग जनता की भीड़ के बीच जाकर ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की जोर शोर से घोषणा करते हैं परन्तु बाद में वह पश्चाताप करते हैं। उनमें उससे वापिस हटने का साहस नहीं होता। संत आगस्ताइन, मार्टिन लूथर और गांधी ने इस व्रत के कारण मुश्किलें आई उन्हें खुलकर स्वीकार किया। जो साधु और गुरु अविवेक से मन, वचन और काया द्वारा निरपेक्ष रूप से इस प्रकार का ब्रह्मचर्य व्रत दिलाते हैं वे अत्यंत गैर जिम्मेदारी का कार्य करते हैं। जब ईसा ने इकट्ठी जनता में से व्याभिचारिणी स्त्री पर केवल उस व्यक्ति को पत्थर चलाने की आज्ञा दी जो स्वयं मन, वचन, काया से पूर्णरूप से शुद्ध हो, तब उस भीड़ में से एक भी व्यक्ति आगे नहीं आया।

केवल दीक्षा लेने से ही कोई सच्चा साधु या साध्वी नहीं बन जाता। शान्तिविजयजी ने

किसी भी व्यक्ति को अपने शिष्य के रूप में दीक्षित नहीं किया। वे गृहस्थ के लिए इस प्रकार ब्रह्मचर्य के निरपेक्ष व्रत देने को प्रोत्साहन नहीं देते थे। इस संदर्भ में बागरा वाले एक भक्त शाह मूलचन्द रूपाजी की दोष-स्वीकृति को उद्धृत करना ही उदाहरण के लिए पर्याप्त होगा। रूपाजी ने एक ऐसे अलौकिक दर्शन का वर्णन किया है जो उन्हें गुरुदेव के निर्वाण के आठ साल बाद हुआ। अपने जी[illegible] कुछ दुर्घटनाओं के कारण उनमें संन्यास लेने की तीव्र भावना [illegible] हो गई। [illegible] लिये उन्होंने गुरुदेव की मूर्ति के सामने पूर्ण ब्रह्मचर्य और सूय[illegible]व्रत ले लिया। उनकी पत्नी को यह पता पड़ने पर वह नाराज हु[illegible]र्शन दिए और कहा कि तुमने जो ब्रह्मचर्य का व्रत लिया है वह [illegible] चलता है। अभी तो तुम अपनी कुछ कठिनाइयों से परेशान हो रहे हो[illegible] भाग्य[illegible] के लिये यह व्रत निभाना तुम्हारे लिए संभव नहीं होगा। इसलिए मेरी तुमको यह सलाह है कि अभी तुम केवल आंशिक व्रत लो। अभी कुछ दिनों या धार्मिक महत्व के दिनों पर इसका पालन करो। रूपाजी ने कहा: 'परन्तु मैंने तो आपकी मूर्ति के सामने व्रत ले लिया है, उसका क्या होगा?' गुरुदेव ने कहा: 'यह सही है पर उस पर मेरी अनुमति कहां थी?' मैंने कहा कि मुझे गृहस्थ की अपेक्षा साधु दशा में रहना अच्छा लगता है। तब गुरुदेव ने फरमाया कि सब साधु साधु नहीं होते और सब श्रावक केवल श्रावक नहीं होते।

म शांति का संदेश

इस प्रकार गुरुदेव ने मुझे जगत की वास्तविकताओं को समझाया। वे महान थे। वे हर भक्त की आत्मशक्ति को जानते थे तथा उसकी योग्यता के अनुसार ही व्रत देते थे। वर्षों बाद अब मैं मानता हूं कि पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन की ताकत मुझमें सचमुच नहीं थी। कुछ सांसारिक मुसीबतों के कारण एक संवेगात्मक अवस्था की मूढ़ता के प्रभाव में ही मैंने ऐसा कदम उठाया था। गुरुदेव कुछ ऐसा अणुव्रत दिलाते जिसका साधारणतया व्यक्ति पालन कर सकता था और जो उसके आत्म विकास में प्रभावी हो सकती थी। परन्तु एसे विषय में भी सावधानी तो रखनी ही पड़ती है क्योंकि कभी कभी निर्दोष उल्लंघन भी हो सकते हैं। मोतीलाल पोरवाल लिखते हैं:

गुरुदेव ने मुझे कहा : 'एक घंटा मौन जाप करना।' मैंने जाप करना शुरू किया। मेरे भाई इंग्लैण्ड जा रहे थे। वे मुझसे मिलने के लिए आए। भाई से बातें करते करते मैं जाप करना भूल गया। जब मैं गुरुदेव के पास गया तब गुरुदेव ने मुझे कहा: 'सीरा पुड़ी खाना। मौन जाप करके क्या करना है?' गुरुदेव ने समझाया कि कोई मेहमान आ जाए तो क्या? एक घंटा तो जाप करना ही है। आदमी और जानवरों में क्या अन्तर हैं, जानवर जीवन भर मौन रहते हैं, पर जाप नहीं कर सकते। लोग जानवर की तरह बैठ जाते हैं, पर जाप नहीं करते।' मैं समझ गया। इस प्रकार जब हम गलती करते तो गुरुदेव हमें प्रेमपूर्वक समझा देते थे। नीला कुक लिखती हैं गुरुदेव के भक्तों में राजपूत राजाओं तथा भारतीय सेना के हजारों सैनिक थे। ''गुरुदेव उनसे अनुरोध करते कि वे शराब नहीं पीयें जिसके कारण

उन्हें हमेशा कष्ट उठाना पड़ता है। ऐसे सैकड़ों लोग जब उनके दर्शन को आते और उनमें से यदि कोई दुख के साथ स्वीकार करता कि उसने न पीने के बारे में अपना वचन नहीं निभाया तो गुरुदेव उसके ऊपर हाथ रखते और सांत्वना देते, परन्तु डांटते कभी नहीं थे।....

जीसस क्राइस्ट और शान्तिविजयजी

जीसस क्राइस्ट और शांतिविजयजी की शैली में कई समानताएं मिलती हैं। व्यभिचार में पकड़ी गई स्त्री पर जीसस ने शाप की बौछारें नहीं की जबकि लोग उसे पत्थरों से मारने को तैयार हो गए थे। उन्होंने एक अन्य उच्च कोटि की वास्तविकता के साथ-साथ एक उच्च कोटि की सहानुभूति का परिचय दिया। और बाइबल में एक समारीतन स्त्री का दृष्टान्त है जिसको ईसा ने आदेश दिया कि वह अपने पति को लेकर आवे। उस स्त्री ने जवाब में कहा कि उसके कोई पति नहीं है। जीसस ने उसकी सच बोलने की प्रशंसा की क्योंकि उसके पहले पांच पति हो गये थे और उस समय वह जिसके साथ रह रही थी वह उसका पति नहीं था। एक सत्य-भाषण के असाधारण गुण का उदाहरण प्राय: छांदोग्य उपनिषद (4.4) से दिया जाता है जहां जबाला अपने पुत्र सत्यकाम को कहती है कि वह उसके वास्तविक पिता को नहीं जानती क्योंकि वह नौकरानी के रूप में कई घरों में रही जहां उसके कई मालिकों के साथ अंतरंग सम्बन्ध रहे।

निषेधाज्ञाएं नहीं

जीसस की तरह शांतिविजयजी ने भी दोषी व्यक्ति की निन्दा नहीं की यदि उसने अपने दोष स्वीकार कर लिया क्योंकि वह शारीरिक कमजोरी ही बताती है। 'Flesh is weak' वे कहते हैं जो व्यक्ति दुखी है उसे सांत्वना दो, धीरज बंधाओ। उसकी Spirit को कमजोर मत करो। इसका एक उदाहरण विवेकानन्द से देना उचित रहेगा। केवल नारे लगाने वाले समाज सुधारकों को सुधार के मनोविज्ञान पर शिक्षा देते हुए उन्होंने कहा: "अगर किसी कमरे में शताब्दियों से घोर अंधकार रहा हो और तुम उसके अन्दर जाकर चिल्लाओ, 'अंधेरा है, अंधेरा है' तो क्या उससे अंधकार मिट जाएगा? प्रकाश दिखाओ, अंधकार स्वत: ही मिट जाएगा। मनुष्य में सुधार करने का यही उपाय है।"

गुरुदेव का शिक्षा देने का तरीका बड़ा मनोवैज्ञानिक था। वे बदमाशों को कोसते नहीं थे। वे कभी भी पाप, अनैतिकता, पतित नारी जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करते थे। यद्यपि स्वयं पूर्ण वैरागी थे- वे अंधेरे की बात नहीं करते। वे जो प्रकाश देते वह अपने आप में पर्याप्त होता था। इस अर्थ में उनकी शिक्षाएं सकारात्मक होती थी, निषेधात्मक नहीं।

मूर्तिपूजा

मूर्तिपूजा के विषय में गुरुदेव का कहना था कि दैविकता किसी धातु, पत्थर या मिट्टी में नहीं रहती है। यह तुम्हारी दृष्टि में रहती है। प्राचीन समय में योगी गुफाओं में और जंगल में पेड़ों के नीचे ध्यान करते थे। जब मूर्तिपूजक मूर्ति या शक्ति की पूजा करते तो

वे उनके द्रव्य के पीछे जो रूप या आकार बना हुआ है उसकी पूजा करते थे। साकार की पूजा उस वस्तु के लिए आदर पैदा करती थी। निराकार पर ध्यान केंद्रित करना कठिन होता है। मूर्ति व्यक्ति की श्रद्धा को स्थिरता प्रदान करती है। धार्मिक जीवन में इसका मनोवैज्ञानिक महत्व हो गया। योग के अभ्यास में मूर्ति का प्रतीक के रूप में महत्त्व बन गया क्योंकि वह ध्यान को स्थिर करने में उपयोगी सिद्ध हुई। शब्दों के रूप में शिक्षा देने के स्थान पर एक अधिक सरल और स्पष्ट तरीका, गुड़िया की तरह, मूर्ति को नाटकीय रूप में पेश करना हो गया। (कुक) शान्तिविजयजी कहा करते थे कि ध्यान के बिना पुस्तक ज्ञान वैसा ही है जैसा टोकरी में पानी ले जाना।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट है कि मूर्तिपूजा केवल एक साधन है, न कि साध्य। मूर्तिपूजा का महत्व उसकी ध्यान में उपयोगिता के कारण बढ़ता गया और व्यक्ति की भक्ति और श्रद्धा को स्थायी बिन्दु-पथ के लिए मन्दिरों का निर्माण किया गया। हर धर्म के अनुयायियों को यह आवश्यकता अनुभव होने लगी यहां तक कि उनको भी जो स्थूल रूप की पूजाओं को अस्वीकार करते थे। पूजा को कोई न कोई रूप देने के लिए मन्दिर, मठ, साइनेगो, गिरजाघर और मस्जिद बनाने पड़े। बाद में इन पूजा -स्थलों की व्यवस्था के लिए कुछ संस्थाओं का निर्माण करना आवश्यक हो गया जिन्हें संघ या ट्रस्ट कहते हैं। इन संस्थाओं का कार्यक्षेत्र बढ़ने के साथ साथ कई तरह के अंधविश्वास और भ्रष्टाचार बढ़ने लगे। स्वार्थी और असामाजिक तत्व उनमें घुसते गये और धार्मिक वातावरण गंदा होता गया। ऐसे तत्वों को जीसस क्राइष्ट ने बुरी तरह से डांटा और उनको यरूशलम के भव्य मन्दिर से बाहर निकाल दिया। उन्होंने पुरोहितों को कहा यह मेरा घर (आवास) पूजा का स्थल है, परन्तु तुम लोगों ने इसे चोरों की मांद बना रखा है। (St. Matthew. 21.13) भारत में भी मन्दिरों का पैसा और सम्पत्तियों को हड़पने के लिए झगड़े होते रहते हैं और ट्रस्ट युद्धों ने अदालतों के द्वारों को दूषित कर दिया है।

काफी समय पहले कुछ जैन शाखाओं ने मन्दिर मार्गियों के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई। इससे मन्दिर-मार्ग के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी। आर्य समाज, ब्रह्म समाज और मुसलमानों की तरह शान्तिविजयजी ने मन्दिर मार्गियों के विरुद्ध कोई तीव्र आन्दोलन नहीं छेड़ा बल्कि ध्यान की श्रेष्ठता पर जोर देते रहे। वे मन्दिर में और मूर्तियों के सामने ध्यान करते और दिलवाड़ा और अचलगढ़ के प्रसिद्ध मन्दिरों में रहते हुए भी आबू के जंगल में गुफाओं में ध्यान करने के लिए चले जाते। मन्दिर मार्ग का निषेध करने वालों को वे यह कहते कि जिस प्रकार नींबू दिखाई देने पर मुंह में पानी आ जाता है उसी प्रकार मूर्ति धार्मिक भावना पैदा करती है। मूर्ति कहती है- मैंने ध्यान किया था। तुम भी मेरी तरह बनना चाहते हो तो ध्यान करो।

धनी लोगों को जो नये-नये मन्दिर बनाने में खूब पैसा खर्च करते हैं वे कहते पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराने से नये मन्दिर बनाने की अपेक्षा अधिक पुण्य होता है।

नाबालिगों को दीक्षा

संन्यास की धारणा जैन धर्म में उस समय पराकाष्ठा पर पहुंच गई थी जब लोगों ने नाबालिगों को दीक्षा देकर श्रमण बनाना शुरू कर दिया। कई समझदार लोगों ने इसे अनुचित समझा और इसे रोकना चाहते थे। परन्तु रुढ़िवादिता के सामने उनकी आवाज बेअसर रही। गुरुदेव भी इसे ठीक नहीं समझते थे। परन्तु उन्होंने इस प्रथा के विरुद्ध जोर शोर से फटकार लगाने का आन्दोलन नहीं चलाया। सामने से आक्रमण करने की बजाय पीछे से वार करना अधिक प्रभावी होता है। जब गुरुदेव किसी बुरी प्रथा के विरुद्ध कहना चाहते थे तो वह किसी मचान से उसके विरुद्ध उग्र भाषण नहीं करते बल्कि एक उदाहरण पेश कर देते जिसका असर वाणी से भी अधिक होता। बाल-दीक्षा की बुराई के विरुद्ध भी उन्होंने ऐसा ही किया। कलकत्ता के आनन्दचंद सीपाणी अपने परिवार के साथ अचलगढ़ आये हुए थे। गुरुदेव ने एक बहुत ही महत्वपूर्ण मजाक करके उनकी कठोर परीक्षा ली। उन्होंने सीपाणी के आठ साल के पुत्र फतेह बाबू को दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाने का प्रस्ताव रखा। दीक्षा की तिथि निश्चित कर दी गई और उसकी तैयारियां भी शुरू हो गई। सीपाणी की पत्नी इस दीक्षा के विरुद्ध थी परन्तु पति अपनी जिद्द पर अड़े रहे। यकायक गुरुदेव ने दीक्षा को रद्द करने की आज्ञा दी। उन्होंने आदेश दिया कि जब लड़का 18 साल का हो जाए और उस समय यदि उसकी ऐसी इच्छा हो तो उसके सम्बन्धियों की सहमति से उसके दीक्षा की बात पर पुन: विचार हो सकता है। उस समय संन्यासाश्रम में नाबालिगों को दीक्षा देने और उसके विरुद्ध पक्षों द्वारा जैन समाज में गर्मागरम विवाद चल रहा था। यह घटना नाबालिग को दीक्षा देने के विरुद्ध सिखाने के लिए थी और यह भी सिखाने के लिए थी कि दीक्षा स्वप्रेरणा से ही होनी चाहिए और वह भी तब जब दीक्षार्थी वयस्क हो जाए। गुरुदेव वयस्क की भी अविवेकपूर्ण दीक्षा के विरुद्ध थे। एक बार उनके मांडोली प्रवास के दौरान हजारों लोग उनके दर्शन करने आये। हीराचन्द गोलेच्छा एक रोचक अनुभव बतलाते हैं: ''मेरे ससुर के साथ मैं गुरुदेव के दर्शन के लिए मांडोली गया। हम उन्हें मांडोली के पास सड़क पर मिले। यकायक मेरे ससुर ने सोचा कि गुरुदेव के पास मेरे बार-बार जाने से कहीं मुझे संन्यास का वैराग्य नहीं हो जाए। ज्योंही गुरुदेव मेरे समीप पधारे, उन्होंने मेरे ससुर को कहा ''मैं तुम्हारे जंवाई को साधुजीवन के लिए दीक्षा नहीं दूंगा।'' गुरुदेव के अन्य कुछ भक्तों ने भी गुरुदेव द्वारा इस प्रकार की परीक्षा के उदाहरण बतलाये हैं। जॉर्ज गुरुदेव के बहुत निकट रहा और उसकी दीक्षा लेने की तीव्र इच्छा थी परन्तु गुरुदेव ने उन्हें दीक्षा नहीं दी।

केवल चमत्कारों की भूख नहीं

गुरुदेव हमेशा पहाड़ी चोटियों पर ही नहीं बैठे रहते थे। वे अपने ज्ञान को मानव हित में काम लेते थे। वे जब गांवों से होकर गुजरते थे तो वे विवादों को सुलझा कर विरोधी गुटों के बीच समन्वय स्थापित करवाते थे। छोटे और बड़े सभी अपनी शिकायत लेकर

गुरुदेव के पास जाते और संतुष्ट होकर लौटते थे। नीला कुक एक महत्वपूर्ण बात कहती हैं। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति यह जानता था कि गुरुदेव मन की बात जान सकते हैं और दूरी पर क्या हो रहा है उसे देख सकते हैं, परन्तु ये लोग उनके पास केवल चमत्कारों की भूख के कारण नहीं आते थे। जब वे अपने झगड़े को लेकर आते तो यह जानते थे कि कोई पक्ष उनके सामने झूठ नहीं बोल सकता। वे गुरुदेव को एक अच्छा जासूस समझ कर नहीं बल्कि उनके परस्पर घाव मिटाने वाला समझ कर ही आते थे। आपसी घृणा के घावों को सिर्फ 'भाई, ओम शांति, बहिन ओम शांति' कह कर ही मिटा देते थे। ऐसा एक उदाहरण देती हुई नीला कुक लिखती हैं–

'जो भी मुझे मन्दिर के मार्ग में मिलता, 'जय गुरुदेव' कह कर अभिवादन करता था। मुझे दिलवाड़ा पहुंचने से पूर्व प्रायः सड़क पर ही यह ज्ञात हो जाता था कि उस समय गुरुदेव क्या कर रहे हैं– वे बन्द दरवाजे में अकेले हैं या यात्रियों की भीड़ के बीच हैं। एक दिन मैं बाबूजी और उनके नौकरों से आबू बाजार जाते हुए मिली। तब ज्ञात हुआ कि गुरुदेव एक जमींदार और उसके किसानों के बीच बीस साल पुराने झगड़े को निपटाने में व्यस्त थे। बाबूजी ने खुश होकर कहा– 'उन्होंने सब निपटा दिया है सिवाय गोबर की केक्स के। गुरुदेव की कृपा से वो भी जल्दी तय हो जाएगा।' 'मैं चौंक कर बोली: 'केक्स क्या तुम्हारा मतलब है कि वे लोग गोबर की केक्स बनाकर खाते हैं ?'

बाबूजी ने मेरी बात अपने नौकरों को बतलाई और सभी हंसते हंसते लोटपोट हो गये। उन्होंने कहा, अब तुम अमेरिका जाओ तब हिंदुओं के भोजन के बारे में एक पुस्तक लिखना। एक अमरिकन औरत पत्रकार ने ऐसा किया है। मैंने फिर पूछा, परन्तु वे सचमुच इसे खाते हैं ? उन्होंने आह भर कर कहा, 'नहीं वे उसे जलाने में काम में लेते हैं।'

.... गुरुदेव के दरवाजे के बाहर बड़ी भीड़ थी। अन्दर जमींदार, उसकी पत्नी तथा लड़कियें एक तरफ बैठी थीं तथा काश्तकारों का प्रतिनिधिमंडल दूसरी तरफ था। जमींदार एक बहुत बड़ा हरा साफा पहिने था। उसके कानों में सोने की बड़ी–बड़ी बालियां थी। उसकी औरतें झीना पर्दा किये बैठी थी। उनके मुंह आधे ढके हुए थे। गुरुदेव के दोनों ओर दो लिखने वाले बैठे थे जो कार्यवाही रेकार्ड कर रहे थे।....

यद्यपि विवाद समाप्त हो गया परन्तु जमींदार एक अन्तिम बिन्दु पर अड़ा हुआ था। उसका कहना था कि गांव को उसके अतिथियों के लिए ईंधन देना चाहिये। उसका कहना था कि गोबर बेचना उचित नहीं है। मेहमान, जो गांव में आते हैं, हालांकि उसके मेहमान बनते हैं, पूरे सत्कार के अधिकारी हैं। यह बात महत्वपूर्ण है कि उन्हें ईंधन भी उसी प्रकार बिना पैसे देना चाहिये जिस प्रकार कि वे दूध दिया करते हैं। उसने पूछा : 'है कोई ऐसा नीच व्यक्ति जो यह कहे कि दूध बेचा जाना चाहिये ?... कोई भी ईमानदार व्यक्ति दूध नहीं बेचता। शहरों के बदमाश दूध बेचते हैं। परन्तु यहां उपस्थित लोगों में से कोई भी इतना नीच नहीं होगा। भले ही कोई भी लेने आये, वे दूध तो बिना मूल्य के ही देंगे। परन्तु

गांव वालों का कहना था कि जमींदार के काफी मेहमान आते हैं और उनके स्वागत के लिए सभी सामान उनसे लिया जाता है, न कि जमींदार के भंडार से। यह सही है कि वे दूध की कीमत नहीं लेंगे भले ही उनके बच्चे दूध से वंचित रह जाए। दूध गो माता की पवित्र देन है। वो देन जिसने गाय को सभी पशुओं से पवित्र बनाया है। परन्तु वे गोबर के बारे में समान विचार नहीं रखते। उसके लिए जमींदार को कीमत देनी चाहिये।....

गुरुदेव का एक सुझाव था। चूंकि जमींदार का यह मानना था कि उसके अतिथियों की खातिर करवाना उनका पवित्र रिवाज है और वो उसको बनाये रखने के लिए उत्सुक है, परन्तु ईंधन के लिए वे कोई भुगतान करने को तैयार नहीं हैं, इसलिए इस खर्च के बदले में फसल का कुछ भाग जो उसे देते हैं कम कर दिया जाए ताकि काश्तकारों को उसके अतिथियों के कारण होने वाले नुकसान को बराबर किया जा सके। इस प्रकार दूध की ही भांति जलाने की सामग्री असीमित रूप में निशुल्क दी जावेगी और इसे भी आवश्यक रूप से उपहार ही माना जायेगा न कि तोल पर बेचने की वस्तु....।

इस प्रस्ताव से काश्तकार पूर्णतया संतुष्ट थे। वे भी आतिथ्य सत्कार के रिवाज को बनाये रखना चाहते थे। उस समाज और उसके व्यक्तियों का कोई भला नहीं हो सकता जो इन परम्पराओं को नहीं मानते। परंतु वे जमींदार के द्वारा इसका अनुचित लाभ उठाने के विरोधी थे। जमींदार, जो आतिथ्य की परम्पराओं को बनाये रखने के लिए जोर देकर कह रहा था, अपने आपको बड़ी कठिन स्थिति में पाया। गुरुदेव ने कहा: 'इस प्रकार वास्तविक भार आप पर पड़ेगा, सारा गांव आपके मेहमानों की सेवा का आनन्द लेगा। यह सहकारी योजना मुझे उचित लगती है। जमींदार आतिथ्य के पुण्य का लाभ अपने काश्तकारों को सौंप दे- इस प्रकार का त्याग एक 'सतपुरुष' के योग्य ही है।

जमीदार ने कहा : 'हां अवश्य।' परन्तु ऐसा स्पष्ट लग रहा था कि वो खुश नहीं था। उसकी पत्नी और लड़कियां बैठी बैठी अपनी चूड़ियां खनकाती थी। गुरुदेव ने कहा- 'ओम शांति' और आंखें बन्द कर ली। फिर एक लम्बी शान्ति रही। कुछ डरावने से दिखने वाले राजपूत अविचल बैठे रहे। वे वास्तव में डरावने नहीं थे। वे गतिशील थे। काले, जोश भरे, उनकी आंखों में आरती और नगाड़ों की तेजी। परन्तु उनके जोश पर शान्ति का नियंत्रण था। वे गुरुदेव के पास कई दिनों तक शान्त बैठे रह सकते थे। वे बिना खाना खाये रह जाते और बिना स्पष्ट कारण बताये अनशन कर लेते थे। उनके बारे में कोई छिछोरापन नहीं था। वे संयम और त्याग दोनों जानते थे। घड़ी ने दो बजाये पर वे पूर्णतया शान्त बैठे रहे। जब गुरुदेव ने अपनी आंखें खोली तब स्त्रियों ने अपने घूंघट ठीक किये। उनके हाथों के हिलने से चूड़ियां खनकने की आवाज आई। गुरुदेव ने लिखने वालों से कहा: 'तुम इन कागज के टुकड़ों को फाड़ सकते हो।.... यहां झगड़ा निपटाने आये थे।' जमींदार ने कहा: 'वो तो समाप्त हो गया।' गुरुदेव बोले: 'नहीं, अभी नहीं। तुम यहां एक दूसरे से घृणा करते हुए बैठे हो। सच सच बोलो।' उन्होंने लोगों की ओर देखा। 'जो तुम

मन ही मन सोचते रहे हो, उसे जरा जोर से बोलो।' कोई नहीं बोला। उन्होंने जमींदार से पूछा: 'आप तो सच्ची बात सहन कर लोगे या नहीं?' जमीदार ने कहा: 'हां'। गुरुदेव ने धीरे से कहा: 'डरो मत, एक -एक शब्द दोहराओ जो तुमने मन में कहा है- गाली जो तुमने अपने मन में जमींदार को दी है।' एक साहसी ने कहा: स्वार्थी। दूसरे ने कहा- ढोंगी, सूअर, ऊंट, लुटेरा, डाकू, आततायी, नास्तिक, पापी।'

जब वे सब बोल चुके, गुरुदेव ने कहा कि जमींदार एक महान आदमी होना चाहिये। अन्य किसी के बारे में ये नहीं कहा जा सकता। जय गुरुदेव! तुमने अपने जमींदार को एक सन्त बना दिया है....तब शान्ति छा गई। परन्तु जमींदार की औरतों का सिसकना जारी रहा। तब दूसरी ओर से औरतें रोती हुई आने लगी और उनसे बोली: रोओ मत। जो गहने हम पहिन रही हैं, वे कहां से आये? किसने हमें अपनी शादी में गहने दिये? जमींदार ने ही तो हमें दिये थे।'

'जब मेरा बेटा बुखार से पीड़ित था, कौन शहर से डॉक्टर को बुला कर लाया था?'

किसने शिवरात्रि पर सारी रात गाने वालों को इनाम दिया था?

यदि जमींदार नहीं होते तो क्या हमारे गांव में संगीत हो सकता था?....'

गुरुदेव ने पूछा: 'तब क्या तुम अपने जमींदार को चाहते हो?'

वे नारों के साथ बोल उठे: 'जय गुरुदेव'

काफी शोर शराबे और रोने के बीच औरतों ने गुरुदेव को प्रणाम किया तथा जमींदार की औरतों को बाहर ले गई। गुरुदेव ने बाकी बचे लोगों को आदेश दिया: 'ध्यान करो'। झगड़ा निपट गया।.......

आबू में अपने अनुभव के आधार पर नीला कुक ने महसूस किया कि यह कहना उचित नहीं है कि गुरुदेव अपने ज्ञान को मानव जाति के हित में काम में नहीं लेना चाहते थे। गुरुदेव हमेशा दूर पहाड़ की चोटियों पर ही नहीं बैठे रहते थे। गोबर के कंडों से सम्बन्धित विवाद का उदाहरण यह स्पष्टतया बताता है कि गुरुदेव किस प्रकार विवादों को सुलझा कर विरोधी गुटों के बीच समन्वय स्थापित करवाते थे.....

सुबह का समय मैं पढ़ने में बिताती थी परन्तु दोपहर और शाम के समय बिना पुस्तकों के ही बहुत कुछ सीख जाती थी। गुरुदेव कहा करते थे कि बिना ध्यान के पुस्तकों का अध्ययन छबड़ी में पानी ले जाने जैसा है। तर्क और धार्मिक वाद-विवाद का उनके लिए कोई उपयोग नहीं था। गुरुदेव ने कहानी सुनाई: ''एक आदमी ने अपनी पत्नी के लिए बहुत स्वादिष्ट भोजन बनाया। उसने उसे एक तांबे के पात्र में परोस कर उसके सामने रख दिया। परन्तु उसने कहा कि खाने से पहले वह उस तैयारी के सभी तत्वों का वर्णन करेगा.... जब तक उसने यह सारा वर्णन पूरा किया, जो अम्ल उस खाने में था वो तांबे में चला गया और खाने में जहर हो गया।.... उसका पड़ोसी ज्यादा समझदार आदमी था। उसने खाना बनाया और अपनी पत्नी को खाने दिया और बाद में बतलाया कि इसे कैसे

बनाया। उसमें जो अम्ल या तांबे में मिलने का अवसर नहीं मिला इसलिए खाना विषाक्त नहीं हुआ....

हमें जिन विषयों पर ध्यान करना होता, उन विषयों पर चर्चा करने के लिए गुरुदेव मना नहीं करते थे। एक रात जब कमरा भक्तों से खचाखच भरा हुआ था। उन्होंने मुझे 'गुरु' शब्द की व्याख्या करने को कहा। मैंने कहा कि वह एक माला के समान है जिसके ऊपर दुनिया उसके मणकों की तरह लगी हुई है, जो लोकों से भी अपूर्व है। जो बात कही जाती, वह एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद होती और उस पर विचार विमर्श चलता रहता था।...

सर्दियों में गुरुदेव प्रायः गांवों में जाया करते थे। वहां वे केवल अपनी उपस्थिति से ही आपसी झगड़े निपटा देते थे। इस सर्दी में उन्होंने दिलवाड़ा ठहरने का निश्चय किया। लोग विवाद लेकर वहां भी आने लगे। गुरुदेव के लिये कोई यह नहीं कह सकता था कि वे बुरे व्यक्ति को अच्छे की अपेक्षा कम प्यार करते हैं।

एक बार जब मैं आबू पर थी, बीकानेर महाराजा गुरुदेव के दर्शनार्थ आये। उनमें गुरुदेव के प्रति अगाध भक्ति थी और जब वे यूरोप के केसिनो में होते थे, तब भी गुरुदेव को नहीं भूलते। जब उन्होंने सुना कि गुरुदेव को बुखार है तो उन्होंने केबल भेजे और ज्यों ही भारत लौटे गुरुदेव के चरणों में बैठने के लिए आबू की यात्रा की।......

यद्यपि हर एक को पता था कि गुरुदेव और मेरे बीच एक बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था, परंतु मंदिर के कर्मचारियों ने कभी यह नहीं सोचा कि वे मुझे उनसे अधिक चाहते हैं। वे तो इस रूप में लेते कि गुरुदेव के प्रति मेरी भक्ति उनकी अपेक्षा अधिक थी, इसलिए उनकी दृष्टि से मैं बहुत बड़ी थी। गुरुदेव के लिए तो हम सभी समान थे।

एक दिन दिलवाड़ा में एक धनवान मद्रासी जमींदार को पता चला कि उसकी अनुपस्थिति में उसके परिवार में रत्नों की चोरी हो गई है। पुलिस चोर का पता लगाने में असफल रही। इसलिए उसने गुरुदेव से प्रार्थना की। गुरुदेव तब तक नहीं बोले जब तक कि मेरे सिवाय सभी लोग वहां से चले नहीं गये। फिर गुरुदेव ने उसे भक्त से पूछाः 'यदि तुम चोर को पकड़ लो तो तुम उसके साथ क्या करोगे? क्या तुम उसे पुलिस को दे दोगे?' उसने कहाः 'अवश्य' 'क्यो'? 'क्योंकि वह इसी के लायक है। क्या उस चोर को सजा नहीं मिलनी चाहिए? गुरुदेव ने दुख के साथ अपना सिर हिलाया। 'संसार में ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो तुम्हें चोर समझते हों। हो सकता है पूर्व में सभी लोगों के खाने के लिए पर्याप्त भोजन था और अब धनवानों के पास उनकी आवश्यकता से अधिक भोजन है जबकि अन्य लोग भूखे मरते हैं। शायद उनकी नजरों में तुम भी एक चोर हो।' गुरुदेव ने बिना किसी प्रकार के दोषारोपण का संकेत दिए और बड़ी नम्रता से कहाः 'इसके बारे में सोचो। ध्यान करो। कल फिर आना।'

गुरुदेव ने उसे एक सप्ताह तक सोचने दिया। फिर उसे कहा कि उन्हें पता हैं कि वे रत्न

कहाँ है और उससे उसी प्रश्न पर पुनः विचार करने को कहा कि 'यदि चोर मिल गया तो तुम उसका क्या करोगे ?' उसने कहा: 'क्षमा कर दूंगा।' परन्तु इतना पर्याप्त नहीं था। क्षमा करने के लिए तुम्हें उससे अधिक अच्छा होना आवश्यक है। क्या मद्रास का धनी जमींदार मानता था कि उसने प्रकृति से भूमि नहीं चुराई थी ? जब वह व्यक्ति चोर को गले लगाने को तैयार हो गया तथा उसने अपने पापों के लिए क्षमा मांगने को तैयार हो गया तब गुरुदेव ने बतलाया कि रत्न किसके पास है। वह उसके नौकरों में से ही था।...

जब उसने सुना तो वह गरज पड़ा। 'बदमाश चोर'। तब गुरुदेव ने उसे एक सप्ताह तक और ध्यान करवाया और उससे एक पत्र अपने नौकर के नाम लिखवाया। यदि वो चुराये हुए बहुमूल्य रत्न यथास्थान रख देगा तो पुलिस को नहीं कहा जायेगा और न उसे नौकरी से हटाया जाएगा।

कुछ समय बाद मद्रास के जमींदार के घर से समाचार मिले कि हीरे पन्ने सभी अपनी जगह पर थे, परन्तु केवल एक मोतियों का हार नहीं था। गुरुदेव ने कहा: 'वो उसने बेच दिया है। वो कुछ दिनों में यहीं आकर पैसा लौटा देगा तथा तुमसे क्षमा मांगेगा।'....

नौकर आंखों में आंसू भरे हुए आया और उसके चरणों में गिरा। गुरुदेव ने उन दोनों को साथ बैठकर एक सप्ताह तक ध्यान करवाया। गुरुदेव की मूलभूत शिक्षा यही थी: 'अपना दूसरा गाल आगे कर दो तथा (द्वेष के) कारण को मिटा दो।'...

एक अंग्रेज औरत ने उनसे पूछा कि मच्छरों का क्या करना चाहिये जिन्हें कोई भी जैन नहीं मारना चाहता ? मलेरिया के मच्छरों का क्या करेंगे ? उसने पूछा। 'क्या वे मानव जीवन से अधिक महत्वपूर्ण हैं ?' गुरुदेव ने कहा: नहीं, परन्तु मनुष्य में काफी विवेक है जिससे वो गन्दे पानी से छुटकारा पा सकता है तथा मच्छरों के कारण को वो मिटा सकता है बजाय इसके कि वो अपनी लापरवाही के परिणामों से बचने के लिए केवल पाशविक शक्ति का प्रयोग करे। यही बात सभी जंगली उपायों जैसे जेल, फांसी आदि के साथ है। गरीबी और गंदगी के कारणों को मिटाने की बजाय उनसे उत्पन्न गंदगी को अपराध का नाम दिया जाता है और उससे भी बुरी बात यह है कि उनका बदला लेने के लिए उससे भी जघन्य अपराध किये जाते हैं...

उड़ गाँव के पंचों में झगड़ा

केवल किसान ही नहीं, कई प्रतिष्ठित लोग भी अपने विवाद लेकर गुरुदेव के पास आते थे। 1934 में गुरुदेव बावनवाड़ में थे। सिरोही के उड़ ग्राम के पंचों में एक वर्ष से झगड़ा चल रहा था। दोनों पक्ष वाले आकर इस बात पर तैयार हो गए कि गुरुदेव जो फैसला करें वह दोनों को मान्य होगा। गुरुदेव ने उनको कहा ''जिस प्रकार शादी में वर वधू का हाथ मिलाप ब्राह्मण करा देता है वैसे ही मेरा काम श्री संघ के भेद को दूर करके आपका हाथ मिलाप करा देने का है। दूसरी बात यह है कि अदालत में न्याय के लिए जाने

पर दोनों पक्षों को कोई फीस देनी होती है। मैं फीस के रूप में आप की रोटी खाता हूं इसलिए आप लोगों को न्याय देकर मेल कराना उचित समझता हूं।

सद्भाव का एक नया युग

जोधपुर के चांपावत घराने के दो परिवारों (पोकरण और आउवा) में पीढ़ियों से वैर-भाव था। यहां तक कि वे एक दूसरे को नीचा दिखाने का कोई भी अवसर चूकते नहीं थे। 4 जुलाई 1931 को इन दोनों धड़ों के प्रमुख देलवाड़ा में गुरुदेव शांतिविजयजी के पास ले जाये गये। गुरुदेव ने उन दोनों को वैर-भाव त्याग कर मित्रता रखने का निर्देश दिया। गुरुदेव ने उन्हें उदाहरण देकर समझाया कि जब तक नारियल अपनी जटा में बन्द रहता है, उसे कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। किन्तु जटा हटा लेने पर उसके गोले को कोई भी फोड़ कर खा सकता है। अतः एकता, मित्रता और संगठन में ही शक्ति है। एक दूसरे की टांग खींचने से नहीं, परस्पर सहायता करने की भावना ही शक्तिशाली बनाती है। साधु अपनी भिक्षा का पात्र भोजन के लिए गृहस्थ के सामने रखते हैं। मैं अपनी भिक्षा का पात्र आपके समक्ष रखता हूं और आपकी शुभेच्छा की भिक्षा गोचरी के लिए रखता हूं। उसी क्षण उनका हृदय परिवर्तन हो गया। दोनों ही प्रमुख गुरुदेव के चरणों में गिरे और शान्ति और शुभेच्छा को एक नयी ऐतिहासिक घटना बताया और गुरुदेव के प्रति अपना गहन आभार व्यक्त किया। शाम को सभी पक्ष एक ही टेबल पर खाने में बैठे। शराब नहीं परोसी गई। भोजन के बाद सरदारों ने शामिल होकर हुक्का गड़गड़ाया। पीढ़ियों के वैर को हुक्के के धुएं में उड़ा दिया गया और इस प्रकार एक मित्रता और शुभेच्छा के नये युग का सूत्रपात हुआ।

* * *

संत और शासक

मन्दिर के लिए धर्मयुद्ध (केशरिया जी)

अब हम एक बड़े विवाद के बारे में चर्चा करते हैं जिसमें मेवाड़ के शासक पूरे जैन समाज के साथ उलझ गये और गुरुदेव के प्रयत्नों से सभी पक्षों ने शांति और शुभेच्छा की प्राप्ति की।

उदयपुर राज्य में केशरियाजी नाम से एक प्रसिद्ध जैन मंदिर है जहां सभी सम्प्रदायों के लोग पूजा करते हैं। इस जगह के भील और आदिवासी इसे कालियाबाबा कहते हैं। सरकार द्वारा नियुक्त एक कमेटी इस मंदिर की देखभाल करती थी। मंदिर के पंडों ने, जो कई वर्षों से वहां पूजा करते आये हैं, मनमाने ढंग से मंदिर की चीजों को अपने अधिकार में ले लिया था। उन्होंने पूजा के विषय और विधियों को बदल कर उसे एक वैष्णव मंदिर का रूप देना शुरू कर दिया। वैष्णव यह दावा करने लगे कि यह वैष्णव मंदिर है और जैनों का यह दावा था कि यह एक जैन मंदिर है। जैन और वैष्णवों के इस विवाद में उदयपुर के महाराणा ने वैष्णवों का पक्ष लिया। जब स्थिति अधिक बिगड़ गई तब जैन समाज की चिन्ता बढ़ गई। परन्तु किसी संस्था या जैनाचार्य ने, जो अपने आपको जैन धर्म के स्तम्भ समझते थे, आगे आकर इस दिशा में हल निकालने के लिए गम्भीरता से कोई प्रयास नहीं किया।

गुरुदेव बामनवाड़ में व्याख्यान दे रहे थे तब श्वेताम्बर जैन के सम्पादक जवाहरलालजी लोढ़ा ने खड़े होकर जैनियों के प्रति अन्याय का वर्णन किया और प्रार्थना की कि जैनों के इस पवित्र तीर्थ को अन्य लोगों के हाथों में चले जाने से रोकने के लिए कदम उठाना अति आवश्यक है। यह सुनकर गुरुदेव ने भरी सभा में घोषणा की कि यदि इस विवाद का निपटारा नहीं हुआ तो वे 27 फरवरी 1934 से अनिश्चितकाल का अनशन शुरू कर देंगे। यह समाचार सम्पूर्ण भारत में शीघ्र ही फैल गया और कई प्रतिष्ठित व्यक्ति और कई राज्यों के नरेशों ने तार एवं प्रतिनिधियों द्वारा संदेश भेजे कि इस विषय में वे मेवाड़ के महाराणा से अपने अच्छे सम्बंधों का उपयोग कर सकते हैं।

लिंबड़ी नरेश ने तार से गुरुदेव को इतला की कि पालनपुर में कुछ राजाओं की

एक मीटिंग हुई जिसमें उन्हें उन सब की तरफ से प्रतिनिधि के रूप में उदयपुर महाराणा से मिलकर समझौता करवाने का निर्णय लिया है। परन्तु गुरुदेव ने उनसे ऐसा करने का मना कर दिया। बीकानेर दरबार का भी एक लम्बा तार मिला जिसमें उन्होंने मध्यस्थता के लिये प्रस्ताव किया और गुरुदेव से प्रार्थना की कि वे इसके लिए अनशन पर न जाएं। जयपुर की महारानी किशोर कंवर ने भी गुरुदेव को संदेश भेजा। परन्तु गुरुदेव ने सब को एक ही जवाब भेजा कि इसमें किसी की मध्यस्थता की जरूरत नहीं है।

सर ओगिल्वी भी गुरुदेव के निश्चय से बहुत चिन्तित हो गये। वे सिरोही जाते हुए गुरुदेव से मिले और सिरोही से लौटते हुए वे फिर गुरुदेव से मिले। ओगिल्वी और जयपुर दरबार ने दिल्ली में महाराणा उदयपुर से हुई मुलाकात में उनको समझौते के लिये सलाह दी। गुरुदेव ने स्वयं महाराणा को यह संदेश भेजा कि जैनियों के युगों पुराने विशेषाधिकारों और केशरियाजी के मंदिरों में उनके द्वारा पूजा की स्वतंत्रता को बनाये रखना उनका कर्त्तव्य है। परन्तु इन सब का कोई असर नहीं हुआ। सर सुखदेव प्रसाद उदयपुर के आला मुसाहिब थे। वे जैनों के विरूद्ध थे और गुप्त रूप से बामनवाड़ में सभी प्रकार की हलचलों की रिपोर्ट भेजने के लिए वहां अपने दूत भेजते थे। अन्तिम तारीख नजदीक आने पर गुरुदेव ने सेठ चैनकरण और चम्पकलाल को आगे से उदयपुर भेज दिया। वे स्वयं सत्याग्रहियों का नेतृत्व कर रहे थे। जब राज्य सरकार को इस बारे में पता चला तो उन्होंने गुरुदेव के उदयपुर में प्रवेश को रोकने के लिए कठोर कदम उठाये। सीमा पर हथियारों से लैस पुलिस का पहरा लगवा दिया। ढढ्ढाजी के अनुसार गुरुदेव को गिरफ्तार कर घने जंगल में ले जाकर हाथ-पैर बांधकर शेरों के लिए शिकार बनाने की गुप्त योजना बनाई गई। उनके जीवन के विरुद्ध अन्य योजनाएं भी बनाई गई, परन्तु वे सब विफल कर दी गईं।

जोधपुर और सिरोही रियासतों को कहलाया गया कि वे विशेष रेलगाड़ियां नहीं जाने दें क्योंकि उनसे उपद्रव पैदा होगा। परन्तु विशेष रेलगाड़ियां योजना के अनुसार चली। इस आन्दोलन के प्रमुख नेताओं की सूची बनाकर दी गई जिसमें उन्हें गुण्डों की तरह दर्शाया गया। इस प्रकार सब तैयारियां हो चुकी थी। परन्तु न्यायिक अफसरों ने योगिराज को गिरफ्तार करने के आदेश पर आपत्ति की कि जब तक किसी प्रकार का उपद्रव वास्तव में नहीं होता उन्हें गिरफ्तार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार यह सब योजनाएं रद्द कर दी गई।

निषेधाज्ञा को सुखदेव प्रसादजी ने राज्यसभा (कौंसिल) को पुष्टि के लिए भेजा क्योंकि सैशन जज उस समय और कहीं व्यस्त थे। परंतु कौंसिल ने इस पर यह कह कर आपत्ति की कि वह स्वयं अपील के लिए मुख्य न्यायालय होने से उसके द्वारा इस प्रकार की आज्ञा देने पर वह स्वयं इस आज्ञा के विरुद्ध अपील सुनने के लिए अयोग्य हो जाती। इसके अलावा इस प्रकार की आज्ञा दूसरे पक्ष को कारण बताओ नोटिस देने के बाद ही

दी जा सकती थी। कुछ विचार विमर्श के बाद यह प्रस्ताव भी रद्द कर दिया गया और जिला मजिस्ट्रेट को परिस्थिति से निपटने का अधिकार दे दिया गया।

ढढ्ढाजी लिखते हैं :- 'यह दिन (20 फरवरी 1934) जैनों के इतिहास में अत्यंत स्मरणीय रहेगा जब योगिराज केशरियाजी विवाद को सुलझाने के लिए अपना शान्ति का संदेश शुरू करते हुये उदयपुर के लिये रवाना होंगे। इस यात्रा के लिए जोरों से तैयारियां हो रही हैं। बनिये शक्कर, आटा आदि भण्डार में ला रहे हैं। नवाब पालनपुर ने अपने मंत्री को गुरुदेव के पास यह प्रार्थना करने भेजा कि आप कल सज्जन रोड पर ही रहें ताकि वे वायसराय से मिलने के लिये देहली जाते हुए योगिराज के दर्शन कर सकें। इसके लिए उन्होंने मेल ट्रेन को 15 मिनट के लिए रोकने की भी व्यवस्था करवा दी थी। परन्तु योगिराज ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया और कहलवाया कि वे आज ही जा रहे हैं और कल सरस्वती मंदिर में सुबह 8 बजे से दोपहर 3 बजे तक ध्यान में बैठेंगे। एक घंटे तक विचार विमर्श होता रहा जिससे योगिराज के रवाना होने में कुछ देर हो गयी। ... ठीक 5:15 बजे योगिराज अपने कमरे से उतर कर आये और बहुत उत्सुकता से खड़े भक्तों को दर्शन दिये। .... उन्होंने मंदिर में जाकर दर्शन किये और फिर अपने पवित्र संदेश के पथ पर झंण्डों और बाजों के साथ नर, नारी और बच्चों के आगे आगे चल दिये। झाड़ोली के पास शिव मंदिर तक आते आते सूर्यास्त होने लगा था इसलिए उन्होंने रात वहीं बिताई।'

22 फरवरी को गुरुदेव अजारी पहुंचे और सरस्वती आश्रम में ठहरे। 26 फरवरी को तीन विशेष रेलगाड़ियां एरनपुरा से उदयपुर के लिए चली। गुरुदेव करीब 150 भक्तों के साथ अजारी से चले। एक मील चलने के बाद गुरुदेव ने यात्रियों को उपदेश दिया और विशेष तौर से कहा कि उन्हें अपना आचरण ठीक तरह से रखना है और महाराणा को परेशान करे जैसी कोई अशोभनीय बात नहीं निकालें। अन्त में योगिराज ने कहा कि आप लोग आगे जाओ। मैं अकेला पीछे आ रहा हूं।

उदयपुर में सर्वत्र ऐसी चर्चा हो रही थी कि कोई बड़े साधु को पकड़ने के लिए उदयपुर स्टेट की सीमा पर पुलिस दल तैनात हैं। यह भी कहा जाता था कि पुलिस जब किसी साधु को जाते हुए देखकर उसका पीछा करती तो शीघ्र ही वह साधु अदृश्य हो जाता और कभी जानवर के रूप में बदल जाता।

दूसरे दिन प्रात: गुरुदेव मडार में प्रकट हुए। मडार गांव उदयपुर से करीब 18 कि.मी. पर उदयपुर-केशरियाजी सड़क पर है और रेल द्वारा एरनपुरा से 230 कि.मी. की दूरी पर है। यह सब को एक बहुत बड़ा आश्चर्य लगा कि गुरुदेव इतने थोड़े समय में वहाँ किस प्रकार पहुंच गये। 27 तारीख को मडार में गुरुदेव के प्रकट होने का समाचार बहुत तेजी से फैल गया। लोग हजारों की संख्या में गुरुदेव के दर्शन करने आने लगे। पुलिस अधिकारी भौंचक्के रह गये। गुरुदेव ने 28 फरवरी 1934 को अनशन शुरू कर दिया और यह आदेश दिया कि केशरियाजी के विषय में जनता के हित की दृष्टि से जो भी विज्ञप्ति

प्रकाशित की जायेगी, वह चैनकरण गोलेच्छा ही करेंगे। गुरु आज्ञा से गोलेच्छा ने अपनी विज्ञप्ति में लिखा:

'अनशन के विषय में सूरीश्वरजी अपने भक्तों को सूचित करना चाहते हैं कि वे तनिक भी चिंता न करें। गुरुदेव को अपनी आत्मशक्ति पर पूर्ण विश्वास है और वे इस केशरियाजी के प्रश्न को पूर्ण शांति के साथ सुलझा लेंगे। गुरुदेव की इच्छा है कि उदयपुर राज्य और जैन सम्प्रदाय के बीच जो पुरातन काल से मधुर सम्बन्ध हैं, वे बने रहेंगे।...'

आगे भी महाराणा राजसिंहजी आदि ने मेवाड़ के सभी सरदारों, प्रधानों, उमरावों, कामदारों आदि को हुक्म दिया था कि जैन मंदिर और उपाश्रय जैन धर्म गुरुओं के संरक्षण में है, अत: इन स्थानों के पास हिंसा नहीं होनी चाहिए और कोई वध किया हुआ जानवर इनके निवास स्थान से नहीं गुजरना चाहिए। यदि कोई चोर, डाकू या बदमाश जेल से भाग कर साधु या यति के उपाश्रय में शरण ले लेवे तो राज्य के अधिकारी उसे पकड़ नहीं सकेंगे और न यति आदि को भी तंग करेंगे।

उदयपुर राज्य के अधिकारियों ने गुरुदेव और प्रमुख भक्तों के विरुद्ध एक फाइल बना रखी थी। उसमें गुरुदेव पर यह आरोप लगाया गया था कि वे जनता को उत्तेजित करके राज्य की शांति को भंग करना चाहते हैं। उपवास के तीसरे दिन, 2 मार्च को पुलिस अधिकारियों के साथ सुखदेव प्रसादजी गुरुदेव के पास आये। गुरुदेव ने उन्हें बहुत जोर से फटकारा। यह अपनी तरह की एक ही मिसाल है जब एक महापुरुष एक शक्तिशाली राज्य के शासकों से संघर्ष की स्थिति में था और बहुत कठोर परन्तु सम्मानजनक भाषा में कहा :-

'आपने तीन दिन तक पुलिस अधिकारियों को व्यर्थ का कष्ट दिया। मैं आपके सामने हूँ। आप मुझे जेल में डाल सकते हैं। मुझ पर गोली चला सकते हैं। देख लेना एक शान्तिविजय की जगह हजारों शान्तिविजय उत्पन्न हो जायेंगे।'

फिर गुरुदेव शांत हो गये। उनके बीच कुछ बातचीत हुई। गुरुदेव ने कहा कि आपकी उम्र तो पक गई है और अन्त नजदीक है। इसलिये जो थोड़ा सा समय रह गया है उसमें इस शरीर से कुछ अच्छे कार्य करो। दद्दाजी के अनुसार जब पंडितजी घर लौटे तब बुखार से कांप रहे थे और उनके मूत्र में रक्त के चिह्न दिखाई देने लगे।

जब पुलिस अधिकारी गुरुदेव के पास आये थे, तब अपने साथ गुरुदेव के विरुद्ध तैयार की गई फाइल लेकर आये थे, परन्तु उसे अपने साथ वापिस ले जाना भूल गये। उदयपुर पहुंचने पर उन्हें ध्यान आया कि फाइल खो गई है। वे बहुत दुविधा में पड़ गये। सुखदेव प्रसादजी ने उस फाइल के बारे में पूछताछ करने के लिए अधिकारी को भेजा। गुरुदेव ने उससे कहा : 'तुम्हारे यहां से जाने के बाद मुझे किसी ने कहा कि एक फाइल यहां रह गयी है। इस विषय में तुम चैनकरण से सम्पर्क करो।' अधिकारी गुरुदेव की महानता से बहुत प्रभावित हुए।

उपवास के पांचवे दिन जैन कॉन्फ्रेंस अहमदाबाद की तरफ से एक तार आया जिसमें योगिराज द्वारा छाछ ग्रहण करके उपवास की समाप्ति पर बधाई दी गई थी। यह झूठी खबर थी। चम्पकलाल और कुछ अन्य भक्त सुखदेव प्रसादजी के पास गये। वे बीमार थे। पहले उनको गुरुदेव का आशीर्वाद कहा। फिर किसी के द्वारा उदयपुर से झूठी खबर भेजने की बात से उन्हें अवगत कराया और इसमें दोषी लोगों को खोजने के लिए सहयोग देने को कहा। भक्तों को तो यही आशंका थी कि पंडितजी ने आन्दोलन का मनोबल गिराने के लिए स्वयं ही ऐसी झूठी खबर भिजवाई होगी।

उपवास के छठे दिन उदयपुर से एक वैद्य गुरुदेव के पास आया। भीड़ के बीच में से गुरुदेव ने उसे बुलाया और आदर के साथ अपने पास बिठाया। फिर सब को बाहर जाने का आदेश दिया। यह वैद्य सुखदेवप्रसादजी का मित्र था और उन्होंने ही उसको गुरुदेव को जहर देने के लिए भेजा था। परन्तु रास्ते में वह वैद्य एक पेड़ से टकरा गया जिससे उसे गहरी चोट आयी और खून बहा। गुरुदेव ने उसे आशीर्वाद दिया। उसने सारी बात गुरुदेव को बता दी और भक्त बन गया।

ज्यों-ज्यों उपवास के दिन बढ़ते गये, भक्तों की चिन्ता बढ़ती गई। तब गुरुदेव ने कहा: 'मेरे बारे में कोई चिन्ता न करें। मैं 12 साल तक वायु पर ही रह सकता हूं।'

उपवास का समय लम्बा होने से रेजिडेन्ट राजपुताना भी बहुत चिंतित हुए। उधर हजारों लोग गुरुदेव के दर्शन के लिये आ रहे थे। शांति भंग होने का खतरा था। मरड़िया के अनुसार सर ओगिल्वी ने महाराणा को केन्द्रीय हस्तक्षेप की धमकी दी थी। उन्होंने कहा, 'मैं इस महापुरुष को इस प्रकार मरने नहीं दे सकता। ये मेरे गुरु हैं।' भक्तों का व्यवहार बिल्कुल शांतिपूर्ण रहा।

एक प्रतिनिधि मंडल महाराणा से मिला। उस मीटिंग में अधिकारियों ने उनके सामने कई आपत्तियां उठाई। दिगम्बर जैन और अन्य लोगों के दावों पर भी चर्चा हुई। उनके ऊपर अनशन की गम्भीरता का कोई प्रभाव नहीं था। कुछ लोगों ने कहा : 'अनशन से गांधीजी को क्या मिल गया? क्या वे भारत से ब्रिटिश शासन को मिटाने में सफल हो गये?' प्रतिनिधि मण्डल महाराणा के समक्ष उन दो तरह के उपवासों के भेद को समझाने में असफल रहा। देवस्थान हाकिम ने कहा कि गुरुदेव ने मुसायब आला को जनता के सामने डांट कर उनका अपमान किया था।

सुखदेवप्रसादजी की हालत बिगड़ती जा रही थी। बुखार 103 डिग्री रहता था। उनके परिवार के लोग गुरुदेव के पास गये और उनसे क्षमा याचना की। उनको यह डर था कि शायद योगिराज के क्रोध या शाप के कारण पंडितजी बीमार हो गये। गुरुदेव ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि उनके कष्ट का कारण तो उनके पूर्व कर्म ही हैं और सलाह दी कि आत्मशुद्धि के लिये वे शुभ कार्य करें। बाद में धर्मनारायणजी की पत्नी द्वारा बहुत प्रार्थना करने पर गुरुदेव दर्शन देने के लिए इनके निवास पर गये। वह गुरुदेव की परम

भक्त बन गयी।

जब गुरुदेव को अनशन करते हुए करीब एक महीना होने को था तब महाराणा में यकायक परिवर्तन दिखाई दिया। उन्होंने गुरुदेव को मोतीमहल में आने का निमंत्रण दिया। ढद्ढाजी के अनुसार योगिराज ने उन्हें कहलाया कि उनकी तबियत ठीक नहीं है, इसलिए यदि महाराणा मिलना चाहें तो उन्हें बोर्डिंग हाउस में मिल सकते हैं। महाराणा तैयार हो गये और बोर्डिंग हाउस में पुलिस प्रबंध कर दिये गये। वहां पर गंगाजल छिटका गया। परन्तु महाराणा के वहां पहुंचने के दस मिनट पहले ही गुरुदेव स्वयं मोतीमहल पहुंच गये। महाराणा बोर्डिंग हाउस आये और फिर वहां से मोतीमहल गये। वहाँ करीब सवा घंटे उनकी आपस में बातचीत हुई।

गुरुदेव ने कहा कि आप भी केशरिया बाबा के भक्त हैं। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि आप सत्य के रास्ते पर चलें, न्याय दृष्टि से देखें और शांति की स्थापना करें। मैं जैनों का पक्षपात नहीं करता और न वैष्णवों के प्रति मेरा कोई विरोध है। हमारी भावना तो प्राणीमात्र के कल्याण की ही होती है।

महाराणा द्वारा विवाद निपटाने का वचन देने और अनशन समाप्त करने की प्रार्थना करने पर गुरुदेव ने अनशन समाप्त कर दिया। महाराणा और महारानी ने उन्हें खीर से पारणा करवाया। कुछ दिन बाद महाराणा ने घोषणा की कि यह पवित्र मन्दिर जैनों का है।

मोतीभाई कोठारी, जो उस समय उदयपुर थे, लिखते हैं कि महाराणा और महारानी गुरुदेव के भक्त बन गये और राज्य के अधिकारी भी हमारे साथ बहुत आदर भाव रखने लगे और कई तरह की भेंट भेजते थे। 'हम महाराणा को प्रसाद भेजते और वे वापिस एकलिंगजी का प्रसाद हमको भेजते थे।'

उच्च सरकारी अधिकारी और अन्य लोग बड़ी संख्या में आ रहे थे। जब गुरुदेव शहर में गये तो वे सभी सम्प्रदायों के मंदिरों में गये- शिव मंदिर, जगदीश मंदिर आदि। इसलिए सभी धर्मों के लोगों ने उनका सम्मान किया। ब्राह्मण, बोहरा, वैष्णव और जैनों द्वारा उनको सम्मानित करने में होड़ सी लगी और सभी ने एक स्वर में योगीराज की जय के नारे लगाये। ढद्ढाजी के अनुसार अब महाराणा और महारानी में गुरुदेव के प्रति भरपूर आदर था और उन्होंने योगीराज के सम्बन्ध में भीखाभाई से पांच घंटे से भी अधिक समय तक चर्चा सुनी।

केशरियाजी को

14 मई 1934 को गुरुदेव ने उदयपुर से केशरियाजी तीर्थ के लिए विहार किया। इस दिन उदयपुर महाराणा भोपालसिंहजी की आज्ञा से सारे शहर में जीव हिंसा का निषेध रहा और शहर के सब कत्लखाने बन्द रहे।

5 जून को गुरुदेव सवीना खेड़ा में पारसनाथ मंदिर के एक कमरे में थे। सूर्यास्त के कुछ पहले उन्होंने गोर्धन विलास के लिए विहार किया। वे काफी कमजोर लग रहे थे

और केवल थोड़ी सी छाछ ही लेते थे। महाराणा ने उन्हें अकेले में दर्शन के लिए प्रार्थना की। सात की शाम को महाराणा करीब 45 मिनट तक गोर्धन विलास में गुरुदेव के पास रहे। ढड्ढाजी के अनुसार यह महाराणा की गुरुदेव से पांचवीं भेंट थी। पहली फतहसागर झील पर मोतीमहल में हुई जब शाही दम्पत्ति ने गुरुदेव को खीर बहरा कर पारणा करवाया। दूसरी और तीसरी मुलाकात जैन बोर्डिंग हाउस के पास लक्ष्मी निवास में हुई जब गुरुदेव वहां ठहरे थे। चौथी मैदान में अचानक सड़क पर हुई और महाराणा कार से उतर कर योगिराज के पास 20 मिनट तक रहे। पांचवीं फिर गोरर्धन विलास पर हुई। महाराणा ने गुरुदेव को चातुर्मास के बाद फिर उदयपुर लौटने की प्रार्थना की।

9 जून की सुबह गुरुदेव गोर्धन विलास से पैदल ही केशरियाजी मंदिर के लिए चल दिये। वे काफी कमजोर थे, फिर भी पैदल चले। भक्तों ने उन्हें महाराणा उदयपुर द्वारा भेजी हुई डोली में बैठने के लिए बहुत आग्रह किया। आखिर भक्तों के अधिक दबाव डालने और ढढ्ढाजी द्वारा सत्याग्रह की धमकी देने पर वे उसमें बैठे, हालांकि उन्हें यह अच्छा नहीं लगा।

ईश्वर सब के लिए

मंदिर के बाहर भील, आदिवासी और हजारों भक्तों की भीड़ हो गयी थी। उनको उपदेश देते हुए गुरुदेव ने कहा : 'ईश्वर सबके लिये है। हर कोई उसकी उपासना कर सकता है। इस बात में जैन, वैष्णव और अन्य लोगों में किसी तरह का भेदभाव नहीं होना चाहिए। पूजा करने के पहले शुद्ध होना चाहिए। जब तुम पूजा करना चाहो तो शराब नहीं पीना और मांस नहीं खाना। श्रोतागण ने ऐसा करने का व्रत लिया।'

गुरुदेव तीन दिन तक केशरियाजी ठहरे। 12 जून को एक विशाल जुलूस निकाला। योगिराज को वहां से पगलिया गार्डन ले जाया गया। वहां से फिर उन्होंने सरस्वती आश्रम, मारकण्डेश्वर के लिए विहार किया। रास्ते में कई गांवों में ठहरे और अन्त में 1934 के चातुर्मास के लिए बामनवाड़ लौट आये।

* * *

देवी–देवताओं के लिए खून नहीं

सभी प्राचीन धर्मों में महात्माओं ने देवी–देवताओं की मूर्तियों या प्रतीकों पर पशु बली के निर्देश दिये हैं। क्षत्रियों में यह मान्यता रही है कि देव और देवियों को प्रसन्न करने के लिए दशहरे पर उन्हें पशु–बली देनी चाहिये। गुरुदेव लोगों को धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा को न करने का आग्रह कर रहे थे। 1932 के अक्टूबर में उन्होंने भारत के राजाओं के पास, जो उस समय बड़ी शक्ति थे, इस बारे में समाचार भिजवाये। जो राजा गुरुदेव के भक्त थे उन्होंने तो तुरन्त ही उनके आदेशों की पालना की। कुछ ने तार से

अनुपालना की सूचना दी। उनमें लिंबड़ी, मोरवी, नींबाज, धरमपुर, इन्दौर, बीकानेर, ध्रांगध्रा, धौलपुर, रींवा, भरतपुर, सिरोही, प्रतापगढ़, पेथापुर, पाटड़ी, बाव, ग्वालियर, मैसूर, पालीताना के राजाओं तथा दूसरों ने पत्रों तथा प्रतिनिधियों द्वारा सूचना भिजवाई। पोकरण के ठाकुर चैनसिंहजी ने लिखा :

'परम कृपालु गुरुदेव के परम पवित्र चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम। नम्र निवेदन है कि पूज्यवर का अहिंसात्मक तार संदेश आशीर्वादयुक्त मिला। प्रत्युत्तर में विशेष क्या लिखुं जब कि आपश्री के उपदेश से यूरोपियन, पारसी, ईसाई और मुसलमान आदि मांसाहारी होते हुए भी मांस का त्याग कर हिंसा बन्द कर रहे हैं। हम तो आप के भक्त कहलाने का दावा करते हैं तो आपके वचन को शिरोधार्य करें, इसमें क्या विशेषता? हम तो कह सकते हैं कि आपके वचन हमारे लिए कानून हैं। मुझे कोई शब्द नजर नहीं आते कि जिसका उपयोग कर मैं अपने भावों को प्रदर्शित कर सकूं। इसलिए मेरे उद्‌गार का इतने में ही समावेश करता हूं कि आप अहिंसा संस्कृति का पुनः उद्धार कर रहे हैं। मेरे प्रिय सज्जन आपके आदेशामृत का पान कर अपना अहोभाग्य मानेंगे। हमारे यहां के रनूजा गांव में हजारों पशुओं का बलिदान होता था। वो रोका गया। और भी ठिकाने भर में हिंसा नहीं होवे, उसकी कोशिश जारी है।'

गुरुदेव ने दूध देने वाले जानवरों के रक्षार्थ कानून बनवाने के विषय पर समर्थन प्राप्त करने के लिए कई स्तर पर प्रयत्न किये। 7 अक्टूबर 1934 को गुरुदेव के आदेश से नरोत्तम जेठाभाई ने देश के प्रमुख पत्रों के सम्पादकों के नाम पत्र भेजे जिसमें कहा गया कि 'भारतीयों के जीवन में दुधारे जानवरों की अत्यन्त उपयोगिता को देखते हुए... श्री विजय शान्तिसूरीश्वरजी महाराज ने उनकी हिंसा रोकने सम्बंधी कानून बनाने के लिए कई प्रयत्न किये हैं। इस बारे में गुरुदेव ने वायसराय और नरेन्द्र मण्डल को लिखा है और जनता को जगह-जगह पर सभाएं करके इस मांग को व्यक्त करना है। मैं आशा करता हूं कि आप गुरुदेव के इस कार्य में अपना पूर्ण समर्थन देंगें और इस प्रकार की सभाओं के समाचार को अपने पेपर में प्रकाशित करते रहेंगें।'

गुरुदेव ने राजस्थान के कई मन्दिरों में पशु बलि को बन्द करवाया। तखतगढ़ से कुछ दूर एक बींटिया गांव है जहां एक वीर के स्थान पर प्रतिवर्ष 500 बकरों का वध होता था। जब भोपा को पता लगा कि गुरुदेव इस रास्ते से निकलेंगे तब उसने सोचा कि वे उसे पशुवध बन्द करने का उपदेश देंगे। इस डर से वह भोपा पहले से ही नजदीक के किसी दूसरे गांव में चला गया। जब गुरुदेव ने देखा कि भोपा वहां नहीं है तो कुछ मिनट वहां ठहरकर बांकली के लिए विहार कर दिया। कहते हैं कि उस रात वीर ने भोपे को स्वप्न में कहा कि गुरुदेव ने पधार कर इस गांव को पवित्र किया है और अब मैं उनका भक्त हो गया हूं। इसलिए आज से यहां पर कोई जीव बलि नहीं होगी। तुम गुरुदेव के पास जाओ और यह व्रत लेकर आओ। कहते हैं कि गुरुदेव ने भी रात में भोपे को दर्शन दिये जिससे

उसे दृढ़ विश्वास हो गया। भोपा गुरुदेव के पास आया और विनयपूर्वक प्रणाम करके अपना अनुभव सुनाया और व्रत लिया कि मैं वीर के स्थान पर या अन्य कहीं भी जीव वध नहीं करूंगा।

ऐसा ही एक अनुभव स्थानकवासी जैन सन्त मंगलचंदजी का है। मार्कण्डेश्वर के पास एक गुफा में दोनों दशहरों पर हर रबारी परिवार देवी के सामने एक बकरे की बलि देता था। गुरुदेव ने उन्हें कहा : 'क्या देवी बकरों को मारने से ज्यादा खुश होती है?' जवाब में रबारियों ने कहा कि हम तो एक परम्परा पर चल रहे हैं इसलिए उसे बन्द नहीं कर सकते। तब गुरुदेव ने उनको पूजा के अन्य तरीके बतलाये। तीन दिन बाद वहां का भोपा रबारियों को बलि के लिए वहां बकरे लाने का मना करने लगा। रबारी सन्तुष्ट नहीं हुए और परम्परा को तोड़ने को तैयार नहीं थे। तब भोपे ने जोर से बोल कर उन्हें गुरुदेव की सलाह मानने की आज्ञा दी। गुरुदेव ने उन्हें अपने त्यौहारों को तो चालू रखने को कहा परन्तु बकरे के स्थान पर गेहूं के आटे का चूरमा चढ़ाने को कहा। 'इससे तुम्हारी देवी बहुत प्रसन्न होगी।' बाद में गुरुदेव ने उनको त्योहारों और शादियों पर अफीम काम में लेने का निषेध किया। उन्होंने अफीम की बुराइयाँ बतलाई और सलाह दी कि अफीम की जगह गुड़ काम में लो जिससे औरतें और बच्चे सभी खुश होकर लेंगे। तब कुछ बूढ़े रबारियों ने बताया कि वे तो शुरू से ही अफीम खाते हैं, इसलिये उसे छोड़ना मुश्किल है। गुरुदेव ने उन्हें विश्वास दिलाया कि अफीम छोड़ने से उन्हें यदि कोई तकलीफ हुई तो उसकी पूरी जिम्मेदारी मैं लेता हूं। उन्होंने गुरुदेव की सलाह पर चलना शुरू किया। गुरुदेव की कृपा से उन्हें कोई तकलीफ नहीं हुई। यह उदाहरण हमारे समाज सुधारक और भोजन विशेषज्ञों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

पशुओं के प्रति करुणा

साधारण लोग और व्यवसायी अपने हित साधना के लिए जाने और अनजाने में पशुओं पर क्रूरता करते हैं। गुरुदेव पशुओं के प्रति दयाभाव विकसित करने की शिक्षा देते थे। एक बार नवम्बर 1940 को गुरुदेव ने अचलगढ़ के लिए विहार किया। रूपजी हेमाजी ने सामान ले जाने के लिए एक बैलगाड़ी किराये की। भार अधिक होने के कारण बैल दब रहा था। गुरुदेव पीछे से आ रहे थे। बैल की हालत देखकर गुरुदेव ने भक्तों को कहा : 'इस तरह भार लादना भी निर्दयता है।' भक्तों को दुःख हुआ और उन्होंने बैल की असुविधा को कम करने की कोशिश की।

बीमार और अपंग जानवरों के प्रति उन्होंने हमेशा करुणा पर जोर दिया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए 1931-32 में माउन्ट आबू में गुरु शान्तिविजय पशु चिकित्सालय बनाया गया। सरकार ने भी इसके विकास के लिए जमीन भेंट करने की उदारता दिखाई। उसका मुख्य भवन बनाने के लिए पैसा भक्तों ने दिया। लिंबड़ी नरेश ने वार्ड भेंट किया। कुछ राजाओं और आबू के ब्रिटिश अधिकारियों ने इस चिकित्सालय के कार्यों में गहन रुचि

ली। विशेष तौर पर राजपुताना पुलिस कमिश्नर की पत्नी श्रीमती राइट अस्पताल के कार्य की देखभाल करती थीं। उदयपुर के महाराणा भी इस अस्पताल द्वारा पशु कल्याण के कार्यों से बहुत प्रभावित हुए और इसे तीन हजार रुपये प्रदान किये। विवेकानन्द ने कहा था कि वे लोग महान हैं जो मानव भ्रातृत्व की शिक्षा देते हैं, परन्तु उनसे भी अधिक महान वे हैं जो सभी जीवों के भ्रातृत्व की शिक्षा देते हैं।

गुरु पूर्णिमा, 1931

सन् 1930 में गुरुदेव अधिकतर आबू पर ही रहे। भक्तगण देश के कोने-कोने से आ रहे थे। सन् 1931 के पूर्वार्द्ध में गुरुदेव आबूरोड में थे। वहां से वे 'समर हिल' माउंट आबू आ गये। जोधपुर की राजकुमारी किशोर कुंवर क्षय रोग से ठीक हो गई थी। 17 जुलाई 1931 को उनकी माता राणी प्रतापजी बाई द्वारा गुरु पूर्णिमा का उत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया जैसा पहले कभी नहीं मनाया गया। इसमें राजागण, ब्रिटिश अधिकारी, ईसाई, मुसलमान, पारसी सभी शामिल हुए। माजी प्रतापबाई और किशोर कुंवर ने गुरुदेव की प्रशंसा में भजन बनाये। आबू से जाने से पहले वे गुरुदेव के दर्शनार्थ आये। किशोर को आशीर्वाद देते हुए गुरुदेव ने फरमाया कि यह अच्छे घर जायेगी। इसके एक ही साल में 24 अप्रेल 1932 को किशोर की शादी जयपुर के महाराजा मानसिंहजी से हो गई। गुरुदेव 1932 में अधिकांश समय दिलवाड़ा में ही रहे।

पदवियां नहीं

ईसाई धर्म की तरह जैन श्रमण व्यवस्था में भी संन्यासियों की श्रेणियां हैं जो मुनि पद से बढ़ती हैं- उपाध्याय, आचार्य, सिद्ध और अरिहंत। ये धार्मिक पद विभिन्न श्रीसंघों की अपनी साम्प्रदायिक संस्थाओं के द्वारा घोषित किये जाते हैं। चूंकि गुरुदेव ने कभी भी अपने आपको किसी सम्प्रदाय विशेष से नहीं जोड़ा, इसलिए विभिन्न श्रीसंघों ने उनको अपनी पदवियों से सम्मानित करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। फिर भी रोहिड़ा गांव (सिरोही) में कुछ विशिष्ट जैनों ने गुरुदेव को आचार्य की पदवी देने का आग्रह किया। गुरुदेव ने उन्हें ऐसा करने से मना कर दिया, और कहा : 'आप जो पदवी मुझे देना चाहते हैं, उसकी मुझे कोई जरूरत नहीं है, और मुझे जिस चीज की जरूरत है, वह आप के पास देने को नहीं है।' बाद में अप्रेल 1933 में जैन पोरवाल सम्मेलन, बावनवाड़ा में ढढ्ढाजी और संघ के कई नेताओं ने फिर इस प्रकार का आयोजन करना चाहा।

'पोरवाल सम्मेलन में गुलाबचंदजी और अन्य प्रतिनिधियों ने गुरुदेव को उनके इस निर्णय से अवगत कराया कि वे गुरुदेव को पदवी से सम्मानित करना चाहते हैं। गुरुदेव इस प्रकार के आयोजन से खुश नहीं थे। उन्होंने कहा : 'मैं तो एक भोला साधु हूं, जंगल का निवासी हूं और मौन पूर्वक शान्ति में मगन रहता हूं। मेरे लिए इस सम्मान की क्या आवश्यकता है?' परन्तु संघ के नेता अपनी बात पर डटे रहे और 13 अप्रेल 1933 को उन्हें 'अनन्त जीव प्रतिपाल योगेन्द्र चूड़ामणि राज राजेश्वर' की उपाधि से विभूषित

किया।

कुछ महीने बाद 20 नवम्बर 1933 को वीरवाड़ा ग्राम में जैन संघ के नेताओं ने पक्का निश्चय कर लिया कि जब तक गुरुदेव स्वीकृति नहीं देंगे, तब तक लोग अन्न जल का त्याग रखेंगे। परन्तु गुरुदेव इन्कार करते रहे। आखिर 3:15 बजे करीब 5000 लोगों के संघ ने, एक पेड़ के नीचे जहां गुरुदेव ध्यान कर रहे थे, गुरुदेव को 'हिज होलीनेस जगद्गुरु सूरी सम्राट' पद अर्पण कर ही दिया। 'गुरुदेव की जय' के नारों से आकाश गूंज उठा।

उसी दिन गुरुदेव बामनवाड़ पधार गये। देश में सभी जगह भक्तगण बहुत खुश हुए। उदयपुर महाराणा के ससुर ठाकुर शिवनाथसिंह अभिनन्दन करने को आये और कहा कि गुरुदेव तो इस पदवी से बहुत बढ़ कर हैं लेकिन यह हमारी आत्मा के आनन्द के लिए किंचित भक्ति भाव है। नीमच महाराजा सपरिवार पधारे। उन्होंने कहा : 'आप तो हमारे लिए साक्षात विष्णु के अवतार हैं। इस पदवी को ग्रहण करके तो आपश्री ने केवल अपने भक्तों का गौरव बढ़ाया है।'

बाव के राणा ने कहा : 'श्री गुरुदेव तो स्वयं बहुत बड़े हैं। आपको पदवी अर्पण करना मानों सूर्य को दीपक दिखाना है अथवा गंगा के पास कुआं खोदना है। जगद्गुरु आचार्य सम्राट की पदवी देकर हम उल्टे आपश्री को देव से मनुष्य रूप में ले आये हैं। मैं तो आपश्री को परमेश्वर रूप मानता हूं।... जैसे दिन में घूघूराज (उल्लू) को नहीं दिखता... और जैसे बुखार में मिश्री कड़वी लगती है, वैसे ही विघ्न संतोषी जीवों को अशांति फैलाने में ही आनन्द आता है और आवेगा।' हेमचन्द्राचार्य ने कहा था कि 'हे भगवान, जो लोग गुणी से ईर्ष्या करते हैं वे आपकी शरण में भले न आवें। चाहे आपको ईश्वर न माने। परन्तु क्षण भर आंखें बन्द कर न्याय मार्ग, जो सत्य का मार्ग है उस पर विचार तो करें।' इस अवसर पर पालनपुर के नवाब तालेमुहम्मदखान ने अपनी तरफ से एक कीमती शॉल मोतीभाई कोठारी के साथ गुरुदेव को भेजा।

सर ओगिल्वी ने अपने 12 दिसम्बर 1933 के पत्र में इस बात पर बहुत खुशी प्रकट करते हुए गुरुदेव को बधाई दी। उन्होंने लिखा कि गुरुदेव को जो पदवी दी गई है वे पूर्णतः उसके योग्य हैं। साथ ही उन्होंने लिखा कि उन्हें इस बात का दुख है कि गुरुदेव के दर्शन के लिए आने का मानस होते हुए भी वे कई कार्यों में व्यस्त होने के कारण आने के लिए समय नहीं निकाल सके।

इस अवसर पर गुरुदेव ने जन समुदाय को यही कहा कि 'मैं अपने को इस पदवी के योग्य नहीं समझता। परन्तु इस उपाधि को उपाधि ही समझता हूं। आप सज्जनों का मेरे ऊपर यह असीम आशीर्वाद है कि मैं भविष्य में वैसा हो जाऊं। मैं तो अपने आपको एक भिक्षुक ही मानता हूं।'

गुरुदेव ने नांदिया, वीरवाड़ा और दुजाना गांवों के 50-50 वर्षों पुराने झगड़ों को

मिटा कर शान्ति स्थापित की।

राजगुरु नेपाल

समाचार मिला कि नेपाल के राणा युद्धशमशेर जंग बहादुर राणा और उनके पुत्र बहादुर शमशेर जंग बहादुर ने अपना एक प्रतिनिधि मंडल गुरुदेव को सम्मानित करने के लिए भेजा है। इसके मुखिया नेपाल के राजकुमार नर शमशेर बहादुर राणा थे। वे स्पेशल रेलगाड़ी से 8 मई 1934 को सुबह 10 बजे उदयपुर पहुँचने वाले थे। उनके ठहरने के लिए होटल में व्यवस्था कर दी गई। उनके साथ कलकत्ता के सेठ जगपत सिंहजी भी थे। मोतीभाई कोठारी, चम्पकभाई और कुछ अन्य भक्त उन्हें लेने स्टेशन पर गये। जगपत सिंहजी ने शाही मेहमानों से उनका परिचय करवाया। उदयपुर महाराणा ने उनको लेने के लिये अपने प्रतिनिधि भेजे और उन्हें अपना अतिथि बनने की प्रार्थना की। परन्तु नेपाल के राजकुमार ने सरकारी अतिथि बनने से इन्कार कर दिया क्योंकि वे केवल गुरुदेव के दर्शन के लिए ही आये थे। प्रतिनिधि मंडल के सदस्य होटल से आश्रम तक दोपहर को पैदल चल कर आये। गुरुदेव उस समय ध्यान में थे। रात के 11 बजे जब अन्य लोग चले गये, गुरुदेव ने दरवाजा खोला। राजकुमार करीब एक घंटे तक अन्दर गुरुदेव के पास रहे। जब वे बाहर आये तो अत्यन्त प्रसन्न थे। उन्होंने कहा कि कुछ ही समय में गुरुदेव ध्यानमग्न हो गये और उनके पीछे की ओर (जैसे टेलिविजन में) मैंने कलकत्ता शहर में अपनी कोठी में अपनी माताजी को स्वस्थ हालत में देखा। गुरुदेव ने फरमाया कि जर्मन डाक्टर ने उनका केस खराब कर दिया था। फिर भी कुछ समय के लिए वे ठीक रहेंगी। परन्तु आप जानते हैं कि फटे हुए कपड़ों को जोड़ने से वे थोड़े दिन ही चलते हैं। राजकुमार ने गुरुदेव से कहा कि उनके पिताजी 15 मई को इंग्लैण्ड जा रहे हैं और जाने के पहले गुरुदेव के दर्शन करना चाहते हैं। इस पर गुरुदेव ने फरमाया कि वे पहले इंग्लैण्ड चले जाएं। यहां बाद में आना।

अगले दिन (9 मई, 1934) प्रतिनिधिमंडल के सदस्य अपने होटल से एक मील पैदल चलकर आये और जमीन पर गुरुदेव के चरणों में बैठे। फिर खड़े होकर हाथ जोड़कर गुरुदेव से 'विश्वोपकारी नेपाल राजगुरु' के पद को स्वीकार करने की प्रार्थना की। गुरुदेव के आदेशानुसार उन्होंने जैन और वैष्णवों के प्रमुख त्योहारों पर नेपाल में जीव हिंसा बन्द करना स्वीकार कर लिया। डेपूटेशन दोपहर को स्पेशल रेलगाड़ी से रवाना हो गया।

किंकरदास

किंकरदास गुरुदर्शन के लिए बामनवाड़ आये। गुरुदेव ने उन्हें आदेश दिया कि 'भजन बनाओ'। किंकरदास ने कहा : 'मुझे भजन बनाना नहीं आता।' परन्तु गुरुदेव की कृपा से उन्होंने बहुत ही सुन्दर भजन बनाने प्रारंभ किये और गुजराती में भजनों के कई संग्रह प्रकाशित किये। किंकर का उदाहरण हमें बाइबल की उस घटना की याद दिलाता

है जब ईश्वर ने मूसा को अपनी जाति के लोगों का नेतृत्व करने की आज्ञा दी। तब मूसा ने कहा : 'मैं वक्ता नहीं हूं। मेरी वाणी और जीभ अटकती है।' तब ईश्वर ने कहा : 'मैं तुम्हारे मुंह, जीभ और वाणी के साथ रहूंगा और तुम्हें यह बताऊंगा कि तुम्हें क्या कहना है।'

1934 की गुरुपूर्णिमा

26 जुलाई, 1934 को बामनवाड़ में गुरुपूर्णिमा का समारोह अद्वितीय उत्साह और शोभा से मनाया गया। देश के कोने-कोने से करीब 15 हजार लोग आये थे। लिंबड़ी नरेश और एलिजाबेथ शार्प एक दिन पहले ही आ गये। बीकानेर महाराजा 26 को 4 बजे पधारे। वे फाटक पर ही कार से बाहर आये, अपना टोप हटाकर सिर पर साफा बांधा, पैरों के मोजे हटाकर धीरे से गुरुदेव के कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने झुककर चरण स्पर्श किया और करीब दो घंटे वहां रहे।

निम्बाज के ठाकुर भी सपरिवार आये। खुड़ाला ठाकुर और मेवाड़ महाराणा के ससुर शिवनाथसिंह भी दर्शनार्थ आये। जोधपुर, सिरोही, जामनगर की महारानियों ने अपने विशेष प्रतिनिधि भेजे। संध्या को चामुण्डेरी के श्रीसंघ की तरफ से तथा दूसरे दिन सुबह बम्बई के शांतिदास आसकरण की ओर से स्वामीवत्सल हुआ। सेठ किशनचन्द लेखराज ने मांस मदिरा स्पर्श न करने का व्रत लिया। गुरुदेव ने मेवाड़ के अनुभव का वर्णन करते हुए कहा : 'मेवाड़ में प्रवेश करते समय छोटे-मोटे सब प्रजाजन को मातृभूमि की वेशभूषा में और पुरानी रीति-रस्म देखकर मुझे बहुत हर्ष हुआ। वर्तमान में भूतकाल के दृश्य देखने हों तो मेवाड़ भूमि में ही है। मेवाड़ में मेरे उदयपुर प्रवास के दौरान महाराणाजी, महाराणीजी, सरदार तथा सुखदेव प्रसादजी, जो कि अच्छे नीतिज्ञ कहलाते हैं, तथा मेवाड़ के वकील मदनगोपाल जी आदि छोटे-बड़े तमाम अधिकारी वर्ग तथा सब जातियों ने मेरे प्रति प्रेम भरी भक्ति दिखायी। श्री केशरियाजी प्रकरण में मुझे बहुत संतोष हुआ है तथा भविष्य में महाराणा सम्पूर्ण संतोष देंगे यह मैं खातिरी से कह सकता हूं। दूसरे राजा-महाराजाओं के साथ मेरा सम्बन्ध हुआ है, किन्तु मेवाड़ के श्री बाप्पा रावल से सम्बन्ध तो पूर्वजों से चला आ रहा है...। जब मैं केशरियाजी में दर्शन के लिए गया, उस समय वहां पुरानी रीति के अनुसार पूजाविधि देखी और उसमें कोई फेर फार देखने में नहीं आया। कई आभूषण और आंगियां मरम्मत और सफाई के लिये उदयपुर भेजी गयी थीं। वे सब वापिस आ गई और देवस्थान हाकिम श्री मथुरानाथजी ने महाराणा साहब के हुक्म से एक एक अंगी और दागीने दिखाये।

श्री केशरियाजी के विषय में जो समाचार पत्रों में लिखे जाते हैं शायद पूरी हकीकत से अपरिचित है। मेरी जो अंगज टीका करते हैं उसके लिए मुझे लेशमात्र भी दुख नहीं... किन्तु मेवाड़ राज्य के लिए कोई लिखे अथवा बोले यह अनुचित है और वह दया का पात्र है।'

अनशन बंद करो

जुलाई 1934 का अन्तिम सप्ताह जैन समाज के लिये गहरी चिंता से भरा हुआ था। स्थानकवासी जैन मुनि मिश्रीलालजी जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में एकता और सद्भाव लाने के लिए कठोर तपस्या कर रहे थे। उनके अनशन का पांच माह से अधिक समय हो गया था। 7 जून को गुरुदेव ने पूज्य जवाहरलालजी और चौथमलजी को उनके जीवन बचाने के लिए तार भिजवाये और मिश्रीलालजी को भी अनशन समाप्त करने के लिए तार भेजा। परन्तु उन पर कोई असर नहीं हुआ। बाद में गुरुदेव ने एक डेपूटेशन भेजा जिसमें नरोत्तम जेठाभाई, ताजबहादुरसिंह दूगड़, गुलाबचंद ढढ्ढा सहित छह लोग थे। गुरुदेव की आज्ञा थी कि सात लोग जावें। बाद में देवयोग से मणिलाल कोठारी लूणी जंक्शन पर मिल गये और उनके साथ मिश्रीलालजी को मनाने के लिये चल दिये। ढढ्ढाजी ने कहा कि वे 'योगिराज से आशीर्वाद का संदेश देने आये हैं। जब उन्होंने एक दृढ़ प्रतिज्ञ साधु की बलि का वृत्तांत सुना तो उन्होंने हम लोगों को यहां भेजा है।'

एकता की अपील

मणिलाल कोठारी ने एकता की आवश्यकता के बारे में कहा। 'यदि 12 लाख लोगों के समाज में 150 टुकड़े बने रहेंगे, तो इससे समाज को कितना धक्का लगेगा।' डेपूटेशन ने उन्हें अनशन समाप्त करने को कहा क्योंकि सबको एक करने का व्रत एक इतनी बड़ी इच्छा है जो कभी फलीभूत नहीं हो सकती। यह तर्क भी दिया गया कि भगवान महावीर इतने शक्तिशाली थे परन्तु वे भी सभी विरोधी तत्वों को एक नहीं कर सके। अपना सर्वस्व होम कर भी यदि एकता प्राप्त न कर सकें तो प्राणों की बाजी लगाना निरर्थक है। मणिलाल ने कहा कि महात्मा गांधी ने भी मुनि मिश्रीलालजी को अनशन बन्द करने का तार भेजा, परन्तु उसका कोई असर नहीं हुआ।

आखिर मुनिजी को युद्ध-विराम की स्थिति में लाने के लिए गुरुदेव ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग किया। मुनिजी उस समय हनुमानजी की भाकरी (जोधपुर) पर अपने 167वें उपवास में थे। गुरुदेव उस समय बामनवाड़ में विराजते हुए मुनिजी को रात्रि में अलौकिक दृष्टि में दर्शन दिये जिसमें उन्हें अनशन समाप्त करने का आदेश दिया। गुरुदेव के समझाने पर मुनिजी ने कहा कि व्रत तोड़ना तो पाप होगा। इस पर गुरुदेव ने कहा कि हर व्रत कुछ दशाओं के अधीन होता है और अगर गुरुदेव की आज्ञा से यह व्रत तोड़ते हैं तो उसमें पाप नहीं है। इसका सीधा असर हुआ और उन्होंने 30 जुलाई को सुबह अपने भक्तों को रात्रि का अनुभव बताया और अनशन समाप्त कर दिया।

मुनि जैन समाज के उस सम्प्रदाय के सदस्य थे जो अपने को गुरुदेव से भिन्न समझा करते थे। जब वे सबके सामने गुरुदेव के दर्शन की बात कहते, जिसके कारण उन्होंने अनशन समाप्त किया, तब उनके सह-धर्मियों का उनके द्वारा ऐसा न कहने के लिए दबाव आने लगा। उन्हें सलाह दी गई कि वे इसके बजाय यही कहें कि उन्हें कोई

दैविक प्रेरणा हुई जिससे उन्होंने उपवास तोड़ा। उनके बयान को अंग्रेजी और गुजराती अखबारों में तोड़-मरोड़कर छापा गया। परन्तु मुनिजी गुरुदेव का नाम ही लेते रहते थे। अब उनके सम्प्रदाय के एक प्रतिनिधि को उनके पास तथ्यों की जानकारी के लिए विशेष रूप से भेजा गया क्योंकि इस घटना के साथ गुरुदेव का सम्बन्ध लगने से उनकी छवि पर उल्टा असर पड़ रहा था। मुनिजी ने स्वयं इस अनुभव की पुष्टि की। आखिर इस स्थिति का अन्त करने के लिए मुनिजी ने स्वयं एक जैन पत्रिका में पूरे तथ्यों का विवरण लिख दिया: 'अंतिम उपवास की रात में मुझे एक दिव्य प्रकाश दिखाई दिया जिसमें आबू वाले योगिराज आचार्य श्री शान्तिविजयजी महाराज के दर्शन हुए। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि अपना हठ त्याग कर उपवास बन्द कर दो। पहले जब आबू से तार द्वारा कृपालु गुरुदेव ने उपवास छोड़ने की आज्ञा दी थी, उस समय मुझे उन पर एक विश्वप्रेमी महापुरुष के रूप में विश्वास नहीं था। जब मैं उनके पास रहा और उनके सम्पर्क में आया तब भी मुझे उन पर पूर्ण श्रद्धा न हुई और मैं यह समझता कि उनका और मेरा धर्म अलग है। कई लोग अनेक शंकाओं के साथ उनके विरुद्ध बोलते थे, इस कारण भी मुझे उनकी महान्ता की यथार्थता पर पूर्ण विश्वास नहीं था। परन्तु पिछले उपवास की रात में मुझे उनके दिव्य प्रकाश की झलक मिली जिससे उनके प्रति विश्व के एक महापुरुष के रूप में मेरा विश्वास स्थापित हुआ। इसलिए उनके आदेश को प्रकृति की प्रेरणा समझ कर मैंने पारणा कर लिया।'

बामनवाड़ में 23 नरेश

1932 में गुरुदेव अधिकांश समय दिलवाड़ा में ही रहे। दिग्विजयसिंहजी गुरुदेव के दर्शनार्थ आये। गुरुदेव ने कहा कि उन्हें जामनगर की गद्दी मिलेगी। उस समय जाम साहिब रणजीतसिंहजी जीवित थे। एक वर्ष में गुरु इच्छा फल गई। वे 2 अप्रेल को नये जाम हुए। राज्याभिषेक के बाद वे गुरुदेव के आशीर्वाद के लिए बामनवाड़ आये। जब सिरोही दरबार को इसका पता चला तो वे भी वहां आ गये और उन्होंने अपनी पुत्री गुलाब से उनकी शादी का प्रस्ताव किया। 7 मार्च 1935 को यह शादी हुई। एक शानदार बारात सिरोही आयी। रास्ते में गुरुदेव के दर्शन के लिए सभी बाराती फिर बामनवाड़ रुके। रिषभदास स्वामी के अनुसार यह बड़ा अनूठा दृश्य था। भारत की 23 रियासतों के राजाओं ने अपनी शाही पोशाक में गुरुदेव के चरणों में वन्दना की। गुरुदेव ने दरवाजा बंद करवा दिया। वे लोग कुछ समय अन्दर बैठे रहे। फिर गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा कि आपको पसीना हो रहा है। गुरुदेव ने शाही दम्पत्ती को आशीर्वाद दिया और कहा कि पहले लक्ष्मी आयेगी फिर उत्तराधिकारी होगा। इस पर सब लोग बहुत खुश हुए क्योंकि काफी समय से लड़का न होने से उस राज्य में गोद का सिलसिला ही चला आ रहा था।

युग प्रधान

राजस्थान के एरनपुरा रोड स्टेशन के पास विसलपुर गांव आया हुआ है। जैन कॉन्फ्रेंस ने वहां के प्राचीन जैन मंदिर की प्रतिष्ठा महोत्सव पर गुरुदेव को आमंत्रित किया। गुरुदेव 7 मई, 1935 को वहां पहुंचे। पहले तो गुरुदेव विसलपुर गांव के अंदर एक खाली मकान में ठहरे थे। बाद में पास की टेकरी पर गुफा में रहने लगे। परन्तु वहां पर भी इतने लोग दर्शनार्थ आते कि गुरुदेव को रात के 12 बजे तक बिल्कुल विश्राम नहीं मिलता।

मारवाड़ जैन श्वेताम्बर कॉन्फ्रेंस के प्रमुख पद पर मुर्शिदाबाद के जगतसेठ फतेहचन्द घेलड़ा थे। 10 मई, 1935 को अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए गुरुदेव ने लोगों को विश्व प्रेम का विकास करने पर बल दिया। उन्होंने इस संबंध में महावीर और गीता, वेदान्त, जीसस और रामकृष्ण परमहंस की शिक्षाओं को समझाया और कहा : 'आप सब दीनबन्धु, विश्वबन्धु बन जाओ। जन कल्याणार्थ जगत में रहो।.... ज्ञान रूपी दीपक के द्वारा आप इस देश के हानिकारक रिवाज बन्द करें। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार करें। इस प्रदेश में बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय आदि रिवाज घर कर बैठे हैं। जैन समाज के लिए यह रिवाज लांछनप्रद हैं। आप इनको देश से निकाल दें, यही मेरी भावना और संदेश है। विश्व प्रेम जाग्रत करने के कार्यों में राजनीति का कोई स्थान नहीं है। महावीर के जीवन से सीखो। जाति अभिमान न रखो।... आप ने जाति की विशेषता नहीं बल्कि कर्त्तव्य की विशेषता बताई और कुछ महान संतों के कार्यों की ओर सब का ध्यान आकर्षित किया।'

कुरीतियों को त्यागने का उपदेश देते हुए अपने प्रवचन में गुरुदेव ने फरमाया कि जिस किसी पिता ने अपनी लड़की की शादी के लिए लड़के वालों से रुपये लिये या लेंगे, मैं उनके यहां गोचरी नहीं करूंगा। जो पिता ऐसा करता है वह नरक में जाता है। श्रोताओं में से एक लड़की को यह सुनकर बहुत दुःख हुआ क्योंकि उसके पिता ने लड़के वालों से 11 हजार रुपये लिये थे। वह लड़की पीहर गई और बिना किसी को कुछ कहे वे रुपये लेकर ससुराल वालों को दे दिये। बाद में उस लड़की ने बताया कि उसने यह गुरुदेव के उपदेश से प्रेरित होकर किया ताकि उसके पिता नरक में न जावें।

13 मई को सुबह 8 बजे गुरुदेव ने अंजनशलाका का कार्य किया। इसमें दो घंटे लगे। जब गुरुदेव मन्दिर से बाहर जाने लगे तब करीब 2000 लोग उनका रास्ता रोककर खड़े हो गये और उन्हें पदवी स्वीकार करने की प्रार्थना की। गुरुदेव वहां से कहां गये, पता नहीं चला। लगभग डेढ़ घंटे तक अदृश्य रहे। मंदिर के बाहर एक चबूतरे पर व्यवस्था की गयी थी, परन्तु वे वहां नहीं आये। फिर पता चला कि गुरुदेव तो मन्दिर में एक तरफ बैठे हैं। गुरुदेव का आगमन मन्दिर में किस रास्ते से और कब हुआ किसी को पता नहीं चला। मन्दिर के दो रास्ते ही हैं और उस समय दोनों रास्तों पर हजारों लोग खड़े हुए थे। मन्दिर खचाखच भरा हुआ था। एक इंच भी जगह खाली नहीं थी। इशारा पाकर जगत सेठ

फतेहसिंह, निर्मल कुमार श्रीपाल और दूसरे लोगों ने पास जाकर जबरदस्ती से गुरुदेव को नई पदवी चद्दर से ढक दिया और 'योगेन्द्र चूड़ामणि युग प्रधान की जय' से मन्दिर गुंजा दिया। गुरुदेव को यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा और उन्होंने चद्दर एक तरफ डाल दी। बाद में 20 मई, 1935 को गुरुदेव को श्रीसंघ की तरफ से मानपत्र भेंट किया गया। मानपत्र के बाद गुरुदेव ने अपने प्रवचन में कहा : 'आत्म बन्धुओं! मानपत्र देकर आपने मुझे एक विशेष बोझ से लाद दिया है। मैं कितना बोझा उठाऊं? संसार में आत्मा जब तक बोझों से लदी हुई रहती है, तब तक उसे परिभ्रमण करना पड़ता है। अनेक योनी करनी पड़ती है। भाग्यशालियों! संघ और धर्म की सेवा में मानपत्र को स्थान नहीं है। सच्चा यश तो आप ही को है, जिन्होंने तन, मन, धन से सर्व कार्य पूर्ण किया। मैं तो चाहता हूं कि आप मुझे मानपत्र-उपाधि आदि के बोझ से विरक्त रखे रहें।'

'प्रिय आत्म बन्धुओं! जगत की सेवा करना मनुष्य मात्र का फर्ज है।... राजा और प्रजा का घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए। 'राजेश्वरी सो नर केशरी' अर्थात अगर राजा अच्छे कर्त्तव्य करे तो नर-केशरी, नरों में शिरोमणि हो सकते हैं। अगर उससे उल्टा करें तो 'नर केशरी' की जगह 'नरकेश्वरी', नरक के अधिकारी हो जाते हैं। जगत में समान संयोग मिलना कठिन है। लायक राजा और लायक प्रजा का संयोग कितना कठिन है यह आप अच्छी तरह से समझ सकेंगे। राजा बिना प्रजा विधवा के समान होती है। इसी प्रकार प्रजा के बिना राजा जंगल में कैदी के समान होता है।....'

तीर्थंकरों ने भी क्षत्रिय कुल में जन्म लिया है। यह प्रधान कुल कहा जा सकता है... 'पर-धान', पराये का ध्यान रखे वही परधान- प्रधान समझा जाता है। शास्त्रों में न्यायोपार्जित द्रव्य का व्यय ही यश और धर्म प्राप्ति कराता है। न्यायोपार्जित द्रव्य ही लेखे लगता है। इस प्रान्त में छोकरी का पैसा लिया जाता है। आप साहूकार कहलाने का दावा रखते हो और धंधा चोरों का करते हो। कसाई तो तोल कर 'माटी' देता है। तुमने तो माटी को सोने से भी ज्यादा महंगी कर रखी है। पारसी, अंग्रेजी कौम भी पैसा नहीं लेती। तुम उच्च कौम और खानदान के होने पर भी यह नीच काम करो तो तुम्हें किस कौम और कुल के कहना? मैं आपको फिर आग्रह कर कहूंगा कि बेटी का पैसा लेना छोड़ दो। यह पैसा खराब गति में ले जाता है।...

सम्राट को बधाई

जॉर्ज पंचम के राज्याभिषेक की जुबली के अवसर पर उनकी ही आज्ञा से सांड को भूनने और उसके मांस का वितरण करने की पुरानी प्रथा का निषेध कर दिया गया। जैन कॉन्फ्रेंस ने सम्राट को इस निर्णय के लिए बधाई दी। बकिंघम पेलेस से इस संदेश के लिए धन्यवाद का पत्र (मई 1935) मिला। गुरुदेव ने हजारों लोगों को शराब और मांस की आदत से मुक्ति दिलाई।

विसलपुर समारोह बिल्कुल शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गये। पहले तो व्यवस्था करने वालों को मई की भीषण गर्मी में पानी की समस्या से बहुत चिन्ता हुई। परन्तु गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया और जहां पानी बिल्कुल नहीं था, उन जगहों पर भी पानी निकल आया। परन्तु समारोह सम्पन्न होने पर फिर पानी गायब हो गया। आकाश में भी पूरे समय बादल छाये रहे जिससे यात्रियों का सूर्य के ताप से बचाव हुआ।

विसलपुर से गुरुदेव चामुण्डरी पधारे। ढद्ढाजी के अनुसार उन्हें 25 मई को तेज बुखार था। राजपत बाबू ने रेल से गुरुदेव को आबू चलने के लिए बहुत आग्रह किया, परन्तु गुरुदेव ने मना कर दिया। 26 मई को कुछ भक्त डाक्टर को लाए, परन्तु गुरुदेव ने उसको नहीं दिखाया। उन्हें अपनी बीमारी के बारे में अधिक चर्चा अच्छी नहीं लगी और उन लोगों को वहां से चले जाने को कहा। अगले दिन गुरुदेव ठीक हो गये, न बुखार न खांसी। 30 मई को करीब 30 लोगों के साथ जल्दी सुबह बामनवाड़ के लिए प्रस्थान किया और वहां 8:30 बजे सुबह ही पहुंच गये। वर्षा ऋतु में गुरुदेव वहीं रहे। 31 मई को सिरोही दरबार गुरुदेव के दर्शन के लिये आये और एक घंटे से अधिक उनके पास रहे। 5 जून को गुरुदेव गुफा में चले गये और वापिस 7 जून को लौटे।

एक समय गुरुदेव के कान पर सूजन आ गई। सिरोही के डाक्टरों को बीमारी समझ में नहीं आयी तथा कुछ ने कहा इसका कोई इलाज नहीं है। चम्पकभाई बम्बई से डाक्टर दामाणी को लेकर बामनवाड़ आये। रास्ते में चम्पकभाई ने अपने कुछ अनुभव बतलाये। इस पर डा.दामाणी ने कहा कि अपने बामनवाड़ पहुंचने के पहले ही यदि गुरुदेव की हालत में सुधार हो जाये, तो मैं तुम्हारे अनुभव सत्य मानूंगा। उनके बामनवाड़ पहुंचने के पांच मिनट पहले ही गुरुदेव स्वस्थ होकर पाट पर विराजमान हो गये थे। दामाणी ने सिरोही के डाक्टरों से कान की हालत पूछ कर कहा कि अभी तो बिल्कुल ठीक है। दामाणी गुरुदेव के भक्त बन गये तथा बाद में दर्शन के लिये जाते थे।

गुरुदेव ने महावीर जैन गुरुकुल के विद्यार्थियों को सम्बोधित किया। उन्होंने कहा: "पहले ज्ञान तत्पश्चात तप तथा दया की व्यवस्था है। ... न तो मेरा महावीर के लिए पक्षपात है और न कपिल आदि ऋषियों के प्रति द्वेष है।... किसी व्यक्ति विशेष से मेरा राग-द्वेष नहीं है। विद्यार्थियों के अन्दर विश्व प्रेम हो और 'वसुदैव कुटुम्बकम्' अर्थात सम्पूर्ण संसार हमारा कुटुम्ब है, यह भाव उनके हृदय में विद्यमान होना चाहिये। पहाड़ी तथा जंगली, भील और पिछड़ी जातियों की झोपड़ियों तक शिक्षा संस्थाएं जानी चाहिये। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि मैं स्वयं किसी संस्था को अपना नहीं समझता। मैं केवल पथ-प्रदर्शक-पाषाण (milestone) हूं जो पथिकों को रास्ता बतलाता है, परन्तु उनके साथ नहीं जाता। चलना तो मुसाफिर को ही पड़ता है। पत्थर अपने स्थान पर अटल रहता है... संस्था हलवे के समान है और कार्यकर्ता खुर्पी के समान हैं। मैं केवल दूर से बतलाने वाला हूं कि इस प्रकार से हलवे को चलाओ, परन्तु मैं स्वयं पकाने वाला या पकने वाला

नहीं हूं। गुरुदेव ने रसकिन, कालरेज और कुछ अन्य विद्वानों के मत बतलाये और अध्यापकों को विद्यार्थियों के प्रति अपने कर्त्तव्य की बातें बतलाई।

हिन्दू कौन ?

16 जुलाई 1935 को बामनवाड़ में गुरुपूर्णिमा मनाई गयी। 21 जुलाई को दादागुरु धर्मविजयी के निर्वाण दिवस पर गुरुदेव ने उनके जीवन पर प्रकाश डाला। उन्होंने हिन्दुत्व की व्याख्या की। हिन्दू शब्द का अर्थ है जो हिंसा से रहित हो। हि-न-दू इन तीन वर्णों से हिन्दू शब्द बना है, अर्थात हिंसा को जो दूर करे वह हिन्दू है। गुरुदेव ने गो-हत्या बन्द करने के पक्ष में कई शास्त्रों से उदाहरण दिये। उन्होंने सरकार से अपील की कि दूध देने वाले पशुओं की रक्षा का कानून बना कर देश की गिरी हुई आर्थिक दशा को सुधारे।

गुरुदेव के व्याख्यान के बाद राजपतसिंहजी ने 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' (3 फरवरी 1935) में जॉज रोडरीज नाम के पुर्तगाली विद्वान के एक लेख में से गुरुदेव के बारे में कुछ पढ़कर सुनाया। लेखक ने गुरुदेव की महिमा बतलाते हुए कहा कि योगशक्ति से असम्भव बातें भी सम्भव हो जाती हैं। उदयपुर के दीवान सर सुखदेवप्रसाद का देहान्त 7 अक्टूबर 1935 को हो गया। गुरुदेव ने अपने उदयपुर में अनशन के दौरान डेढ़ साल पहले ही उन्हें बता दिया था कि उनका अन्त दूर नहीं है।

फिर आबू को

बामनवाड़ से गुरुदेव अचलगढ़ चले गये। 28 जनवरी 1936 को मारकंडेश्वर में बसंत पंचमी मनाई गई। गुरुदेव वहां गर्मी और वर्षा ऋतु तक रहे। 4 जुलाई 1936 को अचलगढ़ में गुरुपूर्णिमा मनाई गई। इस समय एक साधु भोला मुनि गुरुदेव के पास रहता था। वह गोचरी लाता था। वह गूंगा और बहरा था, परन्तु कुछ समय में उसने काफी संवेदन शक्ति प्राप्त कर ली।

वर्षा के बाद गुरुदेव दिलवाड़ा चले गये। एक 80 साल का प्रसिद्ध दिगम्बर जैन साधु गुरुदेव के पास आया। वह रोज गुरुदेव से मिलने आता। उनमें बहुत अच्छा विचार विमर्श चलता। गुरुदेव के एक भक्त ने उसे गुरुदेव के ज्ञान के बारे में पूछा। उस साधु ने जवाब में कहा: 'मेरे पांच साल बचपन में बीते और पिचत्तर अध्ययन में। मुझे अभिमान था कि मुझ से बढ़कर ज्ञानी इस देश में कोई नहीं है। गुरुदेव के चरणों में बैठने पर मेरा अभिमान दूर हो गया। उनके ज्ञान का कोई अन्त नहीं है। वह तो सागर की तरह हैं।' वह साधु कुछ दिन के लिए वहां आया था परन्तु अठारह महीने वहां रहा।

1937 का समय प्राय: दिलवाड़ा पर ही निकला। गुरुदेव कभी-कभी अचलगढ़ भी पधार जाते थे। 1936 और 1937 में हजारों लोग गुरुदेव के दर्शन के लिए भारत और विदेशों से आये। 'विजिटर्स डायरी' के अनुसार इनमें रॉल बॉप, सी.बी. तारापोरवाला, एडवर्ड क्रेमर, वाल्टर रूबन और इंग्लैण्ड, जर्मनी, टर्की और अमेरिका के कई प्रोफेसर

थे। बिना तारीख की प्रविष्टि में हस्ताक्षर है : 'लार्ड और लेडी री, 7 बार्टन स्ट्रीट, वेस्टमिनिस्टर लंदन।'

बीकानेर दरबार गंगासिंहजी की गुरुदेव के प्रति गहरी भक्ति थी। वे गुरुदेव को तार से संदेश भेजा करते थे। इनमें से 1936 और 1941 के कुछ तार आबू के कागजों में मिले हैं। दरबार अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए बहुत कार्य करते थे। गुरुदेव ने उन्हें कुछ विश्राम की सलाह दी। वे कुछ महत्वपूर्ण राजनैतिक विषयों में बहुत व्यस्त थे। इसलिए उन्होंने लिखा कि उस समय विश्राम सम्भव नहीं था और आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। गुरुदेव ने आशीर्वाद भेजा और लिखवाया कि वे बहुत जरूरी विषयों को ही समय दें। दरबार ने 31 अगस्त 1937 को अपने शासनकाल के पचास वर्ष पूरे किये थे। उन्होंने इस अवसर पर स्वर्ण जयंती की शोभा बढ़ाने के लिए गुरुदेव को बीकानेर आने की अनेक बार प्रार्थना की। न्यायमूर्ति रणजीतमल मेहता (जोधपुर) के अनुसार गंगासिंहजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि भारत के वायसराय गुरुदेव के दर्शन करें। वायसराय जुबली पर बीकानेर आने वाले थे इसलिये वहां यह भेंट सम्भव हो सकती थी। परन्तु गुरुदेव ने कहा कि उनका उस समय वहां जाना नहीं हो सकेगा और कार्यक्रम की सफलता के लिए आशीर्वाद कहलाया।

दरबार को गुरुदेव में पूर्ण श्रद्धा थी। जब कभी वे आबू जाते या आबूरोड स्टेशन में निकलते तो गुरुदेव के दर्शन करके अपनी भेंट चढ़ाते। यदि उनके पास अपनी यात्रा के बीच रुकने का समय नहीं होता तो वे आबूरोड स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतर कर वहीं दण्डवत कर देते और फिर गाड़ी में बैठ जाते। एक बार मिश्र जाते समय वे ऐसा करना भूल गये और गाड़ी आगे चल दी। जब गाड़ी पालनपुर पहुंची तो उन्हें याद आया और उन्होंने आबू में अपने सचिव गोपालसिंह वैद्य को तार से सूचित किया कि वे आबूरोड पर दण्डवत करना भूल गये इसलिये दुगनी भेंट भेजी जावे।

जॉर्ज की प्रथम भेंट

अपने द्वारा अचलगढ़ में छोड़े हुए एक कार्ड से पता चलता है कि जॉर्ज जुटजेलर 1 जुलाई 1937 को गुरुदेव से मिलने आये। उनकी अप्रकाशित डायरी में से इस मुलाकात का एक स्पष्ट विवरण ऊपर दिया गया है। बाकी में से कुछ और विवरण यहां दिया जाता है -

ज्योंही मैं (अचलगढ़ से) आबू लौटा, मैंने गुरुदेव के शब्द और सलाह को लिख लिया। परन्तु यह लिखे हुए शब्द कितने दरिद्र लगते थे। उस वाणी की मृदुता उनमें नहीं थी, न वह दृष्टि जो आत्मा की गहराई में खुदाई कर ज्ञान के कण और एक अद्वितीय शांति डाल देती। उन्होंने एक गहरी सांस में कहा : भक्ति, भक्ति। मैंने प्रथम बार अपने अन्दर एक आध्यात्मिक लहर को उठते हुए देखा। यह कैसी बात है कि यह शब्द, जो कई बार मेरे सामने बोला जा चुका है, उस व्यक्ति के मुंह में इतना संगीत रखता है।

भक्ति एक वास्तविक और गहन श्रद्धा मांगती है। ईश्वर या ईश्वर के रूप में जिसका ध्यान करें उसके लिए अपरिमित प्रेम।

इस प्रकार की श्रद्धा कैसे प्राप्त हो सकती है?

हमें बालकों की तरह हो जाना चाहिए। हमारे अन्दर ही ईश्वर हमारी भक्ति का इन्तजार कर रहा है। किसी बाहरी प्रतिमा की आवश्यकता नहीं हैं? आत्मा ही तुम्हारा सद्गुरू है। तुम उस पर भरोसा रखो। अन्दर ही आत्मा है। प्रथम यह प्रश्न पूछो : मैं कौन हूं? तुम्हारा उत्तर और तुम्हारी खोज तुम्हें आगे ले जायगी।

परन्तु पश्चिम में हम गुरु कहां से प्राप्त कर सकते हैं? मैंने पूछा। हजारों लोग अपने आध्यात्मिक गुरु ढूंढने में लगे हैं, परन्तु सब व्यर्थ में। भारत में भी सच्चे गुरु बिरले ही हैं और उन्हें ढूंढना बहुत कठिन है। तुम्हारी आत्मा से बड़ा कोई गुरु नहीं है। ध्यान के द्वारा उस अन्दर की आवाज को जाग्रत करो। तुम्हें वे प्रेरणाएं मिलेंगी जिनके अनुसार यदि तुम चलो तो तुम्हें ईश्वर तक पहुंचा देगी। यह मत सोचो कि गुरु हमेशा भौतिक स्तर पर दिखाई देगा। ऐसे लोग भी हैं जिन्होंने शरीर रूप में अपने गुरु को एक बार भी नहीं देखा फिर भी उन्हें प्रकाश प्राप्त हो गया। ज्योंहि ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा तुम्हारे अन्दर जाग्रत होगी, ज्योंही शिष्यों को संभालने वालों के और तुम्हारे बीच एक बंध का निर्माण हो जायेगा। तुम जहां कहीं भी होगे, अपने को कभी अकेला नहीं पाओगे। एक गहन अनुभव उस सत्ता को इंगित करता है और तुम्हारी चेतना जागृत हो जाती है। ...ध्यान करो, अपनी शक्तियों को एकत्र करो और प्रार्थना करो। ईश्वर और तुम्हारे बीच एक सीधा सम्बन्ध स्थापित करो। उसकी सत्ता हर समय तुम्हारे अन्दर हो। धीरे-धीरे तुम उस गहरी एकता को प्राप्त करोगे।....

इसको (ध्यान या धारणा) अधिक समय तक बनाये रखना कठिन है। आज का रहने का ढंग, अनेक तरह के दायित्व और अनेक तरह की अशान्तियां हमें परेशान कर रही हैं और हमारी शक्ति को वृथा व्यय कर रही हैं, मैंने कहा।

'स्वयं पर भरोसा रखो। डर सबसे बड़ा पाप है। अपने को सम्पूर्ण मन से ईश्वर को समर्पित कर दो। तुम क्या खाओगे? तुम्हारे दैनिक धार्मिक अभ्यास और नियम जो तुमने अपने ऊपर लागू किये हैं उन्हें दृढ़ता से बिल्कुल मशीन की तरह चलने दो। समय, शरीर के आसन, ध्यान के तरीके, तुम्हारे भीतर गहरे चले जाय। एक और महत्वपूर्ण बात जो तुम्हें नहीं भूलना है वह है ज्ञानी, सन्त और दूरदर्शी लोगों का समागम। परिवेश का मानस पर अत्यन्त शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है। लोग साधारणतया इसकी तरफ ध्यान नहीं देते हैं। भ्रष्ट आचरण और बेकार लोगों से दूर रहो क्योंकि वे बुरा प्रभाव डालते हैं। ऐसे लोगों को ढूंढ़ो जो तुम्हें ठीक सलाह दें, ऊपर उठावें और मार्ग दर्शन करें।'

हवा के एक झोंके से गुरुजी का वस्त्र अव्यवस्थित हो गया। उसको फिर से ठीक करते हुए उन्होंने कहा : 'जिन्दगी इस हवा की तरह है- यह आती है, चलती है, मिट

जाती है। इसमें किसी भी तरह से प्रवेश किये बिना हम तो केवल इसकी वर्तमान सत्ता का अनुभव करते हैं। बीता हुआ दिन वापिस नहीं मिल सकता। कई लोग बीते हुए कल के खोए हुए समय के लिए विलाप करते हैं और आज जो समय व्यर्थ में खो रहे हैं उसके लिए कल विलाप करेंगे। उठो, समय को हाथ से मत गंवाओ। आगे बढ़ो। अपने नेत्र ईश्वर पर जमा दो और उसे अपने अन्दर ढूंढो।... अपने देवता, गुरु की पूजा, भक्ति करो। उसमें इस तरह विश्वास करो जैसे कि वह तुम्हारा रक्षक है। फिर तुम भक्ति के द्वारा मोक्ष प्राप्त कर लोगे।' ज्योंही गुरुदेव ने फिर वही शब्द (भक्ति) कहे, मेरे अन्दर बुखार सा कंपन हो गया। इस व्यक्ति की शक्तियां क्या हैं, जो केवल अपने शब्द भक्ति से मेरे ऊपर इतना गहरा प्रभाव डालती हैं।...उन्होंने अपनी उंगलियां हिलाई जैसे कि वो कुछ अदृश्य आत्माओं को संकेत कर रही हों।

उन्होंने फिर धीरे से कहा: भक्ति, भक्ति और एक मृदुल मुस्कान ने उनके चेहरे को आलोकित किया।

तब तो एक ईसाई, जो संशय करता है, फिर से विश्वास प्राप्त कर सकता है, मैंने पूछा। 'वह संशय क्यों करता है। इसलिए कि वह तर्क करता है और उन मानसिक विरोधाभासों से अपने आपको चोट पहुंचाता है जो किसी भी बौद्धिक स्तर पर हल नहीं हो सकते। ...जब तक तुम्हारी आत्मा अनेकता के भ्रमित क्षेत्र में विचरती है, तुम्हें कष्ट, विरोध और अशान्ति के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। उस अविभजनीय एक की तरफ ऊपर चढ़ो।' 'उसे किस प्रकार प्राप्त करें?'

निर्जीव तर्क से ऊपर उठो। उस प्रकाश में जहां बुद्धि हारे हुए कुत्तों के झुण्ड की तरह ठंडी होकर पड़ी रहती है। तुम्हारे अन्दर ही चाबी है। हमारे उपनिषद् कहते हैं : 'तत्त्वमसि' यही कुंजी है, बड़ा रहस्य है। सब कुछ तुम्हारे अन्दर है और तुम्हारा मार्ग केवल उसकी खोज करना है जो तुम्हारे अन्दर है वे शक्तियें जो सुप्त हैं। हर जीव का अपना प्रारब्ध है, उसका धर्म उस विश्वात्मा को खोजने में उसकी मदद करता है। यदि वह इसकी अवहेलना करता है तो वह शिथिलता में रहता है, जिस प्रकार कि चट्टान पर डाला हुआ बीज मर कर सड़ जाता है।

बाइबल के वचन फिर मेरे दिमाग में आये और महात्माजी ने उस बात का, जो मेरे मन में थी, ठीक उसी प्रकार जवाब दिया जैसा वे पहले कई बार दे चुके थे।

'ईसाइयों को जीसस को अपने सद्गुरु की तरह प्रेम करना चाहिए, और वे उसके द्वारा शान्ति और मोक्ष प्राप्त कर लेंगे।'

पश्चिम में ईसाई अधिक हैं और अभी वे भौतिकवाद के प्रभाव में हैं। 'ईसाई कहलाने योग्य कौन है? कई तो व्यवहार, रीति, दिनचर्या से ही ईसाई हैं। प्रभु का सच्चा शिष्य कौन है? कौन उसके नाम पर सूली पर चढ़ने का साहस रखता है?

बाईबल पर देदीप्यमान व्याख्या

एशिया में भी प्रश्नोत्तर रूप में शिक्षा देना (catechism), और वह भी उसके द्वारा जिसे लोग 'काफिर' समझते हैं, वस्तुतः हिलान (moving) वाली बात है। यह व्यक्ति ईसाई धर्म को नहीं जानता, फिर भी उस दिव्य संदेश की कितनी शानदार व्याख्या करता है... वे ईसाई धर्म पर कुछ और प्रकाश डालते हैं:

'भगवद्कृपा और दैविक इच्छा की शरण लेने से ईसाई पूर्ण रूप से और स्वतः ही भक्ति के रास्ते पर आ जाता है। कैथोलिक मत में तान्त्रिक उपासना के लिए स्थान नहीं है। यहां तो प्रेम का धर्म है न कि ज्ञान का। जीसस ने यह कभी नहीं कहा कि सीखो (learn)। उसने कहा, प्रेम करो।' हिन्दुत्व इस दृष्टि से भिन्न है और बहुत कम ईसाई अपनी मानसिक रचना, मूल शिक्षा, वंशानुक्रमण और कई तरह के अन्य प्रभावों के कारण इसका मूल तत्व जान सकते हैं।...

इस अज्ञान के कारण, जो कि सब बुराई की जड़ है, पश्चिम मर रहा है। हमारे प्राचीन ऋषि इस अज्ञान के भयानक परिणामों से, जो मनुष्य के सत्य प्राप्त करने में बाधक हैं, अच्छी तरह परिचित थे। अज्ञानी केवल भक्ति से ही बच सकता है, क्योंकि इसके द्वारा बिना चाहे भी वह उस दैविक प्रयोजन को प्राप्त कर सकता है और उसे सहजज्ञान द्वारा मार्गदर्शकों से निर्देश मिल जाते हैं। तुम्हारे महान सन्त शानदार भक्ति से परिपूर्ण थे जो उन्हें सीधी ईश्वर से मिली थी और फिर मूल तत्व को प्राप्त करने के लिए उनको बौद्धिक प्रकाश की कोई आवश्यकता न रही।....

मैं नहीं मानता कि हिन्दुत्व ईसाई की श्रद्धा का नाश कर देगा। इसके विपरीत मैं समझता हूं कि हिन्दुत्व ईसाई की श्रद्धा को और अधिक विस्तृत और गहरी कर के शक्ति प्रदान करेगा। सभी धार्मिक महानताओं का उद्गम मानवीय है और उनमें अपूर्णता के चिह्न मौजूद हैं।.... ईसाई मोक्ष को प्राप्त करने के लिए अपने आप्तों की सत्ता में सीमित रहता है। हिन्दू उतना ही आदर अपने गुरु और वेदों का करता है और उनका प्रभाव भी प्रबल होता है। सभी धर्म व्यक्तिगत प्रमाण के अलावा कुछ नहीं है, जो उन लोगों द्वारा मिले हैं जिनमें दिव्य तत्व अधिक गहनता से प्रकट हुआ है। हिन्दुत्व में हम एक निरंतर अनुभव को जोड़ते जाते हैं और तुम जिन्हें हमारे मत (dogmas) कहते हो वे उस अनुभव की टीका और व्याख्या के प्रयास की स्वतंत्रता है। हमारे महान ऋषि हमारी परम्परा की शुद्धता का अतिमनस के स्तर पर नियंत्रण करते हैं। ....

हमारे कानों में जोर की आवाज आई। एक व्यक्ति कुछ भक्तों के साथ दौड़ता हुआ आया और महात्मा के पैरों में गिर गया। एक औरत जिसे कई वर्षों से लकवा था और जिसे कुछ ही दिन पहले आश्रम में लाया गया था, खड़ी हो गई। वह अब ठीक थी। उनके द्वारा आभार प्रदर्शन करने पर महात्माजी कुछ नाखुश दिखाई दिये। .... भक्तों की भीड़ हो गई। सूर्य पहाड़ी पर डूबने लगा और पेड़ों की छाया घाटियों के नीचे तक उतर गई। जब

मैंने विदा होने के लिए झुककर उन्हें प्रणाम किया तब महात्माजी ने कुछ भक्तों को बुलाया और योगवाशिष्ठ में से कुछ पद्य धीरे से गाकर सुनाये। मेरे पास बैठे मेरे मित्र ने मुझे उनका अंग्रेजी अनुवाद कर के बताया :-

जब सभी प्रकार की इच्छायें मिट जाती हैं और मन पूर्णता की अवस्था में स्थिर हो जाता है, जीते जी पूर्ण शान्ति और मुक्ति से युक्त हो कर वह दुनिया के खेल खेलता है।

वह अन्तरात्मा जीवन के सभी राग और द्वेषों से मुक्त होते हुए भी बाहर से सभी दिशाओं में सक्रिय हो कर जीवन के खेल खेलता है। शुभ और सौजन्यता के श्रेष्ठ आचरण के साथ वह बाह्य जगत की परम्पराओं के अनुकूल रह कर भी भीतर से निर्लिप्त रहता हुआ दुनिया के खेल दिखाता है।

गुरुदेव से हुई इस प्रथम मुलाकात में ही जॉर्ज उनसे बहुत प्रभावित हुए। कुछ समय बाद वे स्थायी रूप से गुरुदेव के पास रहने लगे। वे शाकाहारी बन गये। वे भक्तों में बहुत लोकप्रिय हो गये। उन्हें अन्य कई अद्भुत अनुभव हुए जिनके बारे में वे कभी-कभी भक्तों को सुनाया करते थे। उन्होंने भारत के सभी धर्मों के तीर्थ स्थानों की यात्रा की। बनारस से अपने पत्र (18.2.41) में उन्होंने गुरुदेव को लिखा कि आपने मुझ पर इतनी गहरी कृपा की है उसके लिए मैं अत्यन्त आभारी हूं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे वर्तमान और भविष्य की खुशी आपके पवित्र चरणों में ही है।

* * *

जॉर्ज से कुछ प्रश्न

प्र. आप कहां से आये?

उ. मैं स्विट्जरलैण्ड से आया।

प्र. आपने गुरुदेव के पास रहना क्यों पसन्द किया?

उ. मैंने दो बार दुनिया का चक्कर लगा लिया है परन्तु मुझे कहीं भी शान्ति नहीं मिली। आबू पर मैं गुरुदेव से मिला। गुरुदेव के साथ चन्द मिनटों की बातचीत में ही मने महसूस किया कि यदि मैं गुरुदेव के पास रहूं तो मुझे शान्ति मिल सकती है।

प्र. अब आपका ध्येय क्या है?

उ. मैंने दो बार दुनिया का अन्वेषण किया है और अब अपना अन्वेषण कर रहा हूं। मेरी इच्छा राजयोग सीखने की है, जो सभी योगों से उत्तम है।

प्र. आप गुरुदेव के पास कब तक रहेंगे?

उ. मेरी उन्हें छोड़ने की कतई इच्छा नहीं है। मैंने अपने आपको उन्हें समर्पित कर दिया है और उन्हें प्रार्थना करता हूं कि मुझे निर्वाण प्राप्त करने में सहायता दें।

प्र. क्या आपको अपने समाज के लिए विचार नहीं आता?

उ. मैंने मेरे सभी मित्रों और रिश्तेदारों से सभी प्रकार के संबंध समाप्त कर दिये हैं सिवाय मेरी मां के, जिसने बड़ी कृपा करके मुझे योग सीखने के लिए यहां रहने की आज्ञा दी है।

प्र. यहां बहुत गर्मी है। क्या इसके कारण आपको कोई कठिनाई नहीं होती?

उ. विश्व भ्रमण के दौरान मैं सभी तरह की जलवायु से अभ्यस्त हो गया हूं। इसके अलावा अब मैं इन बातों का विचार ही नहीं करता।

प्र. क्या अब आप शान्ति अनुभव करते है?

उ. जी हां, मुझे इसे प्राप्त करने में वास्तव में सफलता मिली है।

वीर संदेश, 25 मई, 1938 कोटा

–मोतीलाल मागरोल,

* * *

विश्व भ्रातृत्व का संदेश

जॉर्ज ने भारत के सभी धर्मों के तीर्थों की यात्रा की, मुख्यत: बुद्ध धर्म की। उसने कई लेख भी लिखे। अपने एक लेख में (नवम्बर, 1953) उसने **शांति और विश्व-भ्रातृत्व संदेश** के महासचिव को लिखा:

इस महान और विद्वानों के देश भारत से जिसे मैं पृथ्वी और स्वर्ग की सभी स्वैच्छिक और सुन्दरतम वस्तुओं से भी अधिक प्यार करने लगा हूं, एक ऐसे सम्मानित देश भारत से आपको शांति का संदेश भेज रहा हूं... अरे दुनिया के सभी देशों के लोगों तुम अपनी इस जननी के पास आओ। तुम उससे मांगों और उससे हुई दुनिया के युगों पुराने ज्ञान से इस दुनिया को सच्चा स्वर्गीय बाग बनाओ जहां सभी मत, रंग, और राष्ट्रीयताएं पूर्ण शांति, एकता, समन्वय के वातावरण में रह सकें। हमारे धर्म के एक महान रक्षक ने कहा तुम किसी को नहीं मारना। महावीर ने 2500 साल पहले यही उद्घोष किया था। किसी भी जीव को चोट नहीं पहुंचाओं और दूसरों की जीवन रक्षा के लिए उतनी ही सतर्कता रखो जितनी अपने जीवन की क्योंकि अहिंसा ही परम धर्म है। हमें इस पर चिन्तन करना चाहिए। शांन्ति-शान्ति, सारा जगत शान्ति की मांग कर रहा है- टोकियो से बुनिस आयरस, न्यूयार्क से पेरिस और लंदन से देहली। सभ्यता की हर राह से हम लाखों हृदयों से इन शब्दों की प्रतिध्वनि सुनते हैं।

पर यह शान्ति कैसे आएगी जबकि हमारे सभी प्रयास शीत और उष्ण युद्ध की तरफ हैं। फल तो कारण का स्वाभाविक परिणाम ही होता है। यदि हम युद्ध के बीज बोते हैं, तो शान्ति की फसल कैसे प्रास होगी? दूसरे व्यक्ति, पार्टी, देश, राष्ट्र और जाति पर हावी होने के लिए विचार शान्ति के विरुद्ध और नुकसानदायक होते हैं।... सारा जगत एक ही सत्ता है।

सभी देश के नागरिकों को अपने राजनीतिज्ञों, नेताओं और धार्मिक मार्गदर्शकों को वास्तविकता का सामना करने के लिए पूछना चाहिए... वो अपनी समझ को बुद्धि और प्रत्ययों को सुधारने के काम में लें। झगड़ों से कोई अच्छा फल नहीं मिलता है। जैन जीवन पर चलने से ही सच्ची शान्ति प्रास हो सकती है। जीओ, और दूसरों को जीना सिखाओ। यही भारत माता का दुनिया को संदेश है। आमेन...

* * *

भारत के राष्ट्रपति के साथ

जनवरी 13, 1956 को जॉर्ज की मुलाकात भारत के राष्ट्रपति डॉ.राजेन्द्र प्रसाद के साथ हुई। वे लिखते हैं:

राष्ट्रपति मेरे स्वागत के लिए खड़े हुए। बैठने के बाद सर्वप्रथम उन्होंने चाय पीने के लिए कहा परन्तु मैंने नम्रतापूर्वक मना कर दिया क्योंकि मैं कुछ यौगिक कारणों से इससे दूर रहता हूं। धर्मगुरुओं की तलाश में और दिव्यज्ञान को प्राप्त करने के लिए समूचे भारत में कई गुरुओं के पास कुछ समय रहने के और तीर्थ यात्राओं के बारे में मेरे अनुभवों को सुनने के बाद, उन्होंने मेरे द्वारा ईश्वरतत्व को प्राप्त करने के दृढ़ निश्चय पर मुझसे सुनने के बाद, उन्होंने इस विषय में काफी रुचि दिखाई और मुझे कहा कि मेरा भारत आना वास्तव में मेरे किसी पूर्व जन्म में हिन्दू धर्म साधना का ही फल है।...

मैंने उन्हें बताया कि 21 दिन के एक महाप्रज्ञ के बाद मुझे देवी पद्मावती के दर्शन हुए। मेरे महानगुरु आबू के शान्तिविजयजी महाराज, पावागढ़ के शिवविजयजी महाराज, मद्रास के श्रीरमन महर्षि, ऋषिकेश के स्वामी शिवानन्दजी आदि के द्वारा मेरे लिए बताए चमत्कारिक अनुभव, ...

गणतन्त्र दिवस (26 जनवरी, 1956) के अवसर पर राष्ट्रपति मंच के नजदीक में मुझे स्थान दिया गया। संयोग से यह मेरा जन्म दिवस था। मेरे गुरुओं का मेरे साथ आशीर्वाद... मेरी प्रार्थना है कि इस विशाल देश के मेरे प्रिय भाई और बहनों ने पिछले 18 साल से मुझे जो आतिथ्य प्रदान किया, उन्हें आशीर्वाद मिले।........''

जॉर्ज ने गुरुदेव को जैन श्रमण के रूप में दीक्षा देने के लिए बार-बार प्रार्थना की। परन्तु गुरुदेव ने हर बार उसे मना कर दिया। राजगिरी में दिसम्बर 1961 में उसका देहान्त हो गया।

* * *

इस समय (1937-38) में अनेक विद्वान और राजनेता, राजा और प्रतिष्ठित व्यक्ति गुरुदेव के दर्शन करने आबू आये। सेठ किशनचन्द के आग्रह पर राजपूताना के एजीजी सर आर्थर लोथियान और लेडी लोथियान ने अचलगढ़ पर गुरुदेव के प्रथम दर्शन किये। इस मुलाकात में उनका क्या अनुभव हुआ, इस पर उन्होंने अपनी पुस्तक में लिखा कि मेरी पत्नी और मैं इस प्रथम मुलाकात में उनसे प्रस्फुटित होने वाले श्रेय और करुणा से अत्यन्त प्रभावित हुए। सेठ किशनचन्द ने मुझे बतलाया कि इस मुलाकात के बाद बाहर आने पर सर लोथियान ने कहा : 'ये तो साक्षात् भगवान हैं।'

फ्रांस के एक विद्वान और रॉयल एशियाटिक सोसायटी के सदस्य जीं मार्कस राइविरे गुरुदेव के दर्शन कर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपनी पुस्तक तांत्रिक योग (हिन्दू और तिब्बत) को गुरुदेव को मेरे गुरु के रूप में समर्पित किया। 'भारत में मैंने

आपके दर्शन किये और आपने मुझे शान्ति प्रदान की।' बाद में उन्होंने एक गुरुभक्त को लिखा कि वह फ्रांस के लोगों की जानकारी के लिए उन पर एक पुस्तक लिखना चाहते हैं। यह पत्र और कुछ अन्य लोगों के पत्र यहां दिये जाते हैं।

जीं मार्कस राइविरे
मेम्बर एशियाटिक सोसायटी।
पेरिस, 10 जून 1938

प्रिय मित्र,

मुझे हीरालाल शाह के साथ भेजा गया भगवान का पत्र प्राप्त होने पर बहुत खुशी हुई है। आप गुरुदेव को बतलायें कि किस प्रकार मैं उनकी उपस्थिति की सजीवता का अनुभव करता हूं और सदैव उनसे आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करता हूं।

हीरालाल शाह आपको बतलायेंगे कि फ्रांस में भारतीय विचारों को अवगत कराने के लिए मैं भारत पर पुस्तकें लिखता हूं। आप भगवान के जीवन, संदेश, व्याख्यान आदि से सम्बन्धित सामग्री मुझे भेजने की कृपा करें। मेरी इच्छा यहां के लोगों को भगवान के बारे में जानकारी देने की है, परन्तु इसके लिए मैं उनकी शिक्षाओं और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्धित काफी सामग्री चाहता हूं।

आपकी कृपा के लिए मैं आपको बहुत धन्यवाद देता हूं। जो अल्प समय मैंने आबू पर बिताया उसकी याद कभी नहीं भूल सकता। यदि आपके पास भगवान के नये फोटो हों तो मेरे लिए भिजवाने की कृपा करें।

आपका शुभ चिन्तक,
जी. मा. राईविरे

क्लोड
8-12-1937

प्रिय महाराज,

मैंने जीं मार्कस राइविरे, जिन्हें आपके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, की पुस्तक 'लिनेले सेक्रिने एटला मेजिक' को पढ़ी है। मैं इस पत्र द्वारा आपको विनम्र वन्दना भेजता हूं और धर्म पथ पर आने वाली मेरी कठिनाइयों में सहारे के लिए आपसे आशीर्वाद मांगता हूं।

यद्यपि अब मेरे दिन थोड़े ही रह गये हैं (60), मैं पिछले नौ साल से सत्य की खोज में लगा हुआ हूं और यह अनुभव करता हूं कि आपने इसे पा लिया है, हालांकि हमारे कई पाश्चात्य विद्वान यह सोचते हैं कि हमें आपके देश से सीखने को कुछ भी नहीं है। मैं आप और आपके प्राच्य दर्शन की ओर आकर्षित हुआ हूं। मैं इसके बारे में बहुत

अज्ञान में हूं और केवल उस छोटे बालक की तरह हूं जो धर्म पथ पर अपने पैरों से चलना तो दूर रहा, मुश्किल से खड़ा भी नहीं हो सकता। परन्तु मुझे भक्ति मार्ग में पूर्ण विश्वास है। आपके सुन्दर देश में आकर आपके समीप बैठकर ध्यान करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिए इस पत्र के द्वारा लिखता हूं ताकि मेरा अयोग्य मन, हजारों मील से हमारे भौतिक शरीर के दूर रहते हुए भी, आपके पवित्र मन का स्पर्श कर सके। मैं आशा करता हूं कि भक्ति के पथ पर मेरा कुछ विकास होगा।

चूंकि मुझे अभी तक कोई गुरु नहीं मिला है, मैं आपसे गुरुमन्त्र मांगता हूं जिससे मुझे, जब भी आवश्यकता हो, शान्ति मिले।

–आरमपना लेमन्स

एक्स लेस बैन्स
15-3-38

एमाइल लेडर
पैवेलियन लेडर
सेवोई
पूज्य गुरुदेव,

मैं वह व्यक्ति हूं जिसे अद्‌भुत दिलवाड़ा मंदिर की यात्रा के समय 16 दिसम्बर 1936 को आपने बड़ी कृपा करके अपने सामने बुलाया। आप के पास बैठने पर मैंने जो आपकी वाणी सुनी कि 'ईश्वर प्रेम है और जहां प्रेम है वहां ईश्वर है', उसे मैं नहीं भूला हूं। मैंने आपका सुन्दर और दयालु चेहरा प्रेम से चमकता हुआ देखा और मुझे लगा कि मैं आपके सम्मुख ऊपर उठ रहा हूं। मैं आपके पवित्र व्यक्तित्व को कितनी अच्छी तरह से देखता हूं और कभी-कभी तो मुझे लगता है कि आप मुझे अभी भी कुछ कह रहे हैं और मैं आपको उत्तर दे रहा हूं। मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर को किस प्रकार धन्यवाद दूं जिसने मुझे आपके समीप आने की अनुमति दी। आपने मुझे आशीर्वाद दिया जिसे मैं अभी भी अनुभव करता हूं। मेरे लोग मुझे प्रायः पूछा करते हैं कि मेरे विश्व भ्रमण में मैं सबसे अधिक प्रभावित किस जगह हुआ। मैं उनको हमेशा यही कहता हूं कि माउंट आबू, गुरुदेव और दिलवाड़ा के मन्दिर। आप लम्बे समय तक जियें और आपसे आध्यात्मिक आशायें लेकर आयें उन पर कृपा करें। ईश्वर के प्रेम में मैं आपका पूर्ण हृदय से आभार प्रदर्शित करता हूं....।

महान योगीराज श्री विजयशान्तिसूरीजी प्राचीन योग संस्कृति के सच्चे अन्वेषक हैं। योग के अनुयायी प्राकृतिक नियमों द्वारा ऐसी घटना घटित कर सकते हैं, जिन्हें

साधारण लोग जादू समझते हैं। वास्तव में ये जादू की उपज नहीं हैं। योगशक्ति द्वारा असम्भव लगने वाली बातें सम्भव बन जाती हैं।

3 फरवरी, 1935 –डॉ. जोसे रोडरीग

इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया

---

* * *

मांडोली में नौ मास

दिलवाड़ा में 5 फरवरी, 1938 को बसन्त पंचमी मनाई गई। मांडोली के पंच वहां के जैन मंदिरों की प्रतिष्ठा करवाने के लिए गुरुदेव से विनती करने आये। गुरुदेव ने उनकी विनती स्वीकार कर ली। उत्सव की तैयारियां विशाल स्तर पर की गई। रामसीन पहुंचने पर हजारों लोगों ने गुरुदेव का स्वागत किया। वहां से गुरुदेव 8 मार्च, 1938 को मांडोली पहुंचे और करीब नौ माह वहां रहे।

मांडोली में दो विरोधी गुट थे। जब दोनों गुटों के लोगों ने मिलकर काम करना स्वीकार किया तब गुरुदेव ने उनकी विनती स्वीकार की थी। परन्तु उत्सव के पहले रात को उनमें से एक बूबाजी और उनके गुट के लोगों ने उत्सव से अलग रहने की गुप्त मंत्रणा की और फिर अपने अपने घर सोने के लिए चले गये। गुरुदेव ने रात के 12 बजे बूबाजी को बुलाया और उनसे स्पष्टीकरण मांगा। पहले तो वे झूठ बोल गये परन्तु जब उन्हें लगा कि गुरुदेव को सारी बात का पता है तो उन्होंने अपने साथियों से मिलने की आज्ञा मांगी। उन्होंने सबको उठाया और पूछा कि किसने उनके गुप्त निर्णय को प्रकट किया है। सब ने यही कहा कि किसी ने भी ऐसा नहीं किया। तब उन्होंने तय किया कि असहयोग जारी रखना ठीक नहीं होगा। बूबाजी ने गुरुदेव के पास जाकर सब बात सही सही बतला दी और फिर से सहयोग देना स्वीकार किया।

महावीर जयन्ती के अवसर पर मांडोली में एक विशाल सभा हुई। महावीर के जीवन और दर्शन पर प्रकाश डालते हुए गुरुदेव ने कहा कि जो दुर्गति में गिरते हुए लोगों को बचावे उसी का नाम धर्म है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन– पशु और मनुष्य में समान है। मनुष्य में धर्म ही ज्यादा है। धर्महीन मनुष्य पशुतुल्य है। जहां पक्षपात है वहां प्रभु महावीर का धर्म नहीं है। आजकल लोग धर्म के रहस्य को बिना समझे समाज और देश में अनेक प्रकार के झगड़े पैदा कर देते हैं। यह दुःख की बात है। महावीर ने अहिंसा का दिव्य संदेश उस समय दिया जब धर्म के नाम पर यज्ञों में निर्दोष पशुओं की बलि दी जाती थी। गुरुदेव ने कई उदाहरण देकर महावीर का कर्म सिद्धांत समझाया। जिस प्रकार तप्त

लोहे का बर्तन चारों ओर से पानी को खींचता है, उसी तरह आत्मा राग, द्वेष कर्म के परमाणुओं को खींचती है। कर्म ही प्राणियों को इधर उधर घुमाता है। महावीर ने निराले भगवान का विद्यमान होना नहीं बतलाया लेकिन कहा आत्मा में ही भगवान मौजूद है। साधु के कपड़े पहिनने से और नाम रखने से कोई आत्म कल्याण नहीं कर सकता। आत्मज्ञानी पुरुष का संयोग नहीं हुआ और आत्मा की आत्मा में शोध नहीं की, जिससे अनेक बार दीक्षा लेने पर भी इस जीव को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। आत्मा की आत्मा में शोध करें तो अवश्य ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सेठ किशनचन्द लेखराज और वाव के राणा एक ही दिन बागरा स्टेशन पर उतरे। स्टेशन पर एक ही मोटर खड़ी थी जिसे सेठजी के सचिव ने किराये कर ली। उधर राणा के कार्यकर्ता टैक्सी वाले को लालच देकर मांडोली के लिए चल दिये। उस समय अ कोई गाड़ी वहां नहीं थी इसलिए सेठ चिन्ता में पड़ गये। परन्तु कुछ समय में एक दूसरी गाड़ी वहां आ गई और वे भी अब चल दिये। आधा रास्ता तय करने पर इनको राणा वाली टैक्सी रास्ते पर खराब हालत में मिली। सेठ मन ही मन खुश हुए और एक प्रकार का अहंकार उनके मन में आया। थोड़ी दूर चलने के बाद सेठ की गाड़ी भी फंस गई और रुक गई। रात का समय था। रुक्मणी ने गुरुदेव को याद किया। इतने में एक रबारी पास आया और बोला मैं धक्का लगाता हूं। उसके धक्के देते ही गाड़ी चलने लगी। सेठ ने उस रबारी को इनाम देने का सोचा उसके पहले ही वह गायब हो गया। जब वे मांडोली पहुंचे तो गुरुदेव ने मुस्करा कर पूछा कि क्या रास्ते में मोटर ने तुम्हें तकलीफ दी और एक रबारी ने तुम्हारी मदद की?

12 जुलाई, 1938 को मांडोली में गुरुपूर्णिमा बहुत उत्साह के साथ मनाई गई। इसमें भाग लेने के लिए कुछ नरेश भी आये। गुरुदेव ने एक पेड़ के नीचे बैठकर व्याख्यान दिया। गुरुदेव ने कई सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध कहा। धार्मिक उत्सवों पर बहुत अधिक खर्च करने की भी उन्होंने आलोचना की।

सेठ किशनचन्द ने अपने घर में एक रात को आग लगने और गुरुदेव द्वारा उस समय दर्शन देकर बचाने वाली घटना की चर्चा की। जॉर्ज भी मांडोली आये थे। उन्होंने अपनी यूरोपियन पोशाक छोड़ दी थी और गुरुदेव के साथ रह रहे थे।

भोला मुनि जो पहले गूंगा था, इस समय कुछ बोलने लग गया था। गुरुदेव ने उसे भाषण देने को कहा। श्रोतागण उसका गहन भाषण सुनकर हर्ष के साथ आश्चर्य करने लगे। उसके भाषण के बाद फूलचन्दजी झाबख ने गुरुदेव से कहा: 'भगवान, यह जो बोल रहा था, वह भोला मुनि तो नहीं था। ऐसा लगता कि और कोई बड़ी शक्ति उसके द्वारा बोल रही थी।' गुरुदेव ने कहा, 'ओम शान्ति।'

धनकंवर मांजी भक्तों में भोली मां के नाम से प्रसिद्ध थी। उनकी भक्ति बहुत गहरी थी। शादी के दो साल बाद उसके पति का देहान्त हो गया था। गुरुदेव की कृपा से मांडोली

में उसने अपने पति को अलौकिक दृष्टि में देखा। तब से वह अपने आप को धन्य समझने लगी। एक बार गुरुदेव ने उसकी आयु पूछी। भोली मां ने कहा : 'सात साल'। गुरुदेव ने पूछा, 'कैसे?' भोली बोली : 'जिस दिन मुझे आपके दर्शन हुए, उस दिन को ही मेरा जन्म होना समझती हूं। उस बात को सात वर्ष हो गए हैं। उसके पहले के मेरे जीवन के वर्ष बिल्कुल व्यर्थ ही गये।' भोली मां के आध्यात्मिक विकास से भक्त लोग बहुत प्रभावित हुए। जब वह किसी को आशीर्वाद देती तो यह समझा जाता कि वह केवल गुरुदेव की इच्छा को ही व्यक्त कर रही है।

दादागुरु धर्मविजयजी के निर्वाण दिवस पर गुरुदेव ने विशाल जनसमूह को संबोधित किया। 10 अक्टूबर 1938 को जैन सम्मेलन में गुरुदेव ने सदियों पुरानी कुरीतियां जैसे कन्या विक्रय, हाथी दांत के चूड़े पहिनने का रिवाज, मृत्यु भोज एवं रोने पीटने की प्रथा को हटाने का उपदेश दिया। उन्होंने बताया कि विश्व कल्याण की भावना ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। जहां पक्षपात है वहां धर्म की संभावना नहीं है। चन्दन स्वभाव से शीतल है, परन्तु आग में डालने पर वह भी आग बन जाता है। इसी प्रकार धर्म में जब झगड़ा रूपी आग पैदा हो जाती है तब वह आग स्वरूप हो जाता है और समाज का नाश करता है। इसलिए जहां क्लेश है वहां धर्म नहीं।

गुरुदेव समय के अनुसार परिवर्तन के पक्ष में थे। नामवरी के लिए यात्रा के संघ आदि पर अधिक व्यय करना आज के समय में इतना जरूरी नहीं है जितना कि शिक्षा पर व्यय करना है।

एक निःशब्द यौगिक प्रवाह (Silent Transmission)

मांडोली में इस प्रवास के दौरान गुरुदेव ने एक योजना बनाई। परन्तु इसको ढोल बजाकर गाजे-बाजे के साथ क्रियान्वित नहीं किया गया। गुरुदेव ने भविष्य में एक महान, शक्तिशाली आत्मा के प्रकट होने के लिए आधार बनाया जो पांच साल बाद उनके शरीर छोड़ने पर उनके बचे हुए अपूर्ण कार्यों को नया रूप देगा। मांडोली के क्षितिज पर देवाजी महाराज के शरीर रूप में इस नक्षत्र का उदय तो हो चुका था। गुरुदेव के इस लम्बे प्रवास में श्री देवाजी का उनसे गहन व्यक्तिगत सम्बन्ध बन गया। श्री देवाजी उस समय 8 या 9 साल के थे।

यह गुरु बनेगा

इसी समय आध्यात्मिक शक्ति का एक निःशब्द प्रवाह हुआ। परन्तु विवेकानन्द की तरह इसे भी संदूक में बन्द रखा गया। संदूक श्री देवाजी के पास रही। चाबी शान्तिविजयजी के पास रही जो उपयुक्त समय आने पर दूर के नियंत्रण से क्रिया करने को थी। गुरुदेव ने गांव के पंचों को इस संबन्ध में कुछ ईशारा कर दिया था। उस समय वहां सेठ किशनचन्द और माणकलाल व्यांस भी मौजूद थे। परन्तु साधारणतया भक्त लोग इस

बात से उस समय तक अनभिज्ञ रहे, जब गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया। और श्री देवाजी महाराज की संदूक खुल गई और भक्तों को अंदर का खजाना स्पष्ट रूप से प्रकट हो गया। यह एक आश्चर्य से पूर्ण विषय है जिस पर विस्तार से बाद में बताउंगा। यहां केवल इतना ही बताना पर्याप्त होगा कि गुरुदेव ने मांडोली में भरी सभा में श्री देवाजी की पीठ थपथपाई और उन्हें स्पष्ट शब्दों में यह बता दिया था कि 'यह (देवाजी) गुरु बनेगा।' उस समय जितना आवश्यक था, गुरुदेव ने मांडोली में करने के बाद वहां से अन्तिम विदाई ली।

उम्मेदपुर प्रतिष्ठा

मांडोली में करीब नौ मास के आवास के बाद गुरुदेव ने वहां से अन्तिम विदाई ली। गुलाबचंदजी ढढ्ढा एक डेपूटेशन लेकर मांडोली आये और गुरुदेव से उम्मेदपुर प्रतिष्ठा महोत्सव पर पधारने की विनती की। गुरुदेव ने 25 नवम्बर 1938 को मांडोली से उम्मेदपुर के लिए प्रस्थान किया। 28 तारीख को अपने गांव मणादर पहुंचे। आठ वर्ष की उम्र में अपना घर छोड़ने के बाद अब पहली बार मणादर पधारे। गुरुदेव वहां दो दिन ठहरे और 1 दिसम्बर को उम्मेदपुर पहुंचे। वहां करीब 30,000 यात्री आये थे। ढढ्ढाजी के अनुसार 2 दिसम्बर को दिन के 11:21 से 11:26 बजे प्रतिष्ठा का कार्य सम्पन्न हुआ। संस्कार के बाद गुरुदेव अपने कमरे में चले गये। दोपहर को जोधपुर के मुख्यमंत्री सर डोनेल्ड फील्ड और शिक्षा निदेशक ए.पी. कॉक्स वहां गुरुदेव के दर्शन करने आये। छह तरह के बैण्ड द्वारा उनका स्वागत किया गया। स्वागत के बाद सर फील्ड और कॉक्स गुरुदेव के पास गये और वहां दस मिनट रहे। सर फील्ड ने गुरुदेव से आशीर्वाद के लिए प्रार्थना की। तब गुरुदेव ने उनके सिर की तरफ हाथ कर (उनके सिर कुछ झुके हुए थे) कुछ मंत्रोच्चारण किया और उन्हें मालायें दी। मुख्यमंत्री ने छोटा सा भाषण दिया और कार द्वारा 1:15 बजे जोधपुर चले गये।

ईर्ष्यालु मानव–देवता

इस समय तक जैन और अजैन दोनों में गुरुदेव आबू के महात्मा के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। जैनों के सभी संप्रदायों के कुछ प्रमुख गुरु, जैसे कुछ दिगम्बर जैन और स्थानकवासी साधु जैसे मंगलचन्दजी, नानचन्दजी और मिश्रीलालजी गुरुदेव की बहुत प्रशंसा करते थे। श्वेताम्बर मन्दिरमार्गियों में केसरसूरीजी और अनेक साधु साध्वी गुरुदेव को पूज्य मानते थे। परन्तु अन्य जैन साधु प्राय: गुरुदेव से ईर्ष्या करते और उनकी निन्दा करते थे।

यहां पर मैं कुछ ऐसी आशोभनीय घटनाओं का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता जो जैन समाज के ईर्ष्यालु साधु और उनके भ्रष्ट अनुयायियों ने गुरुदेव के शरीर और नाम को नुकसान पहुंचाने के लिए रची थी। परन्तु उनकी योजनाओं पर पानी फिर गया और गुरुदेव अधिक कीर्ति के साथ उभर कर निकले।

हालांकि गुरुदेव जैन संत थे परन्तु उन्होंने अपनी शिक्षाओं और व्यवहार से कभी

भी साम्प्रदायिक संकीर्णता का परिचय नहीं दिया। इसलिए संकीर्ण मानसिकता वाले जैन गुरु और अनुयायी उनके विरुद्ध भावना रखते थे और अविवेकपूर्ण दोषारोपण किया करते थे। उनका आचरण एक जैन के रूप में अशोभनीय था। मेरी इच्छा के विरुद्ध भी मैं कुछ ऐसे कड़वे सत्यों पर कुछ प्रकाश डालना चाहता हूं क्योंकि ऐसे लोग जैन जैसे महान नीतिदर्शन पर कलंक बने हुए हैं।

मैंने ऊपर बताया है कि गुरुदेव के शुरूआती भक्त और प्रशंसक जो उन्हें गुफाओं से बाहर प्रकाश में लाये प्रायः अजैन थे। परन्तु जब राजा–महाराजा और उच्च स्तर के ब्रिटिश अधिकारी गुरुदेव के चरणों में बैठने लगे तब जैन भी उनके पास आने लगे। परन्तु उनके सम्प्रदायों के गुरुओं को यह अच्छा नहीं लगता था। प्रोफेसर ज्ञानचंद वैद ने मुझे लिखा कि खतरगच्छ सम्प्रदाय के गुरु जिनुदय सागर और महोदय सागर ने यह प्रचार किया कि शांतिविजयजी एक सच्चे जैन साधु नहीं हैं। वे तो केवल एक फकीर बाबा हैं, एक तांत्रिक हैं, जादूगर हैं, इत्यादि। कल्याणविजयजी (जालोर) नाम के एक जैन साधु ने अपनी पुस्तक प्रबंध-पारिजात में गुरुदेव की आलोचना में कई पृष्ठ भर दिये हैं। मोतीलाल कोठारी (जज, पालनपुर) ने मुझे बताया कि कई जैन साधु यह प्रचार करते हैं कि शांतिविजयजी ने अशुभ शक्तियों जैसे कर्णपिशाची की पूजा की है जिससे आकाश में उड़कर जाने जैसे चमत्कार बताते हैं। जैन साधु इस प्रकार के काम नहीं किया करते, आदि। ईसा के भी आलोचक यह कहा करते थे कि बीलजीबब नाम का शैतान–शिरोमणि जीसस के भीतर रहता था जिससे वे चमत्कार दिखाते थे। मोतीभाई लिखते हैं कि जो लोग ऐसी बातें कहते हैं मानसिक दृष्टि से खोखले हैं। वे सच्चे आत्मज्ञान की पहिचान नहीं कर सकते।

जैन दर्शन के अनुसार उच्चतम ज्ञान के साथ ही उच्च कोटि का चारित्र भी रहता है। बाद में आचार्यों ने धर्म को अपने सम्प्रदाय की आचार संहिता के पालन में ही सीमित कर दिया हालांकि आचार्य लोग इस विषय पर एक मत नहीं है कि वो आचरण क्या होना चाहिए। इस विषय पर उनके आपस में झगड़े होते गये जिससे परस्पर विरोधी सम्प्रदाय बनते गये और अब उन सम्प्रदायों के एक करने के सभी प्रयास असफल हो रहे हैं। यदि योगी या महात्मा के जीवन में उनका किसी प्रकार का निषेध दिखाई देता है, तो वह उनके लिए निष्कासित बन जाता है। ऐसे आचार्यों के लिए शान्तिविजयजी भी मान्य नहीं थे।

योगीराज, परन्तु जैन गुरु नहीं

कई प्रमुख जैन शान्तिविजयजी की योगीराज के रूप में महानता को तो मानते परन्तु वे उन्हें एक जैन आचार्य के रूप में मानने को तैयार नहीं थे क्योंकि उनके अनुसार गुरुदेव का आचरण एक जैन साधु की मान्यताओं के अनुरूप नहीं था। उदाहरण के लिए, जैन साधु सूर्यास्त के बाद बाहर विचरण नहीं करते। परन्तु शान्तिविजयजी आबू के जंगलों में रात को जाकर ध्यान करते थे। आलोचक यह भूल जाते हैं कि भगवान महावीर और

बुद्ध जंगलों में, शमशान में और पेड़ों के नीचे ध्यान करते थे। (आचारांग सूत्र, 1.8.2) उस समय मन्दिर, मठ या स्थानक नहीं थे।

एक भक्त के मन में यह शंका हुई कि जैन साधु तो गोचरी के लिए जाते हैं और गृहस्थ द्वारा उनके पास लाया हुआ खाना नहीं लेते। उसने एक भक्त को मिट्टी के पात्र में छाछ और बाजरी का दलिया लाकर गुरुदेव को वहां बहराते देखा। उसके मन में शंका होते ही गुरुदेव ने शास्त्र (उत्तराध्यायनसूत्र) का हवाला देकर बताया कि कुछ अवस्थाओं में योगी गृहस्थ के द्वारा लाई गई चीज को ले सकते हैं। : 'कई प्रमुख जैनी यह कहते हैं कि शांतिविजयजी के पास सिद्धियां तो थी। मैने उनको पूछा-'तो' से आपका क्या अर्थ है ?' उनका यह कहना है कि उनके पास सिद्धियां थी, परन्तु उसके परे और कुछ नहीं था। परन्तु उसके परे और क्या है और वह किसके पास था और किसके पास है। इस विषय पर प्रमाणपत्र देने की योग्यता किसमें है ? यह आलोचना तो सभी प्राचीन महापुरुषों के विरुद्ध दी गई थी और दी जा सकती है। मूसा, ईसा, मोहम्मद, महावीर और बुद्ध इसके अपवाद नहीं रहे। जैव जगत में भी महावीर, जमाली और गोशाल ने अपने आपको सर्वज्ञ बताया परन्तु अन्य किसी के ऐसे दावों को अस्वीकार कर दिया। बाद में जैन जगत में कई अन्य महापुरुष भी हुए परन्तु उनमें किसी को अरिहंत या तीर्थंकर की मान्यता नहीं मिली।

श्रीसंघ-आध्यात्मिक परीक्षक

जैन जगत में चतुर्विध संघ की मान्यता के अधीन धार्मिक स्तर के पद जैसे मुनि, उपाध्याय, आचार्य, सिद्ध आदि- प्रदान करने का अधिकार श्रीसंघों को दिया गया। परन्तु क्योंकि आत्मानुभव एक व्यक्तिगत अनुभव है, क्या कोई भी अन्य व्यक्ति या व्यक्ति समूह में इस प्रकार की योग्यता है कि वह किसी को केवली घोषित करदे और साथ में यह भी कह दे कि उस व्यक्ति ने किस दिन, किस माह और किस वर्ष में केवल ज्ञान प्राप्त कर लिया था। किसी भी परीक्षक की योग्यता परीक्षार्थी से कम नहीं होनी चाहिए। किसी साधु की महानता को मानना एक बात है, परन्तु किसी भी मानव में इतनी योग्यता नहीं है कि वह आत्मविकास के विभिन्न दावों पर अपना तुलनात्मक निर्णय दे सके।

सामान्यतया जैनी शांतिविजयजी को केवली या तीर्थंकर नहीं मानते। परन्तु कई अजैन उन्हें ऐसा मानते हैं। बीकानेर महाराज गंगासिंहजी ने एक बार कहा कि जैन शान्तिविजयजी को केवली नहीं मानते परन्तु मैं मानता हूं। महापुरुषों के भक्त और आलोचक अपने-अपने चश्मों से देखते हैं।

* * *

आपराधिक षड्यंत्र

गुरु प्रसाद व्यास (मैनेजर, शांति सदन, माउंट आबू) ने मुझे बताया कि कुछ जैन साधुओं ने शांतिविजयजी की हत्या करने के लिए गुण्डों को भेजा। यह बात उन गुंडों ने स्वयं ही बाद में बताई। एक अन्य भक्त तखतराज गेमावत जो उस समय आबू में पुलिस अधिकारी थे, मुझे बताया कि यह घटना 1936 के आसपास की है। उस समय कुछ अजैनों ने उन गुण्डों को पकड़ लिया था।

एक अन्य घटना उम्मेदपुर में प्रतिष्ठा समारोह (मई, 1935) की है। अगरचन्द नाहटा, एक जैन विद्वान, लिखते है: 'जब मैं उम्मेदपुर था, उस समय प्रतिष्ठा महोत्सव पर एक अप्रिय प्रसंग बन गया। कई जैन साधु और हजारों लोग वहां इकट्ठे हुए थे। गुरुदेव का प्रवचन आचार्य ललितसूरिजी के साथ बैठकर होने वाला था। उस समय पहले ऊपर कौन बैठे और नीचे कौन बैठे उसके बारे में दोनों आचार्यों के भक्तों में बड़ा-विवाद, धक्का-मुक्की और कोलाहल हुआ। परन्तु मैंने देखा कि योगीराज तो पत्थर की मूर्ति की तरह शान्त बैठे रहे। उन पर आसपास के वातावरण के तनाव का कोई भी असर नहीं हुआ। विपरीत परिस्थिति में ही व्यक्तित्व की कसौटी होती है। अपने प्रति विरोध एवं निन्दा करके कटु वचन बोलने वालों पर भी तनिक रोष न आवे और निन्दा एवं प्रशंसा में समभाव रखकर रहे ऐसी कसौटी में से पार होने वाला ही महापुरुष बन सकता है, यह प्रत्यक्ष देखा... उस समय मुझे विश्वास हुआ कि उनका नाम सार्थक है। वे त्रिकालज्ञानी थे, युग पुरुष थे।... उनको कोटी-कोटी वन्दना करता हूं।'

आपके दर्शन क्यों नहीं ?

2 दिसम्बर, 1938 को जोधपुर के प्रधानमंत्री सर डोनाल्ड फील्ड और ए.पी. कोक्स गुरुदेव के दर्शन करने आये। जैसा ऊपर लिखा, वे गुरुदेव के चरणों में कुछ समय बैठे रहे। इसके बाद कार से चले गए। अन्य जैन गुरु ललितसूरीजी भी पास के कैम्प में ठहरे हुए थे। उनके भक्त बहुत नाराज हुए क्योंकि प्रधानमंत्री उनके दर्शन के लिए नहीं गये और केवल शांतिविजयजी के दर्शन करके चले गये। उन्होंने इसे अपने गुरु महाराज का अपमान समझा। उन्होंने अपने गुरुजी को भड़काया और कहा कि उन्हें अपना अपमान अब और अधिक नहीं सहना चाहिए और उस जगह से फौरन चले जाना चाहिए। उनके गुरुओं ने भी ऐसा ही किया और लोगों से पूछा कि उन मनीषियों को हमारे पास (दर्शन के लिए) क्यों नहीं लाये?

यह आजकल एक सामान्य अनुभव है कि सभी धर्म और सम्प्रदाय के गुरु अपने आपको गौरवान्वित समझते हैं जब चोटी के नेता उनका व्याख्यान सुनने आते हैं और इसका विवरण अखबारों में प्रसारित किया जाता है। दूसरी तरफ देखिए- राजा, महाराजा और ब्रिटिश सरकार के उच्च प्रतिनिधि आबू की गुफाओं में शान्तिविजयजी के दर्शन को

आते थे उसकी जानकारी लोगों को बहुत कम होती थी।

शांति सदन आबू में मैंने राजा, महाराजा और ब्रिटिश अधिकारियों के सैकड़ों पत्र और तार देखे हैं। जोधपुर के रणजीतमलजी मेहता ने मुझे बताया कि बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी ने अपने स्वर्ण जयंती महोत्सव (1937) के अवसर पर गुरुदेव को बीकानेर आने की बार-बार प्रार्थना की। वे यह चाहते थे कि इस अवसर पर वायसराय और गुरुदेव का मिलना हो सकेगा। परन्तु गुरुदेव ने मना कर दिया और लिखा कि उस समय उनका वहां आना नहीं हो सकेगा और उत्सव की सफलता के लिए आशीर्वाद भेज दिया। कैसा अन्तर उन छोटे-छोटे देवताओं से जो राजनीतिज्ञों- राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि के संग में अपने को पाकर गौरान्वित अनुभव करते हैं!

साम्प्रदायिक गंदगी

हमने देखा कि किस प्रकार मुनि मिश्रीलालजी ने अपने संप्रदाय के 'भाइयों' द्वारा उनके 167 दिन के उपवास के अन्त के लिए शान्तिविजयजी को श्रेय न देने के लिए उनके दबावों का सामना किया। जैन समाज के कुछ वर्गों की तुच्छ बुद्धि का एक और उदाहरण देखिये पालीताना में शत्रुजंय पहाड़ी जैनों का एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ है। पालीताना के नरेश उसकी पेढ़ी से वार्षिक शुल्क लिया करते थे। पेढ़ी वालों ने नरेश से शुल्क कम करने की प्रार्थना की। पालीताना के महाराजा स्वयं गुरुदेव शान्तिविजयजी के भक्त थे। उन्होंने सुझाव दिया कि शांतिविजयजी का इस विषय में जो आदेश होगा वह उन्हें मान्य होगा। इस पर कुछ जैन नेताओं ने कहा कि इस संबंध में निर्णय शांतिविजयजी पर ही छोड़ दिया जाय। परन्तु पेढी में कुछ ऐसे तत्व थे जो यह नहीं चाहते थे कि समस्या को सुलझाने का श्रेय शांतिविजयजी को मिले। उन्होंने तय किया कि वे स्वयं ही समस्या से निपट लेंगे। उन्होंने पालीताना नरेश से सीधी बातचीत कर ली और सालाना 60,000/- का कर देने पर राजी हो गये, जो कि बहुत अधिक था। यदि वे शांतिविजयजी की मध्यस्थता को स्वीकार कर लेते तो बहुत कम रुपयों में मामला निपट सकता था। परन्तु उनकी ईर्ष्या और हठधर्मिता ने उनके मनस को गंदा कर रखा था।

कोई भेंट नहीं

प्राय: भक्त लोग गुरुदेव के पास भेंट ले जाते या भेजते थे। कुछ आलोचक यह कहते कि गुरुदेव उनकी भेंट अपने पास रखते थे। मैं इस विषय में कुछ उदाहरण देना चाहता हूं। अपने राज्याभिषेक के बाद (अप्रेल, 1933) जाम साहिब दिग्विजयसिंहजी गुरुदेव के दर्शनार्थ आबू आये। उन्होंने गुरुदेव को 6000 रुपये भेंट किये। गुरुदेव ने इसे स्वीकार नहीं किया। लिंबड़ी नरेश ने यह राशि आबू के पशु चिकित्सालय के लिए स्वीकार करने का कहा। परन्तु गुरुदेव ने मना कर दिया।

अचलगढ़ में नेपाल के राणा गुरुदेव के दर्शन करने आये। उनके बैठने के लिए

चद्दर बिछाई गई, परन्तु उन्होंने हटा दिया। राणा अपने साथ एक चैक लाये थे जो एक बन्द लिफाफे में अपनी लड़की को गुरुदेव के चरणों में रखने के लिए दिया। जब राजकुमारी ने ऐसा किया तो गुरुदेव ने पूछा 'इसमें क्या है ?' उस समय कुछ अन्य लोग भी बैठे थे इसलिये राणा ने यही कहा कि इसमें कोई खानगी चीज है। गुरुदेव ने कहा, 'साधु के क्या खानगी होता है ?' और मोतीभाई कोठारी (पालनपुर) को लिफाफा खोलने को कहा। जब मोतीभाई ने देखा कि चैक है तो वे भी बताने से हिचकिचाने लगे। तब गुरुदेव ने कहा 'बोलो क्या है ?' मोतीभाई ने कहा कि एक चैक है और यह पैसा किसी शुभ काम में लगाने के लिए है। गुरुदेव ने उसे नहीं रखा और लौटाने की आज्ञा देते हुए राणाजी को कहा कि इसे आप अपने ही राज्य में किसी शुभ काम में लगा देना। गुरुपूर्णिमा पर कई राजा और धनी भक्त गुरुदेव को भेंट भेजा करते थे। परन्तु गुरुदेव अपने पास केवल मालाएं रखते थे। पैसे को गरीबों की मदद के लिए दिलवा देते थे। मिठाई, फल जैसी चीजें वहां पर बैठे लोगों में बांट दी जाती थी।

गुरुदेव के कमरे में उनके पास केवल एक सूत का झाडू (ओधि) था जिससे कि वे कीड़े-मकोड़ों को मरने से बचाने के लिए जमीन साफ किया करते थे। राजपुताना और काठियावाड़ के कई राजा लोग उनके चरणों में साधारण लोगों के साथ बैठा करते थे और सभी के साथ वन्दना करते थे। परन्तु केवल एक ही उपहार ऐसा था जो वे गुरुदेव को लेने के लिए तैयार कर सकते थे और वे थी मालाएं जो वे दूसरे भक्तों को देने के लिए रख लेते थे....। (कुक)

गुरुदेव को शुभ कार्य के लिए भी बुरे तरीकों से कमाये हुए धन का उपयोग अच्छा नहीं लगता था। एक बार उन्होंने एक जैन विश्वविद्यालय बनाने का सोचा था। कई धनी लोगों ने अपना चन्दा लिखा दिया। कुछ लोगों ने पैसा भेज भी दिया। इसके कुछ समय में द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया। व्यापारी धनी होते गये। जब चन्दा देने वालों की सूची की जांच की गई तो गुरुदेव ने कहा कि यह पैसा अशुभ तरीकों से कमाया हुआ है और उन्होंने विश्वविद्यालय बनाने का विचार छोड़ दिया। उन्होंने आज्ञा दी कि यह पैसा उन चन्दा देने वालों को लौटा दिया जाय। यह पैसा खून से रंगा है। इससे विद्यार्थियों के दिमाग खराब हो जायेंगे।

एक बार गुलाबचन्द ढढ्ढा ने जो गुरुदेव के अच्छे भक्त माने जाते थे और समाज सुधारक भी थे, गुरुदेव को प्रार्थना की कि उनकी एक जैन स्कूल की मदद के लिए वे कलकत्ता के एक धनी भक्त से कहें। परन्तु गुरुदेव ने कहा: 'ये कलकत्ता के बाबू उन गंदे कपड़ों की तरह हैं जो साबुन से भी साफ नहीं हो सकते।' गुरुदेव जानते थे कि उनके भक्त सामान्यतया इस तरह के थे।

गुरुदेव इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि उनके सम्बन्धी या नजदीक रहने वाले लोग उनसे निकटता का दुरुपयोग न करें। उनके मांडोली में प्रवास के दौरान उनकी

माता वसुदेवी वहां आई हुई थीं। भक्तों का उनके लिए बहुत आदर था। वे उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। वे उनके पास जाते और भेंट भी देते थे। गुरुदेव को यह पसन्द नहीं था। परन्तु कुछ भक्त चुपके से जा कर दे देते थे। अजमेर की एक भक्त ने उनको चुपके से चार सौ रुपये दे दिये। गुरुदेव ने उस औरत को बुला कर डांटा और कहा : 'तुम आज की आज यहां से चली जाओ।' वसुदेवी से रुपये वापिस ले लिये गये और दूसरे गरीब लोगों को दे दिये गये।

एक अवसर पर फलोदी के एक धनी भक्त ने अन्य भक्तों को चांदी की ग्लासें वितरित की। एक चांदी की ग्लास गुरुदेव के माताजी को भी भेजी गई। जब गुरुदेव को पता पड़ा तो उन्होंने ग्लास देने वाले को और अपनी माताजी दोनों को फटकारा। उन्होंने कहा : 'बकरी के मुंह में मतीरा नहीं टिक सकता।'

एक व्यापारी के पास अन्न का विशाल भण्डार था। उसने सोचा कि यदि अकाल पड़ जाय तो अच्छा रहेगा। अन्न के भाव बढ़ जायेंगे। गुरुदेव ने कहा 'मनुष्य कितने स्वार्थी होते हैं। वे केवल अपने स्वार्थ का ही सोचते हैं। वे अपने थोड़े से लाभ के लिए सारे जगत का पाप अपने ऊपर ले सकते हैं। वे चाहते हैं कि यदि युद्ध लम्बे समय तक चले तो उनके लिए अच्छा रहेगा।'

देलवाड़ा का एक व्यापारी भक्त दुर्गाचन्द गुरुदेव के पास ठहरा हुआ था। महायुद्ध चल रहा था। रोज कीमतें बढ़ रही थी। दुर्गाचन्द ने मन में सोचा कि यदि वह उस समय दिलवाड़ा की बजाय बेजवाड़ा में होता तो खूब पैसा कमा लेता। रात को गुरुदेव ने उसे बुलाया और कहा : 'तुम युद्ध के पापों से क्यों लाभ उठाना चाहते हो?' दुर्गाचन्द को अपने विचार पर अफसोस हुआ और उसने कुछ व्रत लिये।

अधिकतर अशुभ तृष्णा के कारण होते हैं। जर्मनी के पास क्या जमीन की कमी थी? ब्रिटेन के पास भी क्या कमी थी? पर वे दोनों तृष्णा के कारण झगड़ते हैं। गुरुदेव ने कहा : 'आने वाले समय में जो व्यक्ति शुभ साधनों से प्राप्त रोटी खाएगा उसे आधुनिक आचार्य के जितना पुण्य होगा।' कोई भी साधु, शिक्षक या बड़ा आदमी हो सकता है। वह अपनी मन की स्थिरता को खो देगा यदि वह अशुभ साधनों से धन कमाएगा। अपने खाने के बाद जो कुछ बचे उसे गरीबों और पशुओं को देना चाहिए।

गुरुदेव गरीबों को प्यार करते थे जो मन के साफ होते थे। मोतीभाई पोरवाल लिखते हैं: 'मांडोली में एक तेली गुरुदेव के पास आया। वह जाने की जल्दी में था परन्तु गुरुदेव ने उसे आज्ञा नहीं दी। उसके कपड़े गंदे थे। कई भक्त बैठे थे। गुरुदेव ने उसे आगे बुलाया और पास में बिठाया। उसे कहा: 'दो पैसे का साबू ये सब बाबू साबू से साफ होकर मेरे पास आये हैं। तू अन्दर से साफ है। जाऊं-जाऊं क्यों करता है? अभी मत जा। घर में सब आनन्द है। शांति से बैठ।'

वास्तविक अछूत

धनी लोगों के प्रति गुरुदेव के रुख को उनकी उस चेतावनी ने स्पष्ट किया है जो उन्होंने डॉ.लीलूभाई मेहता को दी। गुरुदेव ने उन्हें कहा: 'मेरे पास राजा, महाराजा, करोड़पति वगैरह आते हैं। वे जलते हुए तपन जैसे हैं। उनके परिचय में नहीं आना और उनका पानी भी नहीं पीना। दूर से जय गुरुदेव कह देना।... ढेड का स्पर्श हो जाये तो स्नान कर लेने की जरूरत नहीं, परन्तु बनिये की परछाई पड़ जाए तो स्नान कर लेना।'' लीलूभाई लिखते हैं : 'इसलिए मैं गुरुदेव के सान्निध्य में रहते हुए भी सबसे दूर ही रहता था।'

कानून से नहीं

गुरुदेव ने मांस, शराब और शिकार का त्याग करने की शिक्षा दी। कई लोगों ने इस तरह के व्रत लिए। उन्होंने लोगों को कहा कि बड़े-बड़े उत्सवों पर खर्चा नहीं करें और शादी के अवसर पर भी फिजूलखर्ची नहीं करें। परिवार के लोगों द्वारा कई दिनों तक मृत्युभोज करने का भी उन्होंने मना किया।

गुरुदेव ने दहेज के विरुद्ध भी कहा। कुछ लोगों के माता-पिता अपनी लड़की के लिए लड़के वालों से दहेज लेते हैं, वरना लड़की के लिए लड़का मिलना कठिन हो जाता है। एक श्रावक ने कहा : 'गुरुदेव, मैं कुछ तिथियों पर उपवास करता हूं। मैं आधे महीने तक हरी सब्जी नहीं खाता हूं। मैं रात्रि भोज भी नहीं करता हूं। मैं सब धार्मिक विधियों का पालन करता हूं।' तब गुरुदेव ने कहा: 'परन्तु तुम अपनी लड़कियों के लिए पैसा मांगते हो। यह तुम्हारे सब पुण्य का सफाया कर देता है।' उस व्यक्ति ने कहा: 'गुरुदेव हम क्या कर सकते हैं? हमारे यहां तो ऐसा ही रिवाज है।' तब गुरुदेव ने उसे बहुत मिठास से समझाया और बाल-विवाह की बुराई के विरुद्ध भी शिक्षा दी।

गुरुदेव ने औरतों द्वारा हाथी-दांत के चूड़े पहनने की प्रथा के विरुद्ध कहा क्योंकि इसके लिए सैकड़ों हाथी मारे जाते हैं। उन्होंने औरतों में घूंघट के रिवाज को भी बुरा कहा। यह रिवाज तो मुसलमानों के राज से शुरू हुआ था। इसके पहले यह नहीं था। उन्होंने चाय और तम्बाकू की चीजों के सेवन को स्वास्थ्य के लिए नुकसानदायक बताया और कहा कि ये बुरी आदते हैं।

उन्होंने कहा कि किसी के मरने पर खुले में जोर-जोर से रोना भी ठीक नहीं है। पारसी और मुसलमान ऐसा नहीं करते हैं। गुरुदेव अपने भक्तों को बारबार सट्टे से दूर रहने का कहते थे। सट्टा करने वाले का जीवन दुखमय हो जाता है। उसका मन अशान्त रहता है। उसको ठीक से नींद भी नहीं आ सकती। यदि तुम्हें खाने को नहीं मिले तो घास खाकर ही रह जाना, या भीख मांग लेना, परन्तु सट्टा कभी नहीं करना।

एक समय सभी जैन यह मानते थे कि सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करना। इसलिए जैन पूर्णतया इस नियम का पालन करते थे, अपने व्यावसायिक कार्यों में भी।

परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इस नियम का उल्लंघन और सूर्यास्त के बाद खाना उनके लिए सामान्य बात हो गई है। केवल गृहस्थ ही नहीं, जैन साधु भी दृढ़ता से इसका विरोध नहीं करते और जैन मत के इतने गंभीर विषय पर भी मौन स्वीकृति का रुख बनाये रखते हैं।

जैन चतुर्विद संघ में पैसे सम्बन्धी मामलों में श्रावकों का ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में नियन्त्रण रहता है। आवश्यक सुधारों की प्रगति में पैसे का कई तरह से महत्व रहता है। परन्तु कई धनी लोग विशाल स्तर पर यात्री संघ निकालते हैं और वह भी केवल अपने नाम और यश को प्राप्त करने और अपने पैसे का प्रदर्शन करने के लिए।

गुरुदेव को यह भी पसन्द नहीं था कि मंदिरों में घी की बोलियों में धनी लोग अपने पैसे के बल पर प्राथमिकता प्राप्त कर लें। गरीब और अमीर सब के साथ एक सा व्यवहार होना चाहिए।

सन् 1996 में यह प्रश्न उठा कि अचलगढ़ में नवनिर्मित गुरुदेव के मन्दिर में उद्घाटन के उत्सव का श्रेय किसे मिले। भक्तों ने कहा कि मन्दिरों में उत्सवों पर इस प्रकार के विषय पर धनी लोगों की आपस में होड़ लगे। आखिर में यह तय हुआ कि भक्तों में सबसे वरिष्ठ भक्त का चयन हो। तदनुसार, शान्ता बहिन का इसके लिए चयन हुआ। परन्तु आज भी अन्य मंदिरों में और गुरुदेव के मंदिरों में भी वही पुरानी प्रथा अपनाई जाती है।

विश्व–प्रेम

गुरुदेव के कोई अपने विशेषरूप से प्रिय नहीं थे। फिर भी जिन लोगों को उनका आशीर्वाद मिल जाता वे अपने आप को विशेष रूप से चयनित भक्त समझने लग जाते। उनमें से कई लोगों को ईर्ष्या हो जाती जब गुरुदेव किसी आगन्तुक को विशेष स्थान देते, वो भारतीय हो या विदेशी, जैन हो या अजैन।

कई बड़े लोग दूर–दूर से गुरुदेव के पास आते थे। उनमें से कुछ लोग गुरुदेव से अकेले में मिलना चाहते थे। जब गुरुदेव को किसी से अकेले में बात करना होता तो वे कह देते 'ओम शान्ति' और अन्य लोग बाहर चले जाते। एक बार शान्ता बहिन ने गुरुदेव को पूछा कि वे उन श्रीमन्तों को महत्व क्यों देते हैं ? तब गुरुदेव मुस्कराये और कहा: 'ये लोग तो कभी–कभी ही आते हैं, जब कि तुम तो इतने नजदीक हो। वैसे मेरे लिए सभी बराबर हैं।'

एक बार गुरुदेव ने गंगासिंहजी से पूछा कि आपकी इच्छा क्या है ? आप क्या चाहते हो ? तब गंगासिंहजी ने कहा कि मेरी प्रजा को आपकी भक्ति प्रदान करो। वे कहते थे कि गुरुदेव भगवान केवली हैं। भले कोई माने या न माने मैं तो यह दृढ़ता के साथ कह सकता हूं।

एक बार बीकानेर दरबार गुरुदेव के दर्शन के लिए दिलवाड़ा आये हुए थे। जोधपुर रियासत के कुछ अधिकारी भी दिलवाड़ा में ठहरे हुए थे। उनमें से एक बिलमचन्दजी

भंडारी (वित्त सचिव, जोधपुर राज्य) नहाते हुए गुरुदेव के बारे में कुछ अनावश्यक बात सोचने लगे। उन्होंने मन ही मन सोचा कि आज गुरुदेव के दर्शन नहीं होंगे क्योंकि गुरुदेव राजाओं के साथ व्यस्त होंगे। 'वे तो राजा-महाराजाओं के गुरु हैं।' जैसे ही वे नहा कर निकले, गुरुदेव का एक आदमी उन्हें बुलाने के लिए आ गया। जब भंडारीजी गुरुदेव के पास गये, बीकानेर दरबार तथा अन्य कुछ लोग वहां बैठे हुए थे। भंडारीजी को गुरुदेव ने कहा: 'आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि मैं केवल राजा-महाराजाओं का गुरु हूं? आप मुझे उतने ही प्रिय हो जितने गंगासिंहजी।' गंगासिंहजी इस वार्ता से बहुत प्रभावित हुए। वे उठे और उन्होंने भंडारीजी को गले लगा लिया।

बीकानेर के यति जयकरणजी ने मुझे बताया कि अचलगढ़ में एक बार एक भिखारी जैसा व्यक्ति आया। वह गुरुदेव से मिलना चाहता था। परन्तु शान्ता बहिन के पिताजी भगवानजी भाई ने उसे गुरुदेव से मिलने नहीं दिया और उसे डांट दिया। इतने में ही गुरुदेव स्वयं बाहर आये और उस भिखारी को आवाज दी। गुरुदेव ने वहां खड़े भक्तों को उस भिखारी का परिचय करवाते हुए कहा कि यह एम.ए., एल.एल.बी. हैं और एक समय मेयो कालेज (अजमेर) में प्रोफेसर था। यह मेरे पास रहता था और मेरे पत्र लिखता था। उस भिखारी ने गुस्से में आकर भगवानजीभाई को पूछा: 'तुम्हें यह अधिकार किसने दिया जो तुम ही तय करते हो कि गुरुदेव के पास कौन आयेगा?' गुरुदेव ने उसे जो सम्मान दिया उसे देख कर वहां खड़े लोग आश्चर्यचकित रह गये।

यह घटना कई तरह से महत्वपूर्ण है। यह उन कुछ बड़े लोगों को सीख देती है जो अपने आपको भक्ति का एकाधिकारी समझते हैं। बहुत कम साधुओं में इतना साहस है कि वे अपने वृथा अभिमानी भक्तों को उनकी सीमा का परिचय करवा दें ताकि गरीब लोग भी गुरु के चरणों में बैठने का अवसर प्राप्त कर सकें।

आज के साधु और साध्वियों को शान्तिविजयजी के उदाहरण से यह सीखना चाहिए कि वे गृहस्थी से किस प्रकार का सम्बन्ध रखें ताकि वे सही दिशा में रहें। उनकी मुख्य जरूरत यह है कि वे गृहस्थ के अधिक नजदीक नहीं बल्कि पर्याप्त दूरी पर रहें।

बांकली से गुरुदेव खींवादी पधारे। वे वहां एक सप्ताह रहे और समाज में सुधार लाने की शिक्षाएं दी। उन्होंने बतलाया कि कानून द्वारा समाज को सुधारने का प्रयत्न करने से भ्रष्टाचार बढ़ता है इसलिए जनता को शिक्षित किया जाना चाहिये ताकि लोग स्वयं ही वैसा करने लगें।

21 दिसम्बर को गुरुदेव ने पोमावा की तरफ विहार किया। वहां से शिवगंज पधारे। शिवगंज में दिन के समय पोरवाल धर्मशाला में रहते और रात में दादाबाड़ी चले जाते। 3 जनवरी, 1939 को सिरोही नरेश गुरुदेव के दर्शन के लिए आये और करीब सवा घंटे पास में रहे। डॉ.शरोफ भी इन्हीं दिनों गुरुदेव के दर्शन के लिए आये। 25 जनवरी, 1939 को शिवगंज में बसन्त पंचमी बड़े धूमधाम से मनाई गई।

शिवगंज से गुरुदेव ने अनादरा की तरफ विहार किया। रास्ते में कई छोटे-छोटे गांवों में ठहरे और 20 अप्रेल, 1939 को अनादरा पहुंचे। 25 मई को माउंट आबू पर शान्तिविजय पशु चिकित्सालय में लिंबड़ी नरेश द्वारा बनवाया गया कुआं जनता के उपयोग के लिये समर्पित कर दिया गया जिसका उद्घाटन रेजीडेन्ट सर लोथियान ने किया। 11 जनवरी 1940 को वायसराय को एक पत्र भेजा गया जिसमें गुरुदेव की शुभकामनाएं थीं। वायसराय ने अपने 22 जनवरी के पत्र में इन शुभकामनाओं के लिये धन्यवाद दिया।

अनादरा में स्वर्ण जयंती

वि.सं.1996 की माघ सुदि 5 (13 फरवरी, 1940) को गुरुदेव ने पचास वर्ष पूरे कर लिये। अनादरा में स्वर्ण जयंती समारोह बड़ी धूमधाम से मनाया गया। देश के विभिन्न स्थानों से भक्त लोग गुरुदेव के दर्शन करने अनादरा पहुंचे। आठ दिन तक भजन कीर्तन हुए। किंकरदास ने अपने भजनों की पुस्तक समर्पित की। जून 1940 में पोकरण ठाकुर चैनसिंहजी अनादरा आये और कुछ दिन गुरुदेव के पास रहे।

एक समय कुछ भक्त गुरुदेव के पास बैठे थे। तब साधु के वेश में एक अमरीकन 'केसरी साधु' आता हुआ दिखाई दिया। गुरुदेव ने कहा: 'यह चालाक आदमी है, भेद लेने आया है। सतर्क रहना।' वह गुरुदेव के पास बैठा। गुरुदेव ने उसे कहा कि तुम्हारे पास में पोटली है। उसके अन्दर के पत्थरों में सोने के अंश हैं। कुछ दिन बाद केसरी साधु वहां से चला गया।

17 जुलाई, 1940 को गुरुदेव अनादरा से दिलवाड़ा चले गये और वर्षाऋतु में वहीं रहे। यहां कई सम्प्रदायों के लोग दूर-दूर से गुरुदेव के दर्शन करने आते थे। एक यूरोपियन महिला अपनी लड़की के साथ आई। गुरुदेव को बुखार था और लोगों से मिलने की मनाही थी। उन महिलाओं को निराशा हुई और वे जाने वाली थीं। वे कुछ कदम गई होंगी कि गुरुदेव उठे और आवाज दी: 'मदर, आ जाओ।' उन्होंने कुछ समय बात की। वह अपने लड़के के बारे में बहुत चिन्ता कर रही थी जो उस समय इंग्लैंड में था। गुरुदेव ने कहा: 'चिन्ता मत करो। वह बिल्कुल ठीक है।' महिलाएं बहुत खुश हुई। गुरुदेव ने उन्हें मालाएं दी।

अचलगढ़ में हजारों लोग गुरुदेव के दर्शन के लिए आये। कुछ भक्तों के इस समय के अनुभव हमने लिखे हैं। कुछ अन्य रुचिकर अनुभव यहां दिये जाते हैं।

एक सुनार का लड़का अपने घर से भाग गया। उसका पता लगाने के सब प्रयत्न असफल हो गये। वह सुनार गुरुदेव के पास आया और अपने पुत्र के न मिलने तक अनशन करने बैठ गया। लोगों ने उसे बहुत समझाया परन्तु कोई असर नहीं हुआ। तीसरे दिन गुरुदेव ने उसे आबूरोड स्टेशन जाने को कहा। वह तुरन्त वहां गया और उसका लड़का उसे प्लेटफार्म पर मिल गया। वह उसे लेकर गुरुदेव के चरणों में वन्दना करने

आया।

एक धनी बंगाली व्यक्ति को व्यापार में बहुत नुकसान हुआ। वह कर्ज में था। उसका दुःख बढ़ाने के लिए उसकी बहिन के सोने के गहने, जो उसके पास रखे थे, चोर ले गये। इन सब विपत्तियों में डूबा हुआ वह आत्महत्या करने की सोच रहा था। उसके एक मित्र ने उसे गुरुदेव के पास भेजा। गुरुदेव ने उसे आबू पर रहने और ध्यान करने को कहा। 38वें दिन गुरुदेव ने उसे कहा कि चोर दिल्ली में पकड़े गये हैं। तुम तुरन्त वहां जाओ। बहुत कुछ मिल जायगा और तुम्हारी इज्जत भी बच जाएगी।

राजपुताना होटल (माउंट आबू) के पारसी मैनेजर जमशेतजीभाई ने बताया कि मेरे गुरु दिलवाड़ा मंदिर के पीछे शमशान में रहते थे। हम उन्हें मौजी बाबा या लैहरी बाबा कहते थे। मेरे परिवार के सब लोग गुरुदेव के पास जाते थे परन्तु मौजी बाबा की आज्ञा थी कि जब तक वे नहीं कहें मैं गुरुदेव के पास नहीं जाऊं, हालांकि वे खुद गुरुदेव के पास जाया करते थे और उनसे मेरे लिए प्रसाद भी लाकर मुझे देते थे। एक बार मेरे एक पारसी मित्र ने, जो बम्बई में मिल मैनेजर थे, अपनी पत्नी और परिवार को आबू भेजा। मेरे अतिथि चाहते थे कि मैं उनके साथ गुरुदेव के पास चलूं और बड़ी चालाकी से मेरे से हां भरा ली। अब मैंने मौजी बाबा को कहा कि मैंने मित्रों से वादा कर लिया है। मैं आज्ञा के लिए उनके चरणों में गिर पड़ा। उन्होंने आज्ञा दे दी। गुरुदेव ने दरवाजा खोला और बोले: 'आयो के नहीं, आयो के नहीं ?' मैंने कहा: 'आयो, बाबा आयो।' हम बैठ गये। मेरे मित्र की पत्नी ने प्रार्थना की कि उसके कोई सन्तान नहीं थी। गुरुदेव ने उसे उसी समय बम्बई लौट जाने की आज्ञा दी। तीन या चार दिन बाद उसके पति का बम्बई में हृदय की बीमारी से देहान्त हो गया। इसके बाद मैं कई बार दर्शन करने गया। मैं प्रायः एजीजी के सचिव खान बहादुर दाराशाह के साथ गुरुदेव के दर्शन करने जाता था।

एक बार मेहताजी आबू थे तब अजमेर से हरविलास शारदा और जोधपुर के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ. ओंकारसिंहजी आबू आये। मेहता ने उन्हें अचलगढ़ चलने को कहा। परन्तु वे लोग उनके साथ चलने को तैयार नहीं हुए। मेहताजी गुरुदेव के पास पहले चले गये और वहां बैठे थे तब वे दोनों भी वहां आ गये। उनके आते ही गुरुदेव ने उनको उनके नाम से ही सम्बोधित किया। इससे वे दोनों प्रभावित हुए। गुरुदेव ने शारदाजी को आशीर्वाद देते हुए कहा कि आपका काम जल्दी हो जाएगा। दूसरे दिन ही वह सब हो गया। शारदाजी गुरुदेव के भक्त बन गये।

कभी-कभी अन्य सम्प्रदायों के साधु अपने लोगों को गुरुदेव से तर्क करने भेजते थे। मोतीभाई ने अपनी डायरी में लिखा है कि उन्होंने ऐसे कई अवसर देखे जब वे एजेन्ट मेमने की तरह चुपचाप वहां बैठ जाते और विरोध की भावना को व्यक्त करना भूल जाते।

आपको सिरोही का राज्य मिलेगा

अभयसिंह बचपन से ही गुरुदेव के पास आया करते थे। गुरुदेव ने उन्हें कहा कि

वे सिरोही के राजा बनेंगे। परन्तु सरूपराम सिंह जी उनके विरुद्ध थे इसलिए उन्होंने तेजसिंह के नाम उत्तराधिकारी की वसीयत लिख दी और अभयसिंहजी के दावे को नजरअन्दाज कर दिया। पांच वर्ष तेजसिंहजी सिरोही के शासक रहे। अभयसिंहजी ने अपना मुकदमा लड़ा और जीत गये। उनका राजगद्दी का अधिकार अक्टूबर 1950 में उन्हें मिल गया, अर्थात गुरुदेव के निर्वाण के सात साल बाद उनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।

* * *

उन्हें आदर के साथ लाओ

नवम्बर 1941 में प्रसिद्ध हिन्दू गुरु गंगेश्वरानन्दजी अचलगढ़ आये। सेठ किशनचन्द से यह पता चला कि उसने एक जैन गुरु अपना लिया है तो वह बहुत नाराज हुए और अपने को ऊंचा सिद्ध करने और गुरुदेव को नीचा दिखाना चाहते थे। उन्होंने गुरुदेव से मिलने की इच्छा व्यक्त की। उस समय गुरुदेव को बुखार था। फिर भी उन्होंने कहा, 'उनको पूरे सम्मान के साथ यहां लाओ।' गंगेश्वरानन्द अपने शिष्यों के साथ आये और दोनों के बीच काफी बातचीत हुई। बातचीत के बीच में गुरुदेव ने अन्य लोगों को बाहर चले जाने को कहा क्योंकि वे हमारे सामने हमारे गुरु का दर्पचूर्ण नहीं दिखाना चाहते थे। हम बाहर चले गये और उनकी वार्ता फिर शुरू हुई। एक घण्टे बाद जब गंगेश्वरानन्दजी बाहर आये, तब मैंने पूछाः 'अब आप संतुष्ट है?' उत्तर मिलाः 'बेटा, तुमने वास्तव में योग्य गुरु प्राप्त कर लिया है। मुझे पता नहीं था कि उन्होंने इतनी बड़ी योग साधना की है। इन्हें कभी मत छोड़ना।' गंगेश्वरानन्दजी एक सप्ताह आबू ठहरे और रोज गुरुदेव के पास आते थे।

सेठजी ने बताया कि एक उच्च शिक्षा प्राप्त मौलवी गुरुदेव के पास आया। वह दो घण्टे गुरुदेव के पास रहा। उसने कहाः 'महाज्ञानी! मेरे जीवन में मुझे ऐसी महान आत्मा कहीं नहीं मिली।'

अब प्रार्थना ही काफी है

सितम्बर 1941 के आस-पास गुरुदेव एक सुबह फिसल गये जिससे कूल्हे की हड्डी टूट गई। भैरूसिंहजी ने उनको धीरे से उठाया और पाट पर सुला दिया। गुरुदेव ने डाक्टरी इलाज का मना कर दिया। बाद में शान्ता बहिन अहमदाबाद से हड्डी के डाक्टर को लेकर आई। परन्तु गुरुदेव ने इलाज नहीं करवाया। गुरुदेव जानते थे कि अब उनका समय बहुत कम रह गया है और हड्डी का ठीक तरह से जुड़ना या नहीं जुड़ना कोई महत्व नहीं रखता।

17 मार्च, 1942 को रेजीडेन्सी से लेडी लोथियान का पत्र आया जिसमें दर्शन के

लिए आने की आज्ञा मांगी। वे 20 मार्च को सपरिवार दर्शन के लिए अचलगढ़ आये। सर लोथियान ने गुरुदेव को डाक्टरी इलाज करवाने का बहुत आग्रह किया। परन्तु गुरुदेव ने यह कहकर मना कर दिया कि अब केवल भगवान से प्रार्थना ही काफी है।

अब गुरुदेव भक्तों से दूर जाने लग गये। इस समय बहुत कम खाते और प्रायः ध्यान में ही रहते थे। कभी-कभी दो-तीन दिन तक कमरे के बाहर ही नहीं आते। दर्शन करने के लिए आने वाले लोगों में कोई रुचि नहीं रही।

इस समय भक्तों द्वारा भेजे गये कई पत्र, तार और संदेश मिले हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि उस समय जो भक्त दर्शन के लिए अचलगढ़ आना चाहते थे, उनसे मिलने में गुरुदेव ने कोई रुचि नहीं दिखाई। कुछ को तो स्पष्टतया मना ही कर दिया। शरीर छोड़ने के कुछ माह पहिले कई विशिष्ट व्यक्ति, प्रोफेसर और विदेशी संवाददाता अचलगढ़ आये भी थे, परन्तु उनकी आशा के अनुकूल उनको खुशी नहीं मिली। इनमें से कुछ लोगों की प्रार्थनाएं यहां दी जा रही है-

राणी भक्ती कुमारी, नेपाल
रामदुर्ग नरेश पेलेस
पूना- ता.8

श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में विनय नम्र व बहुत बहुत प्रणाम। आपका आशीर्वादी पत्र मिल कर हम लोग बहुत खुश हुए। अभी भी ए आसा रखकर विनती करती हूं कि आप हमारे ऊपर सदैव खुश होकर आशीर्वाद देते रहोगे।... पदम देवी का थार स्टेट का राजा के साथ बात चल रहा है। आशीर्वाद दीजिये।... हर वक्त मैं लड़की लोग के शादी के बारे में फिकर करती हूं। आपको तो मालूम ही है। आप अन्तरयामी भगवान हो।... महेन्द्र देवी का भी बात चल रहा है। आपका आशीर्वाद से हम लोग सब का अच्छा है। महेन्द्र देवी, सोम देवी, पदम देवी, घटदेवी का भगवान श्री के चरणों में विनय नम्र व बहुत- बहुत प्रणाम।

आपका आशीर्वादी
मेजर लीला समसेर जंग राणा,
राणी भक्ती कुमारी (नेपाल)

ताजमहल होटल, बम्बई
14 फरवरी 1943

श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में मस्तक रखकर बहुत-बहुत विनय प्रणाम।

आपका आशीर्वादी पत्र ता. 8 का मिला। गुरुदेव हमने आपको दो खत दिया था।... श्री समर्थ गुरु कृपा से हम लोग सब ठीक हैं। आप कृपा करके आशीर्वाद दीजे।... और सभी ठीक है। बहुत लिख के आपका पवित्र समय नष्ट करना नहीं चाहता हूं। जास्ती

दूसरे में।

आपका आशीर्वादी
मेजर लीला समसेर जंग बहादुर राणा
राणी भक्ती कुमारी

देलवाड़ा (मेवाड़)

परम पूज्य गुरुदेव भगवान श्री शान्तिविजयजी महाराज के पवित्र चरणों में दर्शनाभिलाषी आपकी शिष्या लाड कुंवर का साष्टांग प्रणाम निवेदन हो। मैं कुटुम्ब सहित श्री गुरुदेव के शुभ आशीर्वाद से सर्व प्रकार आनन्द में हूं।

मेरी शादी माघ वद 10 को हो गई है। उस टाइम पर मैं आज्ञा लेने के लिए श्री गुरु चरणों में भी हाजिर न हो सकी व मुझ अभागिनी को गुरुदेव भगवान ने पत्र द्वारा ही आज्ञा बक्षी। मैंने बिना गुरु आज्ञा ही इतना बड़ा कार्य कर लिया है। अब नहीं मालूम ईश्वर मुझे क्या दण्ड देवेगा।

क्या करूं गुरुदेव मैं पराधीन हूं। मैं श्री गुरु चरणों में बारबार नम्रता पूर्वक प्रार्थना करती हूं कि श्री गुरुदेव मुझे पराधीन समझ कर इस गुनाह की क्षमा बक्षेंगे।

लाड कुंवर

लालगढ़ पैलेस
बीकानेर, राजपुताना

परम पूज्य गुरुदेव के परम पवित्र चरणों में दासी का साष्टांग दंडवत स्वीकार हो। आपका तार आया। आपका आशीर्वाद हमारे सिर पर है। अंत:करण को पवित्र करेगा। कृपा बनी रहे और आशीर्वाद मिलता रहे ताकि आत्मबल बढ़ता रहे। जवाब की तकलीफ न करें।

सुन्दरी (दासी ऑफ रीवां)

बीकानेर   29 जून, 1941

मजबूरी के कारण दर्शन करने न आ सका। इसके लिए क्षमा करेंगे। ईश्वर की कृपा और आप श्री के आशीर्वाद से अगले वर्ष दर्शन करने की प्रतीक्षा करता हूं। मेरे स्वयं के, परिवार के और राज्य के लिए आपश्री की दया और आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूं। गहन भक्ति और श्रद्धा।

–गंगासिंह

लालगढ़ पैलेस, बीकानेर   **18 फरवरी, 1943**

मुझ पर और मेरे परिवार पर आपकी अत्यन्त कृपा और आशीर्वाद का पत्र अभी–

अभी मिला जिसके लिए हम अत्यन्त आभार प्रगट किये बिना नहीं रह सकते। गहन श्रद्धा के साथ।

–सादूलसिंह

भुज **26 जुलाई, 1943**

परम पूज्य शान्तिसूरीश्वरजी

अचलगढ़

कृपा कर हमारी पूजा और प्रणाम स्वीकार करें।

महारानी सिरोही

हिम्मत नगर **9 मई, 1943**

श्री शान्तिविजयजी, अचलगढ़

दर्शन के लिए 10 तारीख को सुबह आबू पहुँच रहा हूं। बीकानेर हाउस में ठहरूंगा। ता. 11 या 12 को किसी समय दर्शन के लिए प्रार्थना करता हूँ। ता.13 को सुबह लौट जाऊंगा। प्रणाम।

महाराजा ईडर

पालनपुर **1 सितम्बर, 1943**

मेरी पत्नी के लिए विशेष प्रार्थना के तार की कृपा। मंगल की शाम से स्वास्थ्य में सुधार शुरू हुआ है। आपकी प्रार्थना के लिए धन्यवाद। हम दोनों की विनम्र वन्दना। हमें निरन्तर आशीर्वाद की कृपा करें।

नवाब पालनपुर

जयपुर **28 अगस्त 1942**

गुरुदेव श्री शान्ति सूरीश्वरजी भगवान

अचलगढ़, आबू

आपके स्वास्थ्य के बारे में अत्यन्त चिंतित... कृपा कर आप मेरे लिए अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखें। गहन भक्ति और विनम्र प्रणाम।

किशोर कुंवर
महारानी, जयपुर

स्वास्थ्य का आशीर्वाद नहीं

बीकानेर महाराजा गंगासिंहजी को गुरुदेव के दर्शन किये बहुत समय हो गया था। उन्हें इसका बहुत दुःख था और तार में जल्दी दर्शन के लिए प्रार्थना की। परन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। 1942 में कैंसर के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उन्होंने अपने सचिव को आशीर्वाद लेने अचलगढ़ भेजा। सचिव ने अपने पत्र में लिखा–

28-10-1942

मैं आज शान्तिविजयजी के दर्शन करने अचलगढ़ गया। श्रीजी साहब की तरफ से कहा और बीमारी का पूछा। कब ठीक होंगे ?... इलाज बहुत कराया पर कोई फायदा नहीं। आप ही कोई इलाज बताओ तो हो सके। उन्होंने इसका कोई जवाब नहीं दिया। मैंने कहा आप फरमाओं तो दर्शन करने आबू पधारें। तब आबू आने का मना कर दिया। कब तक ठीक होंगे यह नहीं बताया। यही कहा– 'आराम करो, इलाज कराओ, शान्त रहो।'

– आसूसिंह

जब इलाज का असर नहीं हुआ तब बीकानेर महारानी स्वयं अचलगढ़ आई। उस समय रणजीतमलजी मेहता (जज, जोधपुर) नीचे के शिवमंदिर में ठहरे हुए थे। उन्होंने मुझे बताया कि उस दिन के लिए शिव मन्दिर खाली करवाया गया और महारानी के ठहरने के लिए चारों तरफ पर्दे लगाये गये। परन्तु उनके वहां आने का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। वे गुरुदेव से अकेले में मिलना चाहती थी। गुरुदेव ने संदेश भेजा कि भक्तों की बहुत भीड़ है। वे इस समय नहीं मिल सकेंगे। वे अपने कमरे की खिड़की में खड़े हो जाएंगे और महारानी उनको नीचे से शिवमंदिर में खड़े होकर देख सकेंगी। महारानी को नीचे से ही गुरुदेव के दर्शन कर संतोष करना पड़ा। मेहताजी के अनुसार गुरुदेव महारानी को दर्शन देना इसलिए नहीं चाहते थे क्योंकि वे उनके पति के कष्ट के बारे में सुनकर भावी के विरुद्ध उन्हें आशीर्वाद देने की असमर्थता बताना नहीं चाहते थे।

गुरुदेव आपके साथ हैं

जनवरी 1943 में गंगासिंहजी की हालत अधिक बिगड़ने लगी। वे बम्बई में इलाज करा रहे थे। गुरुदेव ने सेठ किशनचन्द को उन्हें सांत्वना देने के लिए बम्बई भेजा। परन्तु गुरुदेव ने सेठजी को कह दिया था कि दरबार के जीवन के तीन सप्ताह ही रह गये हैं। सेठजी तुरन्त बम्बई गये। उधर बीकानेर महारानी ने अपने 12 जनवरी 1943 के पत्र में गुरुदेव को आशीर्वाद के लिए लिखवाया। संयोग से उसी दिन शाम को सेठजी भी उनसे मिले और अपने 13 जनवरी के पत्र में गुरुदेव को लिखा: 'मैं कल शाम को छह बजे बीकानेर दरबार से मिलने गया। दरबार की तबियत बहुत खराब थी। दरबार बहुत प्रेम से मिले। भगवान का समाचार और तबियत का पूछा। हमने बोला कि भगवान ने हमको आपके पास भेजा है। दरबार को और सारे कुटुम्ब को भगवान ने आशीर्वाद फरमाया है। बेफिक्र रहिये... दरबार ने पूछा कब ठीक हो जाऊंगा। हमने बोला कि हम भगवान को पूछ के, तार में अथवा चिट्ठी में, समाचार मंगा के बताऊंगा। ... अभी बीकानेर महारानी साहिबा की तरफ से दो आदमी आये। भगवान के तबियत का और संदेश का हमसे पूछा और हमको बुलाया है। 'रुक्मणी तथा मेरा भगवान के चरणों पर सहस्र कोटि वन्दना, सदैव सेवा में... किशनचन्द।'

गुरुदेव के संदेश से दरबार को शान्ति मिली। गुरुदेव के कहे अनुसार तीन सप्ताह बाद 2 फरवरी, 1943 को बम्बई में उनका देहान्त हो गया।

पालनपुर नवाब तालेमुहम्मद खां गुरुदेव के पुराने भक्त थे। लंदन में राउंड टेबल कॉन्फ्रेंस के लिये मोतीभाई कोठारी को गुरुदेव के पास आशीर्वाद के लिए भेजा। मोतीभाई ने गुरुदेव के आशीर्वाद का संदेश नवाब को लंदन भेजा। नवाब बहुत खुश हुए और अपना एक फोटो मोतीभाई को भेजा जिसके पीछे अपने हाथ से लिखा आशीर्वाद मिला। ऐसे महान व समर्थ महापुरुष के आशीर्वाद का ही यह फल है।....

बम्बई से 15 जनवरी 1943 के पत्र में सेठ किशनचन्द ने लिखाः 'कल शाम को पालनपुर नवाब साहेब से मिलने गया। बहुत प्रेम से मिले। भगवान के तबियत का पूछा और बोला कि भगवान से आशीर्वाद का तार आने के बाद शाहजादा तन्दुरूस्त होता गया और अभी एक दम अच्छा है। भगवान की हमेशा कृपा बनी रही है उसी माफिक बेगम साहिबा ऊपर भी कृपा होवे।... हमने भगवान की तरफ से नवाब साहब, बेगम साहिबा, तथा सर्व राज कुटुम्ब को आशीर्वाद बोला।...'

एक अंग्रेज औरत मिसेज टेम्पलटन ने आगरा से गुरुदेव को लिखा 'कुछ समय पहले मैंने बड़े लड़के के लिए, जो इंग्लैण्ड में है, लिखा था। इस पत्र का आपने उत्तर दिया और आशीर्वाद भी दिया था। आपका पत्र आने के बाद मेरे लड़के का पत्र भी आ गया है। उसने शादी कर ली और उसके एक डेढ़ साल का लड़का भी है। वह आनन्द में है और अभी तक इंग्लैण्ड में है। लगता है वह लड़ाई के बाद ही लौटेगा। आपकी बड़ी कृपा है कि आपने मेरे पत्र का उत्तर देने का कष्ट उठाया और इसके लिए मैं आपको विनम्र धन्यवाद देती हूं। मेरे पति आपके बारे में बातें करते हुए कभी नहीं थकते...। आप से कुछ भी छिपा नहीं है और मेरे पति का आप में पूर्ण विश्वास है।' (27-1-1943)

विदेशी पत्रकार

अमरीका के प्रसिद्ध पत्रकार और न्यूयार्क टाइम्स के विशेष प्रतिनिधि हरबर्ट मैथ्यूज 8 मार्च 1943 को गुरुदेव से मिले। गुरुदेव ने उनको विश्व प्रेम और शान्ति का उपदेश देते हुए 'पांच अंधे और एक हाथी' वाली नीति कथा की व्याख्या की। उन्होंने लिखा कि आश्रम के लोगों से मैंने गुरुदेव के चमत्कारों के कई अनुभव सुने। भारत में एक महात्मा का कितना प्रभाव होता है, यह बतलाने के लिए वे अपनी पुस्तक में इस यात्रा का उदाहरण देते हुए लिखते हैं : 'महाराजा और बड़े उद्योगपति, ब्राह्मण और निम्न जाति के हिन्दू, एक बहते सोते की तरह उस जगह आते हैं जो भारत के पवित्रतम स्थानों में से एक है... लोग उत्तर और दक्षिण से, अफगानिस्तान और लंका से, यहां आते हैं- एक अशिक्षित चरवाहा से शान्ति प्राप्त करने के लिए वहां जाते हैं जो, मुझे बताया गया है, पश्चिम भारत के विख्यात गुरु हैं।... अंग्रेजों के लिए वे शक्ति के दुर्ग हैं, क्योंकि उनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है और वे अपना विशाल प्रभाव शुभ कार्यों के लिए काम

में लेते हैं, जैसे अस्पताल बनवाना, रेड क्रोस की योजनाओं में मदद देना, आदि। ... भारत के उस भाग में वे वह काम करवा सकते हैं जो पुलिस या सरकारी अधिकारी नहीं करवा सकते। वे एक बहुत उच्चकोटि का धार्मिक व्यक्तित्व रखते हैं। वे केवल अपनी ही शुभ शक्ति के बल पर समाज के निम्न स्तर से ऊपर उठे हैं...'

यात्रियों की डायरी के अनुसार इसी दिन यूनाइटेड प्रेस ऑफ अमेरिका के डैरल बैरीगन ने भी दर्शन किये। युनाइटेड प्रेस के जॉन मोरिस 30 मार्च को दर्शन करने आये। बैरीगन और मोरिस को उनके अनुभव के बारे में मैंने पत्र लिखे तब तक उनका देहान्त हो चुका था। टाइम्स ऑफ इन्डिया के आर.लाइडन, जो 11 मार्च को दर्शन के लिए आये थे, अपने पत्र में लिखते हैं: 'उन्होंने हमारा स्वागत किया। उन्होंने जो उपदेश दिया उसका सम्बन्ध महायुद्ध के कारण दुखी दुनिया में व्यक्ति की मानसिक शान्ति से था। जब हम जाने लगे, तब उन्होंने मेरी माता को 'शान्ति, शान्ति', कह कर दर्शन दिये। मेरी माता ने उनकी कमाल की आंखों में देखा और उन्हें शान्ति मिली क्योंकि मेरे भाई और बहिन उस समय जर्मनी में थे जिसके कारण वह बहुत चिंतित हो रही थी।...'

आबू के जिला मजिस्ट्रेट ने अपने विदाई-पत्र (5 मार्च 1943) में लिखा: 'आपने बहुत ही कृपा करके मुझे रेड क्रास के कार्य के बारे में लिखा। आपकी सहायता और प्रोत्साहन के लिए धन्यवाद।... मुझे इस बात का बहुत खेद है कि मैं आपसे अचलगढ़ में विदाई लेने खुद नहीं आ सका। मेरा तबादला यकायक नई दिल्ली हो गया था। मैंने आबू में सब अच्छा करने की कोशिश की है और आप मेरे प्रयासों को सराहें, यह मेरे लिए बहुत बड़ा पारितोषिक है। अन्त में मैं आपकी सलाह और आशीर्वाद के लिए धन्यवाद देता हूं। अलविदा। आप इस धरती पर बहुत समय रहें और चारों ओर शुभ का प्रसार करें।'

अन्तिम गुरु पूर्णिमा

17 जुलाई, 1943 को गुरुपूर्णिमा के अवसर पर बी.एल. मित्तर (एडवोकेट जनरल ऑफ इण्डिया), न्यायमूर्ति दिवातीया (बम्बई उच्च न्यायालय), राणा देवीसिंह (बरवानी स्टेट), महाराजा धरमपुर, महारानी सिरोही तथा कई अन्य लोगों के पत्र और तार आये। गुरुदेव ने भी अनेक भक्तों को चिट्ठी और तार द्वारा आशीर्वाद कहलाया। यह उनके जीवन की अन्तिम गुरुपूर्णिमा थी।

अगस्त में पालनपुर नवाब के बेगम की तबियत बिगड़ गई। 24 अगस्त को नवाब ने बेगम की बीमारी पर आशीर्वाद के लिए तार भेजा। गुरुदेव ने भगत को कहा कि मोतीभाई को तार से नवाब के परिवार को आशीर्वाद कहने का लिख दो। 10 सितम्बर को नवाब का तार आया।'आपकी कृपा और दुआ का तार मिला। आपके आशीर्वाद से मंगलवार से तबियत ठीक होने लगी है... आपका आशीर्वाद मिलता रहे... हम दोनों की विनम्र वन्दना

– **नवाब, पालनपुर'**

भारत के प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशक 'मोतीलाल बनारसीदास' फर्म के मालिक सुन्दरलाल जैन ने लिखा (लाहोर, 5-9-43): 'परम पूज्य परम उपकारी, अनेक भव्य जीवात्माओं को तारने वाले, पतित पावन... मेरी अन्तरात्मा के सर्वस्व, परम योगीराज श्री 1008 श्री गुरुदेव भगवान के पवित्र चरण कमलों में दासानुदास की सादर वन्दना स्वीकार हो। अपरंच हर समय यही चाहता हूं कि आप संसार में भव्य जीवों को तारने के लिए सदा जीवित रहें। मैं निर्भागा आप पतित पावन के दर्शन भी नहीं करता, इससे बढ़कर मेरी बदकिस्मती क्या हो सकती है ?... प्रभो आज दो वर्ष हो गये आपके दर्शन नहीं कर सका। प्रभो वह कब धन्य दिवस होगा जब आप परम पवित्र श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में बैठकर अपने जीवन को सफल करूंगा... बस एक ही भावना है कि इस पतित के रोम-रोम के अन्दर हर समय, हर घड़ी आपश्रीजी के प्रति इतनी भक्ति हो कि संसार में इसकी समता न हो सके। यही मेरा जीवन है और यही सब कुछ है। ... मैं आपके चरणों का आसरा तीन काल में नहीं छोड़ सकता... आपके पवित्र चरणों की रज का तुच्छ किंकर,

-सुन्दरलाल जैन'

सूर्यास्त

पैर की हड्डी टूटने के बाद गुरुदेव का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था और बहुत कमजोर हो गये थे। कुछ भक्तों ने गुरुदेव की माता वसुदेवी को बुलाने की सलाह दी ताकि वे भी कुछ सेवा कर सके। परन्तु गुरुदेव ने मना कर दिया। वे संसार से विदा होने की तैयारी कर रहे थे और एक-एक करके भक्तों को अपने से दूर भेजना शुरू कर दिया।

यति जयकरण

1943 में बीकानेर के जयकरणजी यति करीब छह महीने गुरुदेव के पास रहे। उन दिनों को याद करते हुए उन्होंने बताया कि गुरुदेव लम्बे समय से बीमार थे परन्तु इलाज नहीं कराते थे। एक बार तीन दिन तक बहुत तेज बुखार रहा। थर्मामीटर बेकार हो गये। हमने डाक्टर के लिए भेजा तब उसने कहा कि ऐसी हालत में तो वह भी कुछ नहीं कर सकता। उसने भी थर्मामीटर खराब किये। उसको आश्चर्य हुआ कि इतने ऊंचे तापक्रम में कोई जीवित कैसे रह सकता है।

गुरुदेव बहुत कमजोर हो गये थे। 'मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की: 'भगवान अपने शरीर को कुछ ठीक रखिये।' मैंने चार-पांच बार उनसे यह प्रार्थना की। आखिर गुरुदेव ने तेज हो कर कहा: 'तू सब कुछ जानते हुए भी बार-बार क्यों कह रहा है ?' वे कहते : 'मेरा स्वास्थ्य गिर रहा है, परन्तु मेरे कोई बीमारी नहीं है। यह तो कठोर साधना के कारण हो रहा है।' शरीर छोड़ने के एक माह पूर्व उन्होंने मुझे बीकानेर चले जाने की आज्ञा दी।

उपवास बन्द करो

तपसी छोगमल अचलगढ़ में एक लम्बा उपवास कर रहे थे और उन्होंने 85 दिन पूरा करने का दृढ़ निश्चय कर लिया था। गुरुदेव ने उन्हें उपवास समाप्त करने की सलाह दी, परन्तु वे नहीं माने। उपवास की 52वीं रात को उनके पेट में तीव्र दर्द हुआ। वे चिल्लाने लगे। जब गुरुदेव को कहलाया गया तो गुरुदेव ने कहा: 'ठीक हो जाएगा।' एक घंटे बाद उनको दस्त लगे। उनकी आंखें खुल गई। वे सुबह गुरुदेव के पास गये और चरणों में गिरकर उनकी आज्ञा न मानने के लिए क्षमा मांगी और उपवास बन्द कर दिये। कुछ दिन बाद गुरुदेव ने उनको जालोर भेज दिया।

सेठ किशनचन्द को अन्तिम निर्देश

निर्वाण के कुछ माह पूर्व सेठ किशनचन्द को हैदराबाद चले जाने की आज्ञा दी। उनके शब्दों में: 'गुरुदेव की हालत ठीक नहीं थी। वे शाम को बीमार हो जाते और रात भर उसी हालत में रहते। मेरी पत्नी और मैं रात में उनकी सेवा में रहते। सुबह गुरुदेव ठीक हो जाते।... एक बार उनके शरीर में बहुत बेचेनी होने लगी। हम घबरा गये। मैंने मन में सोचा कि भगत को बुला लूं। उधर भगत स्वयं ही आ गया, परन्तु कमरे के अन्दर नहीं आया। वह बाहर ही खड़ा हमारी बातों को सुन रहा था। गुरुदेव ने कहा: 'सेठजी, अब यह शरीर अधिक नहीं चलेगा।' यह सुनकर हम बहुत दुखी हुए। हमें चिंतित देखकर गुरुदेव ने कहा: मैं अभी ही नहीं जा रहा हूं। परन्तु तुम्हें कुछ बातें ध्यान में रखनी है। जब मैं इस शरीर में नहीं रहूं, तब तुम्हें कुछ काम करने हैं।'' उन्होंने मुझे तीन निर्देश दिये। पहला यह कि देहान्त के बाद उनका अन्तिम संस्कार मांडोली में होगा। दूसरा मेरी लड़की के विषय में था जो पांच साल बाद पैदा हुई। तीसरी बात गुरु के रूप में आने वाले से सम्बन्धित थी। उन्होंने कहा: 'मेरे शरीर छोड़ने के बाद एक लड़का तुम्हारे पास आयेगा। तुम्हें कहीं ढूंढने के लिए जाने की जरूरत नहीं होगी। वह स्वयं तुम्हारे पास आयेगा और तुम्हें पढ़ाई करवाने के लिए कहेगा। तुम उसे तीन प्रश्न पूछना... वह उनका यह उत्तर देगा.... उसके पैर पकड़ लेना। मुझे उसी में समझना। (He shall be the vehicle of myself) उसको अच्छी पढ़ाई करवाना।''

उपरोक्त निर्देश देने के कुछ दिन बाद गुरुदेव ने मुझे हैदराबाद चले जाने को कहा। मैंने कहा मैं आपको इस हालत में छोड़ कर जाना नहीं चाहता। पहले तो उन्होंने मुझे वहां से जाने के लिए प्यार से मनाने की कोशिश की। पर जब मैं नहीं माना तब उन्होंने कहा: 'सेठजी लोग यह कहते हैं कि आप सेठजी का अन्न खाते हो इसलिए बीमार रहते हो। इसलिए अब आपका यहां से चले जाना ही ठीक है।' यह मेरे लिए बहुत कड़वी घूंट थी जो हजम करनी कठिन थी। भारी दिल से मैंने विदा ली। मैं यह नहीं सोच सका कि भगवान के उस शरीर में यह अन्तिम दर्शन थे। कभी-कभी बीच में वे ठीक भी दिखाई

देते थे और मुझे भिन्न-भिन्न तरीके से विश्वास दिलाते रहते कि देखो अब तो मैं ठीक हूं। अब चले जाओ। हम वहां से बम्बई चले गये। कई बार मैंने आबू आने की आज्ञा के लिए लिखा, परन्तु हर बार मना कर दिया।'

शरीर छोड़ने के तीन या चार माह पूर्व अखबारों में यह संदेश भेज दिया गया कि भक्त अब आबू नहीं जायें क्योंकि गुरुदेव ध्यान में बैठेंगे। इसके बावजूद भी यदि कोई जाता तो गुरुदेव यही कहते: 'अब मैं ध्यान करने के लिए गुरुशिखर जाने वाला हूं। अब इधर मत आना।'

अब आप नहीं आना

डॉ. आर.एच. देसाई ने मुझे लिखा कि गुरुदेव से मेरी अन्तिम मुलाकात जून 1943 में अचलगढ़ में हुई। जब मैं वहां से जाने लगा, तब गुरुदेव ने कहा: 'अब आप इधर नहीं आना। अब हम मौन लेंगे।' तीन महीने में ही मैंने यह दुखद समाचार सुना कि गुरुदेव दुनिया से चले गये हैं। उस समय मुझे एकदम ध्यान आया कि मौन से उनका मतलब संसार से विदा होने की तैयारी से था।'

स्थायी मौन

बीकानेर के जिनदासजी कोचर की पत्नी को गुरुदेव ने कहा कि मैं 'स्थायी मौन' लेना चाहता हूं! परन्तु उस समय उन्हें इसका अर्थ समझ में नहीं आया।

इन दिनों गुरुदेव कभी-कभी अजीब ढंग से बातें करते। जुलाई 1943 में हीराचन्दजी गुलेच्छा अचलगढ़ गये। गुरुदेव ने उनसे कहा: 'अब तुम क्यों आए हो? अब भक्तों को आने का मना कर दिया है।' फिर कहा: 'अब मैं नहीं मिलूंगा। मैं गुरुशिखर जाने वाला हूं।' इस पर उन्होंने कहा: 'गुरुशिखर तो आप कुछ समय रहेंगे, बाद में तो दर्शन होंगे।'

वैजिंगजी नाहर (सांथू) को गुरुदेव के पास रहने के कई अवसर मिले। उन्होंने बताया कि 'शरीर छोड़ने के पांच दिन पहले गुरुदेव ने मुझे कहा कि मैं पूर्ण मौन लेना चाहता हूं, इसलिए तुम अब घर चले जाओ। ऐसे समय मेरे वहां रहने से भगवान को बाधा होगी, यह समझ कर मैं घर चला गया।'

मैं जल्दी ही मांडोली आऊंगा

सितम्बर 1943 के प्रथम सप्ताह में मांडोली के पंच वहां आये। गुरुदेव को मांडोली गये लम्बा समय हो गया था। इसलिये पंचों ने उनसे मांडोली आने और वहां कुछ समय रहने की विनती की। गुरुदेव ने उनसे कहा: 'पंचों मैं जल्दी ही मांडोली आ रहा हूं और स्थायी रूप से वहीं रहूंगा।' पंचों को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि गुरुदेव शायद हमें खुश करने के लिए ऐसा कह रहे हैं क्योंकि जैन साधु, जब तक उनका शरीर ठीक हो, किसी एक जगह स्थायी रूप से नहीं रहते। पंचों में से एक ने पूछा: 'भगवान, क्या आप चौमासे में भी मांडोली से बाहर अन्य कहीं नहीं जायेंगे?' गुरुदेव ने फिर कहा:

'नहीं, कहीं नहीं, केवल मांडोली।' इस मुलाकात के दो सप्ताह बाद गुरुदेव का शरीर अंतिम संस्कार के लिए मांडोली लाया गया और वहां उनकी मूर्ति संगमरमर के मन्दिर में अचल रूप से विद्यमान है।

अचलगढ़ में गुरुदेव ने मालाजी मनरूपजी नाम के एक भक्त को पूछा: 'माला, मांडोली ध्यान करूं या आबू में?' मालाजी कुछ नहीं बोले। तब गुरुदेव ने कहा: 'मांडोली में भी ध्यान करूंगा और आबू में भी।' तब मालाजी ने पूछा: 'भगवान, दोनों जगह कैसे सम्भव होगा?' इस पर गुरुदेव ने केवल यही कहा कि दोनों जगह होगा।

परकाया प्रवेश पर

रूपजी हेमाजी शाह अचलगढ़ में ही रहते थे। उन्होंने बताया कि योगियों द्वारा परकाया प्रवेश के विषय पर चर्चा करते हुए गुरुदेव ने एक राजा और सुनार की कहानी सुनाई।'वे दोनों मित्र थे और उनमें परकाया प्रवेश की शक्ति थी। सुनार बहुत चालाक था। उसने राजा को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को कहा। राजा एक गधे के मृत शरीर में प्रवेश कर गया और सुनार उस अवसर का दुरुपयोग कर राजा के खाली शरीर में प्रवेश कर गया। अब राजा अपने वास्तविक शरीर में पुन: प्रवेश नहीं कर सका। इस पर वह एक तोते के शरीर में चला गया। वह तोता राजमहल में प्रवेश कर गया। रानी उस तोते की तरफ आकर्षित हो गई और उसे पिंजरें में रख लिया। उसे अपने पति का शरीर अच्छा नहीं लगा क्योंकि उसमें सुनार की आत्मा थी। रानी ने सुनार की आत्मा को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को कहा। इस पर वह सुनार एक बिल्ली के शरीर में प्रवेश कर गया। जब तोते ने राजा के खाली शरीर को देखा तो उसमें प्रवेश कर लिया। इस प्रकार राजा ने अपना शरीर पुनः प्राप्त कर लिया।' महापुरुष योग शक्ति का दुरुपयोग नहीं करते। परन्तु यदि वे शिष्य बनाना नहीं चाहते तो अपना शरीर छोड़ कर अन्य किसी शरीर में प्रवेश कर उसके द्वारा आगे का कार्य कर सकते हैं।

साधारणतया अचलगढ़ पर कई भक्त रहते थे। परन्तु अंतिम समय में वहां करीब पन्द्रह भक्त ही थे। 23/24 सितम्बर की रात में, जब गुरुदेव ने अंतिम सांस ली, भगत के अलावा चार लोग- चम्पकलाल, फूलचन्द, कमलाप्रसाद और सूरजमल- गुरुदेव के पास थे।

अंतिम प्रवचन

गुरुदेव का अंतिम प्रवचन मृत्यु के विषय पर था। फूलचन्दभाई को अपने पुत्र की मृत्यु पर सांत्वना देते हुए इन्द्र और महावीर की बात का उदाहरण देते हुए कहा कि जीवनकाल को नहीं बढ़ाया जा सकता। गुरुदेव की हालत ठीक नहीं देखकर फूलचन्दभाई ने कहा कि आप इस विषय पर कल सुबह बतलाना। वे गुरुदेव का इशारा नहीं समझ सके। रात को करीब 10:30 बजे गुरुदेव ने उन्हें आलौकिक दृष्टि में उनके दिवगंत पुत्र के दर्शन कराये।

कुछ देर बाद भक्त लोग कमरे के बाहर आ गये। करीब एक बजे फूलचन्दभाई और चम्पकभाई भीतर गये। शरीर का तापक्रम अधिक था और सांस तेज गति से चल रहा था। करीब 2:30 बजे नाड़ी की गति मन्द पड़ने लगी और कुछ ही देर में आत्मा ने शरीर छोड़ दिया।

शरीर को अर्ध-पद्मासन दशा में रखा गया। नेत्र आधे खुले ध्यानावस्था का आभास कराते थे। जो भक्त वहां थे वे इतने विस्मयाकुल हो गये कि उनके लिए इस वास्तविकता को सोचना भी कठिन हो गया कि आत्मा ने शरीर त्याग दिया है, इसलिए यदि अग्नि संस्कार में देरी होती है तो शरीर को ठीक हालत में बनाये रखने के लिए उपयुक्त उपचार करना जरूरी है। उन्होंने न तो डाक्टर से राय ली, न बर्फ आदि का समुचित प्रयोग किया। फलस्वरूप मुख पर जो सजीवता थी वह धीरे-धीरे कम होने लगी और भयानक गर्मी के प्रभाव से मांडोली पहुँचते-पहुँचते शारीरिक परिक्षय के चिह्न नजर आने लगे। (गुलेच्छा, पृ.96) यह बात बताती है कि भक्ति के साथ ज्ञान होना कितना आवश्यक है।

दुखद समाचार को तार, टेलीफोन और रेडियो द्वारा भक्तों को पहुंचाया गया। पास के भक्तों को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि अन्तिम संस्कार कहां किया जाय। नगीनदास भगत को याद आया कि गुरुदेव ने इस सम्बन्ध में सेठ किशनचन्द को कुछ निर्देश दिये थे। जब सेठजी से टेलीफोन पर सम्पर्क किया तो उन्होंने कहाः 'मांडोली, मांडोली'। तब तार, टेलीफोन द्वारा मांडोली में अन्तिम संस्कार की सूचना भक्तों को दी गई।

मांडोली को

शरीर को पालखी में रखा गया और शव-यात्रा अचलगढ़ से 25 तारीख को सुबह शुरू हुई। दोपहर में माउंट आबू पहुंचे। वहां से पालखी को ट्रक में रखा गया। 2:30 बजे सब शान्ति आश्रम पहुँचे। उस समय सेठ किशनचन्द और उनकी पत्नी भी वहां पहुँच गये। वे सिर झुकाये, आंसू बहाते गुरुदेव के चरणों की तरफ खड़े हो गये। उन्हें आवाज आई 'सब कुछ तुम्हें पहले ही बता दिया है। अब क्या चाहते हो? जैसे कहा गया था, वैसे करो।'

हजारों लोग आबू रोड पर इकट्ठे हो गये थे। उन्हें मांडोली तक ले जाने का प्रबंध करना बहुत कठिन था। महायुद्ध चल रहा था। पैट्रोल का राशन था। सेठजी ने रेजीडेन्ट सर गिलन से बात की। वे भी गुरुदेव के भक्त थे। उन्हें बहुत दुःख हुआ और उन्होंने पूछा कि मैं क्या सेवा कर सकता हूं? सेठजी ने कहा कि 500 गेलन पैट्रोल और जितनी हो सके उतनी गाड़ियां चाहिये ताकि भक्तों को समय पर मांडोली पहुंचा दें। पैट्रोल की व्यवस्था कर दी गई। आबू और सिरोही में जितनी जीपें, कारें और ट्रक थे, सब मिल गये। अन्य सड़क यातायात बन्द कर दिया गया।

26 तारीख की शाम को सब मांडोली पहुंचे। रात 10 बजे अग्नि संस्कार के विशेषाधिकार के लिए बोली शुरू हुई। गुरुप्रसाद व्यास लिखते हैं: 'बड़े गुरुदेव के अग्नि संस्कार के समय मेरे पिताजी वहीं पर उपस्थित थे। जब बोली बोलने के लिए सेठ को कहा गया तब सेठजी ने कहा कि अपने बापू (पिता) की बोली नहीं होती। आप जो कहो वह पैसा देने को तैयार हूं लेकिन अपने बाप की बोली नहीं बोलूंगा। अमूल्य हैं पिता, पिता की कोई कीमत नहीं कर सकता।' फिर भी बोली चलती गई। आखिर शांता बहिन ने 51000 रुपए की बोली बोल दी। सेठ किशनचन्द आगे बढ़ सकते थे परन्तु जैनों की भावना को समझ कर आगे नहीं बढ़े।

सोमवार, 27 सितम्बर की सुबह तक 30-40 हजार लोग वहां पहुंच गये थे। माता वसुदेवी भी अन्य पुत्रों के साथ आई थीं। पालखी को चंदन की चिता पर दादागुरु धर्मविजयजी की समाधि के पास रख दिया गया। शान्ता बहिन ने तीन बार अग्नि संस्कार की कोशिश की, परन्तु अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई। स्त्री द्वारा शव के अग्नि संस्कार का वह एक उदाहरण नहीं बन सका। यकायक सेठ किशनचंद को प्रेरणा हुई और एक बार में ही उनके द्वारा अग्नि प्रज्वलित हो गई। चिता में सैकड़ों मन चन्दन, खोपरा, नारियल आदि चढ़ाया गया। यह चिता तीन दिन तक जलती रही।

शाम को भक्त आरती के लिए इकट्ठे हुए थे। कई भक्त जो देर से मांडोली पहुँचे, दर्शन न होने के कारण विलाप कर रहे थे। इतने में चिता की ज्वाला के ऊपर से गुरुदेव के दर्शन हुए। सेठजी के अनुसार उस समय किसी ने कुछ नहीं कहा। बाद में एक लड़के ने कहा कि उसने चिता के ऊपर गुरुदेव को देखा। फिर अन्य लोग भी कहने लगे कि हमने भी चिता पर गुरुदेव के दर्शन किये। यह हमें बाइबल की उस घटना की याद दिलाता है जब सूली के बाद अपने भक्तों के वियोग पर जीसस ने उन्हें दिव्यदृष्टि में प्रकट होकर दर्शन दिये।

इसी समय का एक अनुभव श्रीमती चंचल मेहता (धर्मपत्नी, उम्मेदराज जी मेहता, जोधपुर) ने बताया है। '1943 को गुरुपूर्णिमा पर मैंने गुरुदेव को एक चद्दर भेंट करने की इच्छा प्रकट की। गुरुदेव ने कहा: अभी नहीं, बाद में। मैंने कहा फिर चौमासा लग जायगा तो आप नहीं लेंगे। तब गुरुदेव ने कहा: ''चौमासे में ले लूंगा। बाद में जब निर्वाण का समाचार मिला तो हम वह चद्दर साथ में लेकर मांडोली आ गये। सिरोही में जब वैकुंठी में दर्शन किये तो मुझे शंका हुई कि यह गुरुदेव का शरीर नहीं है। गुरुदेव ने पहले एक-दो बार बोला था कि खोलिया (शरीर) पलट लेंगे। गुरुशिखर चले जायेंगे और बोलेंगे नहीं। तब मैंने सोचा कि भगवान ने शरीर बदल लिया होगा और यह कोई बनावटी शरीर छोड़ गये हैं। मांडोली में रात में चद्दर और टार्च लेकर मैं ट्रक के ऊपर चढ़ी। प्रभु के चरण देखने के लिए अंगूठे पर से कपड़ा हटाया। मेरे हाथ में झटका लगा। मुझे लगा कि भगवान ने अपना चरण अपनी तरफ खींचा। मुझे डर लगा। शव के ऊपर अधखुली

चद्दर डालकर जल्दी से कमरे में आ गई। उसी समय कला के पापा दादागुरु के मन्दिर में ध्यान में बैठे हुए थे। उनको ध्यान में आवाज आई कि जोधपुर वाले, जोधपुर वाले, चद्दर लाओ। वे कमरे में आये और बोले कि भगवान चद्दर मांग रहे हैं, साथ में लाये क्या ? तब मैंने कहा कि साथ में लाई थी और अभी-अभी भगवान पर चढ़ा के आई हूं।''

भक्त लोग दुखी ह्रदय से अपने-अपने घर चले गये। सैकड़ों पत्र और तार द्वारा भक्तों के शोक संदेश आबू पर मिले। रेजीडेंट सर जी.बी.बी. गिलन ने लिखा-

रेजीडेन्सी (आबू) 24 सितम्बर, 1943

प्रिय महाशय (भगत)

मैंने अत्यन्त दु:ख के साथ परम पवित्र गुरुदेव के देहान्त का समाचार सुना है और मैं भली भाँति जानता हूं कि मेरे इस दु:ख में सभी वर्ग और जातियों के लोग भी साथ हैं क्योंकि गुरुदेव के सात्विक जीवन और चरित्र से सभी लोग प्रभावित होते थे और उन्हें पूज्य समझते थे। मैं इस अवसर पर आपको व नजदीक के लोगों को मेरी आन्तरिक सहानुभूति प्रकट करता हूं।''

सेठजी और उनकी पत्नी की इच्छा हुई कि चिता की जगह एक मन्दिर बनाया जाय। रूक्मणीदेवी ने सेठजी को कहा कि हमें यहां मंदिर बनवाना है। उसने यह सलाह दी कि आप इस जमीन को खरीद कर इसका पट्टा बनवालो।

कुछ समय बाद कुछ लोगों ने भक्तों को सेठ के विरूद्ध भड़काना शुरू कर दिया। जब हालत बहुत बिगड़ने लगी तब चम्पकलाल को दो रात नींद नहीं आई। उसको अजीब सपने आने लगे। गुरुदेव उसके सामने प्रकट हुए, उसको डांटा और सेठ के विरुद्ध भक्तों में वातावरण को गंदा करने के कारण उसके पास जाकर क्षमा मांगने को कहा। तब चम्पकलाल सेठ के घर (हैदराबाद, सिन्ध) गये और सेठजी से माफी मांगी और कहा कि आप ही मन्दिर बनवाओ।

सेठजी ने बड़े उत्साह से शीघ्रातिशीघ्र मन्दिर बनाने की दिशा में कार्य शुरू किया। इन्जीनियरों से नक्शा बनवाया। भक्तों को यह जानकर खुशी हुई कि सेठजी यहां पर संगमरमर का मन्दिर बनवा रहे हैं। मन्दिर की छत्री के लिए शिलान्यास 30 जनवरी 1944 को किया गया। यह आशा की गई कि अगली बसन्त पंचमी तक मन्दिर बन कर तैयार हो जायगा।

गुरुदेव की मूर्ति बनवाने के लिए कई प्रमुख मूर्तिकारों से सम्पर्क किया गया। ठीक समय पर तीन मूर्तियां बन कर तैयार हो गई। जयपुर के पूनमचन्दजी कोठारी ने मूर्तिकार शिवनारायण से जो मूर्ति बनवाई वह सब से अधिक संतोषप्रद लगी इसलिए उसको ही स्थापना के लिए चुना गया।

प्रतिष्ठा महोत्सव गुरुवार, 18 जनवरी 1945 को रखा गया। यह गुरुदेव का जन्म

दिवस था। करीब चालीस हजार लोग इस अवसर पर देश के कोने-कोने से आये। मूर्ति की स्थापना सेठ किशनचन्द और रूक्मणीदेवी द्वारा हुई और धार्मिक संस्कार श्री जिनेन्द्रसूरीजी महाराज ने किये।

सेठ किशनचन्द द्वारा बनाया गया यह संगमरमर का भव्य मन्दिर बहुत ही आकर्षक है। बाहर से देखने पर इसमें मंदिर, मस्जिद और गिर्जाघर, सभी के तत्वों का समावेश मिलता है जो गुरुदेव का सभी धर्मों के प्रति आदर का प्रतीक है। कुछ ही समय बाद बीकानेर के सेठ रामपुरिया ने मन्दिर के पास ही भक्तों के ठहरने के लिए धर्मशाला बनवाई और कुछ दूरी पर शान्ताबहिन ने एक बड़ी धर्मशाला बनवाई। दोनों धर्मशालाओं के पास स्वादिष्ट, स्वास्थ्यप्रद और सनातन पानी के कुएं हैं। मन्दिर के पास एक अस्पताल भी बनवाया गया जिसे राज्य सरकार चलाती है। धीरे-धीरे सड़कें, आवागमन के साधन और अन्य सुविधाओं का विस्तार हुआ है। भक्तों के लिए यह अत्यन्त पवित्र स्थान है। देश के विभिन्न भागों से भक्त और अन्य यात्री दर्शन के लिए आते हैं और सनातन मौन में ध्यान करती हुई मूर्ति से ध्यान में एक रहस्यमय एकाकार अनुभव करते हैं।

बाद में गुरुदेव के भक्तों ने भारत के कई भागों में गुरुदेव के मन्दिर बनवाये। मेरीन ड्राइव (मुम्बई) और मद्रास में गुरुदेव के भव्य मन्दिर बने। बाद में अचलगढ़ का मंदिर बना। बहुत लम्बे समय के बाद गुरुदेव के जीवन से सम्बन्धित इस प्रमुख स्मृति केन्द्र का उद्घाटन मई 8, 1996 को होने पर इस महापुरुष की शोभा का वहां पुनःस्थापन हो गया। इतनी ऊंचाई पर इस भव्य मन्दिर के निर्माण के दौरान इस कार्य को पूरा करने वाले प्रमुख भक्त शान्ताबहिन-विपिनभाई (वलसाद), मोहनमल कोठारी-सुरेन्द्र भंडारी (जोधपुर) को कई चमत्कारिक अनुभव हुए जिनका वर्णन विपिनभाई शाह की पुस्तक दैवी चमत्कारों की अनुभूति में विस्तार से किया गया है। आज गुरुदेव के जीवन से सम्बन्धित परम पवित्र स्थल पर दूर-दूर से भक्तों का आना होता है जहां वे एक मूर्ति के रूप में उसके सनातन मौन के अद्वितीय दृश्य का परम आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

गुरुदेव की महानता

धर्म के इतिहास में हम कुछ संतों के बारे में पढ़ते हैं जो अपने समय के कई लोगों या समूहों को दैविक शक्ति के पुंज लगते थे और आने वाली पीढ़ियों में मानव जाति के कई समुदायों को प्रेरणा देते रहे हैं। उनमें से कुछ को उनके भक्तों ने ईश्वर का अवतार बताया और कुछ को ईश्वर का प्रतिनिधि। उनसे सम्बन्धित परा विद्या की पुस्तकों को दार्शनिक पूर्णता प्रदान की गई और उनको दिव्य पुरुष के रूप में स्वीकार करवाने के लिए कई धार्मिक संस्थाओं का निर्माण किया गया। इस प्रकार विभिन्न रूपों में भक्तिमार्ग जोर पकड़ता गया। महापुरुषों ने अपने समय के लोगों को अपने व्यक्तित्व और चमत्कारों से प्रभावित किया और ज्ञान-रहित भक्ति भी पहली पीढ़ी के भक्तों में बहुत हद तक शुद्ध बनी रही। परन्तु बाद की पीढ़ियों में रूढ़िवादिता, मानसिक संकीर्णता और लौकिक स्वार्थों ने

भक्ति को दूषित करके धर्म के नाम पर अधर्म को बढ़ाया। मानव को मानव के विरुद्ध खड़ा किया। वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को अनेक तरह से परेशान किया गया। भारत के बाहर कई धर्मों का इतिहास ऐसा रहा है जिसके कारण आज के शिक्षित और बुद्धिवादी मनुष्य के लिए धर्म एक अत्यन्त गंदा शब्द बन गया है। कोई विशेष मत, क्रियाएं और अन्धविश्वास ही नहीं, धर्म नाम की हर बात हास्य और घृणा का पात्र बन गई है। परिणामत: धर्म के क्षेत्र में जो कुछ भी सत्य और शुभ रह गया है उसे पहिचान कर मान्यता देना बहुत कठिन हो गया है।

इसके विपरीत भारतीय संस्कृति में धार्मिक सहिष्णुता का विशेष स्थान रहा है। इस्लाम के आने के पहले भारत की भूमि पर बल प्रयोग द्वारा धर्म का प्रचार नहीं हुआ, परन्तु कई धार्मिक मत मानसिक संकीर्णता और साम्प्रदायिकता के कारण एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या और द्वेष से ग्रसित रहे।

जहां धार्मिक कट्टरता रही है, वहां किसी तरह का विरोध सहन नहीं किया जा सकता। एक जैन आचार्य ने अपने संघ की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'यदि हमारा आचार्य किसी साधु को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर देता है तो अन्य सभी को उसे मानना ही है चाहे उनको पसन्द हो या नापसन्द।' यदि वह अयोग्य हो और उसका कोई विरोध करे तो उसे विद्रोह करार देकर संघ से निष्कासित कर दिया जाता है। इस प्रकार उन भाइयों के बीच कलह पैदा हो जाता है और सम्प्रदाय भिन्न-भिन्न गुटों में बंट जाता है। ग्रेशम के नियम के अनुसार कई सम्प्रदाय खोटे सिक्कों के अधीन चले जाते हैं। सन्तों और तीर्थ स्थानों को राजनीति अपवित्र कर देती है। विभिन्न धर्मों की शाखाओं के लोगों ने अपने पवित्र शास्त्रों के नाम पर एक दूसरे की आलोचना ही नहीं की बल्कि अशोभनीय भाषा का भी प्रयोग किया है। सभी धर्मों का इतिहास ऐसा ही रहा है। भारत के धर्म भी अपवाद नहीं हैं। इसलिए परस्पर विरोधी शिक्षाओं पर आधारित शास्त्रों के बारे में कुछ भी कहते समय हमें बहुत सावधानी रखनी चाहिये।

हमें नम्रतापूर्वक यह तो मानना ही पड़ेगा कि एक सच्ची आध्यात्मिक दृष्टि वाला व्यक्ति जो काल की सीमाओं से परे जा सकता है, कोई भी ऐसी बात नहीं कहेगा या ऐसे सन्दिग्ध शास्त्र नहीं लिखेगा और ऐसे कार्य नहीं करेगा जो आगे जाकर उसके ही अनुयायियों में कलह का कारण बने। विभिन्न मतों के संस्थापक अपने ही नाम पर या अपने द्वारा छोड़ी हुई परम्परा में जो बुराइयें की गई हैं उनमें उनकी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकते। उनमें से कुछ को निकट भविष्य में होने वाली कुछ घटनाओं का सीमित पूर्वज्ञान की शक्ति रही भी हो, अर्थात्, कुछ सीमा में अवधि या मन:पर्याय ज्ञान हुआ भी हो, तो भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि उनमें अधिक दूर तक देखने की दृष्टि नहीं थी। उनकी आध्यात्मिक महानता, या उनके शिष्यों द्वारा वर्णित दावों की विश्वसनीयता और उनके भविष्य दृष्टि की कमी तो उनकी अपूर्णता प्रकट करती है।

इसके अलावा यदि किसी शास्त्र में अमानुषिक, अनैतिक और अवैज्ञानिक शिक्षाएं हो और उनमें परस्पर विरोधाभास और अतिशयता हो, तो वह आधुनिक धर्म विज्ञान द्वारा परीक्षा में टिक नहीं सकता। धार्मिक अंधविश्वासी उन्हें बचा नहीं सकते। वाइटहेड ने स्पष्टतया सभी धर्मों के अनुयायियों को यह चेतावनी दी है कि कोई धर्म अपनी शक्ति और महानता को तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक कि वह धर्म को उसी भावना से नहीं लेता जैसा विज्ञान लेता है।

परन्तु काले बादलों में भी कभी प्रकाश की किरणें निकल आती हैं। हर धर्म में ऐसे महात्मा हुए हैं जिनमें चरित्र के साथ-साथ उच्चकोटि का ज्ञान भी रहा है। वे मतों और सम्प्रदायों से परे रहते हैं। ऐसे कुछ महापुरुष भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में और बाद में हुए हैं। जैसे रामकृष्ण, विवेकानन्द आदि। जैन जगत में भी इस प्रकार की महान आत्माएं हुई हैं। शान्तिविजयजी उन महापुरुषों की श्रेणी में आते हैं जो न केवल शिष्य परम्परा से ही मुक्त रहे बल्कि उन्होंने अपने नाम पर किसी प्रकार की संस्था न बनाकर एक बिरली समझ और भावी दृष्टि का परिचय दिया। उन्होंने कोई नई दार्शनिक शाखा का प्रतिपादन नहीं किया और न कोई स्थायी आश्रम, पन्थ, सम्प्रदाय या गच्छ चलाया। उन्होंने कोई शास्त्र या भाष्य नहीं लिखे। वे किसी भी सम्प्रदाय या आचार्य के सिद्धान्तों के खंडन सम्बन्धी चर्चाओं में नहीं पड़े। उनका आकलन मंडनात्मक रहा। उनका यह कहना था कि शास्त्रों की व्याख्या कभी भी इस तरह मत करो कि एक नया सम्प्रदाय पैदा हो जाए। शुरू में तो वह बात ठीक लग सकती है, परन्तु बाद में उसके परिणाम अच्छे नहीं होते।

हालांकि गुरुदेव जैन संत थे परन्तु उन्होंने धर्म, जाति, राष्ट्रीयता की दृष्टि से मानव में कभी भेद नहीं देखा। सभी के लिए उनका समान प्रेम था। अन्य मत के लोगों के सामने कभी भी अपने धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने की चेष्टा नहीं की। दूसरों को कभी भी धर्म परिवर्तन के लिए नहीं कहा। उनके हजारों भक्त अजैन- सनातनी हिन्दू, ईसाई, मुस्लिम और पारसी थे, जो अपने धर्मगुरुओं से भी उनका अधिक आदर करते थे। सच्चा गुरु वह नहीं है जो यह कहे: 'दूसरों के पास मत जाओ। केवल मेरे पास आओ।' सच्चा गुरु वह है जो व्यक्ति को उसके अपने ही धर्म और शास्त्रों की अधिक अच्छी तरह से पहिचान करवा सके। गुरुदेव के पास जो अन्य धर्मों के लोग आते, वे उनको उनके ही शास्त्रों से उपयोगी बात बतलाते और अन्त में यही कहते: 'ध्यान करो।' उनका तरीका व्यैक्तिक सम्पर्क का था। हर व्यक्ति को वही चीज दी जाय जिसे वह हजम कर सके और उस पर आचरण की ऐसी शर्तें न लादी जाय जिनका भार सहन करने का सामर्थ्य नहीं हो।

अविवेकपूर्ण दीक्षाएं

जैन धर्म की व्यवस्था में जीवन के हर पहलू के केन्द्र में एक विशेष अनुशासन की मांग रहती है। फिर भी मानव की अन्तरभूत कमजोरियों को देखते हुए इतनी उच्च

आकांक्षाएं बहुत कठोर लगती हैं। संन्यास में प्रवेश करने के समय कई पूर्व आवश्यकताओं का होना जरूरी होता है, परन्तु इसको चयन के लिए बाद में पछताना पड़ता है। उदाहरण के लिए ज्योंही कोई व्यक्ति दीक्षित होता है, चाहे वह नाबालिग ही क्यों न हो, गृहस्थ के द्वारा पूज्य बन जाता है। शान्तिविजयजी अविवेकपूर्ण दीक्षाओं के विरुद्ध थे। वे स्वयं आठ वर्ष की उम्र में ही अपने गुरु के साथ रहने लग गये और सोलह साल की उम्र में उन्हें दीक्षा दे दी गई। परन्तु कुछ ही समय में उन्हें लगा कि उनके गुरु उनके पथ प्रदर्शन की योग्यता नहीं रखते हैं। उन्होंने अपने गुरु का साथ छोड़ दिया और आबू के पहाड़ों में स्वतंत्र रूप से कठोर तपस्या की। वे 12 साल तक श्रमण और श्रावकों की भीड़ से दूर रहे।

सभी धर्मों में गुरुओं का उच्च पद बना रहा। यहां तक कि गुरु की तुलना ईश्वर से की गई। गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु के गीतों से गुरुडम को संवारा गया। जो बात सद्गुरु या सिद्धों पर लागू होती है वह कुगुरु या मिथ्या गुरुओं के लिए ढाल बन गई। बाद में जब कुछ सच्चे महात्माओं ने गुरुडम की कमजोरियों को देखा तब उन्होंने गुरुडम के संस्थागत पहलू को छोड़ना शुरू कर दिया। सिख धर्म में गुरु गोविन्दसिंह ने गुरुओं की परम्परा को मिटा दिया। सनातन धर्म में वल्लभाचार्य ने संन्यास द्वारा शिष्य दीक्षित करने के रिवाज को बन्द कर दिया।

श्रीमद राजचन्द्र ने मिथ्या गुरु के खतरों से सावधान रहने के लिए कहा। आध्यत्मिक जीवन की राह में बढ़ने के लिए अयोग्य गुरु का त्याग कितना आवश्यक है यह शान्तिविजयजी ने स्वयं उदाहरण बनकर बता दिया।

योग्य गुरु का चयन करने में ही सावधानी की आवश्यकता नहीं है बल्कि किसी को शिष्य बनाते समय भी सावधानी चाहिए। गुरुदेव कहा करते थे कि यदि कच्चे घड़े में पानी भर दिया जाय तो घड़े और पानी दोनों मिट जाते हैं। इसी प्रकार अयोग्य व्यक्ति को ज्ञान देने से अवांछनीय परिणाम निकलते हैं। अन्य धर्म गुरुओं की तरह शान्तिविजयजी ने किसी को भी अपने शिष्य के रूप में दीक्षित नहीं किया। इस विषय पर हम आगे प्रकाश डालेंगे जब हम शान्तिविजयजी और देवाजी के सम्बन्धों के बारे में चर्चा करेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दी भारत में सुधारवादी आंदोलनों का युग रही थी। उस समय धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं का उदय हुआ जिनका उद्देश्य धर्म के नाम पर होने वाले अन्याय और अंधविश्वास से आगाह करना था। करीब एक शताब्दी के गर्म विवाद और आलोचना के बाद एक रचनात्मक युग का श्रीगणेश हुआ जिसके पथ-प्रदर्शक रामकृष्ण, विवेकानन्द और कुछ अन्य गैर -साम्प्रदायिक गुरु थे। उनमें श्रीमद राजचन्द्र और शान्तिविजयजी जैन समाज में अग्रणी थे।

हमने देखा कि शान्तिविजयजी की शिक्षाएं सकारात्मक थी। वे जो बात सिखाना चाहते थे, उसके लिए स्वयं ही उदाहरण बन जाते। परन्तु मानव जाति का यह दुर्भाग्य रहा है कि सदगुरु का विरोध और आलोचना उन्हीं के धर्मगुरुओं द्वारा हुई है। यहूदी जीसस

क्राइस्ट की महानता को आत्मसात नहीं कर सके। इसी प्रकार जैन जो घृणित साम्प्रदायिकता से ग्रसित थे शान्तिविजयजी को समुचित आदर प्रदान नहीं कर सके। जैसा कि मैंने ऊपर बताया, शान्तिविजयजी की आलोचना प्रायः जैनों ने ही की है। डॉ.लीलूभाई की पुस्तक के सम्पादक डॉ.गुणवन्त भाई व्यास ने ठीक ही कहा है कि दूसरे धर्म के लोग– ईसाई, पारसी, मुस्लिम, अजैन आदि भक्त ने शान्तिविजयजी के जैन भक्तों की अपेक्षा अधिक लाभानुभूत हुए।

बाइबल में पहाड़ी पर दिये गये उपदेश में जीसस ने अपने 'चयनित बारह शिष्यों' को सचेत किया था कि चन्द लोग जिनको मानव जाति का नेतृत्व प्रदान करने की जिम्मेदारी होती है वे इस पृथ्वी पर नमक की तरह होते हैं। इसलिए अगर नमक ही नमकीन नहीं रहेगा तो उसे कौन नमकीन करेगा? दुर्भाग्य से हम देख रहे हैं कि चारों ओर नमक ने अपनी नमकीनता खो दी है। गुरुदेव शान्तिविजयजी को इसका पता था। उन्हें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसको वे योग्य शिष्य के रूप में दीक्षित कर सके। अयोग्य हाथों द्वारा नुकसान होने के खतरों से बचने के लिए उन्होंने अपनी 'यौगिक तकनीक' के द्वारा अपनी आत्मशक्ति का स्वयं ही उपयोग करना अधिक उपयुक्त समझा और वह देवाजी महाराज के शरीर द्वारा किस प्रकार हुआ, यह मैं पुस्तक के आगे के पृष्ठों में बताने का प्रयत्न करूंगा।

योगीराज के वचनामृत

शान्तिविजयजी ने उन सभी फालतू विवादों से अपने आपको दूर रखा जिनमें जैनों के विभिन्न सम्प्रदाय बहुत लम्बे समय से उलझे हुए थे। वे लोगों को उन विवादों से अपने आपको दूर रहने का उपदेश देते थे और धर्म के उज्ज्वल पक्ष की बातों पर जोर देते थे। उनके कुछ वचनामृत

- आत्मा अद्भुत है और अद्भुत को जानने वाला भी अद्भुत है।
- जो हीरा लेने आया है, वह काच लेकर जायेगा, जो हीरा वापरने आया है, हीरा उसको ही मिलेगा।
- जगत के तमाम जीवों के साथ बंधुत्व भाव रखो। मन, वचन, काया से किसी जीव को दुःख देना हिंसा है।
- सभी प्राणियों को जीवन प्रिय है। वे सुख चाहते हैं, दुख नहीं। कोई भी मारा जाना नहीं चाहता। इसलिए किसी भी जीव के प्राणों का नाश नही करना चाहिये। (आचारांग सूत्र)
- तुम्हारा कोई बुरा करे तो तुम उसका भला करो। यदि तुमसे दूसरों का भला न हो सके तो बुरा मत करो।
- जिसमें पुण्य ज्यादा और पाप कम हो वह कार्य करने में कोई हानि नहीं है। अगर पुण्य

कार्य में हिंसा भी हुई तो भी इरादा शुद्ध होने से हिंसा का दोष नहीं लगता।

- आग से तापना ठीक है, मगर उसमें हाथ नहीं डालना चाहिये। इसी तरह तुम संसार में अपना फर्ज समझ कर सब कुछ करो। परन्तु उसमें रचे-पचे मत रहो।
- प्रवृत्ति में निवृत्ति लो याने निवृत्तिमय प्रवृत्ति करो।
- बन सके तो अपने जीवन में और अन्त में अपने विचारों से दूसरों को पवित्र करो।
- जैसे सर्दी के कपड़े गर्मी में काम नहीं आते और गर्मी के कपड़े सर्दी के काम नहीं आते, वैसे ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार चलना चाहिये।
- सद्गुरु की संगत से जिन बातों का अनुभव होता है वह सब शास्त्र है। जो आत्माएं शुद्ध होती हैं उन पर महापुरुषों की कृपा उतरती है।
- जैसे नम्बरी ताला नम्बर से ही खुलता है, वैसे ही ज्ञानियों के वचन भी तभी समझ में आते है जबकि हृदय शुद्ध हो।
- जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है, वैसे शुद्धात्मा शुद्ध आत्मा को खींचती है।
- जैसे फाउन्टेन पेन में दवात, कलम, स्याही सब आ जाते हैं, वैसे ही महापुरुषों के थोड़े ही वचनों में धर्म का तमाम रहस्य आ जाता है।
- पुस्तक पंडितों की वाणी है। आगम तीर्थंकरों की वाणी है। दोनों में उतना ही अन्तर है जितना कि मामूली कागज पर लिखा हुआ खत और राज्य में रजिस्टर किया हुआ खत।
- अज्ञानी पुस्तक को सिर पर रखते है, ज्ञानी चरणों में।
- शास्त्र की आवश्यकता तभी तक रहती है जब तक आत्मज्ञान नहीं हुआ हो। ज्ञान होने पर उसकी आवश्यकता नहीं रहती है।
- जो लोग वेद, धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि पढ़ लेते हैं किन्तु आत्मा का स्वरूप नहीं जानते, वे हलुए में रही हुई कुड़छी के समान हैं। कुड़छी हजारों मन हलुआ हिलाती है पर वह हलुए का स्वाद नहीं जानती। यदि पंडित लोगों को आत्म-तत्व का ज्ञान नहीं होता तो कुड़छी से अधिक उनमें क्या विशेषता है।
- तत्व को समझा नहीं वहां तक सब ऊपर ऊपर का ही एक्टिंग है। आत्मज्ञानी ही वास्तविक साधु है, दूसरे वेशधारी हैं। -आनन्दघनजी
- मुंडन करा लेने से ही कोई साधु नहीं बन जाता। केवल वेश से ही साधु नहीं गिना जाता। जिसमें समता भाव है वही साधु है। (उ.सू. 25-31, 32) शान्ति (समभाव) ही सच्चा योग है।
- जब आत्मा में शांति आ जाती है तब आत्मा स्थिर हो जाती है। सर्दी में घी इतना ठंडा हो जाता है कि उस घी के बर्तन को उलटा-पुलटा करने पर भी घी नहीं गिरता है।
- जैसे भांग पीये हुए मनुष्य का छाछ पीने से नशा उतरता है वैसे ही इस संसार में संसार की भावना से भीगी हुई आत्मा को शुद्ध करने को ॐकार मंत्र के जाप की जरूरत है।

उससे आत्मा का वातावरण शुद्ध होता है।

- कष्ट से मुक्ति नहीं है। यदि कष्ट से ही मोक्ष की प्राप्ति होती हो तो कोई मनुष्य अपना हाथ काट डाले, कोई अपना पैर काट डाले।
- चाहे मास-मास के उपवास करो, सत्य बोलो, शुभ ध्यान करो, वन में निवास करो, ब्रह्मचर्य का पालन करो और भिक्षा से निर्वाह करो, किन्तु यदि मनुष्य क्रोध करता है तो ये सभी व्रत निष्फल है।
- जिसे तालाब का स्वच्छ पानी पीना है, उसे हल्के हाथ से जल लेना होगा। यदि पानी हिल गया तो नीचे का सब मैल ऊपर चला आयेगा और सारा पानी गंदला हो जाएगा। व्यर्थ के विवादों में अपना समय नष्ट न करो, नहीं तो अनेक शंकाओं से तुम्हारा मन गंदा हो जाएगा।
- बकरे या घेटे तालाब से पानी पीते हैं तब बहुत धीरे से किनारे पर रहकर पीते हैं। परन्तु जब पाडा उस तालाब में घुस जाता है तब वह सारे तालाब का पानी बिगाड़ देता है। इसी प्रकार समाज में कई-कई व्यक्ति अपना महत्व बढ़ाने के लिए धर्म रूपी तालाब का पानी ऐसा बिगाड़ देते हैं कि दूसरे लोगों को उस धर्म के प्रति नफरत हो जाती है।
- हर एक में से गुण ग्रहण करने की दृष्टि रखो। बबूल के वृक्ष में कांटे है परन्तु छाया में कांटे नहीं है।
- जहां कहीं से भी सत्य मिले उसे ग्रहण करो। जिस नम्बर का चश्मा लगे वही ठीक है।
- ज्ञानरूपी जल चाहे जहां से लो परन्तु घड़े को उलटा मत करो।
- यदि कोर्ट में जुदी-जुदी गवाहियां हो तो उस केस की आखिर हार हो जाती है।
- यदि किसी लेनदार का लेना देनदार की बही में निकल जाए तो वह रकम बिल्कुल सही समझी जाती है। उसी प्रकार कोई भी व्यक्ति महान तभी गिना जाता है जब कि दूसरे मजहब वाले उसके प्रभाव से आकर्षित हो।
- जो मेरा है वह सत्य नहीं बल्कि जो सत्य है वह मेरा है।

जब तक तुम शिखर पर नहीं पहुंच जाओ, मौन रहना ही ठीक है। मिथ्या पांडित्य से काम नहीं चलेगा। शास्त्र तो केवल भूगोल की पुस्तकों की तरह है। सिर्फ भूगोल की पुस्तकें पढ़ने से तुम्हें वह ज्ञान नहीं मिलेगा तो प्रत्यक्ष अनुभव से मिलता है। वेदों और सभी शास्त्रों का सार केवल योगियों ने ही लिया है। पंडित लोग तो पीसे हुए को ही वापिस पीसते हैं।

योग इस सृष्टि का सर्वोच्च विज्ञान है।
योग टेलिस्कोप है। -रामकृष्ण परमहंस

- योगी तपस्वी से बढ़कर है। वह ज्ञानियों से भी बढ़कर है। वह कर्मयोगी से भी बढ़कर है इसलिए अर्जुन तू योगी हो जा। (गीता: 6.46)
- जहां झगड़ा है वहां धर्म नहीं है जहां प्रेम है वहां परमात्मा है। जहां पक्षपात है वहां

भगवान महावीर का तत्व नहीं है। जो प्रभु महावीर की संतान कहलाते हुए भी वाणी में गच्छ, भेद और कदाचार चलाते हैं, उन्हें महावीर के कुपुत्र ही समझना चाहिये। वे प्रभु महावीर के सच्चे वारिस नहीं है।

- जिस धर्म में पक्षपात है, उस धर्म की कभी उन्नति नहीं हो सकती। कई लोग तीर्थयात्रा करने जाते हैं वहां भी कर्म की निर्जरा करने के बदले उलटा कर्म का बंध करते है।
- मनु का कथन है कि शिष्य शुभ कर्म करता है तो छटा हिस्सा गुरु को मिलता है और अशुभ कर्म करता है तो छटा हिस्सा गुरु को मिलता है। कच्चे घड़े में पानी डालने से घड़ा और पानी दोनों का नाश होता है। उसी प्रकार अयोग्य मनुष्य को विद्या देने से विपरीत परिणाम आता है।
- जो व्यक्ति आत्महत्या करता है उसकी दुर्गति होती है। हिंसा करके प्रायश्चित करना कीचड़ में पैर डालकर धोने की तरह है। अगर तुम दुखी हो तो तुम से भी जो ज्यादा दुखी हैं उनको याद करो जिससे तुमको दुःख में शान्ति मिलेगी।
- सेवा करने में माता के समान बनो और आज्ञापालन में राम जैसे बनो।
- दया जैनों से, एकता मुसलमानों से और भक्ति वैष्णवों से सीखो।
- अन्नदान के समान कोई पुण्य नहीं है।
- तृष्णा के ऊपर संसार में कोई व्याधि नहीं है।
- धन से संतोष की प्राप्ति नहीं होती।
- आंखों में न खटाय मिरच, लोभी को न खटाय खरच।
- कृपण का धन मरघट की राख के समान है। वह किसी काम नहीं आती।
- जिसके हृदय में ग्रंथि नहीं है वही निर्ग्रंथ है।
- जिससे दूसरों की भावना जाग्रत हो उसे प्रभावना कहते हैं।
- पाप से पीछे हटना उसी का नाम प्रतिक्रमण है।
- जितना समय समभाव में जाय वह सब सामायिक है।
- आत्मा के समीप वास करना उसी का नाम उपवास है।
- दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को बचावे उसी का नाम धर्म है।
- धर्म श्रद्धा का विषय है, बुद्धि का नहीं।
- जैसे नींबू को देखने से मुंह में पानी आता है, वैसे मूर्ति को देखने से भाव आता है।
- मूर्ति हमें यह सिखाती है कि हमने भी ध्यान किया था। यदि तुम्हें भी हमारे जैसा बनना हो तो तुम ध्यान करो।

* * *

- अन्य किसी वस्तु की खोज मत कर। केवल एक सद्गुरु की खोज कर और उसके चरण कमलों में आत्मा को सर्वरूपेण करके प्रवृत्ति करता रह। यदि फिर मोक्ष न मिले तो मेरे पास से लेना। (श्रीमद् राजचन्द्र)

एक रहस्यमयी निरन्तरता

गुरुदेव के बाद क्या ?

भारतीय धर्मों के अनुसार मोक्ष प्राप्त न होने तक महापुरुष भी नये जन्म लेते रहते हैं। ईश्वर-कोटि आत्माएँ और बोधिसत्व जगत के कल्याण के लिए ऐसा करते रहते हैं। गीता के अनुसार ईश्वर स्वयं भी आवश्यकता पड़ने पर मानव देह के रूप में अवतार लेता है। ''संभवामि युगे युगे'' (गीता 4.8)

योग शास्त्र के अनुसार कई उच्च कोटि के योगी शरीर छोड़ने के पहले अपनी शक्ति योग्य शिष्य में डाल देते हैं। ईसा ने अपने शिष्य पीटर को और रामकृष्ण ने नरेन्द्र को इस प्रकार की शक्ति दी थी। उन्हें शक्तिपात कहते हैं।

जो महापुरुष शिष्य परम्परा से मुक्त रहना चाहते हैं वे उचित समय पर अपनी देह को इस प्रकार छोड़ देते हैं जिस प्रकार हम अपने पुराने वस्त्रों को त्याग देते हैं और किसी अन्य शरीर को धारण कर या उसमें प्रवेश कर कभी खुले, कभी छिपे रूप में नये शरीर द्वारा अपनी आगे की लीला करते हैं।* शान्तिविजयजी अपने अंतिम दिनों में भक्तों को कहा करते थे कि अब यह खोला (cover, body) बदलना है। योग दर्शन में इसे पर-काया प्रवेश कहा गया है।

मैं ही गुरु, मैं ही शिष्य

योगिराज शान्तिविजयजी के लाखों भक्त थे परन्तु उन्होंने अन्य धर्माचार्यों की तरह किसी को भी दीक्षा देकर अपना शिष्य नहीं बनाया। उन्होंने एक बार एक प्रचलित कहावत को उद्धृत किया कि ''शेरनी का दूध सोने के बर्तन में ही टिकता है।'' इस प्रकार गुरु की शक्ति को संभालने वाला योग्य पात्र होना चाहिए। गुरुदेव अपने से कम शक्तिशाली व्यक्ति को शिष्य बना कर उसे ट्रेनिंग देना नहीं चाहते थे। यदि ट्रान्समीटर शक्तिशाली हो तो रिसीवर भी उसकी तरंगों को झेलने के लायक होना चाहिए। सभी रामकृष्ण नहीं होते, तो सभी

* Yogis are not in the ordinary sense, subject to death. They discard their bodies if they wish, and choose others. To the yogi his body is a glove or any garment to be utilised just like any other form. Pym: *The Power of India*. p. 168. गीता 2.22

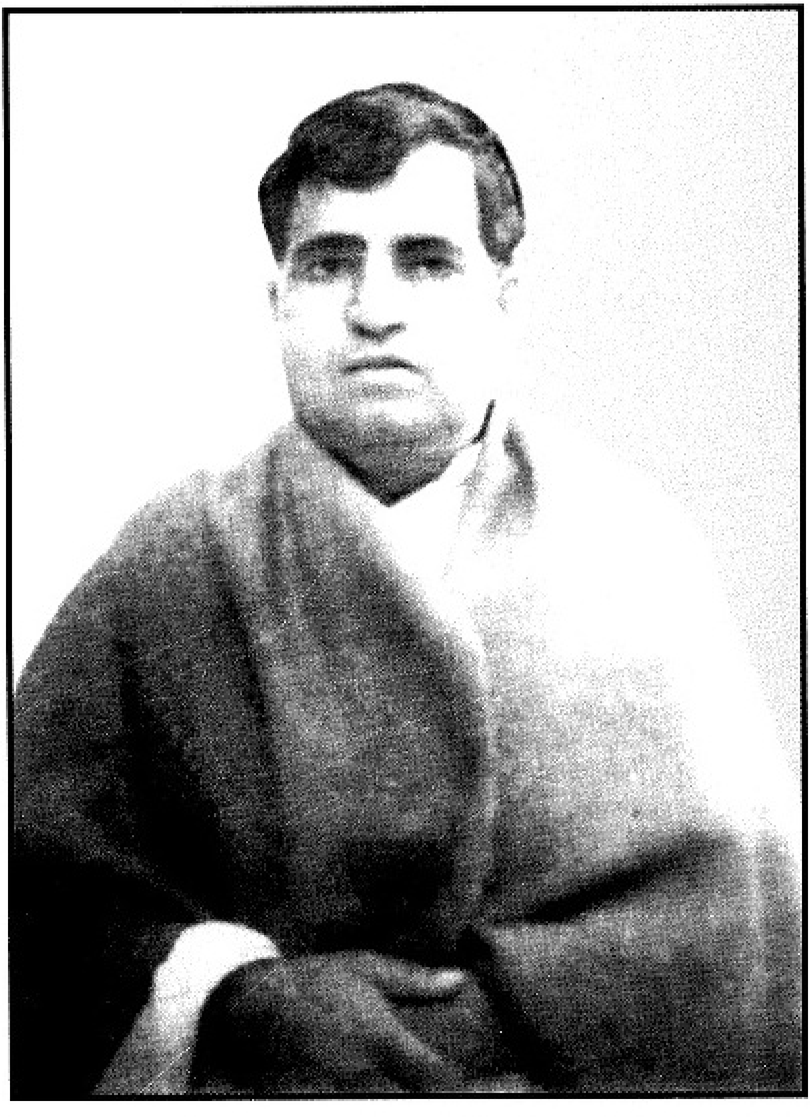

श्री देवाजी महाराज

माऊंट-आबू (1925-2000)

विवेकानन्द भी नहीं होते। रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि नाबालिग के लिए ही संरक्षक की व्यवस्था करनी पड़ती है। जो स्वयं ईश्वर-कोटि हो उसे गुरु की कोई आवश्यकता नहीं होती। उसे शिष्य बनाने की भी आवश्यकना नहीं होती। जब लोगों ने आनन्दघनजी का उदाहरण दिया, जिन्होंने किसी को शि॰ ॰ बनाया, तब गुरुदेव ने यही कहा "जब गुरु मिलता है, तब चेला नहीं मिलता। ज॰ ॰मलता है, तब गुरु नहीं मिलता।" एक अन्य प्रसंग में उनसे पूछा गया कि आप शिष्य ॰ नहीं बनाते, तब उन्होंने यही उत्तर दिया कि "मैं स्वयं ही शिष्य हूँ- अर्थात् मैं ही गुरु, मैं ही शिष्य।" (हुंज पोते म्हारो चेलो छूं) महापुरुषों के भावुक भक्त उत्साह की बाढ़ में "गुरूडम" की स्थापना के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं। गुरुदेव के भक्त भी, "गुरुदेव के बाद कौन ?" इस प्रकार के प्रश्न उठाया करते थे ? गुरुदेव ने इस सम्बन्ध में जो उत्तर दिये उनसे यह स्पष्ट होता है कि वे एक परम्परा चलाने के लिए अपने जीवन काल में किसी को उत्तर॰धिकारी के रूप में विधिवत दीक्षा देना नहीं चाहते थे। उन्होंने यह भी कभी नहीं कहा कि मेरे बाद में कोई शिष्य के रूप में आयेगा। उन्होंने कई भक्तों को इतना अवश्य कहा कि "मैं ही आऊँगा" और उस नये रूप में अपनी पहचान कराने के वादे भी किये जो बाद में अक्षरशः पूरे किये। गुरुदेव के देह त्याग के बाद क्या हुआ और उन्होंने उन वादों को श्री देवाजी महाराज के शरीर से किस प्रकार पूरा किया, इसकी जानकारी मुझे कुछ भक्तों से ॰िली है। वे इतने सशक्त हैं कि स्वतः प्रामाण्य ही लगते हैं और योगीराज शान्तिविजयजी और श्री देवाजी के जीवन में एक निरंतरता की पुष्टि करते हैं। मेरे विचार में यह अपने आप में एक अत्यन्त अद्‌भुत और विचारोत्तेजक कहानी है जिसकी मिसाल धर्म के इतिहास ॰ ॰मिलना मुश्किल है। शान्तिविजयजी ने आने वाले समय में अपने भक्तों की कड़ी परीक्षा का संकेत भी दिया था। परन्तु वह परीक्षा उन्होंने देहत्याग के बारह वर्ष बाद देवाजी महाराज के शरीर से ली। जिन पुराने भक्तों का अज्ञान और स्वार्थवश अपनी भक्ति में अहं था, जो अपने आपको गुरुदेव द्वारा विशेषरूप से चयनित समझ बैठे थे, उनकी चुन-चुन कर पर॰ ॰ ली और अनुत्तीर्ण होने पर एक-एक की छुट्टी करते गये। उन्होंने मौन रह कर बता दिया कि भक्ति के साथ ज्ञान होना कितना आवश्यक है, वरना परिणाम अवांछित हो सकते हैं क्योंकि भक्ति की डोर अपने आप में बहुत कमजोर होती है। सतत् क्रियाशील होते हुए भी उन्होंने अपने असली स्वरूप के बारे में साधारण मौन बनाये रखा।

यह तो स्पष्ट है कि श्रीशान्तिविजयजी और देवाजी शारीरिक दृष्टि से भिन्न व्यक्ति थे। शान्तिविजयजी चाहते तो देवाजी को दीक्षा देकर अपना शिष्य और उत्तराधिकारी घोषित कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। फिर भी तथ्यों और निर्देशों के आधार पर भक्तों को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि उनके बीच किसी न किसी तरह की निरन्तरता अवश्य थी। यह निरन्तरता आत्मिक दृष्टि से ही थी और अन्त समय तक एक मौन और रहस्य के रूप में रही। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर मैं आगे के पृष्ठों में प्रकाश डालूंगा।

* * *

यह गुरु बनेगा

देह-त्याग के पाँच साल पहले ही शान्तिविजयजी ने मांडोली के लोगों को स्पष्टतया कह दिया था कि देवा गुरु बनने के लायक है। परन्तु उन्होंने यह नहीं कहा कि देवा मेरा शिष्य बनेगा। उन्होंने केवल यही कहा कि देवा गुरु बनेगा।

1938 में गुरुदेव का मांडोली में चातुर्मास था। एक बार गुरुदेव पेड़ के नीचे बैठे पुस्तक पढ़ रहे थे। सबलाजी और देवाजी गायें चराते हुए वहाँ आये। गुरुदेव ने पूछा: ''तुम कौन हो?'' देवाजी कुछ भी बोले नहीं। सबलाजी ने कहा : ''हम दोनों भाई हैं। धूलाजी के लड़के हैं।'' तब गुरुदेव ने पूछा: ''धर्मविजयजी तुम्हारे (गृहस्थ रूप में) क्या लगते थे?'' सबलाजी ने कहा ''हमारे दादा (दादा के चचेरे भाई) होते।'' तब गुरुदेव ने कहा : ''तुम तो अपने साधु परिवार के ही हो।''

कुछ दिन बाद फिर सबलाजी और देवाजी गायें चराते वहाँ आये। देवाजी गुरुदेव के पास जाकर घुटनों पर हाथ रख कर खड़े हो गये। गुरुदेव कुछ पढ़ रहे थे। गुरुदेव ने जब उन्हें देखा तो पूछा : ''तुम तो वही लड़के हो...?'' गुरुदेव ने उन्हें प्रसाद दिया। फिर गुरुदेव ने कहा ''अब तुम चले जाओ।'' पर देवाजी गये नहीं। सबलाजी अकेले घर आये तब धूलाजी ने पूछा : 'देवा कहाँ है?' सबलाजी ने कहा : ''शान्तिविजयजी के पास बैठा है।''

मांडोली के पंच और अन्य लोग गुरुदेव के पास बैठे थे। गुरुदेव ने देवाजी को अपने पास बिठाया और पूछा : ''देवा, गुरु बणी के चेलो? (''देवा, गुरु बनेगा या चेला?'') तब श्री देवाजी ने कहा : ''मैं गुरु बनूंगा'' इस पर गुरुदेव ने उनकी पीठ थपका कर कहा : ''है तो गुरु बनने के लायक ''। फिर गुरुदेव ने पंचों को कहा : ''पंचों, ये गुरु बनेगा।'' इस अवसर पर सेठ किशनचंद वहाँ मौजूद थे। गुरुप्रसादजी ने मुझे बताया कि उस समय उनके पिता माणकलालजी व्यास भी वहाँ उपस्थित थे। इसके बाद पंचों ने आपस में कुछ सलाह की। उन्होंने गाँव के तीन महाजन – प्रागोजी, सांकलोजी और कपूरजी, को बुलाया और उनको सलाह दी कि तुम लोग धूलाजी के पास जाओ और उन्हें गुरुदेव और पंचों के विचार से अवगत कराओ। तब प्रागोजी, सांकलोजी और कपूरजी, धूलाजी के यहाँ गये। धूलाजी ने उन्हें खाट पर बिठाया और आने का प्रयोजन पूछा। सांकलोजी ने कहा : ''प्रागोजी, तुम बोलो, तुम बड़े हो।'' प्रागोजी ने कहा : ''नहीं, तुम।'' सांकलोजी ने फिर कहा : ''नहीं, तुम ही बोलो।'' तब प्रागोजी ने कहा : ''धूलाजी, एक काम है। गाँव का मन है। बोलो, करोगे?'' धूलाजी ने कहा : ''करे जैसा होगा तो जरूर करूंगा, नहीं करे जैसा होगा तो मैं पहले हाँ कैसे कहूं, तुम बताओ।'' तब प्रागोजी ने कहा : ''तुम्हारे सात लड़के हैं। भगवान की मरजी होगी, उतने ही रहेंगे। तुम्हारे देवा है। उसे गुरुदेव शान्तिविजयजी को देना है। भगवान का हुक्म हो गया है। गांव (पंचों) का भी मन है। तुम बोलो, रुपये ले लो।'' यह सुन कर धूलाजी ने कहा : ''पैसे मैं नहीं लूंगा। बच्चा बेचना नहीं है। भगवान का हुक्म हो तो ये भले ही जाय। मैं रोकूंगा नहीं और मेरे रोकने से यह रुकेगा भी नहीं। भगवान की इच्छा

होगी तो यह खुद ही चला जायगा।''

श्रीदेवाजी महाराज उस समय आठ या नौ वर्ष के ही थे। उनकी माता कनकादेवी गुरुदेव के पास गई और कहा : ''भगवान, अभी तो यह छोटा है...।'' गुरुदेव और कनकादेवी के बीच कुछ बात हुई। गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया और कहा, ''ओ तो मते ई आ जाई'' (यह तो खुद ही आजायेगा)।

इस प्रकार गुरुदेव ने आने-वाले महापुरुष के बारे में स्पष्ट निर्देश दे दिया था। परन्तु बाद में इस विषय पर कोई चर्चा नहीं की। इसलिए भक्त इस आदेश को भूल गये और कभी-कभी इस विषय को छेड़ देते थे तब गुरुदेव सांकेतिक भाषा में जवाब देकर उस विषय पर चर्चा बन्द कर देते। काफी समय बाद 1943 में देह-त्याग के कुछ महीने पहले उन्होंने सेठ किशनचन्द को इस विषय से सम्बन्धित कुछ स्पष्ट निर्देश दिये। गुरुदेव के देह त्याग के बाद सेठ किशनचन्द ने भक्तों को इसके बारे में जानकारी दी।

गुरुदेव के अंतिम निर्देश

मांडोली से विहार करते हुए गुरुदेव 1940 में अचलगढ़ पहुँचे और अंतिम समय तक वहीं रहे। उस समय सेठ किशनचन्द और उनकी पत्नी रुकमणीदेवी गुरुदेव की सेवा में रहते थे। सेठ ने उस समय के अपने अनुभव मुझे विस्तार से बताए। सेठजी के शब्दों में :

गुरुदेव की हालत ठीक नहीं थी। वे शाम को बीमार हो जाते और रात भर उसी हालत में रहते। मेरी पत्नी और मैं रात में उनकी सेवा में रहते। सुबह गुरुदेव ठीक हो जाते।... एक बार उनके शरीर में बहुत बेचैनी होने लगी। हम घबरा गये। मैंने मन में सोचा कि भगत को बुला लूं। उधर भगत स्वयं ही आ गया, परन्तु कमरे के अन्दर नहीं आया। वह बाहर ही खड़ा हमारी बातों को सुन रहा था। गुरुदेव ने कहा : ''सेठजी, अब यह शरीर अधिक नहीं चलेगा।' यह सुन कर हम बहुत दुखी हुए। हमें चिंतित देख कर गुरुदेव ने कहा : ''मैं अभी ही नहीं जा रहा हूँ। परन्तु तुम्हें कुछ बातें ध्यान में रखनी हैं। जब मैं इस शरीर में नहीं रहूँ, तब तुम्हें कुछ काम करने हैं।'' उन्होंने मुझे तीन निर्देश दिये। पहला यह था कि उनके देहान्त के बाद उनका अन्तिम संस्कार मांडोली में करना, दूसरा मेरी लड़की के विषय में था जो पांच साल बाद पैदा हुई। तीसरी बात गुरु के रूप में आने वाले से सम्बन्धित थी। उन्होंने कहा : ''मेरे शरीर छोड़ने के बाद एक लड़का तुम्हारे पास आएगा। तुम्हें कहीं ढूंढ़ने के लिए जाने की जरूरत नहीं होगी। वह स्वयं तुम्हारे पास आयेगा और तुम्हें पढ़ाई करवाने के लिए कहेगा। तुम उसे तीन प्रश्न पूछना... वह उनका यह उत्तर देगा... उसके पैर पकड़ लेना। मुझे उसी में समझना। (He shall be the vehicle of myself) उसको अच्छी पढ़ाई करवाना।''

गुरुदेव के निर्देशानुसार मांडोली में उनका अन्तिम संस्कार कर दिया गया। सेठजी ने भक्तों को गुरुदेव की आज्ञा से अवगत कराया। अब सब लोग आने वाले उस महापुरुष की प्रतीक्षा करने लगे। सेठजी मांडोली के चक्कर लगाते रहे। सेठजी के शब्दों में :

अग्निसंस्कार के बाद भक्त लोग अपने अपने घरों को चले गये। रुक्मणी और मैं गुरुदेव के जन्म स्थान मणादर उनके माता वसुदेवी के पास गये और उन्हें गुरुदेव की आज्ञा से अवगत कराया। उन्होंने अपने परिवार के ही एक लड़के के लिए सलाह दी। परन्तु अन्य भक्तों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। हम आबू आ गये और कई दिनों तक बेसब्री से इन्तजार करते रहे। पर कोई नहीं आया। दिसम्बर (1943) माह में मैं मांडोली गया। मैं मकान के बाहर खड़ा था। देवाजी महाराज मेरे पास आये और कहा: ''सेठ साहब, मैं पढ़ना चाहता हूँ। आपको मुझे पढ़ाना है।'' मैंने उन्हें किसी नजदीक की स्कूल में भेजने या शिक्षक नियुक्त करने की बात कही। परन्तु उन्होंने बनारस में ही पढ़ाने के लिए कहा। उनकी आवाज में दृढ़ता थी और आज्ञासूचक थी। मैं तुरन्त भांप गया। मैं उन्हें अन्दर ले गया और उनसे बात की। मैंने उन्हें गुरुदेव के बताये हुए तीनों प्रश्न पूछे। उनके उत्तर वही थे जो गुरुदेव ने मुझे बताये थे। उन्होंने मुझे अपनी पहचान करवा दी।....

फिर मैं देवाजी महाराज के माता-पिता की आज्ञा लेने उनके घर गया। पहले तो उन्होंने आज्ञा नहीं दी। तब गुरुदेव ने अपनी माता को कहा : ''माँ मुझे जाने दो। मैं तो पढ़ने के लिए जा रहा हूँ।'' आखिर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। परिवार और मांडोली गांव के लोगों ने ढोल बजाते, गीत गाते श्रीदेवाजी को विदाई दी।

सेठ किशनचन्द ने उपरोक्त घटना के बारे में मांडोली के पंचों को याद दिलाई और उन्होंने उसे स्वीकार किया। सेठजी ने बताया कि दूसरे दिन सुबह गुरुदेव मेरे पास आ गये और गाड़ी का दरवाजा खोलकर अन्दर बैठ गये। उनकी आवाज और शारीरिक चेष्टाओं में जो नया परिवर्तन आया था वह मुझे स्पष्ट दिखाई पड़ता था। कुछ दिन आबू ठहरने के बाद हम रेल द्वारा अपने घर (हैदराबाद, सिंध) के लिए रवाना हो गये। स्टेशन पर करीब 200 लोग मेरे स्वागत में खड़े थे। उन्होंने जब देवाजी महाराज को गाँव की पोशाक में मेरे साथ देखा तो वे आश्चर्य में पड़ गये कि मैं किसे ले कर आ गया। परन्तु वहाँ खड़े लोगों को मैंने गुरुदेव का परिचय नहीं करवाया। रुक्मणी हमारे बंगले के दरवाजे पर खड़ी थी। मेरे मुंह से सर्वप्रथम यही शब्द निकले ''रुक्मणी, मैं गुरुदेव को लेकर आ गया हूं।'' रुक्मणी गुरुदेव को उस रूप में देखकर चौंक गई और पीछे हट गई। इस पर गुरुदेव ने उसे कहा : ''बाइसा, कीकर है?'' (अर्थात् कैसी हो?) बड़े गुरुदेव रुक्मणी से इसी आवाज में बोलते थे। उसने अब गुरुदेव को पहचान लिया और उनके चरणों में गिर गई। इसके बाद हमारे बंगले में गुरुदेव आगे-आगे और हम उनके पीछे हमारे पूजा के कमरे की ओर चले जैसे कि उन्हें हमारे बंगले के अन्दर की जानकारी हो। कुछ दिन हैदराबाद रहने के बाद हम आबू आ गये। वहाँ से गुरुदेव के अवशेष विसर्जित करने के लिए हम हरिद्वार गये। बाद में हम बनारस गये जहाँ गुरुदेव के आदेश के अनुसार मैंने प्रोफेसर मूलशंकर शास्त्री के पास श्रीदेवाजी महाराज की पढ़ाई के लिए व्यवस्था कर दी।...''

अन्य वादे जो पूरे किये

अब मैं कुछ अन्य घटनाओं और उन वादों के बारे में जानकारी देना चाहता हूँ जो शान्तिविजयजी और देवाजी के बीच एक रहस्यमयी निरन्तरता की पुष्टि करते हैं।

दोनों जगह होगा

अचलगढ़ में गुरुदेव ने मालाजी नाम के एक भक्त को पूछा ''माला, मांडोली ध्यान करूं या आबू में ?'' मालाजी कुछ नहीं बोले। तब गुरुदेव ने कहा :''मांडोली में भी ध्यान करूंगा और आबू में भी।'' तब मालाजी ने पूछा ''भगवान, दोनों जगह कैसे सम्भव होगा ?'' इस पर गुरुदेव ने केवल यही कहा कि ''दोनों जगह होगा।'' ऐसा लगता है कि गुरुदेव का अभिप्राय यह था कि मूर्तिरूप में मांडोली में होगा और (देवाजी के) शरीर रूप में आबू पर होगा।

मैं मांडोली में ही हूँ

देह-त्याग के कुछ ही दिन बाद जब रुक्मणीदेवी बहुत शोकग्रस्त थी, तब शान्तिविजयजी ने उसे अलौकिक दृष्टि में दर्शन देकर कहा ''मैं कहां गया हूं ? मैं मांडोली में ही हूं।'' (उस समय मांडोली में गुरुदेव का मन्दिर नहीं था और श्री देवाजी महाराज अप्रकट रूप में अपने माता-पिता के पास ही रहते थे।) फिर गुरुदेव ने रुक्मणी को कहा ''जब साड़ी फट जाती है तो क्या तुम उसे बदलती नहीं हो?

प्रथम गुरुपूर्णिमा

इस समय तक भक्तों को गुरुदेव के प्रकट होने की जानकारी मिल गई थी और प्रथम गुरुपूर्णिमा (6 जुलाई, 1944) आबू पर मनाना तय हुआ। गुरुपूर्णिमा के कुछ दिन पहले जोधपुर के उम्मेदराजजी मेहता की पत्नी को गुरुदेव शान्तिविजयजी के रूप में दर्शन (vision) हुए। गुरुदेव ने उन्हें कहा: ''आजकल तुम आबू नहीं आती?'' तब श्रीमती मेहता ने कहा : ''भगवान अब आप तो हैं नहीं। हम कहाँ जायें?'' तब गुरुदेव ने फरमाया : ''इस बार आबू आना।'' गुरुपूर्णिमा पर हम आबू गये। बनारस से जब गुरुदेव आबू पधारे तब उनके स्वागत के लिए भक्तों की भीड़ लगी। कई लोगों के हाथ में मालाएँ थीं। परन्तु सर्वप्रथम माला मैंने ही पहनाई। गुरुदेव ने मुझे मेरे पति के बारे में इस तरह पूछा जैसे कि वे उनको अच्छी तरह से जानते हों। बाद में गुरुदेव ने मेरे पति से भी इसी प्रकार बात की हालांकि वे इस शरीर में पहली बार मिले थे।''

इस गुरुपूर्णिमा के बारे में सेठ किशनचन्द ने बाद में मुझे बताया कि : ''इस प्रथम गुरुपूर्णिमा पर हमने गुरुदेव को आबू आने की प्रार्थना की। प्रोफेसर मूलशंकर शास्त्री को भी इस अवसर पर आने के लिए आमंत्रित किया। इस समय तक वे एक दूसरे के काफी नजदीक आ गये थे। पूजा के समय गुरुदेव ने नारियल, आदि लिया और शास्त्रीजी की पूजा

करनी चाही। इस पर शास्त्रीजी ने कहा : ''गुरुदेव मैं आपकी पूजा पहले करूंगा।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''पहले मैं करूंगा। आपने मुझे विद्या दी है।'' इस अवसर पर शास्त्रीजी बोले: ''आपको विद्या देने वाला है कौन? यह तो खाली एक नाटक है।'' फिर शास्त्रीजी ने गुरुदेव की प्रशंसा में एक छोटा भाषण भी दिया। कुछ दिन बाद गुरुदेव और प्रोफेसर शास्त्री फिर बनारस चले गये।

जरूर आऊंगा कभी

गुरुप्रसादजी व्यास लिखते हैं : मेरे फूफाजी 1925 के आसपास आबू पर विश्राम भवन के मैनेजर थे। उन्होंने मेरे पिताजी श्री माणकलालजी व्यास को गुरुदेव शान्तिविजयजी के दर्शन कराये। उस समय गुरुदेव अधरदेवी मन्दिर के पास की गुफा में ध्यान करते थे। 1943 के मई महीने में हमारे पूरे परिवार को अचलगढ़ में कई दिन गुरुदेव के दर्शन का लाभ मिला। घर जाने की आज्ञा नहीं मिली। हमने कई बार भगवान को मांडल (गुजरात) में हमारे घर पधारने की प्रार्थना की। बहुत विनती करने पर आपने कहा कि ''जरूर आऊंगा कभी''। परन्तु उस शरीर में वे नहीं पधारे और सितम्बर, 1943 में ही उनका निर्वाण हो गया। हमें लगा कि गुरुदेव शान्तिविजयजी ने अपना वादा पूरा नहीं किया। परन्तु उन्होंने अपना वादा बाद में पूरा किया। पूज्य देवाजी भगवान मार्च, 1944 में हमारे पुराने मकान (मांडल) में पधारे और कई दिन वहाँ रहे और पढ़ाई भी की। मांडल में कुछ समय अध्ययन करने के बाद गुरुदेव बनारस चले गये। इसके बाद मेरे पिताजी के नाम गुरुदेव के पत्र आया करते थे जो अभी भी हमारे पास सुरक्षित पड़े हैं।

मैं तुम्हारे यहाँ आऊंगा

शान्तिविजयजी ने देहान्त के काफी पहले जोधपुर के भक्त सुमेरचन्दजी मेहता से वादा किया था कि जब उनका दूसरा पुत्र 14 और 28 साल का होगा, तब मैं तुम्हारे यहाँ आऊंगा। 1946-47 में उनका पुत्र 14 साल का था जब गुरुदेव प्रथम बार जोधपुर आये और उनके यहाँ भी गये। इसके 14 साल बाद फिर श्री देवाजी महाराज जोधपुर आये और उनके कमरे में ठहरे, जिसके बारे में आगे विस्तार से लिखा जायेगा।

30 साल बाद मिलेंगे

जून 1965 में श्री देवाजी महाराज जोधपुर पधारे। 1935 में शान्तिविजयजी ने आबू पर प्रोफेसर कल्ला से 30 साल बाद मिलने का वादा किया था वह पूरा किया। इस पर भी आगे लिखा जायेगा।

तुम्हें अपने पास रखूंगा

मोतीलाल कस्तूरचन्द पोरवाल (बागरा) बहुत लम्बे समय तक शान्तिविजयजी के

साथ रहे और उन चन्द भक्तों में हैं जो बाद में श्री देवाजी के पास भी बहुत रहे। उनका कहना है कि शान्तिविजयजी और देवाजी को अलग मत समझना। ये दोनों एक ही हैं। एक बार शान्तिविजयजी ने मुझे कहा : 'तुझे मैं दो महीने तक अपने पास रखूंगा।' परन्तु मैं जा नहीं सका और गुरुदेव का निर्वाण हो गया। बाद में श्रीदेवाजी महाराज ने मुझे बुलाया और दो महीने तक मुझे अपने पास रखा।

पहचान करवादी जायेगी

मुझे 1968 में पचपदरा के एक पुराने गुरुभक्त लेहरीराम मिले। उन्होंने कहा: ''शुरू में मैंने देवाजी महाराज को गंभीरता से नहीं लिया। मैंने सोचा कि वे तो सिर्फ सेठजी के पास रहते हैं। एक बार मांडोली मन्दिर में देवाजी महाराज पधारे और मुझे सेठ के बंगले में मिलने का कहा। जब मैंने सेठ के बंगले पर दर्शन किये तो देखता हूं कि देवाजी महाराज यकायक अदृश्य हो गये और उनकी जगह मैंने बड़े गुरुदेव शान्तिविजयजी को देखा। ज्यों ज्यों मैं उनकी तरफ बढ़ा वे पीछे हटते गये। मैंने नमन किया। कुछ मिनट में बड़े गुरुदेव की जगह फिर देवाजी महाराज को देखा।''

ऐसा ही एक अनुभव भैरुसिंह ने बताया। बड़े गुरुदेव के देहान्त के काफी पहले जब गुरुदेव अनादरा में थे तब इन्द्राबहन और शान्ताबहन को कहा कि अब यह शरीर ज्यादा नहीं चलेगा। यह सुनकर वे दोनों बहुत दुखी हुई। उन्होंने कहा: ''भगवान् फिर हम कहाँ जायेंगे? आपके पीछे तो कोई भी नहीं है।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''आजाएगा।'' ''परन्तु बाद में कोई आया तो हम उसे कैसे पहचानेंगे?'' तब गुरुदेव ने कहा: ''पहचान भी करा दी जायेगी।'' इस घटना के काफी समय बाद देवाजी महाराज सेठजी के बंगले में सोए हुए थे। इन्द्रा और शान्ता बहन वहीं बैठी थी। उनमें से एक को शान्तिविजयजी दिखे, दूसरी को देवाजी। वे आपस में पूछने लगी। एक ने कहा मुझे बड़े गुरुदेव दिखाई देते हैं। दूसरी ने कहा, मुझे तो छोटे गुरुदेव (देवाजी) दिखाई देते हैं। थोड़ी देर में गुरुदेव स्वयं बोले, ''बहन, अनादरा में जो वादा किया था, वह पूरा हो गया।''

शान्तिविजयजी के भक्त की इच्छा देवाजी ने पूरी की

जोधपुर के भक्त उम्मेदराजजी मेहता की पत्नी चंचल मेहता ने बताया कि उनकी यह इच्छा थी कि उनकी छोटी लड़की का नाम रखने के लिए गुरुदेव शान्तिविजयजी से प्रार्थना करेंगे। परन्तु उन्हें गुरुदेव से प्रार्थना करने का मौका नहीं मिला और गुरुदेव का देहान्त हो गया। बाद में वे इस बात को भूल गये और उनके पिता के कहने पर उसका नाम शान्तिराजकुमारी रख दिया। बाद में जब देवाजी महाराज जोधपुर पधारे तब उम्मेदराजजी के शहर वाले मकान में भी पधारे और दिन भर वहाँ रहे। उस समय यह बच्ची घर में इधर-उधर घूम रही थी। देवाजी महाराज ने उसे पास में बिठाया। उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा कि इस बच्ची का नाम आज से शान्तिराजकुमारी नहीं रहेगा बल्कि 'कला' होगा। चंचल मेहता

की इच्छा जो शान्तिविजयजी के शरीर से पूरी नहीं हुई, वह देवाजी महाराज से पूरी हुई।

एक बार श्रीमती चंचल मेहता ने श्रीदेवाजी का फोटू मांगा। तब श्रीदेवाजी ने उन्हें खुद का फोटू न देकर शान्तिविजयजी का फोटू दिया और हाथ का इशारा किया। उनका आशय यह था कि दोनों एक ही हैं।

पर–काया प्रवेश

प्रोफेसर महावीर सिंह गहलोत ने मुझे बताया कि परकायाप्रवेश के विषय पर उनकी श्रीदेवाजी महाराज से बात हुई थी। योगशास्त्र में ऐसे वर्णन आते हैं कि योगी अपनी आत्मा को किसी अन्य के शरीर में डाल देते हैं और उस नये शरीर के द्वारा कई कार्य करते हैं। परन्तु वे अपना असली रूप छिपा लेते हैं। गहलोत ने शान्तिविजयजी की आत्मा का देवाजी महाराज के शरीर में प्रवेश के विषय में भी गुरुदेव से कुछ चर्चा की थी। इस पर गुरुदेव ने उन्हें कहा: ''महावीरसिंहजी आप को बहुत जिज्ञासा है। समय आने पर आप को अधिक जानकारी हो जायेगी।'' इतना कह कर गुरुदेव ने बातचीत का विषय बदल दिया। गहलोत ने मुझे कहा कि ऐसा लगता है कि शरीर तो देवाजी महाराज का हैं परन्तु इनमें आत्मा शान्तिविजयजी की है।

एक प्रवचन में योगियों द्वारा परकायाप्रवेश के विषय पर चर्चा करते हुए गुरुदेव शान्तिविजयजी ने एक राजा और सोनार की कहानी सुनाई। ''वे दोनों मित्र थे और उनमें परकायाप्रवेश की शक्ति थी। सोनार बहुत चालाक था। उसने राजा को अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने को कहा। राजा एक गधे के मृत शरीर में प्रवेश कर गया और सोनार उस अवसर का दुरूपयोग कर राजा के खाली शरीर में प्रवेश कर गया।''

इसके बाद राजा को अपना शरीर पुनः प्राप्त करने में बहुत कठिनाई पड़ी। यह कहानी बताती है कि अयोग्य व्यक्ति किस प्रकार अपनी योग शक्ति का दुरुपयोग कर सकते हैं। महापुरुष योग शक्ति का दुरुपयोग नहीं करते। परन्तु वे चाहें तो अपना शरीर छोड़ कर अन्य किसी शरीर में प्रवेश कर उसके द्वारा आगे का कार्य कर सकते हैं। (रूपजी हेमाजी शाह : श्री विजयशान्तिसूरी वचनामृत, पृ. 117, जोधपुर)

5 फरवरी 1968 को मैंने सेठजी के बंगले में गुरुदेव के दर्शन किये। उन्होंने मुझे अन्दर बिठाया। उनकी तबियत ठीक नहीं थी। वे लेट गये और मुझे गुरुदेव शान्तिविजयजी की महानता के बारे में बता रहे थे। तब मैंने परकायाप्रवेश की बात छेड़ दी। परन्तु गुरुदेव इस विषय पर आगे चर्चा करना नहीं चाहते थे इसलिए विषय बदल दिया। बाद में बातचीत में सुरेन्द्रभाई को कहा : ''गुरुदेव (शान्तिविजयजी) शिव थे। मैं शक्ति हूँ।'' प्रफुल्ल भाई (वीसनगर) ने मुझे बताया कि गुरुदेव श्री देवाजी महाराज कहते थे कि ''मैं तो कभी रिटायर हो गया था। मैं तो पेन्शनर हूँ।'' इसका आशय यह लगता है कि 1943 में बड़े गुरुदेव के रूप में वे रिटायर हो गये थे। परन्तु उसके बाद देवाजी महाराज के शरीर में पेन्शनर की तरह रहे।

देवाजी और शान्तिविजयजी अलग नहीं हैं

बीकानेर के जयकरणजी यति मांडोली आये हुए थे और गुरुदेव के पास रहते थे। वे 1943 में करीब छह माह शान्तिविजयजी के पास भी रहे थे। देवाजी महाराज ने उनसे मेरा परिचय करवाया। उन्होंने मुझे बड़े गुरुदेव से सम्बन्धित कई अनुभव बतलाए जिन्हें मैंने *The Saint of Mt. Abu* में लिखा है।

यतिजी उन चन्द लोगों में थे जो देवाजी महाराज के भी काफी नजदीक रहे और जिन्होंने उनकी महानता की झलक देखी। उन्होंने मुझे भी कुछ अनुभव बताए और मैंने अपने अनुभव उनको बतलाये। हमारे अनुभवों में समानता देखी तब उन्होंने मुझे कहा कि देवाजी महाराज को समझना सरल नहीं है। ये और शान्तिविजयजी अलग नहीं हैं। एक ही शक्ति के प्रतीक हैं। इसलिए ये गुप्त रहना चाहते हैं।''

* * *

श्री देवाजी की लीलाएँ

1944 से 1956

अवतारी पुरुषों के जीवन के बारे में और मुख्य रूप से उनके बचपन के बारे में बहुत समय बाद उनके भक्त इधर-उधर से सुनी हुई बातों को इकट्ठा कर के रख देते हैं। धर्म साहित्य में इस तरह की कई मिलती जुलती बातें मिलती हैं जो बाद में शास्त्रीय आधार के रूप में मान्यता प्राप्त कर लेती हैं, जैसे उनके समय का सामाजिक और राजनैतिक पतन, उनके जन्म में दैविक प्रयोजन, उनकी माताओं के गर्भावस्था के अनुभव, उनके जन्म पर देवताओं द्वारा तरह-तरह से खुशियां मनाने और देह-त्याग पर भीषण दुर्घटनाओं का होना आदि।* बाइबल में मूसा और ईसा और भारतीय धर्म ग्रन्थों में कृष्ण और महावीर के जन्मों से सम्बन्धित ऐसी प्रचुर सामग्री है। परन्तु यह भी देखा गया है कि उनके आगे के जीवन के कई महत्वपूर्ण विषयों पर बहुत कम सामग्री मिलती है और कुछ बातों पर तो परस्पर विरोधी सामग्री भी मिलती है जो उनके दावों की विश्वसनीयता को कमजोर कर देते हैं। अतीत में समय-समय पर कई महात्मा हुए हैं। उनका कार्यक्षेत्र सीमित ही रहा और उनके प्रचार का कार्य ऐसे हाथों में नहीं गया जो उनकी महानता का परिचय दूर-दूर तक पहुंचा सके। राजस्थान के जालोर जिले के मांडोली ग्राम में भी उन्नीसवीं शताब्दी में धर्मविजयजी नाम के एक महात्मा हुए हैं। वे योगीराज शान्तिविजयजी के दादा-गुरु थे। उनके बारे में आधुनिक पीढ़ी को बहुत कम जानकारी है। योगीराज शान्तिविजयजी के बारे में मैं संक्षेप में लिख चुका हूँ। योगीराज श्री देवाजी महाराज के भी जीवन के प्रथम 16 वर्षों की जानकारी बहुत कम मिलती है। फिर भी जो मिली है उसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

गुरुदेव श्री देवाजी महाराज का जन्म मांडोली ग्राम के राईका परिवार में हुआ। मैंने

---

*शास्त्रों में लिखा है कि जब महापुरुष जाते हैं तो कई दुःखद घटनाएँ होती हैं। विनाशकारी भूकम्प आते हैं। जब ईसा, (बाइबल, संत मैथ्यू, 27.2, 27.51) बुद्ध (महापारिनिर्वाण सुत्त) और महावीर ने शरीर छोड़ा तब ऐसा ही हुआ। गुरुदेव श्री देवाजी के शरीर छोड़ने के कुछ दिन बाद (26 जनवरी 2001) गुजरात में एक अत्यन्त विनाशकारी भूकम्प आया। वैसे सारा भारत भी हिल गया था, परन्तु विनाश का अधिक प्रभाव पश्चिम भारत के उन स्थानों पर रहा (मुम्बई से आबू) जहाँ गुरुदेव ने अपने जीवन का अधिकतर समय बिताया।

गुरुदेव के भाई सबलाजी से इस विषय में बात की। सबलाजी ने बताया कि उनके पिता का नाम धूलाजी और माता का नाम कनकाजी था। वे आठ भाई थे: 1. सूरा, 2. सबला, 3. वागा, 4. समरथ, 5. कला, 6. हेमा, 7. देवा, 8. फता। इनमें से फता का बचपन में ही देहान्त हो गया था।

देवाजी महाराज के जन्म के कुछ वर्ष पहले अकाल के कारण हमारा सब परिवार मांडोली से करीब 20 मील दूर भैंरूगढ़ चला गया था। वहाँ पर भादवा सुद 2 को श्री देवाजी महाराज का जन्म हुआ।

कुछ भक्तों के अनुसार यह सन् 1925 था जिस कारण 2000 में 75 वर्ष पूर्ण होने पर जुबली मनाने की योजना बनी। परन्तु गुरुदेव ने स्पष्टतया ऐसा करने से मना कर दिया। जोधपुर विश्वविद्यालय में 1965 में हिन्दी में एम.ए. के लिए भर्ती के फार्म में मैंने देखा कि वह 23 अक्टूबर 1928 था। बाद में सुना की यह भी ठीक नहीं है। कुछ अन्य लोगों ने 10 सितम्बर 1928 बताया। हो सकता है कि लिखने में, पढ़ने में या सुनने में कहीं कोई त्रुटि हुई है। परन्तु अब इसका खुलासा नहीं हो सकता। इतना सब मानते हैं कि गुरुदेव का जन्मदिन भादवा सुद 2 था।

उस समय बालविवाह की प्रथा थी। जब देवाजी महाराज सात साल के थे तब उनके घरवालों ने उस समय के रिवाज के अनुसार (छोटी) शादी एक साल की लड़की से कर दी। यह एक विशेष संस्कार था। पक्की शादी तो बड़े होने पर की जाती थी जो कभी नहीं हुई। देवाजी महाराज ने जब अपना घर और परिवार छोड़ दिया तब वे उस लड़की के पास गये। उसके सिर पर हाथ रखा, चूंदड़ी ओढ़ाई और उसे धर्म की बहिन घोषित किया और आशीर्वाद दिया। इस प्रकार वह लड़की अन्य किसी के साथ शादी करने के लिए स्वतंत्र हो गई। इस प्रकार श्री देवाजी महाराज ने बालविवाह की बुरी प्रथा का स्वयं उदाहरण बनकर निषेध किया।

जब श्री देवाजी महाराज करीब सात साल के थे तब वे अपने भाइयों के साथ गायें चराने जाते थे। कभी कभी अकेले भी चले जाते थे। बचपन में श्रीदेवीजी ने नियमित रूप से किसी स्कूल में पढ़ाई नहीं की। बिना किसी के प्रोत्साहन के उन्होंने स्वयं ही कुछ ऐसे लड़कों के साथ रहते हुए अक्षर ज्ञान प्राप्त किया जिनको लिखना और पढ़ना आता था। ''इस प्रकार चलते फिरते बच्चों से पढ़ना सीखा।''

विद्याध्ययन

पूज्य श्री देवाजी को साधारण विद्या अर्थात् अपरा विद्या की आवश्यकता ही नहीं थी। सेठजी से जब व 1943 में मिले तब भी वे त्रिकालदर्शी थे। शान्तिविजयजी के पूर्व निर्देशों के अनुसार सेठजी ने श्री देवाजी की परीक्षा ली और श्री देवाजी ने उनको गुरुदेव के रूप में अपनी पहचान करवा दी। शान्तिविजयजी की आज्ञा के अनुसार सेठजी ने श्रीदेवाजी

को अपने पास रखा और अपने आप को पूर्णरूप से उनके चरणों में समर्पित कर दिया। लौकिक शिक्षा की आवश्यकता न होते हुए भी श्रीदेवाजी ने 1944 से 1956 तक का समय शैक्षणिक वातावरण में बिताया। कुछ समय मांडल में गुरुप्रसादजी के यहाँ पढ़ाई की। बाद में कुछ वर्षों तक बनारस में पंडित मूलशंकर शास्त्री के पास अध्ययन किया। फिर आबू आये और वहाँ सेन्ट मेरीज स्कूल में पढ़े और 1952 में वहाँ से Senior Cambridge की परीक्षा पास की। 1955 में उत्तर प्रदेश से Intermediate की परीक्षा पास की। 1957 में बनारस विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा की। इसके बाद बम्बई से एम.ए. की और नव्य न्यायाचार्य भी हुए।

धीरे-धीरे श्रीदेवाजी ने शान्तिविजयजी के कई भक्तों को भी अपने स्वरूप की पहचान करवा दी। फिर भी गुरुदेव के पुराने भक्तों से साधारण सम्पर्क ही रहता था। शान्तिविजयजी की तरह श्री देवाजी को भी चेले बनाने, भीड़ इकट्ठी करने, लम्बे व्याख्यान देने, खूब धूमधाम करने और अपनी जयजयकार करवाने में बिल्कुल रुचि नहीं थी। शुरू शुरू में मैं जब गुरुदेव को पत्र लिखता तो पते पर 'हिज होलीनेस श्रीदेवाजी महाराज' लिखता था। इस पर गुरुदेव ने मुझे लिखा कि उनके नाम के साथ हिज होलीनेस जैसी उपाधियां नहीं लगाना। तब से मैं सिर्फ देवाजी महाराज ही लिखता रहा। बसंत पंचमी और गुरुपूर्णिमा के अवसर पर सभी भक्तों को दर्शन होते थे। अन्य दिनों में सामूहिक तौर पर तो मिलना नहीं होता था, परन्तु व्यक्तिगत रूप से उनकी आज्ञा होने पर भक्त खुद ही कभी कभी उनके दर्शन करने आबू, बम्बई, वीसनगर जाते थे। कभी कभी विशेष कारणों से श्रीदेवाजी ने स्वयं भी अल्प समय के लिए जोधपुर, जयपुर, मांडल, अहमदाबाद, पूना जाकर भक्तों को दर्शन दिये। जोधपुर के भक्तों के आग्रह पर श्री देवाजी महाराज 1946-47 में सेठ और सेठानी के साथ जोधपुर पधारे और वहाँ कुछ दिन पुराने भक्तों के साथ रहे।

सेठ किशनचन्द के अनुभव कई दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उनके ऊपर शान्तिविजयजी और देवाजी दोनों की निरन्तर और अटूट कृपा रही है। वे इस पुस्तक की अमूल्य सामग्री हैं जिसे मैंने अलग-अलग संदर्भ में प्रकाशित किया है।

सेठ किशनचन्द ने मुझे बताया कि उनके कोई संतान नहीं थी और डाक्टरों के अनुसार होने की कोई संभावना ही नहीं थी। परन्तु गुरुदेव शान्तिविजयजी ने देह त्याग के पहले एक लड़की देने का आशीर्वाद दिया था जो पाँच साल बाद (1948) फलीभूत हुआ। सेठजी के शब्दों में : ''रुक्मणी की प्रेगनेन्सी के समय हम आबू ही रहते थे। आठ माह तक गुरुदेव ने हमें कहीं जाने की आज्ञा ही नहीं दी। नौवें महीने में गुरुदेव ने हमें अहमदाबाद जाने की आज्ञा दी। हमने गुरुदेव से यह वादा करवाया कि वे ठीक समय पर वहाँ आयेंगे। रुक्मणी की हालत गंभीर हुई। डाक्टरों ने कहा कि वह शायद बच नहीं सकती। हम सब निराश थे। हम गुरुदेव के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु वे नहीं आये। डॉक्टर ने कहा कि ऑपरेशन करना तो अत्यन्त आवश्यक हो गया है। जब हम दुविधा में थे, हमने गुरुदेव

को आते हुए देख लिया। उन्होंने ऑपरेशन करने का मना कर दिया। डाक्टरों ने उन्हें एक साधारण आदमी समझ कर उनके हस्तक्षेप पर नाराजगी दिखाई। परन्तु कुछ ही समय में बिना ऑपरेशन के ही लड़की हो गई।

गुरुदेव ने बेबी को हाथ में लिया और उसे शान्ताबहन के हाथों में दे दिया। सर्जन आश्चर्यचकित हो गई। इस आदमी के कहने मात्र से ही बच्ची कैसे हो गई, जबकि ऑपरेशन बिल्कुल आवश्यक था। उसने कहा : "मेरे जीवन में मैंने ऐसा केस नहीं देखा।" बाद में गुरुदेव आबू चले गये।

गुरुदेव शान्तिविजयजी का देहान्त अचलगढ़ में हुआ था। परन्तु गुरुदेव की इच्छा के अनुसार मांडोली ही भक्तों का केन्द्र-बिन्दु बन गया। इस ध्येय की पूर्ति के लिए पूज्य देवाजी महाराज और सेठ किशनचन्द ने मांडोली के विकास को नई दिशा प्रदान की। सेठ द्वारा मन्दिर बनाने के बाद भक्तों का आना बढ़ने लगा और भक्तों के सहयोग से कई धर्मशालाएँ बनी।

सन् 1954 में बम्बई में शान्तिदेव सेवा समिति की स्थापना हुई जो गुरुदेव से सम्बन्धित मांडोली और अन्य स्थानों पर जनहित के कार्य करवाती थी। पूज्य देवाजी महाराज ने शान्तिदेव सेवा समिति के अध्यक्ष के रूप में ऐसे कई कार्य करवाये। स्कूल, अस्पताल और अतिथिगृह बनवाये।

10 फरवरी, 1957 से तीन दिन तक देवाजी महाराज की प्रेरणा से मांडोली में एक विशाल नेत्र शिविर आयोजित किया गया जिसमें 860 नेत्र रोगियों की चिकित्सा की गई। ऑपरेशन के समय शुरू से आखिर तक गुरुदेव वहीं उपस्थित रहे। बाद में गुरुदेव ने प्रयत्न करके मांडोली में भक्तों की सुविधा के लिए मन्दिर के पास ही एक अस्पताल बनवाया। मई 1960 में मुख्यमंत्री सुखाड़िया ने इसका उद्घाटन किया। गुरुदेव ने मांडोली में एक स्कूल भी बनवाया।

पूज्य गुरुदेव स्वयं एक उच्चकोटि के विद्वान और कवि भी थे। सुमन, सुशील और प्रमीला बहनों ने श्री देवाजी महाराज की शिक्षाओं और रचनाओं का संकलन किया है जो तत्त्व-दर्शन और समाज-दर्शन दोनों दृष्टि से बहुत ही ज्ञानवर्धक और उपयोगी है।

शान्तिविजयजी के भक्त समस्त भारत में हैं। कई विदेशों में भी हैं। उनमें कई देवाजी महाराज के गहन भक्त हैं जिनसे मेरा सम्पर्क रहा और उन्होंने मुझे अपने अनुभवों की जानकारी दी है। मैंने 1944 से 1956 तक की श्री देवाजी महाराज से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है। 1956 में श्री देवाजी महाराज के दर्शन के बाद से मुझे जो अनुभव हुए और अन्य भक्तों से मुझे जो जानकारी मिली वह विस्तार से मेरी डायरी में लिखता रहा जिसके कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत करता हूँ।

* * *

संशय से श्रद्धा की ओर

(लेखक की डायरी से)

अभी नहीं, पीछे देखेंगे

मेरे पिताजी की बहिन श्रीमती उगम कंवर भंसाली बहुत पहले से ही बड़े गुरुदेव की भक्त थी। जब मैं दार्शनिक धारणाओं के संघर्ष में चल रहा था तब उन्होंने पूज्य देवाजी महाराज से मेरे बारे में चर्चा की और मुझे दर्शन के लिए लाने की उनसे आज्ञा मांगी। परन्तु गुरुदेव हर बार यही कहते "अभी नहीं, पीछे देखेंगे।"

1955 के अन्त में जब मैंने दर्शन शास्त्र में पी.एच.डी. के लिए शोध-कार्य शुरू किया तब गुरुदेव ने उन्हें कहा – "अब उसे ले आना।" उनके आग्रह पर 16 फरवरी, 1956 की शाम को बसन्त पंचमी के अवसर पर मांडोली में मैंने प्रथम बार सेठजी के बंगले में गुरुदेव के दर्शन किये। वे पाट पर बैठे थे और मैं उनके पास चरणों में। मैं बैठा रहा पर उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। एक लम्बी मौन के बाद उन्होंने हाथ से कुछ इशारा किया और कहा "मन्दिर जाओ।" मुझे मूर्ति-पूजा में कोई रुचि नहीं थी। पहली भेंट में मैं किसी तरह से प्रभावित नहीं हुआ। कई प्रकार के विचार मन में आये और मैं सो गया।

गुरुदेव के भक्त जिनमें जोधपुर के भक्त भी थे, देवाजी महाराज को भगवान कहते थे। मुझे यह ठीक नहीं लगा। दूसरे दिन सुबह मैं सेठजी के बंगले गया। वहाँ कई भक्त दर्शन की प्रतीक्षा में बैठे थे। मैं उनसे अकेले में मिलना चाहता था। कुछ देर बाद जब वे अकेले थे, मैं अन्दर गया। मैंने अपना परिचय दिया और वहाँ आने के प्रयोजन से अवगत कराया। मैंने विकासवाद (Evolution) की दार्शनिक धारणा पर बात की। कुछ समय बात करने के बाद उन्होंने मुझे दोपहर बाद आने को कहा।

(समझ में) आ जायेगा

दोपहर की भेंट में मैंने उन्हें जगत् की प्रक्रिया (World Process) की विभिन्न व्याख्याओं पर चर्चा की। मैंने मेरा ही उदाहरण दिया। मैंने कहा, "मैं आपके दर्शन करने आया हूँ। यह कैसे हुआ? एक ज्योतिषी कहेगा कि ग्रह मुझे यहाँ लाये हैं। हस्तरेखा विशेषज्ञ कहेगा कि

आपकी रेखाओं में इस मिलन का योग था। ईश्वर भक्त कहेगा कि इसके पीछे ईश्वर की इच्छा है। कर्मवादी कहेगा कि यह पहले के कर्मों के कारण हुआ। भौतिकवादी इसे केवल भौतिक तत्त्वों का संयोग ही बतायेगा। इन विभिन्न विवेचनाओं में एक बात सामान्य है- वह यह कि मेरा यहाँ आना पूर्व निर्धारित था। यह मेरी स्वतंत्र इच्छा से नहीं हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि मैं मेरी Free will से यहाँ नहीं आया। मुझे तो आना ही था और आपको भी मुझे दर्शन देना ही था। तब फिर संकल्प की स्वतंत्रता का कहाँ स्थान है?'' मैंने इस विषय पर उनके विचार जानना चाहा। उन्होंने कहा, ''ऐसा है कि जैन दर्शन के अनुसार सब पूर्व कर्मों से घटित होता है।'' मुझे इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। मुझे जैन दर्शन के द्वारा दिये गये समाधान की जरूरत नहीं थी। शास्त्रों में क्या लिखा, इसकी जरूरत भी नहीं थी। मैं तो उनके अपने अनुभव के आधार पर उसका हल जानना चाहता था। उन्होंने फिर वही उत्तर दोहराया कि होता तो सब कर्म से है। योगी को सब दिखता है परन्तु साधारण व्यक्ति को नहीं। मैंने कर्म के सिद्धान्त की आन्तरिक कठिनाईयों के बारे में कहा तब उन्होंने कहा कि यह ठीक है और इसलिए बौद्धिक स्तर पर इस धारणा को समझना कठिन है। सभी भारतीय दर्शन कर्म के प्रभाव को मान्यता देते हैं परन्तु संतोषप्रद ढंग से नहीं बता सकते। इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने जो तर्क दिये हैं उनमें कोई कमी रह गई है और भविष्य में कोई दार्शनिक नये प्रमाणों से इसकी पुष्टि कर सकेगा। सारी कठिनाई तो इस बात की है कि साधारण बुद्धि द्वारा इसे जाना नहीं जा सकता। इसको जानने के लिए एक उच्चतर प्रत्यक्षानुभव (Higher Experience) की आवश्यकता है। इस पर मैंने उन्हें स्पष्टतया यह कहा कि मुझे तो यह समझ में नहीं आया। इस पर उनके चेहरे पर एक गंभीरता देखी। उन्होंने एक गहरी, लम्बी सांस ली और अपनी आत्मा की गहराइयों से मानों ऊपर आकर एक पूर्ण और निश्चित ज्ञान और विश्वास के साथ मुझे कहा, ''(समझ में) आ जायगा''। इतना कह कर उन्होंने बातचीत का विषय ही बदल दिया।

मैंने गुरुदेव को कहा कि हम तो दार्शनिक जगत् में ही रहते हैं। हमारा अनुभव तो केवल बौद्धिक सीमाओं में ही बंधा है। हमें वह यौगिक प्रत्यक्ष नहीं है। तब फिर हमारा प्रयास कैसा होना चाहिये इस पर स्पष्ट खुलासा करते हुए गुरुदेव ने कहा कि दार्शनिक क्षेत्र में तुम्हें बौद्धिक और आलोचनात्मक दृष्टि (approach) रखनी चाहिये, परन्तु धार्मिक अनुभव के क्षेत्र में गुरु में श्रद्धा जरूरी है। उसके बिना तुम प्रगति नहीं कर सकते। मुझे ज्ञान की गहरी जिज्ञासा थी। मैं जीवन के सभी रहस्यों को तुरन्त जानना चाहता था। मुझे लगा कि मैंने जिस तरह से अपनी कठिनाइयों को व्यक्त किया उससे गुरुदेव तनिक भी विक्षुब्ध या नाराज नहीं हुए। मेरी समस्याएँ उनके लिए कोई समस्या ही नहीं थी। मुझे उनमें गीतावर्णित स्थितप्रज्ञ (2.55) के सभी लक्षण दिखाई दिये। उन्हें अपने स्वरूप की मुझे पहचान करवाने की जल्दी नहीं थी। वे उपयुक्त समय की इन्तजार में थे। मांडोली में अन्तिम दर्शन के बाद उन्होंने कहा: ''गर्मी की छुट्टियों में आबू आना''।

मई महीने में मैं आबू गया था। हम देलवाड़ा ठहरे थे। वहां से मैं रोज गुरुदेव के दर्शन करने आबू आता था। मुझे याद है कि मैंने अपनी व्यक्तिगत और पारिवारिक समस्याओं के बारे में उनसे कोई बात नहीं की। हम केवल दार्शनिक समस्याओं और मेरे थीसिस के सम्बन्ध में ही बात करते थे। उन्होंने एक बार स्वयं ही मुझे पूछा कि इस पढ़ाई के बाद मेरा क्या करने का इरादा है? उन्हें मेरे भूत और भविष्य की पूरी जानकारी थी।

कुछ समय में हम नजदीक आ जायेंगे

इस यात्रा के दौरान शांति सदन में सिरोही के एक अध्यापक श्री ओझा मुझे मिले। वे गुरुदेव के पास आया करते थे। उन्होंने मुझे बताया कि ''गुरुदेव आपके बारे में मुझसे बात कर रहे थे और यह कहा कि कुछ समय में हम एक दूसरे के काफी नजदीक आजायेंगे। "Someday we shall come very near each other". यह सुनकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ क्योंकि मैं स्वभाव से social कम हूँ। साल में एक या दो बार किसी से मिलने को मैं नजदीक जाना नहीं समझता था। परन्तु उनकी बात सही निकली।

मैं 4 जून, 1956 को जोधपुर लौटा। सभी नजदीकी भक्त बहुत उत्सुकता के साथ मुझसे गुरुदेव के बारे में सुनना चाहते थे। उस समय तक मैं उनसे कोई विशेष तरह से प्रभावित नहीं हुआ था। मुझे इतना ही लगा कि वे एक भले व्यक्ति हैं, उनका जीवन सादा है और उनकी अध्ययन में रुचि है। मैंने देखा कि ये भक्त जब भी उनके बारे में बात करते या उनसे बात करते तो वे 'भगवान' शब्द ही काम में लेते थे। मुझे इस शब्द का उपयोग नहीं जचा। हम किसी को भगवान कैसे कह सकते हैं? मैं तो नहीं कह सकता, क्योंकि मैंने ऐसी कोई असाधारण बात नहीं देखी। ''मेरी भुआजी ने कहा: ''कुछ समय ठहरो, फिर देखना। जब उनकी कृपा की वर्षा होगी, तो मूसलाधार होगी।'' मैं यही कहता मेरा मस्तिष्क खुला है। जब और जहां मुझे महानता दिखाई देगी, मैं उसे मान्यता दूंगा।

बचपन में मैं स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ था। मेरी यह तीव्र भावना थी कि मुझे भी कोई रामकृष्ण मिले। उनसे कम में मेरे लिए काम नहीं चलेगा। मैं अपना जीवन रामकृष्ण की खोज में देना चाहता था। स्पीनोजा नाम के पाश्चात्य दार्शनिक ने कहा था ''महापुरुष को अपनी पहचान करवाने दो।'' (Let the prophet prove his prophethood) अब समय आ रहा था। वह महानता मुझे योगीराज देवाजी महाराज में प्रकट होने की शुरूआत हुई।

उसे आशीर्वाद लिख दो

इस समय तक सब ठीक ठाक चल रहा था। स्वास्थ्य ठीक था। मेरी सगाई हो गई थी। उसके तुरन्त बाद कई तरह की बीमारियों का प्रहार शुरू हुआ। दांत और मसूड़ों के दर्द, बाद में हाथ-पैर के जोड़ों में दर्द। हर तरह का इलाज मर्ज को बढ़ाता ही गया। हर डाक्टर ने अपने पहले के डाक्टर को अनाड़ी बताया। 24 नवम्बर, 1956 को मेरी और छोटे भाई

की शादी तय हो चुकी थी। सिवाय मेरे, सब चिंतित थे। मेरी भुआजी ने मुझे कहा कि तुम गुरुदेव को पत्र लिखो। मैंने कहा : ''गुरुदेव इसमें क्या कर सकते हैं? वे कोई डाक्टर थोड़े ही हैं।'' उनका दबाव बढ़ा तब मैंने कहा ''पत्र तो मैं लिख दूंगा। मेरा उनके लिए आदर है परन्तु मैं यह नहीं समझता कि इतनी दूर से वे मेरे लिए कुछ कर सकते हैं।'' आखिर मैंने 29 अक्टूबर को उन्हें पत्र लिखा। पत्र मिलने पर गुरुदेव ने बुआजी को संदेश भेजा कि वे अभी आबू हैं इसलिए वे चाहे तो आ सकती हैं।

इधर बीमारी को देखते हुए मैंने घर पर शादी का मना कर दिया। मुझे शादी करने में रुचि भी नहीं थी। भुआजी ने आबू से पत्र भेजा कि गुरुदेव ने आशीर्वाद कहा है। सब ठीक होगा। आबू से लौटने पर उन्होंने मुझे कहा:

''आबू पहुंचते ही हमने गुरुदेव के दर्शन किये। उन्होंने तुम्हारे पत्र और स्वास्थ्य के बारे में पूछा। हमने हमारी चिन्ता से उन्हें अवगत कराया। गुरुदेव मुस्कराते हुए बोले : ''बस, इतने में ही घबरा गये। उसे आशीर्वाद लिख दो।'' फिर हमें ठहरने के लिए शांतिसदन भेज दिया।

कहो खुशी-खुशी शादी करे

हम सो गये थे। रात करीब 11 बजे कोई लालटेन लेकर आया और आवाज दी कि गुरुदेव आपको बुला रहे हैं। उस समय शांतिसदन के ठीक सामने स्वरूपभाई के बंगले में गुरुदेव रहते थे। हम उनके चरणों में बैठे। प्रथम उन्होंने तुम्हारे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। फिर कहा: ''ऐसा है कि उसका समय तो खराब आ गया है। कर्मों के भोग तो भोगने ही पड़ेंगे।'' फिर भुआजी ने कहा भगवान उसने ऐसे कोई खराब कर्म तो नहीं किये हैं। तब गुरुदेव ने कहा : ''बहन, इस जन्म के नहीं हैं। पूर्व जन्म के हैं। पर नुकसान नहीं होगा। शादी के बाद यहां लाना। कोई ऐसी दवाई दिला देंगे कि काम चलता रहेगा।'' इस पर भुआजी ने कहा : ''परन्तु भगवान शादी कैसे होगी। ठीक तरह बैठा नहीं जाता, चला नहीं जाता।'' तब गुरुदेव ने कहा : ''शादी इसी समय होगी। उसे कहना रोकने की कोशिश नहीं करे। खुशी-खुशी शादी करे। उसे आशीर्वाद का तार भेज दो। शादी की तैयारी करो।'' तब भुआजी ने पूछा: 'भगवान आयु (Life) तो पूरी है, वरना दो घर डूब जायेंगे।' तब गुरुदेव ने कहा: ''उसकी आयु लम्बी है। चिन्ता मत करो। उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा।'' फिर कुछ रुक कर कहा: ''अभी शादी पर वह ठीक हो जायेगा और शादी का कोई काम नहीं रुकेगा। इस समय केवल इतना ही हो सकता है परन्तु शादी के बाद काफी समय तक फिर तबियत खराब रहेगी। पर नुकसान कुछ नहीं होगा।''

अभी मत पूछो, समय लम्बा है

फिर गुरुदेव ने कहा उसे अभी इस बारे में कुछ नहीं बताना। नहीं तो वह रोड़े अटकायेगा। अभी तो काम निकल जायेगा। बाद में जब तकलीफ होवे तब कहना कि

शान्ति रखे। वह समय भी निकल जायेगा।'' तब भुआजी ने कहा: वह समय कितना रहेगा– एक या दो महीना? तब गुरुदेव ने कहा : ''यह अभी मत पूछो। समय लम्बा है। परन्तु उसका कोई काम नहीं रुकेगा। उसके सब काम होंगे।''

आबू से पत्र मिलने पर मेरी तबियत ठीक होने लगी। शादी के किसी भी काम में रुकावट नहीं आई। शादी के दिन तो स्वास्थ्य ऐसा दिखने लगा कि कई लोग आश्चर्य चकित हो गये। संत मेथ्यू के अनुसार ''उसने हमारे कष्ट को अपने ऊपर ले लिया और हमें रोगमुक्त कर दिया।'' Himself took our infirmities and bare our sicknesses (8.17), योग शास्त्र के अनुसार योगी किसी की मदद करते हैं तो उसके दुख को अपने ऊपर ले लेते हैं, परन्तु यह केवल सीमित स्तर पर ही किया जा सकता है जिसमें रोगी के आध्यात्मिक व्यक्तित्व की बनावट का उल्लंघन नहीं होता। जब उसके कर्म मदद के लायक नहीं होते तो वे ऐसा नहीं करते। योग-शक्ति द्वारा रोगमुक्ति के विषय पर, मुख्यतः उसकी सीमाओं पर, मैंने ''योगीराज शान्तिविजयजी'' में विस्तार से विवेचन किया है, इसलिए यहाँ कहीं कहीं प्रसंगवश ही चर्चा की गई है।

मैं अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण चौराहे पर खड़ा था। उन्होंने मेरे भविष्य को जानते हुए, पूरे भविष्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए, मेरी इच्छा के विरुद्ध दिशा-निर्देश दिया। आज भी मैं यह सोचता हूँ कि शादी की जिम्मेदारी का आशीर्वाद कितना खतरनाक होता है क्योंकि गृहस्थ जीवन के प्रायः सभी दुखों की शुरूआत यहाँ से ही होती है। यह दायित्व केवल त्रिकालदर्शी ही ले सकता है। शान्तिविजयजी और देवाजी महाराज ने इस प्रकार के आशीर्वाद कई अन्य लोगों को भी दिये थे। उन्होंने संन्यास की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं दिया और भक्तों को गृहस्थ में रहकर अपने आध्यात्मिक विकास का रास्ता दिखाया। शादी के कुछ समय बाद फिर दर्द शुरू हो गये जो काफी समय तक तीव्र रहे। फिर कम होने लगे। उस समय से अर्थात् नवम्बर 1956 के बाद आज करीब 45 वर्षों तक पूर्ण रूप से मैं कभी भी स्वस्थ नहीं रहा। कभी कुछ, कभी कुछ। परन्तु गृहस्थ और जीवन के सभी कार्य जिनमें मेरी रुचि थी और योग्यता भी थी, वह मैं पूरा कर सका। यह पुस्तक उस लम्बी श्रृंखला की अब तक की अंतिम कड़ी है।

सोने की बेड़ियाँ

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को संन्यास की तरफ पलायन करने से रोका और उसे गृहस्थ में रह कर अपने कर्म करने की प्रेरणा दी। उन्होंने बताया कि जनक और दूसरे ज्ञानियों ने कर्म द्वारा ही पूर्णता को प्राप्त किया। उन्होंने स्वयं के लिये भी कहा की यदि मैं कर्म नहीं करूं, तो संसार समाप्त हो जायेगा। (3.20, 3.24) हिन्दू जीवन पद्धति में संन्यास चौथा आश्रम रहा है। अपवाद बहुत कम होते थे। परन्तु बुद्ध और महावीर के समय से हर किसी आयु के व्यक्ति को दीक्षा देकर संन्यासी बनाने की प्रवृत्ति बढ़ती गई। गुरु-शिष्य परम्परा को बहुत

सम्मान मिला और वे अपने सम्प्रदाय बनाते गये। स्वामी दयानन्द और विवेकानन्द ने उनकी आलोचना में बताया कि किस प्रकार एक ''नकटों का सम्प्रदाय'' बना। सभी सम्प्रदायों के साधुओं का यही प्रयास रहा कि अपने सम्प्रदाय में दीक्षा देकर चेले बनाना और उनकी संख्या बढ़ाते रहना। परन्तु जो महापुरुष या सद्‌गुरु थे उन्होंने अपने आपको इस बुराई से दूर रखा। उन्होंने अपने आचरण से यह बता दिया कि महापुरुष का कोई सम्प्रदाय नहीं होता। विवेकानन्द को जब यह पूछा कि आप शिष्य क्यों नहीं बनाते, तब उन्होंने कहा कि मैंने लोहे की बेड़ियां (अर्थात परिवार) तोड़ी है, वो इसलिए नहीं कि नई सोने की बेड़ियों में बँधू। आनन्दघनजी महाराज ने कोई शिष्य नहीं बनाया। शान्तिविजयजी के सैकड़ों भक्त थे परन्तु उन्होंने दीक्षा देकर किसी को शिष्य नहीं बनाया। देवाजी महाराज ने तो स्वयं भी दीक्षा नहीं ली और न किसी को इस प्रकार की शिक्षा भी दी। वे आजीवन गृहस्थ-योगी की तरह रहे और भक्तों को भी यही कहते कि गृहस्थ के सब कार्य करना और आत्मकल्याण भी करना। मैं शादी करना नहीं चाहता था और योग्य गुरु की तलाश में था परन्तु उन्होंने अपनी यौगिक तकनीक से ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि मुझे शादी करके गृहस्थ में रहना पड़ा। यदि मैं किसी साम्प्रदायिक साधु को गुरु बना लेता तो वह शायद मुझे अपने सम्प्रदाय की बेड़ियों में बांध लेता और जो कुछ मैंने देवाजी महाराज की छाया में गृहस्थ में रह कर देखा, सीखा और किया वह कभी नहीं कर सकता था। आत्मज्ञान तो दूर रहा, मैं साम्प्रदायिक गुरुओं की मानसिक संकीर्णता में पलने से अपनी बौद्धिक स्वतंत्रता को भी खो बैठता। मुझे इस बात की खुशी है कि मैं जिस स्तर के गुरु की तलाश में था वह मुझे मिल गये। मैंने उनकी कई तरह से परीक्षा ली और उन्होंने मेरी पग पग पर परीक्षा ली। मैं प्रायः असफल होता, परन्तु वे हर तरह से सफल हुए और अपनी महानता का परिचय देते रहे।

बाल-बाल बचे

शादी के कुछ दिन बाद मैं साइकिल पर जा रहा था। एक जगह पर पास-पास दो मोड़ थे। मुझे दाईं तरफ जाना था। नियम के अनुसार मुझे हाथ से इशारा करना था ताकि पीछे आने वाला यदि बांई तरफ जाना चाहे तो मुझे बचा कर मोड़ ले। मेरे पीछे पत्थर से भरी ट्रक आ रही थी जिसे बाईं तरफ जाना था। किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे दाईं तरफ बढ़ने की बजाय बांई तरफ धक्का सा दिया जिससे मेरे पीछे की ट्रक मेरे पास में हो कर निकल गई। यदि एक सैकण्ड की भी देर हो जाती तो वह ट्रक सीधी मेरे ऊपर आ जाती और मौत निश्चित थी। मैं दुर्घटना से बाल बाल बच गया। कई रोज तक मैं उसके सदमे से ग्रस्त रहा। मुझे लगा जैसे गुरुदेव ने ही मुझे मौत के मुंह में जाने से बचाया।

जोधपुर चले जाओ

शादी के बाद मैंने गुरुदेव को पत्र लिखे परन्तु उन्होंने किसी का भी जवाब नहीं भेजा। मई, 1957 में गुरुदेव ने मुझे आबू आने का संदेश भेजा। मैं आबू पहुंचा। गुरुदेव के

दर्शन किये। इस समय उन्होंने मेरे स्वास्थ्य के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। सिर्फ थीसिस के बारे में पूछा। फिर मुझे शांतिसदन में जाने का कहा। दूसरे दिन सुबह गुलराज भंसाली और मैं दर्शन करने गये। परन्तु दर्शन नहीं हुए। गुरुदेव पहले ही कहीं बाहर चले गये। फिर हम विजय विलास चले गये जहां मेरी पत्नी आशा, उसकी मौसी और जज साहब श्री मोदी ठहरे थे। जज साहब से काफी देर तक बात हुई। गुरुदेव के बारे में भी बात हुई। उन्होंने पूछा "अभी तो आप कुछ दिन ठहरेंगे।" हमने कहा 4-5 रोज ठहरने का विचार है परन्तु गुरुदेव की जब भी आज्ञा होगी, हम चले जायेंगे।" जज साहब ने कहा हम सब कल शाम को गुरुदेव के दर्शन करने आयेंगे।

हम जब विजय विलास से लौटे तब गुरुदेव बंगले के बाहर ही खड़े थे। कुछ देर बात करने के बाद हमें खाने के लिए भेज दिया। खाना खाकर हम सो गये।

करीब 3 बजे जब मैं उठा तब सेठजी हमारे पास आये और कहा कि गुरुदेव की आज्ञा है कि आप लोग तुरन्त जोधपुर चले जाओ। मैंने सेठजी के साथ कहलाया कि हम कल शाम को चले जायेंगे। परन्तु गुरुदेव ने कहा 'उन्हें कहो कि अभी ही जोधपुर चले जाओ।'

तब मैंने गुलराज को फिर से विजय विलास भेजा। जज साहब को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा "हम हमारे प्रोग्राम से आ..ते-जाते हैं, गुरुदेव उसमें हस्तक्षेप क्यों करते हैं?" फिर हम बस स्टेण्ड चले गये।

गुरुदेव अदृश्य हो गये

हम गुरुदेव के दर्शन करना चाहते थे पर दर्शन नहीं हुए। किसी ने कहा गुरुदेव देवकुंज गये हैं। तब हम देवकुंज गये। वहां हमने पूछा : "गुरुदेव कहाँ हैं?" तब किसी ने कहा कि अभी तो यहीं थे। हमें दर्शन नहीं हो सके। वास्तव में उस समय गुरुदेव हमारे पास ही खड़े थे। परन्तु अदृश्य हो गये और हम उन्हें नहीं देख सके। यह बात उन्होंने स्वयं हमें साल भर बाद बताई। उस समय वे हमसे मिलना नहीं चाहते थे, इसलिए पास में होते हुए भी अदृश्य हो गये। यह घटना बताती है कि उनमें अदृश्य होने की शक्ति थी। इसके साथ-साथ वे जहाँ शारीरिक रूप से नहीं होते, वहाँ पर प्रकट होने, दर्शन देने और लीला रचने की भी शक्ति उनमें थी।

हम निराश होकर जोधपुर की बस में बैठ गये और जोधपुर लौट आये। रास्ते में हमारे मन में कई विचार आये। मैं गुरुदेव की आज्ञा से ही आबू गया था। फिर यकायक लौटने का क्यों कहा? क्या जोधपुर में कोई दुर्घटना तो नहीं हो गई, जिस कारण हमें भेज दिया? उनकी आज्ञा एक रहस्य बनी रही। जब हम जोधपुर पहुंचे तो वहाँ सब सामान्य था।

दूसरे दिन सुबह मेरे भाई मोहनमल अपनी पत्नी के साथ बम्बई से लौटे। उस समय (जून, 1957) सारे देश में फ्लू की बीमारी चली थी। जोधपुर पहुंचने के कुछ घंटे बाद

उनको तेज बुखार हो गया। 8-10 रोज तक हालत खराब रही। यदि मैं गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध आबू रह जाता तो मुझे तार या फोन से समाचार मिलते ही जोधपुर आना पड़ता। गुरुदेव ने मुझे एक दिन पहले जोधपुर भेज दिया। बाद में हमने आबू आने की आज्ञा के लिए लिखा पर गुरुदेव ने मना कर दिया।

30 दिसम्बर को मेरे पुत्र कमल का जन्म हुआ। आशा ने जल्दी ही आबू जाने की इच्छा व्यक्त की। मैंने कहा ''जब हम आबू गये तब तो गुरुदेव ने दर्शन ही नहीं दिये। अब तो वे स्वयं जोधपुर आकर दर्शन देवें तभी दर्शन हो सकते हैं और इसकी हमें उम्मीद नहीं थी। फिर भी ऐसा ही हुआ।

गुरुदेव जोधपुर में

5 जनवरी, 1958 की रात को करीब 9 बजे मेरे फूफाजी मेरे यहाँ आये और बताया कि गुरुदेव जोधपुर पधारे हैं और पुखराजजी खिंवसरा के यहाँ ठहरे हैं। सुबह जल्दी दर्शन कर लेना। कार में आये हैं, कभी भी जा सकते हैं। अपने पूर्व अनुभव के कारण मुझे गुरुदेव के पास फिर जाने का उत्साह नहीं रहा। मेरे मन में यह विचार बार-बार आया कि यदि गुरुदेव को हम से मिलने में कोई रुचि नहीं है तो मैं पुनः अपने को उन पर थोपने की चेष्टा क्यों करूं? मेरी जगह यदि कोई अन्य व्यक्ति होता तो वह भी ऐसी स्थिति में इसी प्रकार सोचता। फिर भी मैं सुबह दर्शन के लिए गया। करीब 8 बजे दरवाजा खोला। भक्तगण बहुत उत्सुकता से दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम अन्दर गये। कुछ मिनट बाद गुरुदेव ने इशारा किया जिसका अर्थ यह था कि सभी लोग कमरे के बाहर चले जायें। दरवाजा बन्द कर दिया। फिर मुझे पीछे के दरवाजे से अपने पास बुलाया। मैं अकेला था और उनके चरणों में बैठ गया। कुछ देर तक बोले नहीं। आँखें अध-खुली थी। उस समय मुझे जो अनुभव हुआ उसे मैं शब्दों के द्वारा नहीं बता सकता। मैंने उनके पैर पकड़ लिए। कुछ देर तक मैं बोल ही नहीं सका। थोड़ी देर में मैं संभल गया और गुरुदेव ने आँखें खोली। वे मेरी मानसिक स्थिति को समझ गये। उन्होंने एक महापुरुष की तरह एक वाक्य में ही मेरी स्थिति पर खुलासा कर दिया। फिर मैंने बताया कि हम आबू पर दर्शन के लिए आये थे। देवकुंज भी गये। परन्तु दर्शन नहीं हो सके। आबू से लौटने के बाद जोधपुर में क्या हुआ, इस बारे में मैंने गुरुदेव को कुछ भी नहीं कहा। परन्तु गुरुदेव ने स्वयं ही कह दिया कि उस समय तुम्हारा जोधपुर लौटना जरूरी था इसलिए मैंने तुम्हें वापिस चले जाने को कहा।

तीन बजे लेआना

मैंने गुरुदेव से कहा कि आशा की दर्शन की तीव्र इच्छा है। तब गुरुदेव ने पूछा ''क्या वह आज आ सकती है?'' मैंने कहा: ''आपकी आज्ञा हो तो मैं बन्द गाड़ी में ला सकता हूँ।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''ठीक है। दो बजे ले आना।'' कुछ ठहर कर फिर कहा : ''दो नहीं,

तीन बजे ले आना।'' इसमें भी एक अर्थ छिपा था जिसका पता हमें कुछ देर बाद हुआ। गाड़ी की सुविधा हमें तीन बजे के लिए ही मिली।

भक्ति में ईर्ष्या

मैं जब कमरे के बाहर आया, भक्तों की भीड़ थी। ''भगवान ने क्या कहा,'' सभी मुझे यही पूछने लगे। मुझे जल्दी जाना था इसलिए मैंने उन सब को केवल इतना ही कहा कि गुरुदेव ने मुझे 3 बजे दर्शन के लिए समय दिया है। इस पर कई भक्त आश्चर्य करने लगे। अब तक भक्त की दृष्टि से वे मुझे महत्वहीन ही समझते थे। वे गुरुदेव के बहुत पुराने भक्त थे और उनमें सीनियरिटी का मद था। मैं तो बिल्कुल नया-नया सब से जूनियर था। ''गुरुदेव तो किसी को समय नहीं देते। हम दो-दो घंटे बाहर बैठे रहते हैं, तब कभी-कभी दर्शन होते हैं। अन्य भक्तों को दूर कर, उसको अकेले में पास बिठाकर इतनी देर तक क्या बातें की? और आगे के लिए मिलने का समय भी दे दिया?'' इस तरह के विचार वे आपस में करने लगे। मुझे बाइबल की वह उक्ति याद आई जिसमें ईसा ने इसी प्रकार की स्थिति में कहा कि:

कई पुराने पुराने भक्त तो पीछे रह जायेंगे और देर से आने वाले नये-नये भक्त आगे की पंक्ति में आजायेंगे। (Many that are first, shall be last, and the last shall be first.)

कई भक्त परीक्षा के लिए बुलाये जाते हैं (परन्तु फेल हो जाते हैं)

चयन कुछ लोगों का ही होता है। Many are called but few are chosen.

इस विषय से सम्बन्धित भक्ति के कई पहलुओं पर गुरुदेव की प्रतिक्रियाओं की जानकारी आगे उपयुक्त प्रसंगों में दी जायेगी।

उस समय भी वहाँ जोधपुर के भक्तों की भीड़ थी। गुरुदेव बाहर के कमरे में थे। दरवाजा बन्द था। मैं दर्शन के लिए अन्दर जाना चाहता था। परन्तु कुछ पुराने भक्तों ने मना कर दिया। ''अभी भगवान आराम कर रहे हैं। अभी किसी को दर्शन नहीं देंगे।'' तब मैंने मेरी भुआजी को कहा अब क्या करें? मैं तो आशा को लेकर आ गया था। मेरी भुआजी सीनियर भक्तों में थी। उनकी पहुंच अन्दर तक थी। वे पीछे के रास्ते से अन्दर गई और गुरुदेव को कहा ''भगवान, मांगीमल और आशा आ गये हैं।'' यह कहते ही गुरुदेव उठे और दरवाजा खोला और दरवाजे पर ही खड़े हो गये। मेरी भुआजी ने कमल को उनके चरणों में रखा। फिर गुरुदेव के कहने पर ऊपर उठा लिया। आशा ने झुक कर चरण छुए। गुरुदेव ने सोऽहम्, सोऽहम् का उच्चारण किया। कुछ देर में मुझे कहा कि सर्दी का मौसम है, इन्हें ले जाओ। हम गाड़ी में बैठ कर चल दिये। आशा ने कहा : ''ज्योंही मैंने गुरुदेव के चरण छुए, मेरी तबियत ठीक हो गई।'' पीहर पहुंचने पर उनकी माता ने कहा : ''ये रोती हुई गई, और हंसती हुई आई, यह कैसे गुरुदेव? हम भी दर्शन करने चलेंगे।'' मैं भुआजी के पास गया और कहा कि मेरे ससुराल के लोग दर्शन के लिए आना चाहते हैं। तब भुआजी ने बताया कि

वे तो चले गये। अब पाली तक पहुंच गये होंगे। तुम्हारे जाने के कुछ देर बाद प्यारेलाल (ड्राइवर) को बुलाकर कहा- ''सामान रखो, आबू चलो।'' भक्त लोग बहुत निराश हुए। उन्हें समझ में नहीं आया कि गुरुदेव एकदम क्यों चले गये। उनके आने का प्रयोजन क्या था ?

गुरुदेव शान्तिविजयजी के भी कई प्रकार के भक्त थे। 1931 में एक अमरीकी लेखिका नीला कुक कुछ समय आबू रही। उसने लिखा कि गुरुदेव हमेशा अकेले ही खाना खाते थे। पास में कोई नहीं रहता। परन्तु खाने के समय नीला को गुरुदेव पास में बिठाते थे। नीला गुरुदेव की भक्त नहीं थी। वह तो एक पर्यटक थी। उसको गुरुदेव ने इतना महत्व क्यों दिया ? देलवाड़ा के अन्य भक्तों को आश्चर्य होता था।

नीला कुक आगे लिखती है : ''भक्त यह जानते थे कि गुरुदेव की मेरे ऊपर बड़ी कृपा थी। फिर भी वे यह कभी नहीं सोचते कि गुरुदेव उनकी अपेक्षा मुझे अधिक चाहते हैं। उनमें इसकी ईर्ष्या नहीं थी। वे तो उल्टा यह सोचते कि मैं कितनी भाग्यशाली हूँ जो मेरी गुरुदेव के प्रति भक्ति उन भक्तों से भी अधिक है। गुरुदेव के लिये हम सभी समान थे। To Gurudev we were all one. गुरुदेव का एक चींटी के लिए भी उतना ही प्रेम था जितना मेरे लिए ...'' (माई रोड टू इण्डिया, पृ. 191)

ऐसी स्थिति में कई भक्तों में ईर्ष्या भी देखी गई है। यदि गुरुजी की किसी एक भक्त पर विशेष कृपा दिखाई दे तो वे सहन नहीं कर सकते। ऐसे भक्त अपने आपको भक्तसम्राट् समझने लगते हैं और दूसरे गुरु-भाईयों से अपनी भक्ति को उच्चतर समझते हैं। इसलिए गुरुदेव कहते थे कि भक्ति में जब अहं आ जाता है तब प्रगति रुक जाती है। जिस प्रकार किसी सरकारी विभाग में सीनियरिटी के नाम पर विवाद खड़े हो जाते हैं उसी प्रकार साधुओं के समूहों में भी सीनियर लोग अपने से जूनियर लोगों की गुण पर आधारित प्रगति सहन नहीं कर सकते और आन्तरिक कलह पैदा कर देते हैं। कई बार स्थिति विस्फोटक हो जाती है और सीनियर साधु अपने गुरुजी को छोड़ कर अपना नया सम्प्रदाय बना लेते हैं। इतिहास बताता है कि सभी धर्मों में इसी प्रकार से सम्प्रदाय बने हैं और गृहस्थ को राग और द्वेष से ऊपर उठने का उपदेश देने वाले साधु स्वयं इस हीन मनोवृत्ति से ग्रसित पाये जाते हैं।

मैं वहीं था !

17 अगस्त, 58 को हम आबू पहुँचे। मैं तैयार हो रहा था उसके पहले ही आशा कमल को लेकर दर्शन करने चली गई। गुरुदेव ने कहा, ''पिछले साल तुम देवकुंज आये थे तब मैं तुम्हारे पास ही खड़ा था। ये बाबा (कमल) यहां आया हुआ है। तब आशा ने कहा: हमने आपको नहीं देखा, परन्तु आप तो हमें बतला सकते थे। तब गुरुदेव ने कहा- ''मैंने सोचा, अभी तो इन्हें जाने दो। इनसे पीछे मिलेंगे।'' जैसा मैंने ऊपर लिखा, वे हमसे उस समय मिलना नहीं चाहते थे, इसलिये पास में खड़े होते हुए भी अदृश्य हो गये और छह महीने बाद स्वयं जोधपुर आकर हम को दर्शन दिये।

यहाँ नहीं, यहाँ

फिर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा: मैंने कहा इस हिप में दर्द रहता है। तब गुरुदेव ने हाथ से इशारा करते हुए कहा ''यहाँ (हिप) नहीं, यहाँ (रीढ़ की हड्डी) है।'' हड्डी के डॉक्टर उस समय तक यह समझ नहीं सके थे। दो साल बाद बीकानेर के सर्जन डॉ. काटजू ने गुरुदेव की बात की उन्हीं शब्दों में पुष्टि कर दी। ''यहाँ (हिप) नहीं, यहाँ''। इतने समय तक जोधपुर के डाक्टरों को समझ में नहीं आया। अब उन्होंने बीकानेर के डाक्टरों की रिपोर्ट पढ़ी, तब अपनी पुरानी फिल्मों का रिकार्ड मंगाकर पुन: जांच की और उन्होंने निदान करने में जो गलती कि उसे अब स्वीकार किया।

कर्मों के बन्धन भोगने पड़ते हैं

मैं आबू में गुरुदेव के पास बैठा था। मैं फर्श से उठा तो उठा नहीं गया। गुरुदेव ने पूछा : ''क्या दर्द ज्यादा है?'' मैंने कहा : मैं बैठता हूँ तो उठा नहीं जाता है, उठने पर ठीक तरह से चला नहीं जाता।'' गुरुदेव ने एक गहरी साँस ली, चेहरे पर गम्भीरता थी। बोले ''कर्मों के बन्धन भोगने पड़ते हैं... खराब समय आता है, निकल जाता है।''

दर्द के कारण मैं जमीन पर नहीं बैठ सकता था। इस बार गुरुदेव ने मुझे अपने पास कुर्सी पर बैठने के लिए कहा। मैं जमीन पर ही बैठता था और कुर्सी पर बैठना नहीं चाहता था। परन्तु इस बार गुरुदेव ने कुर्सी पर बिठा ही दिया। तब से मैं हमेशा कुर्सी पर बैठने लगा हालांकि मुझे यह अच्छा नहीं लगता था।

ठीक हो जायगा पर डॉक्टरों से नहीं होगा

इस बार गुरुदेव ने मेरी बीमारी पर भी चर्चा की और पूछा कि डॉक्टर क्या कहते हैं? मैंने कहा: कुछ समय के लिए दर्द कम होने की दवाई तो उनके पास है। परन्तु पूरी तरह से ठीक करने की दवा उनके पास नहीं है। अन्त में एक गहन आत्म विश्वास के साथ गुरुदेव ने कहा: ''यह ठीक तो हो जायेगा। परन्तु डॉक्टरों से नहीं होगा।'' यह तो पूरे चिकित्सा विज्ञान को चुनौती थी। मैंने पूछा: ''गुरुदेव डॉक्टरों से नहीं होगा तो फिर कैसे होगा?'' तब गुरुदेव ने कहा: ''हो जायेगा। कोई साधारण दवाई से हो जायेगा।'' इसका अर्थ यह हुआ :

1. उन्हें पता था कि अभी ठीक नहीं होगा।
2. उन्हें यह भी पता था कि कब ठीक होगा।
3. उन्हें यह भी पता था कि किस दवा से ठीक होगा।
4. उन्हें यह भी पता था कि जिस दवा से ठीक होगा उसका समय और उपयोग डॉक्टर नहीं जानते।

आबू से चलने के पहले मेरे स्वास्थ्य सम्बन्धी फिर चर्चा हुई। हिप में दर्द के बारे में कहा: ''यह तो अभी चलेगा। इसकी परवा नहीं करना। कर्मों के बन्धन तो भोगने पड़ते हैं।''

अभी तो नहीं होगा

एक दिन आशा ने मेरी तबियत के बारे में पूछा। तब गुरुदेव ने कहा: ''ठीक तो हो जायेगा पर समय लगेगा।'' कितना? यह पूछने पर कहा: ''अभी तो नहीं होगा'' और विषय बदल दिया।

चिन्ता न करें

गुरुपूर्णिमा के शुभ अवसर पर मैंने गुरुदेव को वन्दना का पत्र भेजा। 11-7-71 का वालकेश्वर (बम्बई) से लिखा गुरुदेव का सभी के नाम आशीर्वाद का पत्र मिला जिसके अन्त में लिखा था कि **''चिन्ता न करें, सब ठीक हो जायगा''**। उस समय मुझे किसी प्रकार की चिन्ता नहीं थी। मेरी तबीयत भी कुछ ठीक थी। इसलिए समझ में नहीं आया कि गुरुदेव ने ऐसा क्यों लिखा।

ठीक हो जायगा बहुत दवाइयाँ मत लेना

कुछ ही दिन बाद मेरी तबियत बिगड़ने लगी। शरीर में जगह जगह दर्द हो गये। सब से अधिक दर्द हिप में रहता था। कई तरह के इलाज कराये – एलोपैथी, होम्योपैथी, आयुर्वेदिक, नेचरोपैथी, आदि। पर ठीक नहीं हुआ। करीब 10 महीने तक तबियत ठीक नहीं रही। अब मैंने सब इलाज बन्द कर दिये। 24-7-72 को गुरुपूर्णिमा के अवसर पर गुरुदेव को पत्र लिखा जिसमें तबियत की जानकारी भी दी। 29 तारीख को बम्बई से गुरुदेव का लिखा पत्र मिला :

आपका 24-7-72 का मिला। समाचार ज्ञात हुए। आपकी तबियत का समाचार सुन कर बहुत बहुत दुःख हुआ। **ठीक हो जायेगा। बहुत दवाइयां मत लेना।...''**

एक बार हो आना

मित्रों के आग्रह पर मैं All India Institute of Medical Science के विशेषज्ञों को दिखाने के लिए देहली गया। जिस दिन मैं देहली रवाना हुआ उसी दिन (28-5-73) गुरुदेव ने मुझे लिखवाया कि ''दिखाने में कोई हर्ज तो नहीं है। अच्छा है एक बार हो के आ जाएं।'' उनका आशय था कि एक बार दिखा देना। दूसरी बार की जरूरत नहीं रहेगी। AIIMS के डॉक्टरों ने बहुत अच्छी तरह से जांच की और उसे Spondylitis बताया, जिसका उनके पास कोई भी इलाज नहीं था। न आज भी है। उन्होंने हिप नया लगाने की बात कही, परन्तु उस समय उनके पास इसके साधन नहीं थे।

देहली से लौटते हुए मैं मशहूर डाक्टर सेठी से जयपुर में मिला। उन्होंने हिप बदलने की बात का अनुमोदन नहीं किया। इस प्रकार भारत के उच्चकोटि के डाक्टरों में इलाज के लिए एक राय नहीं बनी।

साधारण इलाज करा लेना चाहिए

बाद में हम आबू गये तब गुरुदेव ने मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। चिकित्सा-विज्ञान में मेरा विश्वास बहुत कमजोर हो गया था। यदि बीमारियाँ कर्म के कारण होती है, तो इलाज कराना व्यर्थ है। यह सोचकर मैंने किसी भी बीमारी, यहाँ तक की किसी साधारण बीमारी में भी इलाज कराना बंद कर दिया। तब गुरुदेव ने मुझे कहा 'कर्मों के फल तो भोगने पड़ते हैं परन्तु साधारण इलाज करवा लेना चाहिए। बाद में मेरी बायीं आँख में तकलीफ हुई। तब मैंने सर्जन से इलाज करवा लिया और वह ठीक हो गई।

मेरे जीवन में ऐसे कई अनुभव हुए जिनसे इस विचार की पुष्टि होती है कि स्वास्थ्य या बीमारी का मृत्यु से हमेशा आवश्यक रूप से कोई संबंध नहीं है। कई स्वस्थ व्यक्ति यकायक चले जाते हैं, परन्तु कई लोग जीवनभर कुछ न कुछ बीमारी से ग्रसित रहते हैं। गुरुदेव ने स्वयं के और अन्य लोगों के जीवन से संबंधित कई दुःखद अनुभवों पर हमारा ध्यान दिलाया जिन पर उपयुक्त संदर्भ में आगे प्रकाश डाला जायेगा।

उच्च शिक्षा और जीवन के घटनाक्रम

पढ़ाई छुड़ा दो, शादी कर दो

शान्तिविजयजी के जोधपुर के भक्तों में तखतराजजी गेमावत भी थे। वे आबू में पुलिस अधिकारी थे और बहुत समय तक शान्तिविजयजी के सम्पर्क में रहे। बाद में देवाजी महाराज के सम्पर्क में भी लगातार रहे। वे देलवाड़ा में मैनेजर रहे और बाद में मांडोली में भी मैनेजर रहे। उन्होंने मुझे बताया कि देवाजी महाराज ने उनकी लड़की के बारे में पूछा कि यह क्या कर रही है? गेमावतजी ने कहा कि यह डॉक्टरी की पढ़ाई कर रही है। इसी साल MBBS में भर्ती हुई है। तब गुरुदेव ने कहा: ''इसकी पढ़ाई छुड़ा दो और शादी कर दो।'' गुरुदेव ने बार-बार कहा और जोर देकर कहा। गेमावत ने कहा: ''गुरुदेव, डॉक्टरी के लिए बड़ी मुश्किल से एडमिशन होता है और जब पढ़ाई शुरु कर दी है तो कोर्स करना ठीक ही रहेगा।'' पर गुरुदेव ने यही कहा : ''शादी कर दो। ठीक रहेगा।'' तब गेमावत ने कहा : ''अभी लड़का कहाँ है?'' गुरुदेव ने कहा : ''कोशिश करो। मिल जायेगा।'' इस बात के 1-2 महीने के भीतर ही लड़की की सगाई हो गई और शादी हो गई। उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी। गेमावत यह बात जोधपुर के कई नये-पुराने भक्तों और मित्रों को कहा करते थे।

पहले पढ़ाई, बाद में शादी

श्री छगनलाल जैन I.A.S. लिखते हैं कि मेरा श्रीदेवाजी महाराज से सम्पर्क 1964-65 में हुआ जब मैं आबू पर बी.डी.ओ. था। बाद में 1997 में जब उनसे मिला उस समय मैं मेरी लड़की संतोष की शादी के विषय में चिंतित था। मैंने गुरुदेव को मेरी चिंता से अवगत

कराया तब श्री देवाजी महाराज कुछ क्षण ध्यान की स्थिति में रहे और कहा। ''उसे पहले पीएच.डी होने दो।'' उनके शब्द सत्य सिद्ध हुए क्योंकि मेरी लड़की को पहले तो पीएच.डी. होने में 3-4 साल लग गये और पीएच.डी. होने के भी 3-4 साल बाद शादी हुई। इस प्रकार हमारी 7-8 साल की चिंता मिट गई जिसका पूर्वाभास केवल श्री देवाजी महाराज को ही सम्भव था।

साथ में कुछ करते रहना

जोधपुर के गुलराज भंसाली सरकारी कॉलेज में सीनियर टीचर थे और पीएच.डी. करना चाहते थे ताकि लेक्चरार के चयन में सुविधा रहे। गुरुदेव ने उनको कहलाया कि तुम अभी नौकरी नहीं छोड़ना और साथ में कुछ करते रहना। उनकी समझ में नहीं आया कि साथ में और क्या करें ? संयोग से उनको अपने रेडियो को ठीक कराने के दौरान इलेक्ट्रॉनिक्स में रुचि हो गई। उनका प्रोफेसर उनकी इलेक्ट्रॉनिक्स में निपुणता से बहुत प्रभावित हुआ जिसके कारण उनका जोधपुर विश्वविद्यालय में लेक्चरार के रूप में चयन हो गया। इसके बाद उन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी। अब उन्हें समझ में आया कि गुरुदेव के आदेश ''साथ में कुछ करते रहना'' में क्या रहस्य छिपा था।

अच्छा लिखा

जून, 1959 में मैं अकेला ही आबू गया। गुरुदेव ने मुझे कहा: ''तुम अभी यहीं रहो और थीसिस को पूरा कर दो। जोधपुर में यह नहीं हो सकेगा। यहाँ पर शान्ति से हो जायगा।'' मैंने कहा ''अभी तबियत ठीक नहीं है। कमर में दर्द होने से अधिक समय बैठ नहीं सकता।'' गुरुदेव ने कहा ''कल सुबह शुरू कर देना।'' करीब 15 दिन मैं वहाँ रहा और थीसिस का काम पूरा कर लिया। गुरुदेव इसे पढ़ते रहते और कहते: ''अच्छा लिखा।'' तब मैंने कहा कि प्रोफेसर राजू इसे एप्रूव करदें तब ही होगा। वे बहुत मुश्किल से करते हैं। इस पर गुरुदेव ने कहा: ''तुमने इतना अच्छा लिखा है, क्यों नहीं करेंगे। जरूर करेंगे।'' बाद में जब प्रोफेसर राजू ने पढ़ा तो उसने एक बार में ही उसे एप्रूव कर दिया। गुरुदेव ने कहा कि 'थीसिस तैयार होने पर युनिवर्सिटी भिजवा देना। रिजल्ट की जल्दी नहीं करना। रिजल्ट आता रहेगा।'' इसका अर्थ यह था कि रिजल्ट देर से आयेगा। पीएच.डी. भी देर से मिलेगी। यही हुआ। एक परीक्षक की लम्बी विदेश यात्राओं के कारण विश्वविद्यालय को निर्णय लेने में असाधारण देरी हुई। करीब दो साल तक पीएच.डी. अटकी हुई रही।

लेक्चरार बिना पीएच.डी. के हो जाओगे

पीएच.डी की डिग्री मिलने में देर हो रही थी। मैं चाहता था कि यदि यह जल्दी मिल जाय तो मेरे लेक्चरार बनने के लिए ठीक रहेगा। तब गुरुदेव ने कहा: ''लेक्चरार बनने के लिए पीएच.डी होना जरूरी तो नहीं है।'' मैंने कहा जरूरी तो नहीं है परन्तु चयन के समय

ठीक रहता है। तब गुरुदेव ने कहा ''लेक्चरार तो तुम वैसे ही हो जाओगे। बिना पीएच.डी के ही हो जाओगे।''

गुरुदेव की बात सत्य सिद्ध हुई। मैं 17 अगस्त 1968 को महाराजा कॉलेज, जयपुर में दर्शनशास्त्र का लेक्चरार हो गया। इसके तीन माह बाद अमृतलाल यादव (कांग्रेसी नेता) गुरुदेव का पत्र लेकर मेरे यहाँ आए। गुरुदेव ने कहा कि आप स्वयं मांगीमल के यहाँ जाना और उसे आशीर्वाद कहना। मैं इस संदेश का अर्थ समझ गया। दो साल के विलंब के बाद अब पीएचडी मिलने का समय आया। इस प्रकार मेरे लेक्चरार होने के बाद ही मुझे पीएचडी मिली।

पीएच.डी. मिलने पर मैंने दो पत्र लिखे – एक मेरे विद्यागुरु, आधुनिक भारत के विख्यात दार्शनिक प्रोफेसर पी.टी. राजू को, जो उस समय जर्मनी में थे और दूसरा पत्र पूज्य गुरुदेव देवाजी महाराज को। कुछ ही दिन बाद प्रोफेसर राजू ने मुझे लिखा:

मैंझ, पश्चिम जर्मनी, 2-1-62

प्रिय डॉ. कोठारी,

तुमको पीएच.डी मिलने पर मेरी हार्दिक बधाई। तुम्हें यह डिग्री पिछले वर्ष ही मिल जानी चाहिए थी। परन्तु तुम्हारा (शोधका) विषय इतना कठिन था कि उसके लायक परीक्षक ढूंढना आसान काम नहीं था। इसलिए तुम्हारी सफलता पर मैं बधाई देता हूं और विशेष तौर पर तुम्हारे द्वारा बहुत ही तकनीकी विषय का (शोध के लिए) चयन करने के लिए। यह वास्तविक तत्त्वदर्शन था।... - पी.टी. राजू

डॉ. राजू जैसे विख्यात दार्शनिक द्वारा मुझे इस प्रकार का पत्र लिखना मेरे शैक्षणिक जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। दूसरा पत्र मैंने गुरुदेव को लिखा था जिसमें आशा ने नीचे एक लाईन लिख दी कि ''आप दर्शन कब देंगे?'' चिट्ठी आबू पहुंचने के पहले ही गुरुदेव दूसरे दिन ही सुबह पूनमचन्दजी कोठारी (जयपुर) के साथ हमारे घर पधार गये। मैं कॉलेज गया हुआ था। जब मैं घर आया तो गुरुदेव बच्चों से बातें कर रहे थे। पीएचडी. की डिग्री मिलने के लिए प्रसन्न हुए।

तुम्हारा जोधपुर में हो जायेगा

गुरुदेव ने हमें बसन्त पंचमी पर मांडोली जाने का कहा और गर्मी की छुट्टियों में आबू आने का कहा। मई के अन्त में हम आबू गये। गुरुदेव ने कहा ''तुमने जोधपुर विश्वविद्यालय के लिए विकल्प दे दिया, अच्छा किया। तुम्हें ले लेंगे।'' मैंने कहा: ''गुरुदेव मैं तो सबसे जूनियर हूं। मेरा लेना तो मुश्किल है।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''तुम्हारा तो हो जायेगा।'' उन्होंने आशा को भी यही कहा कि मांगीमल का जोधपुर विश्वविद्यालय में हो जायेगा। आबू में हम कुछ दिन रहे और गुरुदेव से कई विषयों पर चर्चा हुई। एक बार गुरुदेव स्वयं अचानक हमारे कमरे में आए। कमल ने गुरुदेव को बिस्कुट दिये जो उन्होंने बहुत खुशी से

खा लिये। फिर कमल ने पूछा: भगवान आप हमें दर्शन कब देंगे? तब गुरुदेव ने कहा: ''कमल, मैं तुम्हारे यहां आऊंगा, पर उस समय तो तूं जोधपुर होगा।'' गुरुदेव से फिर ऐसा सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। उस समय के हालात देखते हुए मेरा जोधपुर में होना असंभव लगता था। परन्तु आबू से लौटने के कुछ ही दिन बाद जो मुझे और अन्य लोगों को असम्भव लगता था, वह गुरुदेव की कृपा से सम्भव हो गया और 28 जुलाई 1962 को मैं जोधपुर विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र का लेक्चरार हो गया।

रिजल्ट बदल गये

महेन्द्र सिंघवी और प्रेम गुरुदेव के दर्शन करने आये। गुरुदेव ने प्रेम के बारे में पुछा कि वह क्या कर रही है? मैंने कहा ''इन्होंने टी.डी.सी की द्वितीय वर्ष की परीक्षा दी है। तब गुरुदेव ने कहा ''तब तो बी.ए. पास करने में तुम्हारे एक साल बाकी है।'' परन्तु यह तो तब होता जब कि वह टी.डी.सी. की द्वितीय और तृतीय वर्ष की दोनों परीक्षाओं में लगातार पास होती। महेन्द्र और प्रेम बहुत निराश थे क्योंकि उनके पेपर खराब हो गये थे। गुरुदेव ने उन्हें कहा: ''चिन्ता मत करो, सब ठीक होगा।'' जब रिजल्ट आये तो एक फेल और दूसरे को पूरक परीक्षा। गुरुदेव ने उन को आशीर्वाद दिया परन्तु वे हार गये। गुरुदेव की बात गलत सिद्ध हो गई। उनकी भक्ति को चोट लग गई। परन्तु कुछ दिन बाद विश्वविद्यालय ने अपनी एक तकनीकी गलती को सुधारा जिससे करीब 900 विद्यार्थियों के परीक्षाफल बदल गये। महेन्द्र और प्रेम को भी इसका लाभ मिला और वे पास घोषित कर दिये गये। परीक्षाफल बदलना तो एक असम्भव बात लगती थी परन्तु गुरुदेव के आशीर्वाद से यह भी सम्भव हो गया।

गाड़ी छूट जाती

मैं 22 जून, 1961 को सुबह मेल से आबू के लिए रवाने हो गया। मारवाड़ जंक्शन पर प्रतीक्षा घर में खाने के लिए चला गया। परन्तु मेरा गला सूख रहा था और मैं एक रोटी भी नहीं खा सका। मैं खाना बन्द कर प्लेटफार्म पर आ गया। मैंने सोचा अभी देर है। पर किसी ने कहा यही गाड़ी आबू के लिए चल दी है। मैं जल्दी से पीछे के किसी डिब्बे में चढ़ गया। मेरा सामान आगे के कोच में था। कई स्टेशनों के बाद जब गाड़ी रुकी, तब मैं अपने कोच में आ सका। यदि खाना मेरे गले उतर जाता और दो मिनट भी अधिक लग जाते तो मैं स्टेशन पर ही रह जाता। गुरुदेव की कृपा से मेरी गलती का फल मुझे नहीं भोगना पड़ा।

आज नहीं जाना

इस बार गुरुदेव से ठीक तरह से बात भी नहीं हुई। अगले दिन जब मैं सामान जमा रहा था, गुरुदेव ने निहालचन्दजी को भेजा और मुझे कहलाया कि ''आज जोधपुर नहीं जाना। कल जाना।'' थोड़ी देर में बहुत तेज वर्षा शुरू हो गई। मेरे लिए बस स्टेण्ड तक जाना

भी मुश्किल हो गया। दूसरे दिन मौसम ठीक हो गया और मैं जोधपुर आ गया।

गाड़ी मिल गई

1-5-95 को बम्बई में गुरुदेव के दर्शन किये। 16-5-95 को पूना से लौटते समय फिर दर्शन हुए। हमारा बॉम्बे सेन्ट्रल से जोधपुर के लिए रिजर्वेशन था। हम स्टेशन रवाना होने के पहले गुरुदेव के दर्शन करने गये। गुरुदेव ने हमें बिठा दिया और बातों में लग गये। हम लेट हो रहे थे। हमने देखा आज गाड़ी चूक जायेंगे। परन्तु गाड़ी भी उस दिन लेट हो गई। हमारे स्टेशन पहुंचने के बाद गाड़ी चली। ऐसे अनुभव तो कई बार हुए। भक्तों के जीवन में इस प्रकार के अनुभव तो होते ही रहते थे।

गुरुदेव जोधपुर आये

21 सितम्बर 1962 को मुझे समाचार मिला कि गुरुदेव जोधपुर आये हैं और शान्ति ल`न में ठहरे हैं और मुझे बुलाया है। मैं शान्ति लॉज गया और दर्शन किये। मैंने मन में सोचा कि इस समय गुरुदेव थोड़ी देर के लिए भी मेरे घर पर पधारें तो अच्छा रहेगा। परन्तु मैंने कहा नहीं। मैंने सोचा कहीं मना कर देंगे। तब गुरुदेव ने खुद ही पूछ लिया कि तुम्हारा घर कहां है, वहां कौन हैं, बच्चे कहाँ हैं? गुरुदेव मेरे साथ चले और रास्ते में कुछ देर के लिए मेरे ससुराल रुके। वहाँ उन्होंने आशा को कहा: ''तुमने कॉलेज के पास प्लॉट लेने का लिखा था, सो ठीक है। प्लॉट ले लेना और उस पर मकान बनवा लेना। मेरे लिए भी सुविधा रहेगी। ऊपर एक कमरा मेरे लिए बनवा देना।'' फिर हम सब मेरे शहर वाले मकान में गये। गुरुदेव हमारे कमरे में बैठे और कमल से कुछ बात की। तब मुझे याद आया कि जून में आबू पर गुरुदेव ने कमल से कहा था कि मैं जोधपुर में तुम्हारे घर आऊंगा और इस प्रकार अपना वादा पूरा किया।

इस बार गुरुदेव के जोधपुर आने के पीछे एक गहरा रहस्य था। एक बार शान्तिविजयजी ने जोधपुर के भक्त सुमेरचन्दजी मेहता से कहा था कि जब तुम्हारा दूसरा लड़का 14 और 28 साल का होगा तब मैं उसे संभालने के लिए तुम्हारे यहां आऊंगा। जब श्री राजेन्द्र मेहता 14 साल के थे (1946-47) तब गुरुदेव श्री देवाजी महाराज जोधपुर आये थे और उनको दर्शन दिये। इस बार फिर 14 साल बाद श्री देवाजी महाराज उनके लॉज में आये और उनके ही कमरा नम्बर 46 में रुके। मेहता ने उन्हें देखा भी था, परन्तु पहचान नहीं सके। बाद में मैं श्री मेहता से मिला। उन्होंने रजिस्टर देख कर कहा कि 1962 में कमरा नंबर 46 में कोई यात्री नहीं आया और वे स्वयं ही उसमें रहते थे। मैंने 21 सितम्बर की तारीख बतलाई। फिर उन्होंने रिकार्ड देख कर बताया कि कुछ लोग 19 सितम्बर 62 से 22 सितम्बर, 62 तक उनके कमरा नम्बर 46 में विशेष तौर पर रखे गये थे क्योंकि अन्य कोई कमरा खाली नहीं था। उन्होंने मुझे बताया कि उनका जन्म 1933 का है और जब वे करीब

14 साल के थे तब गुरुदेव देवाजी महाराज जोधपुर पधारे और उनके घर भी पधारे। उस समय के फोटो भी हैं। 14 साल बाद फिर दूसरी बार 1962 में उनके लॉज और उनके ही कमरे में ठहरे। इस प्रकार श्री देवाजी महाराज ने शान्तिविजयजी द्वारा मेहताजो को दिया गया वादा पूरा किया।

हम 30 साल बाद मिलेंगे

इन्हीं दिनों जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रोफेसर कल्ला से बात हुई। उन्होंने कहा कि मई, 1935 में मैं आबू पर गुरुदेव श्री शान्तिविजयजी से मिला था। आबू से लौटते समय जब मैं दर्शन करने गया तब गुरुदेव ने मुझे कहा कि ''कल्ला, अब हम 30 साल बाद मिलेंगे।' मुझे हंसी आई। मैंने कहा: गुरुदेव, मैं तो अभी छोटा हूं, और शायद उस समय तक रह जाऊं। परन्तु क्या आप उस समय तक इस शरीर में रहेंगे? तब शान्तिविजयजी ने कहा: 'कल्ला, योगी मरते नहीं हैं।' वे शरीर बदल लेते हैं। हम दूसरे रूप में मिलेंगे।'' तब कल्ला ने मुझे पूछा कि शान्तिविजयजी के पीछे कोई चेला है क्या? मैंने कहा शान्तिविजयजी दीक्षा देकर चेला बनाने के विरुद्ध थे। उन्होंने कई भक्तों से यह वादा किया था कि बाद में तुमसे मिलूंगा। यह नहीं कहा कि कोई चेला मिलेगा। सबको यही कहा कि मैं ही मिलूंगा। कल्ला को भी यही कहा। तब मैंने उन्हें देवाजी महाराज के बारे में बताया जिन्हें भक्त बड़े गुरुदेव ही मानते थे। मैंने कहा 'आप आबू चलो तो मिला दूं।' तब कल्ला ने कहा ''अभी (1962) तो 3 साल बाकी हैं। मैं उनके पास क्यों जाऊं? उन्होंने तीस साल बाद मिलने का वादा किया था। इसलिए वे खुद ही मुझ से मिलने का वादा पूरा करेंगे।'' हम आगे देखेंगे कि गुरुदेव ने श्री देवाजी महाराज के रूप में किस प्रकार 1965 में यह वादा पूरा किया।

अभी महापुरुष नहीं होंगे

हम सब 8 अक्टूबर, 1962 को आबू गये। जॉर्ज जुटजेलर के बारे में बात चली। मैंने गुरुदेव को कहा: ''इस समय दुनिया की हालत बहुत खराब है। अभी महापुरुषों की जरूरत है परन्तु महापुरुष एक एक करके जा रहे हैं।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''मांगीमल, इस समय महापुरुष नहीं होंगे। जो हैं वे छिपे रहेंगे। अभी समय ऐसा ही है। जब ठीक समय आता है तो प्रकट हो जाते हैं।''

राष्ट्रीय विपदा

भारत की हालत के बारे में कहा: 'हमारे देश का समय अभी बहुत खराब है। एक बड़ी विपदा आने वाली है।' तब मैंने कहा: गुरुदेव, जब तक जवाहरलाल नेहरु जिन्दा है तब तक कोई बड़ी विपदा तो नहीं आयेगी। तब गुरुदेव ने कहा: ''नेहरू संभाल नहीं सकेगा। वह फेल हो जायगा। और अब उसकी लाइफ भी ज्यादा नहीं है। दो साल भी नहीं।'' इस बात के दो साल के भीतर ही नेहरु का देहान्त हो गया। ''बाद में कांग्रेस के भी टुकड़े हो जायेंगे।'' मैं सोच में पड़ गया। गुरुदेव ने बात का विषय बदल दिया। 17 को मैं जोधपुर

लौटा। मैं बहुत निराश था। मैं किसी बड़े राष्ट्रीय संकट का इन्तजार कर रहा था।

12 अक्टूबर को हमारी यह बात हुई थी। चीन के हमले शुरू हो गये। 20 तारीख को नेहरू ने रेडियो पर अपना गहरा दुख प्रकट किया। राष्ट्रपति ने इसे बहुत ही शर्मनाक, राष्ट्रीय अपमान बताया। इसके बाद देश की राजनैतिक हालत बिगड़ती ही गई।

तीस साल बाद मिल गये

जोधपुर आने पर मनोविज्ञान के प्रोफेसर डॉ. वसावड़ा ने मुझे कहा कि देवाजी महाराज हिन्दी में एम.ए. करने के लिए जोधपुर आ रहे हैं। जब हम आबू थे तो गुरुदेव ने हमें तो नहीं बताया। मैंने गुरुदेव को पत्र लिखा। गुरुदेव ने 22 जुलाई, 1965 को जोधपुर आने का लिखा। गुरुदेव महावीरसिंहजी गेहलोत के यहां ठहरे। मैंने गुरुदेव से कहा कि जोधपुर के लोग दर्शन करना चाहते हैं। आज्ञा हो तो उन्हें बुलालूं। गुरुदेव ने मना कर दिया। मैंने कहा उन्हें पता चलेगा तो वे स्वयं यहां आ जायेंगे। तब गुरुदेव ने कहा: "नहीं, उन्हें अभी पता नहीं चलेगा।"

गुरुदेव के ठहरने के लिए महावीरसिंहजी ने एक मकान किराये पर लिया जो उनके मकान के पास ही था। गुरुदेव मुझे उस मकान में ले गये। मुझे वह मकान बिल्कुल नहीं जचा। गुरुदेव ने मुझे मेरे प्लॉट के बारे में पूछा और कहा चलो देखें। हम तांगे में अजीत कॉलोनी गये। गुरुदेव ने देखा और कहा ठीक है। "जब पैसे की सुविधा हो तब मकान बना लेना। ऊपर की मंजिल में एक कमरा मेरे लिए रख देना।" मैंने कहा: गुरुदेव, मकान तो कब बनेगा? अभी बना हुआ होता तो ठीक रहता। आप यहां विराजते। आपके जाने के बाद बनेगा तो क्या काम आयेगा ? तब गुरुदेव ने कहा: "पीछे देखेंगे।" मुझे इस बात का दुख हुआ कि गुरुदेव दो साल जोधपुर रहेंगे परन्तु हम पास में रहकर भी सेवा नहीं कर सकेंगे। गुरुदेव की इस जोधपुर यात्रा में एक विशेष रहस्य छिपा था। गुरुदेव वास्तव में पढ़ने के लिए जोधपुर नहीं आये थे। जैसा मैंने पहले लिखा, शान्तिविजयजी ने आबू पर 1935 में प्रोफेसर कल्ला से 30 साल बाद फिर मिलने का वादा किया था। अब 30 साल पूरे हुए ही थे और श्री देवाजी महाराज विद्यार्थी के रूप में जोधपुर आकर प्रो. कल्ला से मिले। इस प्रकार वह वादा पूरा किया। वादा पूरा करने के बाद श्री देवाजी महाराज जोधपुर नहीं ठहरे और आबू लौट गये।

भले जाओ

उस समय मेरे भाई मोहनमल को पाकिस्तान सीमा के पास गडरारोड स्टेशन पर जाना था जहां वह स्टेशन मास्टर थे। जाने के लिए गुरुदेव से आज्ञा का कहा। गुरुदेव कुछ उदास लगे। फिर धीमी आवाज में कहा: "भले जाओ।"

गुरुदेव आबू चले गये। कुछ ही दिन बाद सितम्बर, 1965 में पाकिस्तान ने भारत

से युद्ध छेड़ दिया। गडरा रोड़ और जोधपुर पर अधिकतम बमबारी हुई। 18 तारीख को भयंकर बमबारी हुई। जोधपुर और आसपास 40 बम गिरे। दोपहर को आबू से पत्र आया: ''गुरुदेव ने सब को आशीर्वाद कहा है। चिन्ता नहीं करना।''

मैं गुरुदेव से कह दूंगी

27 मार्च, 1966 को गुरुदेव जोधपुर पधारे। रात को 11 बजे हमारे यहाँ आये। काफी देर तक सुरेन्द्र भाई से बातें की। पुष्पा ने गुरुदेव से कहा: ''भगवान मेरी एक भतीजी छोटी उम्र में ही मर गई। वह रात को आती है और मुझे नींद में परेशान करती है। वह कहती है तुम मुझे अच्छी लगती हो इसलिए मेरे पास आती है। वह मानती नहीं है। आखिर मैंने उसको कहा: तुम नहीं मानोगी तो मैं गुरुदेव से कह दूंगी। यह सुनकर वह कांपने लगी और कहा: तुम गुरुदेव को मत कहना। वे तो सब के स्वामी हैं। तब गुरुदेव ने पुष्पा को कहा: ''तुम चिन्ता नहीं करना।'' इसके बाद उस spirit ने आना बन्द कर दिया।

21 जनवरी, 1968 को रुक्मणीदेवी का देहान्त हो गया। उनके अग्नि संस्कार के समय गुरुदेव मांडोली गये। 3 फरवरी 1968 को मांडोली में बसंत पंचमी मनाई गई। हम सपरिवार मांडोली गये। गुरुदेव ने रुक्मणी की भक्ति की बहुत प्रशंसा की और कहा कि उनकी यह तीव्र इच्छा थी कि सेठजी के हाथों में ही वह चली जायें। तब गुरुदेव ने उनसे कहा: ''फिर सेठ साहब की देखभाल कौन करेगा?'' इस पर रुक्मणी ने गुरुदेव से कहा: ''आप हो।''

मोतीभाई को दर्शन

मांडोली में मेरी मुलाकात पालनपुर के भक्त जस्टिस मोतीभाई कोठारी से हुई। उन्होंने मुझे देवाजी महाराज के बारे में एक अनुभव बताया जो उन्होंने कहा कि ''मेरी पत्नी के अलावा मैंने किसी को भी नहीं बताया।'' उन्होंने कहा: ''मुझें हार्ट एटेक हुआ और मेरी हालत बिगड़ गई। पूज्य देवाजी महाराज ने मेरी तबियत की जानकारी के लिए आबू से एक भक्त को भेजा और यह कहलाया कि ''मैं 22 तारीख को तुम्हारे यहां आऊंगा।'' मेरी हालत बिगड़ती गई। परन्तु गुरुदेव उस दिन तक मेरे यहां नहीं पधारे। हालांकि गुरुदेव शरीर से तो नहीं पधारे परन्तु देर रात 22 तारीख को ही मुझे vision में प्रकट होकर दर्शन दिये। वे मुझे आशीर्वाद दे रहे थे। कुछ ही देर में अन्तर्धान हो गये। दूसरे दिन से मेरी तबियत में सुधार होने लगा और कुछ दिनों में मैं ठीक हो गया।''

इमरजेन्सी – पुलिस राज का संकेत

मैं आबू गया। 20-10-69 को काफी देर तक गुरुदेव के पास बैठे। राजनैतिक विषयों पर भी चर्चा हुई। मैंने कहा कि देश की तेजी से बिगड़ती हुई हालत के कारण फौजी हस्तक्षेप की संभावना बढ़ रही है। तब गुरुदेव ने कहा : ''हमारी फौज तो सत्ता नहीं हथियाएगी।

परन्तु देश में राष्ट्रपति द्वारा पुलिस शासन थोपा जा सकता है।'' इसके छह साल बाद देश में इमरजेन्सी लागू कर दी गई।

सालभर में बना लेना

मैंने मेरे नया मकान बनाने के लिए धनतेरस के शुभ दिन काम शुरू करने का विचार रखा। तब गुरुदेव ने कहा: ''अभी नहीं। दीपावली के बाद शुरू करना।'' (मैंने सोचा दूसरी धनतेरस तो अभी साल भर नहीं आयेगी। यही समय ठीक था।) दूसरे दिन 21 तारीख को गुरुदेव ने फिर यही कहा और साथ में यह कहा कि ''साल भर में बनवा लेना।'' गुरुदेव को पता था कि जोधपुर जाने के बाद तीन महीने तक मैं बीमार रहूंगा। उनका आशय यह था कि तीन महीने बीमार रहना और आगे नौ महीनों में मकान बनवा लेना। इस प्रकार अगला एक साल पूरा होगा। 8 मार्च, 1970 से मकान बनना शुरू हुआ और मेरी तबियत, जब तक मकान बनता रहा, बिल्कुल ठीक रही। गुरुदेव की आज्ञा के ठीक एक साल बाद अक्टूबर 1970 में मकान बनकर तैयार हो गया। इस बीच गुरुदेव के आशीर्वाद के पत्र आते थे।

राजनीति से दूर रहना

गुरुदेव ने आपातकाल पर लिखी मेरी टाइप की हुई पुस्तक देखी। विमल के साथ मुझे पत्र भेजा जिसमें लिखा था कि पुस्तक को कुछ नरम कर देना क्योंकि पुस्तक का भारत की राजनीति से सम्बन्ध था। गुरुदेव ने लिखा कि ''अपने को राजनीति से तो दूर रखना क्योंकि Politics is a dirty game और कुत्तों का स्वभाव एक समान होता है। वे चाहे आबू के हों या किसी अन्य शहर के। अतः राजनीति से दूर रहना कारण कि प्रतिकूल सरकार आने पर तकलीफ हो जाती है। मेरी तबियत पहले से ठीक है। चिन्ता मत करना। आशा बहन, कमल आदि सबको आशीर्वाद कहना।

11-12-78 को गुरुदेव ने हमें आशीर्वाद का पत्र लिखा जिसमें यह भी लिखा था कि ''दोनों भाई अच्छे होंगे।'' दूसरे ही दिन 12 तारीख को केमिस्ट्री लेब में आग से कमल का हाथ जल गया। लेब में बहुत बड़ा फायर हो सकता था। परन्तु बच गया। 13 तारीख को भारत के उच्चतम न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश श्रीचन्द्रचूड़ ने मेरी इमरजेन्सी वाली पुस्तक की भरपूर प्रशंसा में मुझे लिखा :

विधिवेत्ता न होते हुए भी कोई व्यक्ति इस तरह की विचारोत्तेजक पुस्तक (कैसे) लिख सकता है, यह विचार जब मेरे मन में आता है तो समझ लीजिए कि मैंने बहुत बहुत कह दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत की आम जनता आपकी पुस्तक को रुचि के साथ पढ़ेगी।''

बाद में जब गुरुदेव ने प्रधान न्यायाधीश का यह पत्र देखा, तब बहुत खुश हुए और लिखवाया कि इसका हिन्दी अनुवाद भी करवा लेना।

पुस्तक जल्दी छपवा लेना

मैं गुरुदेव को पत्र लिखता रहता और गुरुदेव के आशीर्वाद के पत्र आबू, बम्बई से आते रहते थे। मैं 3-6-80 को आबू गया। गुरुदेव का स्वास्थ्य ठीक था और खुश थे। बड़े गुरुदेव पर मेरे द्वारा लिखी पुस्तक *The Saint of Mt. Abu* की टाइप कोपी देखी। मैंने कहा आप इसे पूरी देखें और यदि कोई गलती हो तो ठीक कर दें। गुरुदेव ने कहा: ''बिल्कुल ठीक है। गलती के बारे में विचार मत करो। जल्दी छपवा दो।'' मैं कमरे के बाहर गया तब मुझे वापिस अन्दर बुलाया और कहा कि ''पुस्तक जल्दी छपवा लेना।''

मैंने कहा : प्रोफेसर पी.टी. राजू को प्राक्कथन (Foreword) लिखने के लिए मैंने एक कापी भेजी है। गुरुदेव ने कहा : ''ठीक किया। वे लिख देंगे। वे विख्यात दार्शनिक हैं। तुमने अच्छा लिखा।'' इस समय सेठजी अन्दर आ गये। गुरुदेव ने उन्हें इस पुस्तक की चर्चा की। तब सेठजी ने गुरुदेव को पूछा : `But where is your sanction? आपकी अनुमति कहाँ है ?'' तब गुरुदेव ने कहा: ''मैं इसकी अनुमति छह महीने पहले ही दे चुका हूँ।'' सेठजी बहुत खुश हुए।

सबको आशीर्वाद कहा है

मेरे लड़के कमल की शादी 29-11-81 को तय हुई। मेरी तबियत फिर खराब हो गई। बिस्तर से उठना मुश्किल हो गया। मैंने गुरुदेव को शादी का कार्ड जरूर भेजा परन्तु मेरी तबियत के बारे में नहीं लिखा। मेरी तबियत अधिक खराब होती गई। घर पर मेरे अलावा सब उदास थे। मैंने आशा को कहा कि मैं गुरुदेव को नहीं लिखूंगा क्योंकि इससे गुरुदेव का कष्ट बढ़ेगा। 19 तारीख को बम्बई से नेमीचन्दजी का पत्र आया जिसमें लिखा कि ''गुरुदेव ने आप सबको बहुत याद किया है और आशीर्वाद दिया है और वर-वधू को भगवान दीर्घायु बनावे यही प्रार्थना है।''

ठीक 25 साल पहले मेरी शादी में भी ऐसा ही घटनाचक्र हुआ था। वही नवम्बर (1956) का महीना, वही बीमारी, वैसा ही आशीर्वाद का पत्र, आदि। 5-7-82 को हम गुरुपूर्णिमा के लिए आबू गये। नेमीचन्दजी और कई अन्य भक्तों को गुरुदेव पर पुस्तक के कुछ छपे हुए पन्ने बताये। सब खुश हुए। 27-10-82 को हम सपरिवार आबू गये और दो दिन वहाँ रहे। गुरुदेव ने सरोजबहन को कहा: सरोज, मांगीमल ने बहुत अच्छा मकान बनाया। मैंने उसे कहा था कि एक कमरा मेरे लिए ऊपर बना लेना। मेरे कहने के अनुसार ही बनाया। मैं ऊपर छत पर सोया था। वहाँ की हवा अच्छी है।'' तब आशा ने कहा: भगवान आप जोधपुर पधारो। तब गुरुदेव ने कहा: ''अभी तो आना नहीं होगा। पीछे देखेंगे।''

तलाक का संकेत

शादी के कुछ समय बाद (1986) राजेन्द्र कोठारी और उसकी पत्नी बम्बई गये

थे। उनको बाहर ही बिठा दिया। अन्दर गुरुदेव दूसरे लोगों से साधारण बातें कर रहे थे जो आवाज बाहर तक सुनाई देती थी। गुरुदेव ने तलाक के विषय पर चर्चा की। एक प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता और उसकी पत्नी के आपस में कलह और तलाक के विषय में काफी देर तक चर्चा की। राजेन्द्र सब सुन रहा था। सच तो यह है कि गुरुदेव उसे सुनाना चाहते थे। फिर उनको अन्दर बुलाया और पास में बिठाया। काफी देर बातें की और कहा ''अब जाओ।'' इसके कुछ दिन बाद राजेन्द्र और उसकी पत्नी के बीच कलह शुरू हो गई जिसका अन्त कुछ साल बाद तलाक में ही हुआ।

गुरुदेव शान्तिविजयजी का जीवन चरित्र

मैं जून 1960 में आबू गया। गुरुदेव ने मुझे कहा कि सेठ साहब अचलगढ जा रहे हैं। तुम लोग भी उनके साथ अचलगढ़ जाओ। गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार मैं सपरिवार सेठजी के साथ अचलगढ़ गया। इस समय मुझे प्रथम बार सेठजी के सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। हमने गुरुदेव से सम्बन्धित अनुभवों पर चर्चा की। आबू आने पर मैंने गुरुदेव से कहा कि मेरी इच्छा बड़े गुरुदेव (शान्तिविजयजी) पर पुस्तक लिखने की हैं। पुराने भक्त बहुत कम रह गये हैं। यह काम जल्दी हो जाय तो ठीक है। तब गुरुदेव ने कहा: ''अभी कुछ समय ठहरो। अभी तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है।'' कुछ देर बाद कहा: ''जब तुम लेक्चरार हो जाओ और एक जगह जम जाओ, तब लिखना। छोटी पुस्तक ही लिखना। अंग्रेजी में लिखना।''

मैं 10 जून, 1966 को आबू गया। इस बार मेरी इच्छा थी कि गुरुदेव से सम्बन्धित सेठ किशनचन्द के अनुभवों को मालूम करूं। गुरुदेव ने सेठजी को आदेश दिया कि मांगीमल जो जानना चाहे उसे लिखा दो। हम दोनों रोज साथ बैठते और मैं उन्हें पूछता रहता और वे अपने अनुभव मुझे बताते रहते। सेठजी से मुझे जो भी सामग्री मिली वह मैंने अधिकतर *The Saint of Mt. Abu* में लिख दी है। जो देवाजी महाराज से सम्बन्धित थी, वह अब इस पुस्तक में बताई है। सेठजी ने मुझे एक पुराना संदूक दिया जिसमें गुरुदेव शान्तिविजयजी से सम्बन्धित पत्र, तार आदि भरे थे। उनमें से मैंने उपयोगी सामग्री इकट्ठी कर ली और भक्तों की जानकारी के लिए मेरी पुस्तकों में दी है।

दूसरे दिन फिर गुरुदेव ने कहा, तुम्हारी इस पुस्तक पर कोई कुछ भी टीका करे तुम इस पर विचार नहीं करना। तुम जो उचित समझते हो, लिख दो। फिर गुरुदेव ने पुस्तक को जल्दी छपवा लेने को कहा। पुस्तक छपाई का काम 1982 में पूर्ण हो गया।

जुलाई 85 को हम गुरुपूर्णिमा पर आबू गये। मैंने *The Saint of Mt. Abu* के हिन्दी संस्करण निकालने की बात गुरुदेव से कही। मैंने कहा : आप देख लीजिए, अगर कहीं कोई परिवर्तन करना हो? तब गुरुदेव ने कहा : ''ठीक है। तुम्हें अब इस पुस्तक में एक लाइन भी बदलने की जरूरत नहीं है। छपा दो।'' हिन्दी संस्करण 1987 में छप गया।

सेठजी से मेरा मिलना होता रहता था। अन्तिम बार मैं उनसे आबू पर 1983 में मिला। उन्होंने मुझे अपने जीवन के कुछ कटु अनुभवों का भी जिक्र किया और आत्म विश्वास के साथ मुझे कहा : "देखो कोठारी, ये (देवाजी महाराज) साक्षात् भगवान हैं। मैंने यह वादा कर लिया है कि मैं उन्हें कभी नहीं छोड़ूंगा और उनको भी कह दिया कि आप मुझे कभी नहीं छोड़ेंगे।" हमने कई अन्य दार्शनिक विषयों पर भी चर्चा की। 3.3.84 को बम्बई से गुरुदेव का तार मिला कि सेठजी का देहान्त हो गया है।

20-4-88 सुबह गुरुदेव के दर्शन हुए। गुरुदेव ने कहा : "सबसे महत्त्वपूर्ण बात मन पर नियंत्रण करना है। यह प्रयास से हो सकता है। दुनियां के विषयों से दूर जाकर, अलग रहने पर हो सकता है अर्थात् आकर्षण आसपास में नहीं होने चाहिये। अपने से कोई नाराज हो तो उसको देखकर नम्रता दिखाओ।" फिर गुरुदेव ने हम सबको शांताबहन के मन्दिर जाने को कहा। शाम को बम्बई वाले पंडितजी और हमारे साथ काफी देर तक शंकर वेदान्त पर चर्चा हुई।

जुलाई 1989 में गुरुपूर्णिमा पर हम आबू गये। गुरुदेव ने कहा : "आशा, तुमने मेरी बहुत सेवा की।" तब आशा ने कहा: "भगवान मैंने तो कुछ भी नहीं की। आपने कभी सेवा का अवसर ही नहीं दिया। (गुरुदेव का अभिप्राय शायद पूर्व जन्म से था।) आपकी सेवा तो सेठजी ने की और अब सरोजबहन और पूना, वीसनगर के भक्त कर रहे हैं। हमने तो आपकी आज्ञा के अनुसार ऊपर एक कमरा भी बनाया।" आशा ने हंसते हुए कहा: "भगवान, वह कमरा आपकी इन्तजार कर रहा है।" गुरुदेव ने हंस दिया पर बोले नहीं। इसी प्रश्न का निश्चित उत्तर गुरुदेव ने 11 साल बाद अंतिम गुरुपूर्णिमा के दिन विमला को दिया।

अक्टूबर 1991 में हम आबू गये। गुरुदेव से कई विषयों पर बात हुई। भंडारीजी ने पूछा: क्या आप भक्तों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं? गुरुदेव ने कहा "नहीं। जिनका भार मैंने अपने ऊपर ले लिया है अभी उतना ही काफी है।"

मैं गुरुदेव को मेरी पुस्तक *Spiritual Empiricism* की कॉपी देना चाहता था। पर मैंने सोचा कि शायद गुरुदेव इसे अच्छा नहीं समझें क्योंकि वे अपने ऊपर लिखना नहीं चाहते थे। आखिर तीसरे दिन मैं कपड़े में लपेट कर पुस्तक ले गया। पर देने की हिम्मत नहीं हुई। परन्तु गुरुदेव ने खुद ही मुझे पूछ लिया : "मांगीमल ये क्या है ?" तब मैंने पुस्तक निकाल कर गुरुदेव को दी। शाम को हम दर्शन के लिये गये तब सरोजबहन ने कहा कि आज तो सुबह से ही गुरुदेव आपकी पुस्तक पढ़ रहे हैं और कहा : "देखो सरोज, मांगीमल ने कितनी अच्छी पुस्तक लिखी है।" यह सुनकर मुझे खुशी हुई।

धर्म और दर्शन के क्षेत्र में गुरुदेव जैन दर्शन के कर्मवाद को सैद्धान्तिक दृष्टि से मान्यता देते थे और अपने स्वयं के ज्ञान के आधार पर भक्तों को उनके व्यक्तिगत और कभी कभी सामूहिक कर्म पर आधारित भावी घटनाचक्र का बहुत पहले, अनेक वर्षों पहले, स्पष्ट संकेत दे दिया करते थे चाहे वो घटना शुभ होती या अशुभ। कभी कभी राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय

महत्व की बात भी कह देते जो उस समय विश्वास करने योग्य नहीं होती। जैसे मेरे सम्पूर्ण जीवन के घटनाचक्र, 1962 में भारत पर आने वाला संकट, इमरजेन्सी, कांग्रेस का विघटन। इनमें कुछ के बारे में मुझे स्पष्ट संकेत भी दिये थे। कुछ अन्य ऐसे हैं जो विश्व राजनीति की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं और मेरी डायरी में लिखे हैं, परन्तु इस समय उन्हें सार्वजनिक करना ठीक नहीं लगता।

12 जुलाई 95 को गुरुपूर्णिमा के अवसर पर हम सब आबू गये। दूसरे दिन सुबह गुरुदेव की तबियत बहुत खराब हो गई। हमसे यह देखा नहीं गया। गुरुदेव ने सरोजबहन को कहा कि मांगीमल को कहना कि इस शरीर का अधिक विचार नहीं करे। यह तो नाशवान है।

गुरुदेव बम्बई से माउन्ट आबू आ रहे थे। आबू आते समय उनकी कार का आबू पर्वत पर एक्सिडेन्ट हो गया। गाड़ी दीवार तोड़कर खड्डु में गिरी। पर वह बांस के पेड़ों में नाजुक स्थिति में अटक गई जिससे बड़ी दुर्घटना होने से बच गई। किसी को चोट नहीं आई।

7-5-96 को अचलगढ़ के गुरुमंदिर की प्रतिष्ठा पर हम सब आबू गये। अचलगढ़ में ऐसा दृश्य पहली बार देखने को मिला। दूर दूर से भक्त आये। 30-7-96 को वीसनगर में गुरुपूर्णिमा हुई।

मेरी चिन्ता मिट गई

29-10-97 को मैं अकेला मांडोली गया। वहां से आबू गया। गुरुदेव बीमार और बहुत ही कमजोर दिखाई दिये। मैंने मन में कहा: "यह क्या है ? गुरुदेव शरीर को इतना खराब क्यों कर रहे हैं ?" इस बार गुरुदेव से अधिक बात नहीं हुई। 31 तारीख को गुरुदेव ने मुझे बाहर बिठा दिया। खुद सो गये। सरोजबहन को मुझे नाश्ता करवाने को कहा। फिर बगीचे में कुर्सियां लगवायी। बाहर आये तो मैं देखता हूं कि वे बहुत ही अच्छी हालत में हैं। ऐसे हृष्ट पुष्ट जैसे मैंने उन्हें 40 साल पहले देखा था। उनके हाथ में एक भारी वजन की किताब थी। मैंने कहा आप किताब मुझे दे दीजिए, भारी है। उन्होंने कहा 'नहीं'। जब तक मैं पास में बैठा, पुस्तक उनके हाथ में रही और बीच बीच में उसे पढ़ते और बात भी करते रहते। इस प्रकार बिना कुछ कहे उन्होंने अपनी तबियत के बारे में मेरी चिन्ता को मिटा दिया।

डॉक्टर साहब, दवाई लिखो

15-4-90 को हम मांडोली गये। वहां से रूपजीभाई और विमलभाई के साथ सिरोही गये। वहां से आबू गये। 17-4-90 को हम जोधपुर लौट आये। दो दिन बाद ही सुरेन्द्र के पापा डॉ. मदन मोहन भंडारी को कई तरह के अनुभव हुए। उन्होंने मुझे बुलाया और कहा कि आप और हम अभी कार से आबू चलें। उनके दो दिन बाद 21-4 को आबू जाने के टिकट रिजर्व किये हुए थे। परन्तु उन्होंने उसी समय देवाजी महाराज के दर्शन के लिए जाने की जिद की। बहुत मुश्किल से उन्हें मनाया कि आप 21-4 को ही जायें और जब

गुरुदेव की आज्ञा हो, तभी वापिस आना।'' आखिर वे मान गये। आबू में गुरुदेव के दर्शन किये तब शान्ति मिली। वे शुरू से ही गंगाशहर (बीकानेर) में निजी चिकित्सक थे। वहाँ के लोग उनसे बहुत खुश थे, इसलिए उन्हें वापिस गंगाशहर आने के लिए दबाव डाल रहे थे। पर अब सबकी इच्छा जोधपुर में रहने की थी। गुरुदेव ने भी कहा: ''अब आप बीकानेर का विचार छोड़ दो। जोधपुर ही रहो।'' उन्हें नींद नहीं आती इसके लिए गुरुदेव ने कहा: ''दवाई लिखो। ठीक हो जायेगा।'' गुरुदेव के दर्शन के बाद उनकी हालत सामान्य हो गई। गुरुदेव ने कहा: ''डॉक्टर साहब अभी आप दस साल बिल्कुल ठीक रहेंगे।'' दस साल तक डाक्टर साहब ठीक रहे। बाद में 25-2-2001 को फिर तबियत बिगड़ गई। उस समय गुरुदेव का देहान्त हो चुका था।

तुम्हें तो अभी बहुत जीना है

एक बार (1965 में) गुलराज (जोधपुर) के माताजी ने श्रीदेवाजी महाराज को अपने घर पर आने की प्रार्थना की। तब गुरुदेव ने कहा: ''पीछे देखेंगे।'' तब माताजी ने कहा: ''भगवान् अब मेरी आयु ज्यादा नहीं है। ज्योतिषी कहते है कि अब मेरे लिए बहुत कम समय है। फिर आप मेरे मरने के बाद पधारोगे।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''नहीं, नहीं। तुम्हें अभी बहुत जीना है।'' इस बात को 40 साल हो चुके है। इस समय उनकी आयु करीब 95 वर्ष है।

आशा ने कहा: भगवान अब मेरी एक ही इच्छा है कि ''इनके (पति) हाथों में चली जाऊं।'' तब गुरुदेव ने कहा ''यह ठीक है। हर औरत यही चाहती है। पर तुम्हें तो अभी बहुत जीना है। तेरी चूंदड़ी (सुहाग) बनी रहेगी। गुरु की, पति की, सास की सेवा करना।''

मैं गुरुदेव के पास बैठा था तब सेठ किशनचन्द आये। गुरुदेव के चरण स्पर्श किये। गुरुदेव ने कहा ''खूब भजन करो।'' तब सेठजी ने कहा: ''गुरुदेव अब मेरी उम्र काफी हो गई है और केवल एक ही इच्छा रह गई है। आपके चरणों में शरीर छूट जाय।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''नहीं। अभी क्या जल्दी है? अभी आपको जीना है। खूब भजन करो। जितने अधिक समय तक शरीर रहेगा उतना ही अधिक समय पूर्व कर्मों के क्षय करने को मिलेगा। आगे के लिए अधिक क्यों रखते हो?''

अंतिम गुरुपूर्णिमा पर गुरुदेव ने गुरुप्रसादजी से कई विषयों पर चर्चा की। गुरुप्रसादजी ने कहा : भगवान अब मैं दो साल से अधिक नहीं जीऊंगा।'' तब गुरुदेव ने फरमाया ''नहीं, उसके बाद भी आपको और रहना है।''

अभी चले जाओ। पीछे मिलना नहीं होगा

कई बार ऐसा देखा कि भक्त का खराब समय आने को होता है तो गुरुदेव उसके पहले आशीर्वाद कहला देते हैं। मेरा लड़का कमल 10 जुलाई 1981 को बम्बई में गुरुदेव

के दर्शन करने गया तब गुरुदेव ने गुलराज, उसकी माताजी और बहिन पुष्पा के बारे में पूछा और उनको आशीर्वाद लिखने को कहा। कुछ दिन बाद 29 जुलाई को फिर कमल गुरुदेव के दर्शन करने गया तब गुरुदेव ने पूछा कि तुम्हें पता है कि पुष्पा की तबियत ठीक नहीं है और वह बॉम्बे हॉस्पिटल में भर्ती है। तुम उसके पास जाना और वापिस आकर मुझे बतलाना। कुछ रुक कर कहा: ''कमल, तुम अभी चले जाओ। पीछे मिलना नहीं होगा।'' गुरुदेव ने उसकी डायरी में रास्ते का नक्शा बना कर दिया। कमल ने पुष्पा को गुरुदेव का संदेश कहा: ''आप चिन्ता नहीं करें। गुरुदेव आपके साथ हैं।'' कमल ने वापिस लौट कर गुरुदेव को कहा कि पुष्पा की तबियत बहुत खराब है। कमल ने लिखा कि अब मैं 2 तारीख को पुष्पा के पास जाऊंगा। परन्तु 2 तारीख को उसकी खुद की तबियत खराब हो गई और वह नहीं जा सका। उसी रात 10 बजे फोन आया कि पुष्पा का देहान्त हो गया है। तब कमल को याद आया कि गुरुदेव ने पहले ही कह दिया था कि आगे मिलना नहीं होगा।

अभी समय बहुत खराब हैं। मौतें होंगी

गुरुदेव ने पूछा : ''आशा, भगवान ने सब से अच्छी चीज कौन सी बनाई?'' जब वह कोई जवाब नहीं दे सकी, तब गुरुदेव ने ही कहा: ''मौत।'' इस शरीर के साथ लगे सभी तरह के दुखों का अन्त हो जाता है। गुरुदेव ने कहा : ''अभी समय बहुत खराब चल रहा है। बहुत लोग मरेंगे।''

मांडोली के बारे में कहा: ''कुछ लोग मेरे पास आये थे। अभी समय ही खराब है। झगड़े का समय है। झगड़ा रहेगा। अन्त में ठीक हो जायेगा।''

लोग कहते हैं ''आपके बीमारी क्यों? मैं कहता हूं पूर्व कर्म के फल तो भोगने पड़ते हैं। जितना भोग सकें अच्छा है। परन्तु कर्म से कर्म समाप्त नहीं होते। ज्ञान से ही कर्म जलते हैं।''

गुरुदेव ने कहा : ''अपना कर्त्तव्य करना ठीक है। परन्तु लगाव नहीं रखना। संसार के सब काम करते हुए भी उसमें मन से नहीं उलझना। तुम अनुभववाद (empiricism) पर भले ही लिखो परन्तु अपने को उससे भी अलग ही रखना।''

फिर 'सर्वज्ञता' शब्द पर भी चर्चा हुई। ''सच्चे महापुरुष चमत्कार दिखाना नहीं चाहते। तात्विक विवादों में भी नहीं पड़ते।'' गुरुदेव ने कहा: ''पुराणों में कई अवैज्ञानिक बाते हैं। पंडितों ने उल्टा सीधा लिख कर विवाद खड़े कर दिये। राकेश शर्मा ने ऊपर से पृथ्वी को घूमते हुए देखा है। टी.वी. पर बताया था।''

बस स्टेण्ड जाने के पहले फिर गुरुदेव के दर्शन किये। गुरुदेव ने कहा: ''आशा, अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना। विमला को भी कहना कि अपना वजन घटाये।'' अन्त में कहा: ''अब जाओ। आगे जो होना है, वो तो होगा।'' अंतिम वाक्य ने हमें बहुत देर तक परेशान कर दिया। क्या वह किसी भावी अशुभ का संकेत था? क्या उसका सम्बन्ध गुरुदेव

से स्वयं से था, या हम में से किसी की तरफ या अन्य किसी की तरफ ?

आप शादी में नहीं जाना

कुछ ही दिनों बाद 7-6-88 को गुरुदेव के परम भक्त निहालचन्दजी के पुत्र बाबूलालजी का हार्ट एटेक से देहान्त हो गया। गुरुदेव ने उन्हें कुछ रोज पहले ही कहलाया कि बम्बई जाकर जांच करावो। पर वे गये नहीं। उनको शादी में जाना था। गुरुदेव ने कहलाया कि आप शादी में नहीं जाना। बम्बई जाओ। मृत्यु के दिन भी फोन से कहलाया कि प्लेन से बम्बई चले जाओ। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। शाम को उनका देहान्त हो गया।

कन्यादान हो जायेगा

जोधपुर में गुलराज की हालत बिगड़ती गई। गुलराज के माताजी आबू आई। गुलराज के लड़के और लड़की की शादी 6-1-88 की तय थी। गुरुदेव को पूछा आपकी आज्ञा हो तो शादी आगे के लिए स्थगित कर दें। गुरुदेव ने कहा: ''नहीं। शादी की तैयारी शुरू कर दो। स्थगित नहीं करना। शादी का काम तो दूसरे लोग ही करेंगे। धीरे धीरे ठीक होगा। पर कन्यादान तो हो जायेगा।'' तब उन्होंने कहा: ''गुरुदेव अब तो उसकी नौकरी भी जा रही है।'' गुरुदेव ने कहा: ''छोड़ो। पीछे देखेंगे।''

गुरुदेव के आशीर्वाद से गुलराज की हालत में धीरे धीरे काफी सुधार हुआ। शादी के दिन तक स्वास्थ्य काफी ठीक हो गया। शादी के सब काम बिना विघ्न के हो गये। कन्यादान हो गया। परन्तु इसके बाद उसकी तबियत फिर बिगड़ने लगी। 8-2-88 को विमल ने गुरुदेव को बम्बई फोन किया। गुरुदेव ने कहाः उसे कहना ''हिम्मत रखना।'' बाद में गुलराज की तबियत फिर खराब होने लगी। जब हालत ज्यादा खराब होने लगी तो मैंने गुरुदेव को आबू तार भेजा कि मैं 3-11-88 को आबू आ रहा हूँ। मैंने रेल से रिजर्वेशन भी करा लिये थे। मैं गुलराज से मिला और गुरुदेव के नाम का उसका पत्र लेकर घर पहुंचा ही था कि तार वाला आया और गुरुदेव का भेजा तार मिला जिसमें लिखा था "Please don't come" हम समझ गये कि शकुन खराब हो रहे हैं। विमल ने कुछ दिन बाद उसी चिट्ठी को गुरुदेव को भेजा, परन्तु गुरुदेव ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने आबू एक्सप्रेस तार भेजा, पर कोई जवाब नहीं। 8-6-89 को गुलराज का देहान्त हो गया।

बाद में गुरुदेव ने कहा कर्म तो काटने ही पड़ते हैं। मुझे तो पता था। तुम्हारे पत्र आये। मैं क्या कर सकता था ? उसका तो समय ही आ गया था। मैंने उत्तर देना ठीक नहीं समझा। इसलिए सरोज को पत्र देने को कहा।

पूना के एक भक्त को दमा का रोग था। वह ठीक नहीं हो रहा था। तब गुरुदेव ने कहा : ''यह दमा तुम्हें नहीं छोड़ रहा है। तुम दमा को छोड़ दो।'' कुछ दिन में उसका देहान्त हो गया।

आशीर्वाद आत्मा की शान्ति के लिए होता है

एक भक्त की हालत बहुत खराब थी तब शान्तिविजयजी ने उसके लिये आशीर्वाद कहलाया और उसकी मृत्यु हो गई। लोगों ने कहा: ये क्या? गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया, फिर भी मृत्यु हो गई। ''आशीर्वाद मौत को रोकने के लिए थोड़े ही होता है। आशीर्वाद शरीर के लिए नहीं होता है। वह तो आत्मा की शान्ति के लिए होता है। मेरे बारे में भी लोग कहते है ''खुद इतने बीमार रहते हैं, दूसरों को क्या ठीक करेंगे?'' कर्म तो काटने ही पड़ते हैं। गुलराज ने भी अपने पूर्व कर्मों को काटा। महात्मा दूसरों के कर्म काटने में मदद अवश्य करते हैं पर उसकी सीमा होती है।''

अमेरिका में एक भक्त की हालत गम्भीर थी। डॉक्टरों ने सब आशा छोड़ दी। उसकी लड़की ने मुझे फोन किया। मैंने कहा: ''धीरज रखो। ठीक हो जायेगा। मैं तो खुद मरे जैसा हो गया। परन्तु उसका कष्ट भी झेलना पड़ा। वह ठीक हो गया।... तुम लोग यहां आते हो। तुम्हारे पूर्व कर्म हैं। तुम्हारे कर्म नहीं होते तो तुम भी यहां नहीं आते। आदमी पहले के अच्छे कर्मों के फलस्वरूप सुख देखता है। उस समय वह फिर बुरे कर्म कर देता है। इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है...''

श्राद्ध, पित्र और प्रेतों की आत्माओं की भी चर्चा चली। जो अकाल मरते हैं उनकी गति खराब होती है। एक भूत ने एक महात्मा को कहा कि मुझे नर्बदा नदी के किनारे एक जगह पहुंचा दो। मेरी गति हो जायेगी। तब मैंने मेरी छोटी भुआ के लड़के का उदाहरण दिया जो पानी में डूबने से मर गया। मैंने घर के पित्र, भोमियाजी आदि का उदाहरण दिया। पित्रों की भी शिकायतें आती हैं। वे चाहते हैं कि विशेष समय पर उन्हें याद किया जाय और धूप आदि किये जांय। फिर मेरे ससुराल में सिंघियों के नाग देवता पर भी काफी बात हुई। हिन्दू श्राद्ध को जरूरी मानते हैं। जैन नहीं मानते हैं। दोनों बात ठीक है। पित्र भी होते हैं। बहुत होते हैं। उनकी उम्र भी हजारों वर्ष तक होती है। परन्तु सब पित्र नहीं होते। जैन कहते हैं कि मरते ही जीव दूसरा जन्म ले लेता है तो वह पित्र नहीं होगा फिर उसके लिए श्राद्ध आदि की क्या आवश्यकता है ?

18 जुलाई 1989 को आबू पर गुरुपूर्णिमा मनाई गई। रात को करीब 12 बजे गुरुदेव बाहर आए और भक्तों को कुछ उपदेश दिया। आशा ने विनती की कि आप जोधपुर पधारो। तब गुरुदेव ने कहा : ''अहमदाबाद जाता हूँ तो जोधपुर भी आ सकता हूँ। जोधपुर में भक्त तो नहीं रहे। तुम लोग हो और तुम यहाँ आ जाते हो।

प्रभु मुझे चिन्ता दीजिए

जनवरी 1966 में गुरुदेव जोधपुर आये। तब गुलराज के माताजी ने भारत-पाक युद्ध (1965) के दिनों की बातें की। रात भर साइरन बजते रहते और हम गुरुदेव को याद करते रहते। तब गुरुदेव ने दुख के महत्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने कुंती का दृष्टान्त दिया।

कुंती ने श्रीकृष्ण को कहा कि आप मुझे हर समय कोई चिन्ता दीजिए ताकि मैं आपको याद करती रहूं।

सांसारिक सुखों की कामना तो स्वार्थवश हर साधारण व्यक्ति करता है। हर आरती में यही कहता है: 'मन वांछित फल पावे।' 'सुख सम्पत्ति घर आवे'। परन्तु दुख और चिन्ता मांगना एक असामान्य बात है। सांसारिक वस्तुओं से विरक्ति होने पर ही सच्ची भक्ति विकसित होती है। यह प्रायः देखा गया है कि व्यक्ति के जीवन में भक्ति का अंकुर किसी न किसी तरह की चिंता से होता है। किसी को पति नहीं मिला तो किसी को पत्नी नहीं मिली। किसी को पैसा नहीं मिला। किसी को पुत्र नहीं मिलने की चिंता तो किसी को संतान ही नहीं मिली। किसी को स्वास्थ्य नहीं मिला। किसी को रूप नहीं मिलने की चिंता। किसी को विद्या नहीं मिली। प्रायः लोगों को अपनी योग्यता के अनुकूल काम, पद या मान्यता नहीं मिलती। सभी की अपनी विशेष तरह की चिंता होती है। प्रायः भक्त का जीवन भी पूर्णतया चिन्ता से मुक्त नहीं होता है।

जब नरेन्द्र के परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो गई तब उसने गुरु के पास जाना बन्द कर दिया। रामकृष्ण के अन्य भक्तों ने उन्हें कहा: ''देखिये, आप का भक्त नरेन्द्र आजकल यहां नहीं आता है। उसके परिवार की आर्थिक हालत बहुत खराब है। कई बार भूखे रहते हैं। आप उसकी इतनी तो सहायता कीजिए कि दिन में दो बार रोटी तो मिल जाये।'' तब रामकृष्ण ने केवल इतना ही कहा: ''देखो आलू कितना सख्त होता है परन्तु उबलने के बाद कितना नरम हो जाता है।'' आलू का उबलना अर्थात् चिंता से आदमी का अहं कमजोर हो जाता है।

ऐसे व्यक्ति को यदि गुरु की कृपा से पैसा मिल जाता है तो उसकी भक्ति बनी रहती है। परन्तु यदि किसी व्यक्ति को बिना ''उबले'' हुए, बिना मेहनत और योग्यता के ढेर सारा पैसा मिल जाय तो उसकी भक्ति अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती। इसलिए ईसा ने कहा :

एक सुई के छेद में से ऊंट का निकल जाना अधिक आसान है, परन्तु एक पैसे वाले आदमी का ईश्वर के दरबार में प्रवेश पाना इतना आसान नहीं है।

पैसा व्यक्ति को बिगाड़ता है इसलिए यदि गुरु की कृपा हो तो पैसे के साथ कोई अन्य चिन्ता बनी रहती है ताकि भक्ति स्थिर रहे। गुरुदेव के एक सम्पन्न भक्त के शरीर पर बहुत सारे सफेद दाग हो गये। बहुत इलाज करवाने पर भी वे ठीक नहीं हुए। तब गुरुदेव ने उनसे कहा: ''जज साहब, अब आपकी बीमारी आगे नहीं बढ़ेगी। इससे आपकी धर्म में आस्था बनी रहेगी।''

गुरुदेव की जिन पर कृपा थी उनको पैसा मिला। रूप, गुण, विद्या भी मिली। परन्तु उन सब के साथ किसी न किसी तरह की चिन्ता भी मिली, जिससे उनकी भक्ति बनी रही।

मानव स्वभाव इतना कमजोर है कि गुरु की कृपा से यदि सब प्रकार के सांसारिक

सुख मिल जाते हैं और किसी भी प्रकार की चिंता नहीं रहती, फिर भी उसकी भक्ति की डोर इतनी कमजोर होती है कि यदि गुरु परीक्षा लेता है तो जल्दी ही टूट जाती है। सुग्रीव राम का भक्त था परन्तु जब उसे अपनी पत्नी और राज्य मिल गये तो वह राम को भूल गया।

इस देश के कई मशहूर सटोरिये और शेयर दलाल ऐसा समझते थे कि उनके धर्मगुरुओं की कृपा से उन्होंने अरबों रुपये कमाये। ये धर्मगुरु भी उन सटोरियों को प्रथम पंक्ति में बिठाते थे। उन भक्तों का कपट आचरण लाखों लोगों के दुख और पीड़ा का कारण बन गया।

सेठ किशनचन्द की गुरुदेव के प्रति भक्ति आजीवन बनी रही क्योंकि उनको पैसे की कामना कभी नहीं थी। उन्होंने तन, मन, धन से गुरुदेव की, उनके दोनों रूपों में, भरपूर सेवा की। उनको भी कुछ अन्य चिंताएँ थी, परन्तु सबसे अधिक विनाशकारी तत्व जो पैसा है उसके कुप्रभाव से वे बचे रह सके।

गुरुदेव के भी कुछ भक्त अत्यन्त निर्धनता की हालत में थे। मैंने देखा है। परन्तु बाद में उन्होंने खूब पैसा कमाया। उनकी भक्ति बनी रही क्योंकि कुछ अन्य चिंताएँ उन्हें मिल गई। परन्तु जिन भक्तों को बिना आन्तरिक रूपान्तर के पैसा या प्रोपर्टी मिल गई--शेयर से, सट्टे से या स्मगलिंग से, रिश्वत से या वसीयत से, घोटाला, भ्रष्टाचार या काला बाजार से, उनकी भक्ति घटिया स्तर की ही रही। ऐसे लोगों को जब दुर्भाग्य का झटका लगता है तो शीघ्र ही उनकी भक्ति टूट जाती है। वे और उनके लोग तब आपस में पूछते हैं: ''फिर गुरुजी ने क्या किया?''

परन्तु सच्चे भक्त भगवान से कुछ नहीं मांगते। सुख सम्पत्ति के लिए दुख में भी विशेष प्रार्थना नहीं करते। एक भक्त कहता है :

जो कुछ गुरु को लेना होगा, वह गुरु मुझसे ले लेगा।
जो कुछ मुझको देना होगा, वह गुरु मुझ को दे देगा।
ऐसी विधि है जब जीवन की, तब जीवन में क्या मांगू ?
बिन मांगे जो कुछ मिल जाये, उसको ही सब कुछ जानू।

परन्तु कुंती ने तो आगे बढ़कर कृष्ण से चिन्ता मांगी। इसी तरह संत तुकाराम भगवान से प्रार्थना करते थे कि तुम मुझे बिना पैसे का, बिना पत्नी का, बिना संतान का और बिना संपत्ति का ही रखना ताकि मेरी भक्ति बनी रहे क्योंकि ये सभी तत्व अन्ततः भक्ति को दूषित और कमजोर करते हैं। इसलिए गुरुदेव भगवान ने भक्ति बनने में और बनने के बाद उसे बनाये रखने में चिंता की भूमिका का महत्व बताया।

चमत्कार की आशाएँ और चुनौतियाँ

भगवान से चिन्ता मांगना एक असामान्य बात है। साधारण मनुष्य तो चिन्ता मिटाने की ही प्रार्थना करता है। गुरुदेव का यश फैलने पर भक्तों के अलावा भी बहुत लोग अपनी

आशाएँ लेकर आते और उनके अनुकूल यदि आशीर्वाद नही मिलता तो निराश हो जाते। बाइबल में ईसा के समक्ष ऐसे कई अवसर आये जब उन्होंने चुनौतियों के जवाब में चमत्कार दिखाने का मना कर दिया। श्री देवाजी महाराज ने भी चमत्कारों की सीमा को बनाये रखा।

गुरुदेव ने आँखें बन्द कर ली

एक बार जोधपुर के एक प्रसिद्ध डॉक्टर कुछ पारिवारिक चिन्ता से बहुत परेशान थे। वे गुरुदेव के दर्शन करना चाहते थे और मेरे साथ महावीरसिंहजी के यहां आये। उन्होंने दर्शन किये और गुरुदेव से अपनी चिन्ता के बारे में कहना चाहते थे। गुरुदेव सुनना नहीं चाहते थे। उन्होंने आंखें बन्द कर ली। उन्हें बोलने नहीं दिया। उनकी चिन्ता मिटने वाली नहीं थी। फिर गुरुदेव ने उन्हें हाथ जोड़कर विदा कर दिया।

एक गूंगी और बहरी भक्त को ठीक होने का आशीर्वाद नहीं दिया। कहा 'इस जन्म में ठीक नहीं होगी।' गुरुभक्त गुलराज को ठीक होने का आशीर्वाद नहीं दिया।

अभी नहीं बाद में बुला लूंगा

सितम्बर 1963 में हम पालीताना जाने के लिए चले और रास्ते में आबू रुके। मेरी माताजी भी साथ थी। वे गुरुदेव के दर्शन करना चाहते थे। परन्तु जब भी मैं गुरुदेव को कहता, यही जवाब मिलता ''अभी नहीं। मैं बाद में बुला लूंगा।'' मेरी माताजी को यह अच्छा नहीं लगा। दूसरे जैन साधु तो इस प्रकार मना नहीं करते। हमें 30 तारीख को जाना था। गुरुदेव ने कहा: ''ठीक है।'' परन्तु मेरी माताजी को दर्शन नहीं दिये।

29 तारीख की रात को करीब 10 बजे हम सोने गये। मैंने मेरी माताजी को कहा कि दरवाजा बन्द मत करो। शायद गुरुदेव हमें बुलालें। तब मेरी माताजी को और भी बुरा लगा। वह कड़क कर बोली, ''वे दूसरों से तो बातें करते हैं, हमें पाँच मिनट भी नहीं दे सकते। 10 बजे हैं। अब क्या बुलाने का टाइम है?'' उन्होंने ज्योंही दरवाजा बन्द किया, शम्भूलालजी आये और बोले कि गुरुदेव ने आप सब को बुलाया है। सब चकित हो गये। सब को दर्शन दिये और दूसरे दिन भी जाने के पहले दर्शन दिये।

14 अक्टूबर, 1964 को मैं बम्बई के लिए रवाना हुआ। रास्ते में आबू ठहरा। गुरुदेव ने पूछा: अभी तुम बम्बई क्यों जा रहे हो ? मैंने कहा डाक्टरों को दिखाना है। गुरुदेव ने ना तो नहीं कहा परन्तु कहने के ढंग से ना ही लगता था। अधिक बात नहीं की। जब मैं जाता तो यही कहते ''पीछे आना।''

चुनौती: कहाँ हैं तुम्हारे गुरुदेव ?

एक बार (1964) मेरे घुटने में बहुत दर्द था। उठा नहीं जाता था। दवाई से ठीक नहीं हो रहा था। मेरी माताजी ने व्यंग में कहा: ''कहां हैं तुम्हारे गुरुदेव ? वे तुम्हारी मदद नहीं करते ?'' यह चुनौती की भाषा थी। उसी रात करीब 10 बजे गुरुदेव हमारे घर पधारे। उन्होंने

मेरी माताजी को कहा ''किसी वैद्य को दिखाना। वह बताये जैसे कर लेना। ठीक हो जायेगा।''

गुरुदेव की आज्ञा की अवहेलना

जल्दी लौटना

महेन्द्रभाई (पूना) जोधपुर विश्वविद्यालय में लेक्चरार थे। उन्हें उच्च अध्ययन (M.B.A.) के लिए अमेरिका जाना था। तब गुरुदेव ने उन्हें लिखा कि तुम अवश्य जाओ और उच्च शिक्षा प्राप्त कर जल्दी स्वदेश लौट आना। परन्तु वे गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध अधिक समय तक अमेरिका में रह गये। इससे बाद में उन्हें कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। गुरुदेव नाराज हुए और भारत आने पर कुछ समय तक उन्हें दर्शन भी नहीं दिये।

अभी पूना नहीं जाना

आबू पर विमल ने गुरुदेव को कहा कि मम्मी 22 तारीख को पूना जाना चाहती है। गुरुदेव ने कहा ''उसे मना कर देना। अभी पूना नहीं जावे।'' बाद में सुरेन्द्र भाई को भी कहा कि उसे अभी पूना जाने का मना कर देना। परन्तु आशा ने अपने चाचा के साथ जोधपुर से पूना जाने की जिद की। सुरेन्द्रभाई ने कहा कि गुरुदेव ने मना किया है। परन्तु वह जिद करती गई। एक घंटे बाद ही उसके चाचा स्वयं आ गये और कहा कि पूना से उनके लड़के का फोन आया है कि अभी आप पूना नहीं आना। इसलिए उन्होंने पूना जाने का प्रोग्राम केन्सल कर दिया। सबको बहुत आश्चर्य हुआ।

अभी अचलगढ़ नहीं जाना

सुरेन्द्रभाई अचलगढ़ जाना चाहते थे। उनको तो जाने का कह दिया। परन्तु अन्य लोगों को गुरुदेव ने मना कर दिया और कहा तुम देलवाड़ा जाओ और आदेश्वर भगवान के दर्शन करना। सब साथ अन्दर नहीं जाना। पहले तुम (पुरुष) जाना। बाद में विमला और सुरेन्द्र की बहू को भेजना। यशु को बाहर ही रखना। उसे अन्दर नहीं ले जाना। (पता नहीं ऐसा क्यों कहा।) सुरेन्द्र सुबह जल्दी अचलगढ़ गये। दूसरे भी सब साथ हो गये हालांकि गुरुदेव ने उनको मना किया था। वे गलत रास्ते चले गये। रास्ता भूल गये। फिर पूजा करते समय उसकी माताजी सम्पतकंवर स्टूल पर से गिर गई। नीचे आने पर कार की चाबी नहीं मिली। फिर वे चाबी ढूंढ़ने ऊपर गये। वहाँ भी नहीं मिली। बाद में चाबी कार में ही मिल गई। गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध गये। बहुत तकलीफ पाई।

नेताजी हार गये

भंवरलाल अग्रवाल नाम के एक नेता चुनाव के लिए खड़े हुए और गुरुदेव को आशीर्वाद के लिए तंग किया। गुरुदेव ने आशीर्वाद नहीं दिया और उसे चेतावनी दी कि

"वह हार जायेगा। उसे एक हजार से भी कम वोट मिलेंगे।" वह हार गया। लोगों को आश्चर्य हुआ कि गुरुदेव ने कहा था उन्हें उतने ही वोट मिले।

आप हार जायेंगे

राजस्थान के एक मंत्री का आचरण ठीक नहीं था। वे गुरुदेव के पास आया करते थे। गुरुदेव ने उनको समझाया पर उन पर असर नहीं हुआ। तब गुरुदेव ने उनसे कहा: 'तो फिर आप नोट करलें कि इस बार चुनाव में आप हार जायेंगे।' उन्होंने कहा: गुरुदेव मेरी स्थिति बहुत मजबूत है। तब गुरुदेव ने कहा: 'आप नोट कर लो।' वे मंत्रीजी हार गये और गुरुदेव का आदर करने लगे। राजस्थान के मुख्यमंत्री और अन्य कई नेता गुरुदेव के पास आते थे।

सम्पादकजी की हैरानी

अभयदूत पत्र के सम्पादक श्री सिंघवी शान्तिविजयजी पर मेरा लिखा लेख लेकर आए। उस लेख में मैंने देवाजी महाराज पर सीधा कुछ नहीं लिखा था। परन्तु परोक्ष रूप से मुझे जो कहना था वह लिख दिया।

सम्पादकजी उस लेख में देवाजी महाराज का एक फोटो और कुछ लाइनें जोड़ना चाहते थे। मैंने उन्हें बताया कि देवाजी महाराज नहीं चाहते कि उन्हें शान्तिविजयजी के शिष्य या उत्तराधिकारी के रूप में सर्व साधारण में इस प्रकार का प्रचार हो। परन्तु सम्पादकजी अपनी जिद पर रहे तो मैंने गुरुदेव का फोटू और कुछ पंक्तियाँ लिख कर उन्हें दे दी। कुछ दिन बाद सम्पादकजी ने मुझे कहा कि मेरे द्वारा दी गई पंक्तियाँ प्रेस में कहीं खो गई हैं, इसलिए दूसरी बना दीजिए। मैंने उन्हें समझाया कि गुरुदेव की इच्छा के विरुद्ध जाना ठीक नहीं है, इसलिए आप अब रहने ही दीजिए। परन्तु वे नहीं माने। आखिर मैंने दूसरी पंक्तियाँ बना दी। जब अभयदूत का अंक प्रेस से छपकर निकला (31 जनवरी 1968) तब उसमें वह पंक्तियाँ नहीं थी जो वे मुझसे ले गये थे। अर्थात् वह सामग्री दूसरी बार भी प्रेस से गायब हो गई। सम्पादकजी को बहुत आश्चर्य हुआ।

सम्पादकजी ने गुरुदेव श्री देवाजी महाराज का फोटू लगा दिया और उस पर अपनी तरफ से लिख दिया– "गुरुदेव के शिष्य।" परन्तु लेख तो मेरे नाम से छपा था इसलिए गुरुदेव के कई भक्त जो उस समय देवाजी महाराज से नाराज हो गये थे उन्हें यह बुरा लगा और उन्होंने मुझे इस बारे में पत्र लिखे। कुछ का मैंने जवाब भी दिया। गुरुदेव की इच्छा या स्पष्ट निर्देश के विपरीत जब भी भक्तों ने कोई काम करना चाहा या किया, उसके लिए उन्हें बाद में पछताना पड़ा। मेरी डायरी में ऐसे कई उदाहरण हैं। पर इस समय यहां इतना ही पर्याप्त होगा।

आशीर्वाद इतना सस्ता नहीं

कांग्रेस के नेता अमृतलाल यादव देवाजी महाराज के पास आते थे। 1961 में वे गुरुदेव के आर्शीवाद का पत्र लेकर जयपुर में मेरे यहाँ आये। गुरुदेव ने उन्हें कहा कि आप विधानसभा के चुनाव में जीत जायेंगे और मंत्री भी बनेंगे।

यादव मुख्यमंत्री सुखाड़िया के बहुत नजदीक में थे। वे चुनाव में जीत तो गये परन्तु सुखाड़िया ने उन्हें लम्बे समय तक मंत्री पद नहीं दिया। वे बहुत निराश हो गये थे। उनकी लड़की ने गुरुदेव को कहा कि अब की बार यदि पापा मंत्री नहीं बने तो उनका हार्टफेल हो जायेगा। तब गुरुदेव ने कहा : "अबकी बार हो जायेगा।" 1965 में लम्बी आशा के बाद वे मंत्री बने थे। जून 1965 में आबू पर मुझे मिले तब अपने लम्बे मानसिक तनाव पर मुझे बताया। इस पर मैंने उन्हें कहा "गुरुदेव वचनसिद्ध हैं। पर वे जब आशीर्वाद देते हैं तो वह सस्ता नहीं मिलता है। वे उसकी कठोर परीक्षा भी लेते हैं।"

बिना मेहनत के फल की लालसा

गुरुदेव ने कहा कि लोग अपने लड़के और लड़कियों की सगाई और शादी के लिए आशीर्वाद लेने आते हैं। एक लड़के के पास पैसा था। उसके पिता का देहान्त हो गया। वह लड़का आवारा हो गया। गुरुदेव ने उसे पढ़ने में मदद की परन्तु वह लड़का बिना पढ़े ही केवल आशीर्वाद से पास होना चाहता था। वह गुरुदेव की चमत्कार की शक्ति की परीक्षा लेना चाहता था। गुरुदेव ने उस लड़के को डांटा। आखिर उस लड़के ने परीक्षा नहीं दी और गुरुदेव की निन्दा करने लगा। गुरुदेव ने मुझे कहा: "देखो, यदि बिना पढ़े ही काम चल जाय तो फिर हमें भी पढ़ने की क्या जरूरत है? लोग हर कठिनाई चमत्कारों से ही हल करने की आशा करते हैं। वे साधारण कर्म करना भी नहीं चाहते। जो लोग कर्म के बन्धन से मुक्त हैं, वे भी लोक व्यवहार बनाये रखने के लिए कर्म करते रहते हैं। साधारण लोगों की तरह कष्ट भी भोगते हैं और दुनिया के लिए उदाहरण बन जाते हैं।"

भक्ति की परीक्षा

मानव जीवन में संवेग (emotions) का बहुत बड़ा स्थान है। सामान्यतया काम वासना का संवेग बहुत शक्तिशाली होता है जो अन्ततः सभी अन्य संवेगों और यहां तक की बुद्धि को भी ढक लेता है। कुछ अन्य संवेग भी कभी -कभी मानव पर पूर्ण अधिकार कर बैठते हैं-- जैसे सती का प्रेम, मां का प्रेम, देश प्रेम। धर्म साहित्य और मुख्य रूप से भक्ति साहित्य में ईश्वर (या गुरु) के प्रति भक्ति को श्रेष्ठतम संवेग दर्शाया है, जैसे ध्रुव, प्रह्लाद, एकलव्य, हनुमान, मीरा आदि का। भक्ति की महिमा का सर्वाधिक गुणगान किया गया है, परन्तु साथ साथ भक्ति को अपवित्र या कमजोर करने वाले तत्वों पर भी उदाहरण देकर प्रकाश डाला गया है। भक्ति साहित्य में सर्वाधिक दुखद प्रसंग तब मिलते हैं जब भगवान या

गुरु अपने भक्त की भक्ति की परीक्षा लेते बताये गये हैं।

इस्लाम में कुर्बानी का प्रसंग इसका ज्वलन्त उदाहरण है जब अल्लाह ने इब्राहिम की भक्ति की परीक्षा करने के लिए उससे अपनी प्रियतम वस्तु की कुर्बानी मांगी और इब्राहिम अपने प्रिय पुत्र ईशाक की बलि देने को तैयार हो गया।

बाइबल के अनुसार ईसा ने भी अपने शिष्यों की भक्ति की परीक्षा लेकर यह स्पष्ट बता दिया कि भक्ति की जड़े कितनी कमजोर होती है। सूली के कुछ समय पहले उन्होंने अपने सभी शिष्यों से कहा : ''अरे तुम लोग मुझे छोड़कर भाग जाओगे।'' तब पीटर ने कहा : ''सब आपके विरुद्ध हो जायेंगे तो भी मैं कभी नहीं होऊंगा। चाहे इसके लिए मुझे मरना भी पड़े।'' इसी प्रकार उनके सभी शिष्यों ने एक एक करके यही बात कही। परन्तु जब परीक्षा का समय आया तो सर्व प्रथम जूडा (Judas Iscariot) ने गुरु का साथ छोड़ दिया और बाद में जब ईसा को बन्दी बना कर ले गये तो अन्य सभी शिष्य भाग गये। (25.56) यह प्रसंग बताता है कि भक्ति की नींव कितनी कमजोर होती है। ईसा ने स्वयं कहा कि "spirit is willing, but the flesh is weak" (Matthew, 26.41)

कई बार गुरु भक्तों की परीक्षा लेने के लिए उनमें शंका पैदा कर देते हैं। एक बार कबीर अपनी वेश्या भक्त के यहाँ गये और उसे आदेश दिया कि उसे मुख्य मार्ग पर उनके साथ चलना है और अश्लीलता का प्रदर्शन करना है। तब वेश्या ने कहा: महाराज लोग आपके बारे में क्या कहेंगे? तब कबीर ने कहा: 'इसकी चिन्ता तुम नहीं करो। तुम भक्त हो। तुम तो आज्ञा का पालन करो।' उसने वैसा ही किया। अधिकतर भक्त चिड़ियों की तरह उड़ गये। कुछ इने गिने भक्त ही डटे रहे। भक्ति साहित्य और योग दर्शन में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि महापुरुष भीड़ को कम करने के लिए या भक्तों की परीक्षा के लिए ऐसी रचना भी करते हैं ताकि अनेक भक्त भाग जाते हैं और केवल कुछ ही अडिग रह जाते हैं। कुछ दुष्ट लोगों ने ईसाई सन्त सूसो के चरित्र हनन का प्रयास किया। उसके विरुद्ध एक दुष्ट औरत ने यह आक्षेप प्रचारित किया कि वह संत उसके बच्चे का पिता है। उस संत की बदनामी करने में उसे कुछ समय तक सफलता भी मिली। उस संत के मित्र और नजदीकी लोगों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। जब उनको अपनी स्थिति का स्पष्टीकरण करने को कहा गया, तो वे चुप्पी साधे रहे। परन्तु धीरे-धीरे वह भयानक तूफान लुप्त हो गया। (Underhill : Mysticism, p. 410) भारत के धर्म साहित्य में ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि कुछ महात्मा वैश्याओं के साथ रहते थे। जैन संत स्थूलिभद्र कोशा नाम की वैश्या भक्त के साथ 12 साल तक विलासिता के बीच रहे।

शान्तिविजयजी ने एक व्याख्यान में कहा: भगवान अपने भक्त की श्रद्धा मजबूत करने के लिए उसकी कसौटी करते हैं। सच्चे भक्त बहुत ही कम होते हैं। उन्होंने दृष्टान्त दिया कि एक त्यागी, जीतेन्द्रिय एवं क्षमाशील महात्मा थे। उनके बहुत भक्त थे। वे जोर जोर से महाराज की जय बोलते थे। एक रोज उन महात्माजी को ऐसा विचार आया कि ये सब मेरे

भक्त हैं और बड़े जोर शोर से मेरी जय जयकार करते हैं। क्या यह सब सच्ची भक्ति है या दिखावा है? उन्होंने यह सोचा कि इनकी परीक्षा करनी चाहिए। उन्होंने भक्ति की परीक्षा लेने के लिए एक नाटक रचा। एक खाली कागज पर कुछ लिखकर वे एक वेश्या के यहाँ गये। वह भी उनकी भक्त थी। उसे कहा कि दूसरे दिन व्याख्यान के बाद तुम यह कागज लेकर बोलना कि महाराज कल आप मेरे वहां आकर चले गये परन्तु मेरी फीस के दस रुपये मुझे देना भूल गये। सभा में सन्नाटा छा गया। महात्माजी नीचा मुंह करके चुपचाप बैठे थे। बाद में अन्यत्र विहार कर दिया। वे दूसरी जगह चले गये। वहाँ भी खबर पहुंच गई। फिर कहीं गुप्त स्थान पर चले गये। केवल तीन भक्त रह गये जिन पर इस बात का कुछ भी असर नहीं हुआ। उन्होंने यह सोचा कि यह सब गुरुदेव की लीला है। (रूपजी हेमाजी शाह : श्रीविजयशान्तिसूरी वचनामृत, पृ. 78)

उपासनी महाराज के ढंग तो अजीब ही थे। वे आने वाले को गालियाँ देते थे। कभी-कभी उन पर पत्थर फेंक देते। उनके पत्थर से जिनके घाव हो जाते थे, वे अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझते थे। जब गांधीजी उनके पास गये, तब उन्होंने पहले तो उनको डांटा। फिर नंगे हो गये। गांधीजी यह नहीं देख सके और वहां से भाग गये। वे उस समय उस घटना का सांकेतिक अर्थ समझ नहीं सके।

रामकृष्ण परमहंस के अंतिम दिनों में उन्हें जब गले का कैंसर हो गया था, तब उन्होंने कहा: ''अब फालतू की भीड़ नहीं रहेगी। जिनकी भक्ति के पीछे स्वार्थ है, वे मेरी बीमारी देखकर भाग जायेंगे। अब सच्चे भक्त ही मेरे पास टिकेंगे।''

गुरुदेव शान्तिविजयजी भी कहते थे कि ''अश्रद्धा के कारण में श्रद्धा बनी रहे और अशान्ति में शान्ति रहे, तो वास्तव में श्रद्धा और शान्ति है।'' राम ने वशिष्ठ को कहा कि ''मेरी श्रद्धा आपके ऊपर है परन्तु जब सारा संसार आपके विरुद्ध हो जाय उस वक्त भी इस किंकर की श्रद्धा आप पर बनी रहे, तो ही मैं आपका भक्त हूँ।''

कई बार शान्तिविजयजी स्वयं भी भक्तों की परीक्षा लेने या लोगों को भगाने के लिए शंका की स्थिति पैदा कर देते थे।

एक बार अचलगढ़ में मोहनलाल वैद्य (आगरा वाले) ने देखा कि ''एक अत्यन्त सुन्दर देवी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित सीधे गुरुदेव के कमरे में जा रही है। मैं विचार में पड़ गया और मन में शंकाएं उठने लगी। थोड़ी देर में वह बाहर आई और अदृश्य हो गई। मैं उसकी तेजस्विता के कारण कुछ नहीं देख सका। मैं सोच में पड़ गया। इतने में गुरुदेव ने आवाज दी कि ''मोहनलाल क्या देख रहा था ?'' गुरुदेव ने बताया कि वह साक्षात लक्ष्मी थी।

मोतीलाल भाई पोरवाल (बागरा) ने बताया कि शान्ता बहिन और उनकी लड़की बावनवाड़ा आये थे। वे गुरुदेव के पास अच्छे कपड़े पहन कर नहीं जाया करती थी। उस समय यात्रियों की एक बस आई। उनके सामने गुरुदेव ने शान्ताबहन को कहा कि ऐसी

हल्की साड़ी पहन के क्यों आती हो ? अच्छी साड़ी पहन के आना चाहिए। इस पर उन लोगों को बुरा लगा और वे वहाँ से चल दिये। बाद में मोतीभाई ने गुरुदेव से कहा ''आपने इन औरतों को ऐसा क्यों कहा ? इससे ये यात्री आपकी निन्दा करेंगे और वह हमें अच्छा नहीं लगता। तब गुरुदेव ने कहा ''ये तो सब फर्जी हैं। उनको भगाना ही था।''

श्रद्धा विकसित होने के बाद भी कई बार भक्तों ने अपने गुरु का विरोध किया है और उन्हें छोड़ दिया है। महावीर के जंवाई जमाली, और गोशालक, जो उनके शिष्य थे, बाद में उनके विरोधी बन गये और उनकी निन्दा करने लगे। रामकृष्ण के अंतिम समय पर भी विवेकानन्द के मन में गुरु के सामर्थ्य पर संशय हो गया था।

लाखों जैन और अजैन, पर्यटकों की तरह गुरुदेव के दर्शन करने आये थे, परन्तु वे गुरुदेव के प्रशंसक ही थे, भक्त नहीं। प्रायः उनकी भक्ति में स्वार्थ छिपा था और गुरुदेव भक्ति की इस कमजोरी को अच्छी तरह जानते थे। कुछ लोग जो गुरुदेव के पास अधिक आते या पास में रहते थे उनमें भी कभी कभी शंका पैदा हो जाती। मैं उनके चिन्तन और आचरण पर टीका करना नहीं चाहता था, परन्तु विषय की गंभीरता को देखते हुए कुछ कहना भी जरूरी हो गया है।

एक बार जॉर्ज के मन में आया कि अगर गुरुदेव शक्तिशाली हैं तो मुझे यहाँ देलवाड़ा बैठे ही हिमालय पर्वत पर जो वृक्ष है उसके फल खिलादें। उसी समय उसे लगा कि वह हिमालय पर बैठा हुआ है और वहाँ खूब फल खाये। जब उसका पेट भर गया तब उसे मालूम पड़ा कि मैं यहाँ देलवाड़ा में हूँ।

भक्ति में अहंकार

एक पुरानी कहावत है कि राजा, योगी, अग्नि और जल से पर्याप्त दूरी भी रखनी चाहिए। कई लोग जो महात्माओं के अधिक नजदीक चले गये, उनमें अपनी भक्ति का अहंभाव पैदा हो गया। ऐसे लोग अपने आपको 'भक्त सम्राट' समझने लग जाते हैं। मैं ही सच्चा भक्त हूँ और गुरुदेव की जैसी कृपा मुझ पर है, वैसी अन्य किसी पर नहीं है। मानो अभी जाकर गुरुजी से खाली चैक पर हस्ताक्षर करवा के ले आयेंगे। वे सोचने लगते हैं कि उनकी भक्ति की कोई क्या परीक्षा लेगा ? खुद को गुरु की योग्यता का प्रमाण-पत्र देने वाले या संरक्षक की तरह समझने लगते हैं। यदि गुरु ने उन्हें नाराज कर दिया तो वह गुरु बनने के लायक ही नहीं रहा। जब सद्गुरु कठोर परीक्षा में छूटे हुए तीर की तरह उसे कोसों दूर फैंक देता है तब 30-40-50 साल की श्रद्धा पर एक दिन में ही पानी फिर जाता है। शान्तिविजयजी के भी ऐसे कुछ भक्त थे।

एक बार किंकरदास को अभिमान आ गया था जिससे उसको गुरुदेव का दस महीने का वियोग रहा। उसको लगा कि अब तो गुरुदेव माया में फँस गये हैं। किंकरदास भक्तों के बीच माया मछंदर की चर्चा करने लगे। उसी वक्त गुरुदेव उनके पास आ गये। सब को

आश्चर्य हुआ और शर्मिंदा हुए। बाद में गुरुदेव ने किंकरदास की शंका का समाधान कर दिया।

एक बार किंकरदास गुरुदेव के दर्शन करने जा रहे थे तब नगीनदास भगत ने फाटक बंद कर दिया। किंकरदास ने गुरुदेव को याद कर एक भजन बोला। भजन बोलते ही गुरुदेव फाटक खोलकर स्वयं बाहर आ गये।

चंपकलाल गुरुदेव के पास बहुत रहते थे और उनका कार्य करते थे। परन्तु गुरुदेव ने कई बार उनकी बातों को 'चम्पकशाही' का विशेषण दिया। इसी प्रकार नगीनदास भगत की शैली को 'वक्रोकिल' बताते थे।

मोतीलाल भाई (बागरा वाले), जो गुरुदेव के पास कई वर्षों तक रहे, कहते हैं कि कुछ लोग जो गुरुदेव के पास रहते थे, गुरुदेव की आलोचना करने लग गये। तब धनकंवर मांजी ने उन्हें डांटा। मांजी ने कहा: ''ऐसी बातें क्यों करते हो ? तुम्हें नरक में जाना है क्या ?'' इतने में भैरूसिंह आया और उनको कहा: ''गुरुदेव आप सबको बुलाते हैं।'' नगीनदास को गुरुदेव ने कहा ''तुम्हें शर्म नहीं आती ?'' और भी कुछ पुराने भक्त साथ थे। गुरुदेव ने उन्हें डांटा और कहा : ''नैया डगमग थाय छे।''

एक बार धनकोर मांजी को भी विचार आया कि गुरुदेव तो बंगले में विराजते हैं परन्तु हम जहां सोते हैं वहां बहुत मच्छर हो जाते हैं, नींद नहीं आती। गुरुदेव ने बिना पूछे उनकी शंका का निवारण कर दिया।

कुछ लोग गुरुदेव के पास अधिक रहते थे। गुरुदेव उनमें कभी-कभी शंका पैदा कर देते, परन्तु उसका समाधान भी कर देते। उनकी भक्ति टूटी नहीं। दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग भी थे जो अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए गुरुदेव के पास आते थे, परन्तु इच्छा-पूर्ति नहीं होने पर गुरुदेव के पास आना कम कर दिया। बाद में बंद भी कर दिया और गुरुदेव की आलोचना करने लगे।

यहां इस संदर्भ में एक उदाहरण सांकेतिक रूप में पर्याप्त होगा। जयपुर के गुलाब चन्द ढड्ढा अपने समय के जैन समाज के अग्रणी नेता थे और शान्तिविजयजी के प्रथम पंक्ति में खड़े रहने वाले भक्तों में थे। वे 1923 से ही गुरुदेव के पास आते थे और 1934 तक वे गुरुदेव के बड़े प्रशंसक रहे। उन्होंने डायरियों में गुरुदेव से सम्बन्धित बहुत सामग्री दी। वे एक जैन स्कूल का संचालन करते थे। वे चाहते थे कि गुरुदेव अपने कलकत्ता के एक पैसे वाले भक्त से इसके लिए आर्थिक सहायता दिलवाए। परन्तु उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। उन्होंने फिर गुरुदेव को याद दिलाया। तब गुरुदेव ने उनको समझाया कि ये बाबू कलकत्ता के बनिये ऐसे गन्दे कपड़ों की तरह हैं जो साबू से भी साफ नहीं होते। गुरुदेव यदि उस बाबू को कहते तो वह पैसा दे देता। परन्तु गुरुदेव ने उसे नहीं कहा। ढड्ढा को यह अच्छा नहीं लगा। बाद में उन्होंने गुरुदेव को वरकाणा आने की प्रार्थना की। गुरुदेव ने मना कर दिया। ढड्ढा ने अपनी डायरी में लिखा कि गुरुदेव आना नहीं चाहते थे इसलिए उन्होंने यह बहाना बनाया

कि गर्मी बहुत अधिक है। ढड्ढा की भक्ति कमजोर होती गई और उन्होंने गुरुदेव के पास जाना बंद कर दिया। नगीनदास भगत उन्हें आबूरोड़ पर मिले तब कहा कि गुरुदेव ने आपको याद किया और बुलाने के लिए तीन बार तार भेजे। परन्तु ढड्ढा ने गुरुदेव के पास जाने में कोई रुचि नहीं दिखाई। बाद में जब ढड्ढा गुरुदेव के पास जाना चाहते थे तब भगत ने कहा कि गुरुदेव की तबियत ठीक नहीं है इसलिए नहीं मिलते हैं। अपनी डायरी के आगे के पृष्ठों में उन्होंने गुरुदेव की कई तरह की आलोचना की।

यह उदाहरण कई अन्य ''परमभक्तों'' पर भी लागू होता है। ऐसे कई लोग गुरुदेव के पास आते थे जिनमें उनके अपने स्वार्थ थे। गुरुदेव तो जानते थे कि किसकी भक्ति कैसी है। उसके पीछे क्या स्वार्थ हैं। इसलिए गुरुदेव ने स्वयं ही ऐसे लोगों को दूर करना शुरू कर दिया।

1934 के बाद गुरुदेव के कई नये नये भक्त तो बनते गये (उनमें प्राय: अजैन थे जैसे किशनचन्द, जॉर्ज, ब्रिटिश अफसर, ईसाई, पारसी, मुसलमान) परन्तु कई पुराने जैन भक्तों की छुट्टी होने का क्रम शुरू हो गया। भक्तों की परीक्षा लेना, भक्तों से दूर रहना, यही उनका अन्तिम प्रयास रहा। जीवन के अंतिम दिनों में भक्तों से मिलना भी कम कर दिया और यही कहते ''अब आप इधर नहीं आना। अब मैं मौन लूंगा।'' इस दिशा में जो काम शरीर छोड़ने तक अधूरा रह गया था उसे बाद में किस प्रकार देवाजी महाराज ने आगे बढ़ाया, इस विषय पर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

श्री देवाजी महाराज : महेशरूप में

पूज्य देवाजी महाराज प्रकट होने के बाद बारह साल तक शान्तिविजयजी के सभी भक्तों के केन्द्र बने रहे। काफी समय तक उन्होंने अपने बूते पर कई नये भक्त भी बनाये। परन्तु बाद में भक्तों की संख्या बढ़ाने में उनकी कोई रुचि नहीं रही। मैं जब भी किसी नये व्यक्ति को दर्शन के लिए लाना चाहता, गुरुदेव मना कर देते। मैंने एलिजाबेथ ब्रूनर, कुछ डॉक्टर, प्रोफेसर और अन्य मिलने वाले लोगों को दर्शन के लिए लाने का कहा, परन्तु आज्ञा नहीं दी। भंडारीजी ने भी पूछा कि आप भक्तों की संख्या क्यों नहीं बढ़ाना चाहते हैं? तब स्पष्टतया मना कर दिया। देवाजी महाराज के बनाये हुए भक्त तो सब टिके रहे, परन्तु शान्तिविजयजी के अधिकतर भक्त भाग गये या उन्हें भगा दिया। बाइबल में ईसा ने अपने शिष्यों व भक्तों को कहा कि ''मैंने तुम्हारा चयन किया है, तुमने मेरा नहीं।'' "I have chosen you, you have not chosen me". पिता बच्चे का हाथ पकड़ता है तो बच्चा गिर नहीं सकता। परन्तु यदि बच्चे ने पिता का हाथ पकड़ा है तो वह बच्चा गिर सकता है। शान्तिविजयजी के जिन भक्तों ने देवाजी महाराज का हाथ पकड़ा उनमें से अधिकतर गिर गये। परन्तु देवाजी महाराज ने जिनका हाथ पकड़ा, उनकी भक्ति सदा बनी रही। पीछे के दिनों में मैंने गुरुदेव को कई बार प्रार्थना की कि आप अब यह लीला समेट लें और उन भक्तों

पर कृपा करें। इस पर उन्होंने कहा: ''मांगीमल, मैं चाहूं तो ये सभी अभी यहां आ जायें। परन्तु अभी उन्हें वहीं रहने दो। अभी ऐसे ही ठीक है।''

पूज्य देवाजी महाराज में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों का सामर्थ्य था। बारह साल तक तो उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु के स्वरूप का ही प्रदर्शन किया, परन्तु बाद में उन्होंने महेश की शक्ति भी दिखाना शुरू कर दिया जिसे कई भक्त सहन नहीं कर सके।

जनवरी 1958 में श्रीदेवाजी महाराज जोधपुर पधारे। उस समय से भक्तों की परीक्षा लेने और उन्हें भगाने का क्रम शुरू होता है। जिन पुराने भक्तों को अपनी भक्ति पर गर्व था उनके लिए कठोर परीक्षा के नाटक रचे। श्री देवाजी ने चुन चुन कर शान्तिविजयजी के भक्तों को भगाना शुरू किया और उनमें से बहुत कम की भक्ति बनी रही।

अगस्त 1958 में हम आबू गये। बातचीत में भैरूसिंह ने गुरुदेव से कहा: ''भगवान, जोधपुर के लोगों में कितनी भक्ति है।'' गुरुदेव का नाम लेते आंखों में आंसू आते हैं। तब गुरुदेव ने कहा ''ये सब मिथ्या है। अज्ञान और स्वार्थ है। सुपरफिसियल है। तुम भक्ति की परीक्षा देखना चाहते हो? अब ज्यादा समय नहीं है। 5-6 महीने ही हैं। ये सब उड़ जायेंगे।'' फिर कहा ''जोधपुर में केवल दो परिवार ही रहेंगे। एक मांगीमल का, दूसरा गुलराज का''। फिर कहा: ''इनको रखना है। बाकी सब भाग जायेंगे।'' ऐसा ही हुआ। अगली बसन्त पंचमी पर (12 फरवरी, 1959) मांडोली में विवाद बढ़ गया। कुछ लोगों ने गुरुदेव को स्पष्ट कह दिया कि आप शान्तिविजयजी के उत्तराधिकारी के रूप में दीक्षा लो।

जन साधारण साधु के वेश को बहुत महत्व देते हैं। उनके आत्म विकास के बारे में जानने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। जैन लोग ऐसे व्यक्ति की पूजा करेंगे जो जैन साधु के वेश में हो, दीक्षा लिया हुआ हो और किसी विशेष सम्प्रदाय, गच्छ आदि से जुड़ा हुआ हो। राम के भक्त राम के वेश में, शिव के भक्त शिव के रूप में ही पूजा के लिये तैयार होंगे। एक पुराना भक्त बहुत गुस्से में गुरुदेव के पास गया। और भी कुछ लोग उसके पीछे थे। उनकी गुरुदेव के विरुद्ध कई शिकायतें थी। वे चाहते थे कि गुरुदेव एक जैन साधु के रूप में दीक्षा लेकर रहें। गुरुदेव ने मना कर दिया। उन्होंने यह भी पूछा कि क्या इसमें सच्चाई है कि देवाजी महाराज शादी करना चाहते हैं? और भी कई तरह की बातें की। मांडोली में माहौल बिगड़ गया। भक्तों को बुरा लगा।

शिवलालजी महाराज ने कई भक्तों को कह दिया कि देवाजी महाराज और मैं दोनों शादी कर लेंगे। जब सेठजी से लोगों ने इस विषय पर पूछा तो उन्होंने कहा : ''इसमें क्या है? ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों के पत्नियाँ हैं। उपनिषदों के ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य के दो पत्नियाँ थी। रामकृष्ण परमहंस के शारदा देवी थी। जैन भक्त इस तरह का तर्क हजम नहीं कर सके।

गुरुदेव शान्त रहे और सुनते रहे। कोई उत्तर नहीं दिया। मुझे बाइबल में वर्णित उस घटना की याद आ गई जब जज ने ईसा को उसके आरोप सुनाये और पूछा: ''क्या यह सब सच है?'' ईसा ने कोई जवाब नहीं दिया। न हाँ कहा, न ना कहा। जज ने उन्हें सूली पर

चढ़ाने की सजा सुना दी। तब ईसा ने कहा: ''यह तो होना है।''

मैंने गुरुदेव को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा। मैंने लिखा गुरुदेव भक्ति बहुत मुश्किल से बनती है। भगाने में तो कुछ क्षण ही लगते हैं। आप भक्तों को दर्शन करने के लायक तो रखें। गुरुदेव ने इस पर भैरूसिंह से चर्चा की और कहा कि ''यह सब तो होना ही था। उनके कर्म ऐसे ही थे। मांगीमल को आशीर्वाद लिख दो। सब ठीक होगा''। गुरुदेव जिन्हें भगाना चाहते उनके पास एक नकली रूप का प्रदर्शन कर देते। रामायण के अनुसार राम ने नकली सीता से करवाया था। (अरण्य कांड 23) मैं यह कह सकता हूँ कि गुरुदेव में इस प्रकार का सामर्थ्य था।

उन्हीं में से एक जैन भक्त संवत्सरी की शाम को आबू में गुरुदेव के पास गया। गुरुदेव ने उससे इधर-उधर की बातें की। फिर मुकना (रसोईया) को कहा, ''खाना ले आओ।'' खाने में प्याज, लहसुन आदि थे। गुरुदेव ने उस भक्त को कहा : ''खाना खाओ।'' वह भक्त यह देख बहुत नाराज हुआ। बोला: ''आज संवत्सरी और रात में खाना और उसमें भी प्याज और लहसुन। मैं नहीं खा सकता।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''तो फिर तुम अभी जाओ।'' उसके जाते ही गुरुदेव ने मुकना को बुलाकर कहा: ''खाना वापिस ले जाओ।'' उनको खाना थोड़े ही था। उस भक्त को नाराज करना था और अन्य भक्तों में इस घटना का प्रचार करवाना था।

एक बार जब मैं आबू था तब अहमदाबाद के पान्तिभाई गुरुदेव के दर्शन करने आबू आये। गुरुदेव ने उनसे मेरे बारे में कहा। वे दर्शन के लिए जब अचलगढ़ जाने को थे तब गुरुदेव ने उन्हें कहा कि मांगीमल को साथ लेकर जाना। मैं उनके साथ अचलगढ़ गया। रास्ते में उन्होंने गुरुदेव के बारे में मेरे अनुभव का पूछा। मैंने कुछ बताये तो वे आश्चर्य में पड़ गये। शायद वे कुछ समय से श्री देवाजी महाराज के सम्पर्क में नहीं थे। आबू पर उन्होंने देखा कि गुरुदेव के पास कांग्रेस के नेता और मिनिस्टर आते हैं और उनके पास कुर्सियों पर बैठ कर नाश्ता करते हैं और इधर-उधर की बातें करते हैं। उनको बुरा लगा। उन्होंने कहा कि हम जाते हैं तो गुरुदेव कहते हैं अभी जाओ और जिन लोगों में भक्ति बिल्कुल नहीं है उनको पास में बिठाते और इधर उधर की बातें करते हैं। मिनिस्टर हैं तो उससे क्या?'' वे हिम्मत करके गुरुदेव के पास गये और अपने विचार प्रकट कर ही दिये। उन्होंने कहा, ''भगवान, आपको क्या चाहिए? दो रोटी सुबह, दो रोटी शाम। आप इन हल्के लोगों के साथ क्यों बैठते हो? हम आपको इस रूप में नहीं देखना चाहते। उनके आंखों में आँसू थे। गुरुदेव ने उनके सिर पर हाथ रखा और कहा: ''पान्तिभाई, कर्मों के भोग काटने होते हैं। सब ठीक होगा।''

इस प्रकार की शिकायत अन्य कई भक्तों की भी थी कि गुरुदेव कई साधारण और बुरे लोगों के बीच, जिनमें कोई भक्ति नहीं थी, देर-देर तक बैठे रहते परन्तु भक्त जाते तो कह देते ''अभी नहीं। पीछे आना।'' इसी प्रकार की शिकायत ईसा के विरोधी भी करते थे। वे उनके भक्तों से पूछते: आप के गुरुजी बुरे लोगों और पापियों का संग करते हैं। उनके साथ

क्यों खाते-पीते हैं ? "Why eateth your master with publicans and sinners?" तब ईसा ने उनको कहा: ''स्वस्थ लोगों को डॉक्टर की जरूरत नहीं होती। डॉक्टर प्राय: मरीजों के बीच ही रहते हैं।'' शान्तिविजयजी के भक्त भी उन्हें इस प्रकार के प्रश्न करते, तब गुरुदेव यह कहते कि धोबी के पास गंदे कपड़े ही जाते है।

गुरुदेव के एक भक्त जो सरकारी अफसर थे, मेरे पास आये और कहा: ''क्या आप अभी तक देवाजी महाराज को मानते हैं?'' मैंने कहा: जी हाँ। हम दर्शन करने जाते हैं। पत्र भी आते रहते हैं। फोन पर भी बात होती है। उनकी हमारे ऊपर बहुत कृपा है। मैंने कहा: जब आप लोग उन्हें भगवान कहते थे, मैं भगवान कहने को तैयार नहीं था। आज मेरे मुंह से भगवान शब्द सहज ही निकलता है। उन्होंने कहा: ''हम तो अब देवाजी महाराज को नहीं मानते। उनमें हमारी श्रद्धा समाप्त हो गई है। हमेशा के लिए समाप्त हो गई है। (Our faith in him is irrevocably lost)'' मैंने कहा: ''देवाजी महाराज के समीप में मेरा आना हुआ और आप लोगों का जाना (get out) हुआ। फिर भी उन्होंने मुझे पूछा: ''आपके क्या अनुभव हैं?'' तब मैंने कहा ''आप जिस स्थिति में हैं, उसमें मेरा कुछ भी बताना उपयोगी नहीं होगा।'' थोड़े में इस समय मेरे अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूँ कि देवाजी महाराज सिद्ध हैं, साधक नहीं। सामान्य मापदंड साधक पर लागू होते हैं, सिद्ध पर नहीं। जन्म सिद्ध को जप, तप, ध्यान, साधना आदि की आवश्यकता नहीं होती।'' पाँच या छह माह बाद उस भक्त का सड़क दुर्घटना में देहान्त हो गया।

शान्तिविजयजी के कई भक्तों ने मुझे अपने कटु अनुभव बताए जिसके कारण उनकी भक्ति को चोट पहुंची। वे यह नहीं समझ सके कि श्री देवाजी महाराज में नकली दिखावों (appearances) की रचना-शक्ति भी थी। इसमें भक्तों की भी कोई गलती नहीं थी क्योंकि उन्होंने जो देखना शुरू किया वह उनकी आस्था के अनुकूल नहीं था। मैं अधिक उदाहरण नहीं देना चाहता। सेठ किशनचन्द ने अपने देहान्त (1984) के कुछ माह पूर्व मुझे कहा: "Kothari, take it that Devaji Maharaj is living God". परन्तु बाद में उनकी लड़की यशुबहन ने मुझे देवाजी महाराज के प्रति काफी नाराजगी बताई। उनके अपने कारण थे। यदि गुरुदेव ने भक्ति की परीक्षा में यशुबहन की भी भक्ति मिटा दी, तो अन्य भक्तों का तो कहना ही क्या!

गुरुदेव शान्तिविजयजी का पूर्व संकेत

सेठजी ने मुझे कहा कि एक बार अचलगढ़ में भारी भीड़ थी। तब गुरुदेव ने उन्हें कहा, ''अभी कितने लोग यहाँ आते हैं। रहने में असुविधा होते हुए भी रहते । आगे ऐसा समय आयेगा जब भक्त भाग जायेंगे। इधर मुंह भी नहीं करेंगे। खूब निन्दा करेंगे। उस समय इनकी भक्ति की परीक्षा होगी। तब देखना कितने टिकते हैं।'' इस संदर्भ में सेठजी ने मुझे कहा: ''कोठारी, वह समय अब आ गया है। भक्त भाग रहे हैं।''

जुलाई 1965 में जब जोधपुर के पुराने भक्तों को पता चला कि देवाजी महाराज एम.ए. की पढ़ाई करने जोधपुर आये हैं, तब उन्होंने उनकी खूब आलोचना की। कहते: "गुरुदेव को एम.ए. करके क्या करना है ?" वे इस रहस्य को नहीं समझ सके कि गुरुदेव को एम.ए. नहीं करना था। उन्हें तो केवल शान्तिविजयजी द्वारा प्रोफेसर कल्ला को 30 साल बाद मिलने का जो वादा किया था, उसे पूरा करना था। इस बार गुरुदेव जोधपुर के पुराने भक्तों से नहीं मिले।

जोधपुर के एक परमभक्त के बारे में गुरुदेव ने भैरूसिंह को कहा : "भैरू, आज उनके यहाँ मेरा फोटू नीचे उतर रहा है !"

साईबाबा के एक परमभक्त के जवान लड़के के किडनी की तकलीफ हुई। बाबा ने ऑपरेशन कराने का मना कर दिया। बाद में डाक्टरों ने कहा कि ऑपरेशन बहुत जरूरी है, वरना बच्चा खत्म हो जायेगा। गुरु की आज्ञा के विरुद्ध ऑपरेशन करवा दिया। जवान लड़के की मृत्यु हो गई। उसने साँईबाबा की सभी फोटुएँ उतार कर सड़क पर फैंक दी। एक दुर्घटना ने वर्षों पुरानी भक्ति समाप्त कर दी।

श्री देवाजी महाराज ने कहा : "लोग कहते हैं इसकी भक्ति ऐसी, उसकी भक्ति ऐसी। देखो, कैसे भाग रहे हैं। कुछ समय में इतने कम रहेंगे कि उंगली पर ही गिने जा सकेंगे।" पर इसके साथ यह भी कहते कि बाद में सब ठीक होगा।

उनका अभी दूर रहना ही ठीक है

अपनी निन्दा करने वाले भक्तों के बारे में कहा: "लोग चमत्कार के पीछे चलते हैं। यदि मैं चाहूं तो वे अभी यहाँ आ जाये। पर उनका अभी दूर रहना ही ठीक है। मैं तो शान्त हूँ, सहन करता हूँ। यदि कोई मुझे गाली देता है तो मेरा क्या बिगड़ता है। यदि कोई कर्म-मुक्त आत्मा कर्म करती है तो वह उसके फल से जल्दी ही मुक्त हो जाती है। जिस प्रकार सूखी घास का ढेर एक चिनगारी से शीघ्र ही राख का ढेर हो जाता है उसी प्रकार उनके कर्म जल्दी ही नाश हो जाते हैं। परन्तु अज्ञानी तो नये-नये बन्धनों में बंधता ही चला जाता है और यह दुनिया उसे उसी दिशा में धकेलती ही जाती है।"

इन्हें अभी ऐसे ही रहने दो

जून, 1963 में हम लोग आबू गये। वहाँ जोधपुर के कुछ पूर्व भक्त भी आये थे। वे गुरुदेव की आलोचना करते थे। मेरी उनसे बात हुई। जब मैंने गुरुदेव को बताया, तब गुरुदेव ने कहा: "इन्हें कुछ मत कहो। अभी ऐसे ही रहने दो। उन्हें ignore करना ही ठीक है।"

रूस के महात्मा गुर्जिफ के दो भक्त उससे नाराज होकर उसे छोड़ कर चले गये। उसकी निन्दा करने लगे। तब उसके भक्त ऑस्पेन्सकी ने उसे पूछा "हम उनको वापिस कैसे ला सकते हैं ?" तब गुर्जिफ ने कहा "तुम ऐसी कोई कोशिश नहीं करना। यदि करोगे तो

उनको अपने आपको सुधारने का मौका गंवा दोगे।'' (P.D. Ouspensky: *In Search of the Miraculous*, p. 270).

मोतीलाल कस्तूरचन्द पोरवाल (बागरा) ने गुरुदेव से सम्बन्धित अपने अनुभवों को बताते हुए भक्तों को कहा कि ''देवाजी महाराज की लीला तो और ही है। वे कार में बैठते हैं, रात को खाते हैं। औरतें भी पास में बैठी रहती हैं। देखने वालों में यदि थोड़ी भक्ति होती भी है, तो वह भी चली जाती है। गुरुदेव भगवान की कृपा होगी, वही ठहर सकेगा।''

पूज्य देवाजी महाराज ने तो बड़े पैमाने पर ऐसे भक्तों को भगा दिया। उन्होंने इस खतरे पर चेतावनी देते हुए कहा कि ''भक्त के अन्दर ऐसा अहंभाव उत्पन्न हो जाता है कि मैं तो बड़ा भक्त बन गया। बस ऐसा अहंभाव उत्पन्न होते ही उसकी प्रगति रुक जाती है।''

कभी-कभी गुरु भक्त को नाराज भी करते है। रामकृष्ण ने रखाल को कहा, ''तुम जानते हो मैंने तुम्हें नाराज क्यों किया ? इसके पीछे कारण था। नहीं तो दवाई काम नहीं करती। डाक्टर पहले फोड़े को पूरा पकने देता है, फिर उसे चीरता है।'' ''कुम्हार कच्चे घड़े को औजार से टप-टप करता है, वह उसे मजबूत करने के लिए ही करता है, न कि फोड़ने के लिए। इसी तरह भगवान भी अपने भक्त की श्रद्धा मजबूत करने के लिए उसकी कसौटी करते हैं।''

गुरु की तुलना शिकारी से भी की गई है। कई बार गुरु शिकारी की तरह कार्य करता है। वह पहले धनुष पर तीर को कस कर अपनी ओर खींचता है, फिर बहुत दूर फेंक देता है। बाद में उसी को वापिस अपने पास ले आता है। जिनको वह सहन करने की शक्ति देता है वे बांस की तरह कुछ मुड़कर (bend) रह जाते हैं। परन्तु जिनको वह सहन करने की शक्ति नहीं देता, वे टूट (break) जाते हैं। भक्तों के जीवन में भी कई बार दुर्घटनाएँ होती हैं, तब उनके मन में भी अपनी अपेक्षाओं के कारण ऐसे प्रश्न उठ जाते हैं : 'तो फिर गुरुदेव ने क्या किया ?' और उनकी भक्ति कमजोर हो जाती है। इसलिए भक्त हमेशा भगवान से और अपने गुरु से यह प्रार्थना करते रहते हैं कि

इतनी शक्ति हमें देना दाता, मन का विश्वास कमजोर हो ना।
हम चलें नेक रास्ते पे, हमसे कोई भूल हो ना।
दूर अज्ञान के हो अंधेरे, तू हमें ज्ञान की रोशनी दे।
बुराई से बचते रहें हम, भली जिन्दगी दे हमें।

भक्ति को कमजोर करने वाले कुछ विषयों पर आगे और चर्चा की जायेगी।

* * *

विश्राम की तैयारी

1995 से ही ऐसा लगने लगा कि गुरुदेव धीरे-धीरे भक्तों से दूर जा रहे हैं। मुझे कहा : मांगीमल, अब मुझे किसी चीज में रुचि नहीं है। अब ये शरीर रहे या जावे। गुरुदेव ने सुरेन्द्रभाई को कहा: ''मैंने इस शरीर से जो भी काम करने थे, वे सब कर लिये हैं। अब इस शरीर की आवश्यकता नहीं है।'' तब सुरेन्द्र ने कहा: ''भगवान, बड़े गुरुदेव ने तो हमारे लिए आपको भेज दिया। आप के बाद हमारा ध्यान कौन रखेगा?'' तब गुरुदेव ने फरमाया कि ''मैं हूँ ना।'' शाम को सुरेन्द्र भाई ने फिर यही प्रश्न पूछा तब गुरुदेव ने कहा कि ''मैं ध्यान रखता रहूंगा।'' गुरुदेव ने मांडोली सम्बंधित विषयों पर 1993 में लिखी पुस्तिका को पुन: छपा लेने को कहा।

मांडोली सम्बन्धी विषयों पर काफी चर्चा चली। गुरुदेव ने कहा: ''गाय को तगारी में चारा डाल कर देते हैं, उसे यदि हटाने की कोशिश करें तो वह सींग मारती है। जो खराब कर्म करते हैं उन्हें फल तो मिलता ही है।'' मांडोली में जो लोग गुरुदेव के विरुद्ध अभियान चला रहे थे और वहाँ झगड़े करा रहे थे, उनके बारे में कहा ''वे पछतायेंगे।'' एक के लिए तो कई बार कहा कि उसे अपने पापों का फल जल्दी मिल जायेगा।'' गुरुदेव ने कहा: ''भगवान पहले तो आदमी को पाप करने देता है, फिर उसे सजा देता है।''

गुरुदेव ने कहा : ''महापुरुष कुछ काम करने आते हैं, वह होने पर चले जाते हैं। जो कुछ रह जाता है उसके लिये आगे और आते हैं।'' सरोजबहन ने कहा कि कुछ माह पहले (दिसम्बर 1997 में) गुरुदेव ने कहा था कि उनकी आयु के तीन साल अभी बाकी हैं। (वे तीन साल दिसम्बर 2000 में पूरे हो गये।)

नवम्बर 1999 में दीपावली पर गुरुदेव बम्बई आ गये। सुरेन्द्रभाई और कुछ भक्तों ने उन्हें शुभकामना संदेश भेजा। उत्तर में गुरुदेव ने लिखा कि तबियत ठीक नहीं होने के कारण वे 13 नवम्बर, 1999 को बम्बई आ गये। गुरुदेव ने लिखा ''आप सबको इस वर्ष के लिए सभी शुभकामनाएँ। **मुझे पूरी आशा है कि मैं जल्दी ही इस गंभीर बीमारी से मुक्त हो जाऊंगा। सब को आशीर्वाद कहना''**। इस पत्र के एक साल बाद गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया और इस प्रकार उनका शरीर गंभीर बीमारी से सदा के लिए मुक्त हो गया।

2000 में गुरुदेव भक्तों को यही कहते अब आप लोग इधर नहीं आना। अब मैं विश्राम करूंगा। फिर भी भक्त चले जाते। अप्रेल में सुरेन्द्र भाई चले गये। तब गुरुदेव ने उन्हें डांटा। ''मैंने मना कर दिया कि इधर नहीं आना। अब मैं विश्राम करूंगा। तुम क्यों आये ?'' बाद में दोपहर को वे फिर दर्शन करने गये तब गुरुदेव ने थोड़ी देर बात की।

16-7-2000 को गुरुदेव के जीवन की अंतिम गुरुपूर्णिमा आबू पर हुई। सरोजबहन ने फोन पर कहा कि जोधपुर में सब को कह देना। मैं नहीं जा सका। गुरुपूर्णिमा के दिन मौसम बहुत खराब था। दिन भर वर्षा होती रही। परन्तु गुरुदेव ने सब भक्तों को दर्शन दिये। एक विशेष बात यह रही कि गुरुदेव ने उपेन्द्र को अपने पास बिठाया और करीब डेढ़ घंटे तक जोधपुर के लोगों के बारे में बातें की। गुरुदेव ने जोधपुर के उन सभी भक्तों के परिवारों के बारे में विस्तार से पूछा जो गुरुदेव की निन्दा करते थे और पिछले 40 साल से गुरुदेव के पास जाना बन्द कर दिया था।

जोधपुर के एक पुराने गुरुभक्त उम्मेदराजजी मेहता थे। वे धर्म और दर्शन के विद्वान थे। परन्तु जोधपुर के कुछ भक्तों द्वारा गुरुदेव की आलोचना के कारण विचलित हो गये थे। गुरुदेव के पास जाना बन्द कर दिया था। उनके देहान्त के कुछ माह पहले गुरुदेव ने सुरेन्द्रभाई को मेहताजी के बारे में पूछा कि वे कैसे हैं? उन्हें याद करना। फिर कहा कि तुम उनके घर जाकर आशीर्वाद कहना। मेहताजी ने कहा कि मैं तो कई साल से देवाजी महाराज के दर्शन नहीं कर सका। लेकिन उन्होंने मेरा ध्यान रखा। दरअसल यह मेहताजी के जीवन का अंतिम समय नजदीक आने की सूचना थी। कुछ माह बाद उम्मेदराजजी मेहता का देहान्त हो गया।

उन दिनों मेरे मन में बार-बार यह आ रहा था कि गुरुदेव अब जाने की तैयारी में हैं। कुछ भक्तों ने इस वर्ष में गुरुदेव की जयंती धूमधाम से मनाने के लिये विशाल स्तर पर योजनाएँ बनाई जिसके लिए एक ट्रस्ट बनाना और 8-10 लाख रुपया इकट्ठा करना तय किया। इस पर रात भर मीटिंगें चलती रही। सुबह गुरुदेव ने कह दिया कि कोई ट्रस्ट नहीं बनेगा और बड़े पैमाने पर समारोह नहीं होंगे। गुरुदेव तो जानते थे कि उन्हें शीघ्र ही शरीर छोड़ना है। भक्त इस बात को उस समय समझ नहीं सके। बाद में गुरुदेव का जन्मदिवस हमेशा की तरह सादगी से ही मनाया गया।

गुरुपूर्णिमा पर विमला ने कहा: ''भगवान कई भक्त आपकी सेवा में रहते हैं। हमें भी सेवा का अवसर दीजिए।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''पीछे दूंगा। जब तुम्हारी लड़कियाँ बड़ी हो जायगी और तुम लोग गृहस्थी के दायित्वों से मुक्त हो जाओगे, तब जरूर दूंगा।''27-10-2000 को गुरुदेव बम्बई के लिए रवाना हो गये। जाते समय कहा कि अब मैं आबू नहीं आऊंगा। कार के पास कई लोग खड़े थे। गुरुदेव ने आबू के घनश्याम आचार्य को पास में लेकर जोर से कहा: ''तुमने सुना। मैंने क्या कहा? "This is my last visit to Mt. Abu."

सरोजबहन ने बताया कि शरीर छोड़ने के कुछ माह पहले गुरुदेव कहते थे कि मुझे

मांडोली की याद आ रही है। आबू से गुरुदेव वीसनगर गये। वहां से बम्बई गये। सभी भक्तों के लिए उन्होंने अंतिम संदेश यह कहा :

अब मैं दिसम्बर में आप सबको मांडोली बुलाऊंगा

देहान्त के कुछ दिन पहले वीसनगर के प्रफुल्लभाई ने कहाः "भगवान, अब मैं रिटायर हो गया हूं। हार्ट का बाई-पास भी ठीक हो गया है। पत्नी की तबियत भी अब ठीक है। अब आप कृपा करके हमें भी सेवा का अवसर दीजिए।" तब गुरुदेव ने कहा, "पर कितने दिन?" कुछ ही दिन बाद गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया।

डॉ. मुर्चिश गुरुदेव का इलाज करते थे। गुरुदेव के देहान्त के छह महीने पहले उन्होंने शरीर की परीक्षा की तो पाया कि सब बन्द पड़ा है। ये कैसे जी रहे हैं ?

रमीला जोधपुर में होने से फोन पर गुरुदेव से बातें होती रहती थी। 11 दिसम्बर को फोन पर बात हुई तब गुरुदेव ने कहा : विमल, तुम अब मुझ से जल्दी जल्दी बात करना। तब विमल ने कहा : "भगवान, सप्ताह में 2-3 बार बात कर सकता हूँ ?" तब कुछ ठहर कर गुरुदेव ने कहाः "विमल, अब तुम मुझ से बात नहीं करना, मैं ही तुमसे बात करूंगा।" परन्तु उस शरीर से बाद में कोई बात नहीं हुई और चार दिन बाद ही गुरुदेव ने शरीर छोड़ दिया। गुरुदेव का क्या अभिप्राय था, यह तो समय ही बताएगा।

15 दिसम्बर 2000 की रात को जोधपुर से भोपालचन्दजी भंडारी की गुरुदेव से फोन पर बात हुई। बात का मुख्य विषय मांडोली था। काफी लम्बी देर तक शान्तिविजयजी और अपने सम्बन्धों की स्थिति पर चर्चा करने के बाद गुरुदेव ने भंडारीजी को पूछाः "अब मैं फोन रख दूं ?" अंतिम शब्द थेः "सब को आशीर्वाद कहना।" उस समय वर्षाबहन गुरुदेव के पास बैठी थी। उसको कहाः "तुम घर जाओ। अब तुम कल नहीं मिल पाओगी।" कुछ घंटे बाद सुबह करीब छह बजे गुरुदेव ने प्राण त्याग दिये।

गुरुदेव के भतीजे शंकरभाई ने गुरुदेव के शरीर का अंतिम संस्कार रामसीन में अपने समाज की धर्मशाला में करवाया जहाँ पर उन्होंने बाद में गुरुदेव की मूर्ति स्थापित करके मन्दिर बनाया।

देह त्याग के अन्तिम वर्ष में गुरुदेव ने बारबार जो संकेत दिये थे उनसे लगता है कि उस शरीर में उन्होंने जो मौनिक क्रियाशीलता की स्थिति बनाये रखी, उसे आगे विश्राम की स्थिति में रखने का निश्चय कर लिया था। परन्तु विश्राम की स्थिति तो स्थायी नहीं होती। वह तो अल्प समय के लिये ही होती है। विश्राम का समय पूरा होने पर उनकी क्रियाशीलता एक नवीन रूप में होकर गुजरेगी। विश्राम की स्थिति की समाप्ति कब और किस तरह होगी और उनका नवीन रूप किस तरह प्रकट होगा, यह भविष्य ही बतायेगा।

* * *

मानव जीवन के कुछ व्यावहारिक पक्ष

गुरुदेव धार्मिक धारणाओं के साथ-साथ जीवन के व्यावहारिक पक्षों पर भी थोड़े में बहुत सारगर्भित बात कह देते। जीवन के कठोर और कड़वे मनोवैज्ञानिक सत्यों पर भी मधुरवाणी में इस तरह समझाते कि सुनने वाले को अपने निजी अनुभव में उसका सत्यापन हो कर ही रहता। जब जब भी भक्तों में से किसी ने उनके आदेशों की अवहेलना की, तो उन्हें दुख और दर्द ही मिला और पछताना पड़ा। मैं अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक विषयों पर गुरुदेव से नहीं कहता। परन्तु मेरा यह सामान्य अनुभव रहा है कि जब कभी गुरुदेव मुझे आशीर्वाद लिखते या कहलाते तो वह निश्चित रूप से किसी शुभ या अशुभ घटित होने का संकेत होता था। यह भी मेरा अनुभव रहा है कि जब भी मुझे कोई दिशा-निर्देश की जरूरत होती या मुझसे अज्ञानवश कोई गलती होने की संभावना होती, तो बिना कहे ही गुरुदेव स्वयं उपयुक्त निर्देश दे देते। कई बार तो भविष्य में होने वाली घटनाओं पर वर्षों पहले (20-30-40-50 और उससे भी अधिक), कभी स्पष्ट रूप से, कभी इशारे से कह देते या कहला देते। मैंने देखा कि मैं वही कार्य करता या कर सकता जो गुरुदेव चाहते, न कि जो मैं चाहता। ईसा के शब्दों में Thy will is done, not mine.

मानव स्वभाव में बुराई का तत्व

महापुरुष पर उनकी प्रशंसा या निन्दा का प्रभाव नहीं पड़ता। कई जैन गृहस्थ और साधु ईर्ष्या के कारण गुरुदेव की निन्दा करते थे। निन्दा करने वाले लोग अधिक मिल जायेंगे। परन्तु अच्छे लोग कम होते हैं और हम उन्हें पहचान नहीं सकते। गुरुदेव ने मुझे कहा :

''तुम किसी की मदद करो तो बदले में गालियाँ मिलती हैं।...यदि कोई तुम्हारे साथ बुरा करे, धोखा दे, चोट करे, तो तुम कभी आश्चर्य नहीं करना, क्योंकि यह तो साधारण मानव स्वभाव है। परन्तु यदि कोई तुम्हारे प्रति निष्ठा बनाई रखे और तुम्हारे साथ रहे तो आश्चर्य करना और यही समझना कि यह भेजा हुआ (Godsent) है।

दुनिया में बुराई बहुत है

जून 1989 में हम आबू गये। किसी प्रसंग में गुरुदेव ने मुझे कहा : जो लोग सत्य पर

चलते हैं उन्हें दुख उठाना पड़ता है। बम्बई के दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर लेवेन्डे का उदाहरण दिया। वे दूसरों की आलोचना बहुत करते थे। खुद भले थे। उन्हें नौकरी से निकाल दिया। इसलिए बुरे लोगों को कुछ नहीं कहना ही ठीक है। वे सुधर तो सकते नहीं। व्यवहार कुशलता इसी में है। दुनिया में बुराई बहुत है। भले लोगों को टिकने नहीं देते।'' तब मैंने सुकरात का उदाहरण दिया।

गुरुदेव ने काल्पनिक आदर्शवाद के विरुद्ध मानव जीवन की वास्तविकताओं पर काफी प्रकाश डाला। मानव प्रकृति में जो पशुता का तत्व है वही सब बुराई की जड़ है। बुद्धि के कारण मानव पशु से भी ज्यादा बुरा हो गया है। मनुष्य के घृणास्पद आचरण की चर्चा करते समय यह भी कहा कि कुछ लोग अच्छे भी हैं। भगवान-रूप भी मनुष्यों में ही होते हैं। पर सामान्य मानव स्वभाव घृणास्पद ही होता है। मैंने कहा कि होब्स, डार्विन और फ्रॉयड की रचनाएं भी इसी तथ्य को उजागर करती हैं। बाइबल के प्रथम अध्याय में यह लिखा है कि ईश्वर ने पहले आदमी और फिर औरत को बनाया। बाद में उनकी संख्या बढ़ी और उनके आचरण में इतनी बुराई आ गई कि ईश्वर स्वयं अपने किये पर पछताया "God repented". वह भी मनुष्य के आचरण को सुधार नहीं सका। तब मनुष्य को सजा देने के लिए ईश्वर ने प्रलय रचाया। परन्तु ईश्वर ने देखा कि इससे भी वह मनुष्य के आचरण को सुधार नहीं सका।

मनुष्य की प्रकृति पर चर्चा के समय नारी के स्वभाव पर भी बात चली। दार्शनिकों, महात्माओं और धर्म ग्रन्थों ने नारी के स्वभाव की बहुत कठोर शब्दों में निन्दा की है। बम्बई में एक भक्त ने गुरुदेव से कहा कि वह अपनी पुत्र-वधुओं के व्यवहार से दुखी हो गया है। उसने शायद यह सोचा था कि गुरुदेव के आशीर्वाद से उसकी बहुएं ठीक हो जायेगी। परन्तु गुरुदेव ने आशीर्वाद नहीं दिया और यही कहा कि सब जगह यही हाल है। तब उस भक्त ने कहाः नहीं भगवान, मेरी बहुओं जैसी दुष्ट तो शायद ही कोई होंगी। तब गुरुदेव ने कहाः ''ऐसी बात नहीं है। मैंने आपको क्या कहा? आपके घर में कोई नई बात नहीं है। हिन्दुस्तान में सब जगह यही हाल है।'' गुरुदेव ने एक कटु सत्य को अत्यन्त शालीन ढंग से बता दिया। नारी के चरित्र चित्रण में जहां सीता और सावित्री के प्रसंग आते हैं, वे सामान्य नारी स्वभाव के प्रतीक नहीं हैं, वे अपवाद रूप ही हैं। परन्तु कैकयी का चित्रण अपवाद रूप नहीं है। घर-घर में कैकयी मिल जायेगी। भारत में और जहां भी संयुक्त परिवार हैं वहां कैकयी एक विघटनकारी तत्व के रूप में मिल जायेगी। परिवार में, सामाजिक संस्थाओं में, राजनैतिक पार्टियों में, वे जहां भी रहें, उनका रोल ऐसा ही रहता है। 1975 से आज तक की भारत की राजनीति का इतिहास यही बताता है। मैंने गुरुदेव को चेस्टरटन की एक उक्ति बताई जिसमें उसने कहा कि : ''औरतें तीन बातों को समझ नहीं सकती – वे हैं स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व

Women do not understand three things –

Liberty, Equality and Fraternity –

यह औरत की सामान्य प्रकृति है। अपने आपको समाजवादी और प्रगतिशील घोषित करने वाली औरतों के आचरण में भी यह कमी देखी जा सकती है।

गुरुदेव ने ''हिन्दुस्तान'' की बात कही वह भी एक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आधुनिक पाश्चात्य समाज में संयुक्त परिवार टूटना सामान्य हो रहा है। वहाँ जब किसी लड़के या लड़की के जीवन में 'कोर्टशिप' की स्थिति बननी शुरू होती है तभी से लड़के के माता-पिता की छुट्टी की भूमिका तैयार हो जाती है जिससे सास-ससुर के रूप में उनके कटु अनुभव की संभावना ही नहीं रहती। परन्तु भारतीय समाज में औरत अपने दोनों रूपों में, पहले बहू, फिर सास के रूप में, अपने अन्तर्निहित अशुभ प्रकृति को व्यक्त करने से बच नहीं सकती। औरत को 50-60 की उम्र पर कुछ समझ आने लगती है तब तक काफी बिगाड़ा हो चुका होता है। गुरुदेव ने कुछ भक्तों के परिवार से उदाहरण दिये और यही कहा कि ''सास को adjust करना चाहिए।'' इसका अर्थ यह हुआ कि बहुएँ ठीक नहीं हो सकती। सास को ही बहू के रूप में अपने पूर्व अनुभव से सीखना चाहिए।

एक बार पारिवारिक सम्बन्धों पर काफी चर्चा हुई। गुरुदेव ने कहा : क्रोध नहीं करना चाहिये। सास को adjust करना चाहिए। राजू के लिए कहा कि वे बम्बई आये थे। हमने कहा कि उनके तलाक की बातें चल रही है। स्वभाव मेल नहीं खाता है। गुरुदेव ने कहा : ''कई लड़कियाँ जो बहुत पढ़ जाती हैं, विद्या के बोझ को झेल नहीं सकती। आजकल लड़कियों को पढ़ाओ तो खराब, नहीं पढ़ाओ तो बुरा...तब तो आशा, तुम लोग जो ज्यादा नहीं पढ़े, वो ठीक हो।''

आशा ने कहा : ''भगवान अब मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मांडोली जाकर रहना चाहती हूं।'' तब गुरुदेव ने कहा : ''इससे कोई लाभ नहीं होगा। घर में शान्ति नहीं मिलती तो मांडोली में भी नहीं मिल सकती। घर पर ही रहो। भावना ठीक रखनी चाहिए।''

सम्बन्ध हमेशा दूर से अच्छे रहते हैं

गुरुभक्त और कांग्रेस नेता अमृतलाल यादव (जयपुर) हमसे मिलने हमारे यहाँ आये। उनका सुझाव था कि उनका एम.एल.ए बंगला खाली रहता है इसलिए हम वहाँ पर चले जायें। पर हमारे नहीं जची। बाद में गुरुदेव ने मुझे कहा: ''तुमने ठीक किया। अगर कुछ किराया ज्यादा भी देना पड़े तो भी नजदीक के लोगों के साथ नहीं रहना। **सम्बन्ध हमेशा दूर से ही अच्छे रहते हैं—सगे भाई से भी।''** इस घटना के बाद कई लोगों से मेरा नजदीक का सम्बन्ध बना और जब भी मैंने मर्यादा से अधिक किसी का विश्वास किया तब प्रायः मुझे धोखा ही हुआ और गुरुदेव की शिक्षा को आत्मसात नहीं कर सकने के कारण अपनी गलतियों के कारण पश्चाताप हुआ।

* * *

उपदेशामृत

सुमन और सुशील बहनों ने 'उपदेशामृत' में गुरुदेव के उपदेशों का संग्रह प्रकाशित किया था। गुरुदेव ने स्वयं भी कुछ दार्शनिक रचनाओं का विवेचन किया था जिनमें व्यावहारिक जीवन के लिए उपयोगी निर्देश भी हैं जो भक्तों के लिए प्रेरणास्पद हैं। इनमें से चयन करके कुछ यहाँ उद्धृत किये जाते हैं :-

It is better to become more philosophical than to become more social. In society there are more vices than virtues and if we become more social, we get more vices than virtues.

सामाजिक कार्य में लगने की अपेक्षा दार्शनिक होना अधिक अच्छा है। समाज में अच्छाई की अपेक्षा बुराइयां अधिक हैं और जब हम अधिक सामाजिक बन जाते हैं तो हमें अच्छाई की बजाय बुराई अधिक मिलती है।

ज्ञान बिना वैराग्य नहीं है। .....रामकृष्ण परमहंस और चैतन्य महाप्रभु की पुस्तकें त्यागी, वैरागी के लिये हैं। गीता संसारी के लिए है।

नाभि में कुंडलिनी शक्ति रहती है। वह जब ब्रह्माण्ड में यानी माथे में जाती है, तभी ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) होता है।

महापुरुष नियम का भंग नहीं करते। अभी भी दुनिया में ऐसे महात्मा हैं जो ब्रह्मांड को उलट पुलट कर सकते हैं। जब गुरुदेव आशीर्वाद देते हैं तो सामने वाले का दुख खुद भोग लेते हैं। वह दुख कहीं फेंक नहीं सकते क्योंकि उससे नियम का उल्लंघन होता है। इसलिये वह दुख स्वयं सहन करते हैं।

जो महापुरुष के क्रोध का कारण बनते हैं, उनका बुरा होना ही होता है। इसलिए महापुरुष के मुँह से उसके अकल्याण की बात निकल पड़ती है। किसी के कल्याण के लिए उसे दुखी भी करना पड़े तो उसमें पाप नहीं है। माता-पिता का क्रोध अपने कल्याण के लिये होता है। अतः उस क्रोध को कदापि बुरा नहीं मानना चाहिये।

गुरु तुम्हें कुछ करने से रोकते नहीं है। वे सिर्फ इतना ही कहेंगे कि यह अच्छा मार्ग है और यह बुरा है। तुम इस मार्ग से मत जाओ ऐसा भी नहीं कहेंगे। सिर्फ इतना ही कहेंगे कि तुम इस मार्ग से न जाओ तो ठीक है।

दया आदमी को क्रूर होने से बचाती है। ..... हम जैन हैं इसलिए हमारी दृष्टि जैनों तक ही संकुचित रखनी नहीं चाहिए। गुरुदेव भगवान का विश्वधर्म विश्व प्रेम था। उसका हमें अनुकरण करना चाहिए।.... महापुरुष जहाँ रहते हैं, वहीं तीर्थ हैं।

राम के समय में राक्षसों को मारना धर्म था। कृष्ण के समय में मारना और मरना ही धर्म हो गया। फिर देवियों को बलि देना ही धर्म हो गया। महावीर और बुद्ध ने अहिंसा धर्म स्थापित किया लेकिन उससे लोग निष्क्रिय हो गये। ऐसा नहीं होना चाहिए। समय आने पर लड़ाई भी करनी चाहिए।

एक लड़का किसी लड़की से शादी करना चाहता था। उस लड़की की सगाई किसी अन्य लड़के से हो चुकी थी जिसे छुड़ाकर खुद से करना चाहता था। गुरुदेव के समझाने पर वह उल्टा नाराज हुआ और गुरुदेव को चमत्कार दिखाने की चुनौती दी। गुरुदेव ने कहा कि ''चमत्कार ही देखना चाहते हो तो सुन लो : ''मैं तुम्हें तीन दिन में श्मशान भेज सकता हूँ। क्यों अपना विनाश करना चाहते हो ? मैं तुम्हें नुकसान पहुँचाना नहीं चाहता।''

गुरुदेव ने उस योगी का उदाहरण दिया जिसने क्रोध में आकर चिड़िया को शाप दे दिया और उस चिड़िया की मौत का पाप अपने ऊपर लाया। गुरुदेव ने एक अन्य योगी का उदाहरण दिया जो समुद्र के किनारे ध्यान कर रहा था। उस समय ज्वार जोरों पर था पर वह योगी पीछे नहीं हटा। उसकी योग-शक्ति से ज्वार एकदम थम गया। परन्तु किनारे की तरफ आ रही यात्रियों की जहाज को इतना जोर का झटका लगा कि वह उल्टी हो गई और सभी यात्री डूब गये जिसका पाप उस योगी को लगा।

गुरु के दास मत बनो। उन पर हुक्म चलाना सीखो। जल्दी दर्शन न होने से गुरुदेव अपने से दूर हो जाते हैं, ऐसा मत समझो। वे क्यों नहीं आयेंगे? उन्हें आना ही पड़ेगा। .....मेरा स्वभाव ऐसा है कि जो अपने हैं उन्हें मैं दूर रखता हूं।

अनेक औरतों से घिरे हुए होने पर भी यदि संयम का पालन हो, तभी ब्रह्मचारी कहा जाता है। अपने पास अखूट धन होने पर भी सिर्फ आवश्यकतानुसार धन का उपयोग किया जाय तो वह अपरिग्रह कहलाता है। चोरी करने का मौका मिलने पर भी चोरी न करे तभी प्रामाणिक कहा जाता है।

युवावस्था में जो तप और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे ही तपस्वी और ब्रह्मचारी कहलाते हैं न कि वृद्धावस्था में किया तप और ब्रह्मचर्य का पालन।

जो भी काम करना है जवानी में करना। बाद में नहीं हो सकता। आत्म-कल्याण भी।

आन्तरिक अन्धकार (अज्ञान) मिटाने के लिये शब्दज्ञान या पुस्तकीयज्ञान निरर्थक होता है। केवल दीपक की बातें करने से क्या कभी अन्धकार मिट सकता है?

धर्म का मार्मिक तत्त्व यही है कि स्वयं के प्रति प्रतिकूल लगनेवाला कार्य दूसरे के लिए कभी न किया जाय।

अन्याय से अर्जित (प्राप्त) की गई सम्पत्ति की अपेक्षा तो दरिद्र रहना ही अच्छा है।

सूजन द्वारा मोटा बनने से तो कृशता (दुर्बलता) ही अच्छी।

राज-प्रभुता और विद्वत्ता की तुलना कभी भी नहीं हो सकती क्योंकि राजा अपने ही देश में आदर पाता है जब कि विद्वान् सर्वत्र।

विपत्तियों के प्रतिकार का चिन्तन पहले से ही करना चाहिएऐ। घर जल जाने पर कूप (कुआं) खोदना मूर्खता ही है।

जैसे गाढ़े अन्धकार में ही प्रदीप का प्रकाश सुशोभित होता है, वैसे ही दुःख के अनुभव के पश्चात् ही सुख की शोभा होती है। सुख भोग के पश्चात् दरिद्र बन जानेवाले जीवित व्यक्ति को भी मरा ही समझना चाहिए।

दुष्टों की मित्रता आरंभ में बहुत बढ़ती है परन्तु बाद में घटती जाती है। अतः दुष्ट प्रकृति के मनुष्य का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

अपनी शक्ति प्रकट न करने पर शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति भी तिरस्कृत हो जाता है। लकड़ी के अन्दर छिपी अग्नि उल्लंघनीय होती है, जबकि प्रज्वलित अग्नि से सभी डरते हैं।

जो व्यक्ति पुरुषार्थ को छोड़कर सदा भाग्य का ही अवलम्बन लेता है, वह प्रासाद (महल) पर बनाई गई सिंह की मूर्ति के समान है, जिसके सिर पर कौवे बैठते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि पाप-पुण्य शरीर को ही लगता है, आत्मा को नहीं। यह मान्यता भूलभरी है। शरीर और आत्मा भिन्न होते हुए भी शरीर के द्वारा उपार्जन किये हुए पाप-पुण्य आत्मा को लगते ही हैं क्योंकि आत्मा का अधिष्ठान तो शरीर ही है। आत्मा को कार्य तो शरीर के द्वारा ही लेना पड़ता है। आत्मा शरीर की सहायता बगैर कुछ नहीं कर सकती। सिद्धावस्था भी शरीर के द्वारा ही प्राप्त होती है। इसलिए शरीर के द्वारा किये गये पाप-पुण्य आत्मा को नहीं लगते, यह मान्यता गलत है।

अवतारी पुरुष को समयानुसार बर्ताव करना पड़ता है।

भक्ति के लिए संसार छोड़ने की जरूरत नहीं है।

गुरु का दिया मंत्र किसी के सामने प्रकट मत करो।

भावकुसुमाञ्जलि

मित्र होकर भी विश्वासघात करते, विश्वास स्नेह जो बताया करते।
वफादारी बताकर बेवफा होते, सब कुछ तुम्हारा वे हैं हरते।
फूलों की शैया बता कर, काँटों पर सुलाया करते।
अमृत बताकर विष पिलाते, न कभी दिल में दया लाते।
मित्र बना कर तुमने क्या पाया? सब गँवाया, कुछ हाथ न आया।
पुत्रों को फूलों सम पाला करते, वे भी बुढ़ापे में तुम्हें धिक्कारते।
पुत्र जवान होते, तेरा मान न रखते, सब कुछ लेकर अपमान करते।
वे तो सारी उमर तुमसे लेते रहते, अन्त में तुझे पानी भी न देते।

दिखते थे सगे-सम्बन्धी, दिल के अति भोले।
विपरीत समय देखकर उन्होंने, बरसाये आग के प्रलयंकर गोले।
दाँत टूटे, जिह्वा सूं लाल पड़ती, शोभा गई शरीर की।
कफ, पित्त, वात, कंठ पर आय बैठे, सोवन सुख से न देती।
भाई बन्धु, प्रिया परम प्यारी, घर से देते हैं निकासी।
जीना सबको सरल लगता, मरना लगता सबको भारी।
निर्दय होकर क्यों मारते, जिन्दगी सब को प्यारी।

नारी से नर बना, नर से बनी नारी।
नारी को नमस्कार करो, वह तो है साक्षात् महाकाली।
रुद्र रूप जब वह धरती, बनती है अम्बा से काली।
वह न देखती बूढ़ा और बालक, सबका संहार कर बजाती ताली।
जय-जय-जय गौरी काली, भक्तजनों की रखवाली।
दैत्यों का भक्षण करती, संतजनों का रक्षण करने वाली।
संहार की लीला रचती, उच्च पर्वत पर बैठ हँसती मतवाली।
जय जय माँ काली।

भारत माता की गोद में प्रभु, फिर से एक बार आओ।
अब तो रक्तपात, हत्या हो रही। है अत्याचार बड़ा भारी।
दु:ख पाते वृद्धबाल और नर-नारी,
अज्ञान-सुप्त मानव में धर्म को जगाओ।
अधर्म का नाश करो। प्राणियों में सद्भावना संचार करो।
एक बार फिर से प्रभु, भारत माता की गोद में आओ।

पूज्य श्री देवाजी महाराज द्वारा लिखित सभी पुस्तकों का एक ही पुस्तक के रूप में संग्रह ''उपदेशामृत और कुछ कविताएँ'' शीर्षक से किया गया है। (30 अप्रेल 2001) यह सम्पादन गुरुभक्त श्री रमेश शान्तिलाल शाह और प्रमीला शाह ने किया है (2, मधुदीप, टेकड़ी वाला, ठाणे (प.) 400602)

पूज्य गुरुदेव द्वारा समय समय पर भक्तों को लिखे गये पत्रों को भी अलग से ''पत्रावली'' के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

धार्मिक जीवन के कुछ बाह्य पक्ष

ऋग्वेद के नासादीय सूक्त से आज तक तत्त्व मीमांसा में सत्ता (Ultimate Reality) के बारे में मानव बुद्धि ने जो प्रश्न पूछे हैं उनका निश्चित और सर्वमान्य उत्तर कभी नहीं मिला है। बुद्ध ने स्पष्ट कह दिया था कि इस प्रकार के प्रश्नों का कोई भी संतोषप्रद उत्तर नहीं है इसलिए इस प्रकार के प्रश्न पूछना ही व्यर्थ है। फिर भी दार्शनिक उनकी समीक्षा करते रहे हैं। साधारण बुद्धि के हार जाने पर लोग महापुरुषों के पास दौड़ कर जाते रहते हैं। वे इस आशा से जाते हैं कि महापुरुषों में अतिमनस (Supermind) है और वे ईश्वर के नजदीक हैं। जो धर्म और दर्शन ईश्वर को नहीं मानते और आत्मकेन्द्रित हैं उनके अनुसार आत्मा उच्चतम रूप में सर्वज्ञ है। उसमें ज्ञान है, सामर्थ्य है, परन्तु सर्वशक्तिमान नहीं है क्योंकि कर्म की शक्ति सर्वोच्च है।

महापुरुष के आत्मज्ञान और उसके सामर्थ्य का परिचय प्राप्त करना भी साधारण बुद्धि के बस की बात नहीं है। उनकी जिन पर कृपा हो जाती है, उनको ही वे अपने सामर्थ्य की झलक दिखाते हैं। योगीराज शान्तिविजयजी और योगीराज श्री देवाजी के आन्तरिक व्यक्तित्व की महानता अन्य बाह्य रूपों में भी मिलती है।

गुरुदेव श्रीदेवाजी ने स्वयं दीक्षा नहीं ली। और न किसी को दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया। परन्तु उन्होंने धर्म में दीक्षा के स्थान और उपयोगिता का निषेध नहीं किया। दीक्षा की उपयोगिता साधक के लिए तो होती है। उनका कहना था कि :

''दीक्षा लेने के पश्चात् संसार से पार उतरना सामान्यजन के लिये आसान बन जाता है। लेकिन संसार में रह कर उसे पार कर जाना केवल महापुरुष के लिए ही संभव है। लोग जो संसार का त्याग करते हैं, उनकी स्थिति सूखी नदी के समान है। उनके लिए संसार पार करना आसान है। पर संसार में रहकर संसार पार करना कठिन है। ऐसे तो कुछ ही होते हैं।''

यह इतना सरल नहीं है

गुरुदेव ने मुझे भक्ति का महत्व बताया। मैंने कहा कि कृष्ण ने गीता में कहा कि जो मुझे अंतिम समय में भी याद कर लेता है, वह मुक्त हो जाता है। (गीता 2.72, 7.29, 8.6) तब गुरुदेव ने कहा: ''परन्तु अंतिम समय में भगवान को याद करना ही बहुत कठिन है। शरीर के दुख, अपने प्रिय लोगों से मोह इतना अधिक होता है कि मनुष्य ईश्वर के विचार से बहुत दूर रहता है।.... जो लोग पहले से ही शुद्ध होते हैं उनको ही अंतिम समय में ईश्वर का ध्यान रहता है। कुछ लोग सोचते हैं कि कृष्ण का नुसखा कितना सरल हैं और मोक्ष के लिए एक निकट का रास्ता है। परन्तु वास्तव में यह अत्यन्त कठिन है क्योंकि अधिकतर लोग अन्त समय ईश्वर के अलावा दूसरी बातों में उलझे रहते हैं, इसलिए ईश्वर के विचार से दूर रह जाते हैं।

भक्त के लिए तो उसके भक्ति के विषय ही परम है। मैंने कहा कि कई जैन आलोचक यह कहते हैं कि शान्तिविजयजी के भक्त तो गुरुदेव को भगवान महावीर से भी ऊँचा स्थान देते हैं। तब गुरुदेव ने कहा: ''ईसाई, मुसलमान केवल अपने ईश्वर में श्रद्धा रखते हैं, दूसरों के नहीं। परन्तु भक्ति ऐसी ही होती है (exclusive devotion to one object as divine) दूसरों को इसके बारे में विचार करने की जरूरत नहीं है। तर्क से कहीं नहीं पहुंच सकते।...

लोग कहते हैं कि शंकर ऐसे ज्ञानी थे परन्तु कपिल, बुद्ध आदि की आलोचना करते थे। उन्हें अपूर्ण मानते थे। गुरुदेव ने कहा: ''यह तो बुद्धि का कार्य था। पंडित लोग तर्क किये जाते हैं।''

गुरुदेव ने कहा: ''सेठजी की भक्ति देखो। वह अन्य किसी बात का विचार नहीं करते। देखो वे अपने आप को कितना मुक्त अनुभव करते हैं।'' गुरुदेव ने गुरु और भक्त के सम्बन्धों के बारे में काफी चर्चा की। गुरु जो करता है उसका विश्लेषण या उस पर तर्क करने की आवश्यकता नहीं है। उनके कई मानवीय कार्य आध्यात्मिक दृष्टि से उचित नहीं लगते। राम सीता के लिए रोते थे। कृष्ण ने भी ऐसे कई कार्य किये जो साधारण आदमी करते हैं परन्तु भक्त को उनकी नकल करना या उस पर टीका नहीं करना चाहिए।''

शास्त्रों की व्याख्या

31 मई, 1983 को हम मांडोली गये और वहां से आबू गये। मैंने गुरुदेव को कहा कि ईद पर मुसलमान कितनी जीव हिंसा करते हैं। एक रिपोर्ट के अनुसार हज महोत्सव पर (23 सितम्बर, 1982) मक्का में दस लाख जीवों की बलि दी गई। (हिन्दुस्तान टाइम्स, 26 सितम्बर 1982) गुरुदेव ने बताया कि किस प्रकार बाइबल में भक्ति की शुद्धता की परीक्षा की एक साधारण घटना को कुर्बानी का रूप दे दिया गया। गुरुदेव ने कहा कि शास्त्रों के नाम पर इस प्रकार की व्याख्याएँ नहीं करनी चाहिए।''

हर आस्था का आदर

धर्म और दर्शन में कुछ विषयों पर गुरुदेव के अपने विचार थे जो वे अत्यन्त सरल भाषा में बता दिया करते थे। उन्होंने किसी विशेष धर्म और दर्शन को भक्तों पर कभी नहीं थोपा। मैं जो भी दार्शनिक विचार पर चर्चा करता, गुरुदेव मुझे उसका महत्व बताते।

मूर्ति-पूजा का महत्व भी बतलाते परन्तु उसके विरुद्ध भी अपने विचार स्पष्ट भाषा में बताये थे। पूजा की किसी विशेष विधि को श्रेष्ठ और अन्यों को बुरा नहीं बताया। गुरुदेव ने आस्था परिवर्तन का हमेशा विरोध किया। जिस संप्रदाय का व्यक्ति उनके पास जाता उसकी श्रद्धा को वे बल प्रदान करते थे। एक बार गुरुदेव ने आशा को पूछा: 'तुम कोई पूजा, पाठ करती हो ?' तब आशा ने कहा: ''भगवान, मेरे पीहर का धर्म वैष्णव है और मेरी

बचपन से ही आस्था शिव-पार्वती में रही है।'' तब गुरुदेव ने कहा: ''ठीक है। किसी में भी आस्था रखो। पर कुछ जरूर रखो। गीता में (4.11) कृष्ण ने अर्जुन को कहा कि अर्जुन जो कोई किसी भी रास्ते से जाता है आखिर वह मुझे ही प्राप्त होता है जैसे कि सभी नदियाँ समुद्र में ही मिलती हैं।'' सच्चे महापुरुष के सिद्धान्त और व्यवहार में धार्मिक कट्टरता के लिए कोई स्थान नहीं है।

जिसमें भी तुम्हारी श्रद्धा हो -- महावीर, राम, कृष्ण, उसे भजो। हमारी आत्मा हम जिस किसी की भी आराधना करते हैं, उसके रूप में सामने आकर हमें दर्शन देती है, भले वे देवी-देवता हों, महावीर हों या और कोई हो।

मूर्ति-पूजा

इसी प्रकार गुरुदेव ने मूर्तिपूजा के बारे में भी कहा। मूर्ति-पूजा में भी श्रद्धा आवश्यक है। यदि हमारी श्रद्धा न रही तो मूर्ति केवल पत्थर ही है। हमारी भक्ति और श्रद्धा के कारण विद्युत निर्माण होती है और श्रद्धा का फल मिलता है।

घंटा दो घंटा पूजा में बैठने से या माला फेरने से कुछ नहीं होगा। मन में सदैव उसकी रटन रहनी चाहिये। एकलव्य की श्रद्धा और भक्ति इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

गुरुदेव शान्तिविजयजी कहते थे : ''न काष्ट में देव है, न पाषाण में और न मिट्टी में। परन्तु भाव में देव हैं।''

मूर्ति से भाव पैदा होता है। इसलिए मन में उस भाव को स्थिर करने के लिए मूर्ति की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार मूर्ति-पूजा का धार्मिक जीवन में एक मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। योग साधना में ध्यान को प्राप्त करने में मूर्ति की प्रतिकात्मक (symbolic) आवश्यकता है। गुरुदेव शान्तिविजयजी कहा करते थे कि Book learning without Dhyana is like water carried in a basket. बिना ध्यान के पुस्तक-ज्ञान केवल टोकरी में पानी डालकर ले जाने की तरह है।

परन्तु मूर्ति पूजा अपने आप में साधन ही है, साध्य नहीं है। इसका महत्व साधन के रूप में ही है। इसलिए ध्यान की आवश्यकता की पूर्ति के लिए मूर्ति-पूजा का महत्व बढ़ता गया और भक्ति को स्थायी रूप देने के लिए मन्दिर बनने लगे। मानव समाज में प्राय: सभी धर्मों में उपासना की आवश्यकता के लिए मन्दिर, मठ, आश्रम आदि बनते गये। बाद में जब मूर्ति-पूजा ने कई विकृत रूप धारण कर लिए तो भारतीय धर्मों और विशेष तौर पर जैन धर्म में इसके विरुद्ध आवाज उठी। बाद में मूर्ति-पूजा का विरोध करने वाले सम्प्रदाय बनते गये। इस्लाम के प्रभाव में भी मूर्ति-पूजा का विरोध बढ़ा। आर्य समाज, ब्रह्म समाज और स्थानकवासी जैन संप्रदायों की तरह गुरुदेव ने मूर्ति-पूजा के विरुद्ध एक विद्वंसात्मक अभियान तो नहीं छेड़ा, परन्तु ध्यान की श्रेष्ठता ही बताते रहे। वे मूर्ति के पास भी ध्यान करते और दिलवाड़ा और अचलगढ़ में रहते हुए भी मूर्तियों की बजाय गुफाओं में बैठकर ध्यान करते

थे।

मानव समाज में धर्म के नाम पर मन्दिर, मठ, गिरजाघर आदि की व्यवस्था के लिये संघ या ट्रस्ट बनते गये जिससे धर्म के क्षेत्र में संस्थागत रूप की कठोरता को बढ़ावा मिला। धीरे-धीरे असामाजिक और स्वार्थी तत्व मौका पाकर उनके ट्रस्टों में घुस गये और वहाँ का वातावरण दूषित कर दिया। सभी धर्मों में पाखंड को पोषित किया गया। ईसा ने यरूशलम के भव्य मन्दिर में भ्रष्टाचार करने वालों को डांटा और उनको कोड़े मारकर बाहर निकल जाने को कहा। ''यह तो प्रभु का घर है और तुमने इसे चोरों की मांद बना दिया है।''

My house shall be called the house of prayer,
but you have made it a den of thieves.

(St. Matthew, 21.13)

भारत में भी मन्दिर और मठों में पैसा और प्रोपर्टी से सम्बन्धित झगड़े होते रहे हैं और ट्रस्ट-युद्धों ने न्यायालयों को भी दूषित कर दिया है। धर्म के रक्षक प्रोपर्टी के लिए हत्याएँ भी करवा रहे हैं।

ऐसे तत्व मांडोली में भी घुस गये जिससे स्वर्ग बने जैसी जगह में संस्थागत पद और पैसा पाप के प्रेरक बन गये और वहां भ्रष्ट आचरण से सारा वातावरण दूषित कर दिया। मांडोली में कुछ ऐसे असामाजिक तत्वों के दुराचरण पर मैंने ''मांडोली सम्बन्धित मेरे कुछ कटु अनुभव (1-1-2000)'' शीर्षक से एक पेम्पलेट लिखा जिसमें इस अशोभनीय स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

मैंने श्रीदेवाजी महाराज से इस विषय पर चर्चा की। तब गुरुदेव ने कहा कि ''महापुरुष व्यक्ति को पूजा की विधियों (rituals) में नहीं बांधते। धर्म के नाम पर जब संस्थाएँ बनती हैं, तब बिगाड़ा शुरू होता है।'' शान्तिविजयजी और देवाजी महाराज धर्म में संस्थाएँ बनाने (Institutionalisation) को कभी प्रोत्साहन नहीं देते थे। श्रीदेवाजी महाराज ने मुझे इस संदर्भ में एक रोचक दृष्टान्त दिया। एक ब्राह्मण ने किसी कुत्ते को बहुत पीटा। वह मर कर भगवान के पास गया और उस ब्राह्मण के अत्याचार की शिकायत की। तब भगवान ने कहा: 'देखो, ब्राह्मण के बुरे आचरण पर भी दंड नहीं दिया जाता। तुम ही बताओ मैं उसे क्या सजा दूं?' तब कुत्ते ने भगवान को कहा कि आप इसे मठाधीश बना दीजिए। पद और पैसे से वह बिगड़ जायेगा, खराब कर्म करेगा और उसका पतन हो जायेगा। उसके पापों का फल उसे अगले जन्म में मिल जायेगा। आज की भाषा में कहें तो उसे मन्दिर, मठ, स्थानक का ट्रस्टी बना दिया जाय। वह धर्म के नाम पर पाप कर्म करेगा उसका फल उसे मिल जायेगा। तीर्थ स्थान पर किया गया पाप तो कई गुना बढ़ जाता है।

हृदय में मंदिर बनाओ

मांडोली में भी कुछ शरारती तत्वों के आचरण पर श्रीदेवाजी महाराज ने स्वयं

पेम्फलेट लिखा और भक्तों को नये मन्दिर बनाने का निषेध किया। भोपालचन्दजी भंडारी शास्त्रीनगर, जोधपुर में योगीराज शान्तिविजयजी का मन्दिर बनवाना चाहते थे। गुरुदेव ने उन्हें मंदिर बनाने का मना कर दिया। बाद में हम जोधपुर आ गये। तब गुरुदेव ने मुझे आबू से ऐसा पत्र लिखा जो भविष्य के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश देता है:

9-10-91

प्रिय श्री मांगीमल, आशीर्वाद

.... श्री भंडारीजी को आशीर्वाद कहना और कहना कि गुरुदेव का मन्दिर न बनावे तो अच्छा है। यदि उनको मंदिर बनाना ही है, अपने हृदय में बनाकर उसमें गुरुदेव की मूर्ति स्थापित करें। बाह्य मन्दिर अपना कल्याण नहीं कर सकता। यदि मंदिर में असाधना हुई तो अपने को भोगना पड़ेगा तथा वंशगत वारिसदारों को भी भोगना पड़ेगा। महापुरुषों का मन्दिर बनाने से उन पर बोझा बढ़ता है। मन्दिर बनाने से जीव का कल्याण नहीं हो सकता।...."

(देवाजी महाराज)

इसके करीब 9 साल बाद जुलाई 2000 की अन्तिम गुरु पूर्णिमा के अवसर पर भक्तों ने गुरुदेव के 75 वर्ष होने पर एक ट्रस्ट बनाकर विशाल स्तर पर जुबली मनाने की योजना बनाई। परन्तु पूज्य देवाजी महाराज ने इसका स्पष्टतः मना कर दिया और भक्तों की इच्छा पर पानी फेर दिया। इस प्रकार अपना शरीर त्यागने के छह माह पहले ही इस महापुरुष ने अपने शरीर से जो महत्वपूर्ण कार्य करने थे उनकी अंतिम कड़ी के रूप में स्वयं एक लम्बी मौन और सादगी का उदाहरण बनकर धर्म के क्षेत्र में सुधार की प्रक्रिया को आगे के लिए स्थगित करते हुए विश्राम की अवस्था में चले गये।

गुरुदेव श्री देवाजी की महानता

बुद्ध और महावीर के समय से सभी धर्मों ने संस्थागत रूप धारण कर लिया। संन्यास आश्रम का महत्व सर्वोपरि हो गया। यहाँ तक कि छोटे-छोटे लड़के और लड़कियों को भी सिर मुंडाकर जीवन भर के लिए किसी गुरु के शिष्य के रूप में गृहस्थ के दायित्वों से मुक्त एक निश्चित अनुशासन में रहना सिखाया। हर सम्प्रदाय में गुरुओं की और हर गुरु के पास शिष्यों की भीड़ बढ़ती गई। शिष्य की मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक योग्यता की परीक्षा करने का अधिकार केवल उसके गुरु को था। गुरु या शिष्य की अयोग्यता होने पर उस गुरु या उसके शिष्य की छुट्टी हो जाती और वे एक नये सम्प्रदाय का निर्माण कर लेते। इस प्रकार "गुरुडम" चलती गई और कालान्तर में साधुओं ने "गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु" आदि इस प्रकार के गीतों से गुरुडम को महिमामंडित किया। जो बात सिद्ध पुरुष या सद्गुरु के लिए ही कही जा सकती है, वह अयोग्य गुरुओं के लिए भी एक कवच बन गई।

बाद में 'गुरुडम' की कमजोरियों को देखते हुए कई महापुरुषों ने इसके संस्थागत

रूप का निषेध कर दिया। सिख धर्म में गुरु गोविन्द सिंह ने ''उत्तराधिकारी'' की प्रथा को समाप्त कर दिया। सनातन धर्म में वल्लभाचार्य ने संन्यास की प्रथा का निषेध कर दिया। कई जैन आचार्यों ने भी शिष्य नहीं बनाये। जैसे श्री आनन्दघनजी।

श्रीमद् राजचन्द्र कहते थे कि लोग साम्प्रदायिक बाड़ों में बैठे हैं... बनिये तो जैन धर्म तत्त्वों को निन्दनीय बना रहे हैं।... मैं किसी गच्छ में नहीं हूँ।''...

स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि मैंने लोहे की बेड़ियां (परिवार) तोड़ी है। अब मैं सोने की साम्प्रदायिक बेड़ियां नहीं लूंगा।... मैं स्वतंत्र हूँ। सम्प्रदायों से भरी पड़ी इस दुनिया में एक और सम्प्रदाय बनाने के लिए मैं पैदा नहीं हुआ हूँ।

शान्तिविजयजी ने छोटी उम्र में जैन धर्म में दीक्षा अवश्य ली थी परन्तु कुछ ही समय में गुरु को छोड़कर आबू की गुफाओं में ध्यान करने चले गये। उन्होंने किसी को भी अपने उत्तराधिकारी के रूप में दीक्षा नहीं दी। गुरुदेव विवादों में उलझना नहीं चाहते थे परन्तु वे जो बात सिखाना चाहते थे उसके लिए स्वयं उदाहरण बन जाते।

गुरुदेव के बाद कौन ? इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर श्री देवाजी महाराज ने एक मौनिक प्रक्रिया के द्वारा यह बता दिया कि :

ईश्वर-कोटि या जन्म-सिद्ध के लिए न गुरु की जरूरत है, न शिष्य की। वह स्वयं ही अपनी शक्ति के द्वारा अन्य शरीर से अपने कार्य करवा सकता है।

साधना साधक के लिए जरूरी होती है, सिद्ध के लिए नहीं। एक बार श्री देवाजी महाराज ने विमल को पूछा : ''विमल, तुमने मुझे कभी ध्यान (साधना, आदि) करते देखा ?'.... विमल ने गुरुदेव को ध्यान आदि करते नहीं देखा। अन्य किसी जन्म में या अन्य किसी शरीर से ध्यान किया होगा। इस शरीर में उनको ध्यान आदि की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि वे सिद्ध पुरुष थे।

दीक्षा भी साधक के लिए उपयोगी होती है, सिद्ध के लिए नहीं। एक बार किसी भक्त ने एक संन्यासी के अभद्र आचरण पर अपने गुरु स्वामी शिवानन्द से कहा कि इतनी कठोर साधना के बाद भी उसका पतन कैसे हो गया ? तब स्वामीजी ने कहा : ''यह बताओ कि वह साधक है या सिद्ध है ? यदि साधक है तो उसका आचरण ठीक नहीं है। साधक को तो कठोर अनुशासन में रहना चाहिए। परन्तु यदि वह सिद्ध है तो कोई बात नहीं। वह सिद्ध है तो कीचड़ में कमल की तरह रह सकता है।''

यदि किसी भक्त के आचरण में कोई ढील दिखाई देती, तो रामकृष्ण उसे डांट देते थे। परन्तु नरेन्द्र के लिए यही कहते कि कोई बन्धन इस पर लागू नहीं होगा। वह तो ईश्वर-कोटि है। जन्म से ही सिद्ध है। बाद में विदेशों में पग पग पर औरतों ने स्वामी विवेकानन्द का साथ दिया। रामकृष्ण कहते थे कि दूध में पानी मिल जाय तो वह कमजोर हो जाता है परन्तु वही दूध मक्खन बन जाय तो पानी में भी अपनी मौलिकता को बनाये रख सकता है।

एक पूर्ण पुरुष चाहे तो गृहस्थ में भी रह सकता है। वशिष्ठ ने राम को गृहस्थ में रहने

की शिक्षा दी थी। प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाने का मानस बनाते हुए अर्जुन को श्री कृष्ण ने कर्मयोग का पाठ पढ़ाया। राजा जनक और उपनिषदों के ब्रह्मज्ञानी गृहस्थ ही थे। रामकृष्ण कहते थे कि योगी दो प्रकार के होते हैं- प्रकट और गुप्त। गृहस्थ छिपा हुआ योगी हो सकता है। उसे पहचानना बहुत कठिन होता है।

जैन दर्शन आत्म-केन्द्रित है, ईश्वर केन्द्रित नहीं। इसलिए उसमें भक्ति का विशेष स्थान नहीं है। जैन दर्शन में प्रथम स्थान ''ज्ञान'' (अर्थात् आत्मज्ञान) का है। अहिंसा (अर्थात् दया) तप और भक्ति का स्थान साधक के लिए साधन के रूप में ही महत्त्व रखता है। केवल आत्मज्ञानी को ही दया, तप और भक्ति की सीमाओं का सच्चा ज्ञान होता है। पंच महाव्रत भी साधक को अनुशासन सिखाने के लिए हैं। सिद्ध पुरुष उचित समझे तो हिंसा, जैसे युद्ध की हिंसा, आदि भी कर सकता है। वह पैसा और प्रोपर्टी के बीच भी रह सकता है। श्रीमद राजचन्द्र जौहरी का व्यवसाय करते थे।

यह सत्य है कि आत्मज्ञान का रास्ता बहुत लम्बा और कठिन है। भक्ति का रास्ता शॉर्ट-कट और सरल माना गया है। इसलिए सभी ईश्वर-केन्द्रित दर्शनों ने भक्तिमार्ग को बढ़ावा दिया। कुछ जैन भी उनके प्रभाव में आ गये। यहाँ तक कि जैन मंदिरों में भी तीर्थंकरों के अलावा कई छोटे-छोटे देवों और देवियों की पूजा और स्तुति एक सामान्य बात हो गई है। स्थानकवासियों ने इस प्रकार की मानसिकता का निषेध किया परन्तु मन्दिर मार्ग की पृष्ठभूमि वाले भक्तों ने अनावश्यक रूप से वैष्णवों की नकल करते हुए जगह-जगह मन्दिर बनाने शुरू कर दिये। वे लोग शान्तिविजयजी की शिक्षाओं से दूर चले गये इसलिए देवाजी भगवान् ने एक सम्यक दृष्टिकोण का महत्त्व बनाने की दिशा दी।

भक्ति का दिखावा करने वालो में किस हद तक अज्ञान और स्वार्थ रहता है, यह शान्तिविजयजी ने बताना शुरू कर दिया था। श्री देवाजी महाराज ने भक्तों की परीक्षा की प्रक्रिया को विशाल स्तर पर लागू करके बता दिया कि हम जिसे भक्ति कहते हैं प्राय: उसकी जड़ें बहुत कमजोर होती हैं। बिना ज्ञान के या गुरु की विशेष कृपा के भक्ति अधिक समय तक टिक नहीं सकती।

शान्तिविजयजी की शक्ति देवाजी महाराज के द्वारा प्रकट हो गई। इसलिए उन्हें उस शरीर में न गुरु की, न शिष्य की, न साधना की या दीक्षा की जरूरत थी। यह श्री देवाजी महाराज की महानता और उनके सामर्थ्य का विशेष पहलू रहा है।

* * *

I have chosen you, you have not chosen me.

-Bible

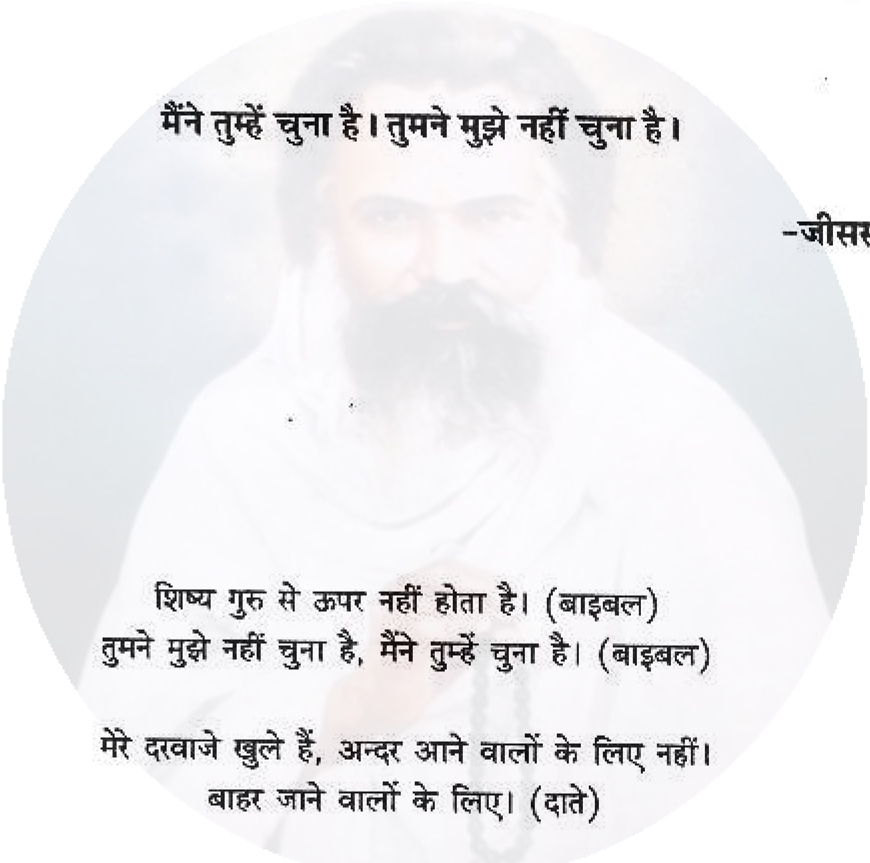

मैंने तुम्हें चुना है। तुमने मुझे नहीं चुना है।

-जीसस

शिष्य गुरु से ऊपर नहीं होता है। (बाइबल)
तुमने मुझे नहीं चुना है, मैंने तुम्हें चुना है। (बाइबल)

मेरे दरवाजे खुले हैं, अन्दर आने वालों के लिए नहीं।
बाहर जाने वालों के लिए। (दाते)

जो मेरे पास ज्यादा आते हैं और ज्यादा निकट
रहते हैं, मत समझो कि वे मेरे निकट हैं।.....
जो अपने हैं उन्हें मैं दूर रखता हूँ।

-योगीराज श्री देवाजी महाराज

संस्मरण

एक गुप्त अवतारी आकर चला गया

गुरुप्रसाद माणकलाल व्यास, एम.ए., मांडल (गुजरात)
मैनेजर, शान्तिसदन, माउन्ट आबू

मेरे पिता श्री माणकलालजी व्यास के जीजाजी ठाकुर पुरुषोत्तमजी आबू पर विश्राम भवन के मैनेजर थे। वे 1925-27 से ही गुरुदेव श्री शांतिविजयजी की भक्ति में थे। सन् 1931 में मेरे जन्म के छह महीने बाद जब सब घर वाले गुरुदेव के दर्शनार्थ गये तब गुरुदेव के कहने से मेरा नाम 'गुरु प्रसाद' गुरु का प्रसाद रखा गया। पिताजी मुझे साथ लेकर गुरुदेव के दर्शनार्थ जाया करते थे।

बड़े गुरुदेव के अग्नि संस्कार के समय मेरे पिताजी वहीं पर उपस्थित थे। जब गुरुदेव के अग्नि संस्कार के लिए बोली बोलने के लिये सेठजी को कहा गया तब सेठजी ने कहा कि अपने बापू (पिता) की बोली नहीं होती। आप जो कहो, वह खर्च करने को तैयार हूँ लेकिन अपने बाप की बोली नहीं बोलूंगा। पिता अमूल्य है। पिता की कोई कीमत नहीं कर सकता। आखिर शांताबहन ने 51000/- रुपये की बोली बोल दी।

मई 1943 में हमारे पूरे परिवार को अचलगढ़ में कई दिन गुरुदेव के दर्शन का लाभ मिला। घर जाने की आज्ञा नहीं मिली। हमने कई बार भगवान को मांडल (गुजरात) में हमारे घर पधारने की प्रार्थना की। बहुत विनती करने पर आपने कहा कि ''जरूर आऊंगा कभी''। परन्तु उस शरीर में वे नहीं पधारे और सितम्बर, 1943 में ही उनका निर्वाण हो गया। हमें लगा कि गुरुदेव शान्तिविजयजी ने अपना वादा पूरा नहीं किया। परन्तु उन्होंने अपना वादा बाद में पूरा किया। पूज्य देवाजी भगवान मार्च 1944 में हमारे पुराने मकान (मांडल) में पधारे और कई दिन वहाँ रहे और पढ़ाई भी की।

इलाज शुरू करो

मेरे पिताजी 1952-1956 तक शांति सदन, माउंट आबू पर मैनेजर थे। एक बार उनकी तबियत बहुत बिगड़ गई। पेट फूल गया। भाग्यवश सिरोही के सर्जन डोगरा आबू आ गये। डॉक्टर ने जाँच करके कहा कि रोगी कुछ घंटों का मेहमान है। इनके परिवार के लोगों

को बुलवा लो। मैं घबरा गया। पूज्य देवाजी महाराज ने डॉक्टर से कहा कि आप मरीज को अस्पताल में भर्ती करवा दो और इलाज शुरू करो। उसी रात में हालत सुधरने लगी। दूसरे दिन ही डॉक्टर ने कह दिया कि अब कोई चिंता की बात नहीं है, अच्छा हो जाएगा। एक सप्ताह में मेरे पिताजी स्वस्थ हो गये। फिर वे गुरुदेव की आज्ञा से हमारे घर (मांडल) गये और उनकी जगह मैं शांतिसदन, आबू में ही 1957 से 1961 तक मैनेजर बन कर रहा।

ऊपर आजा

जब मैं प्राइमरी स्कूल में था तब एक रात मैंने स्वप्न में श्री देवाजी महाराज के दर्शन किये। मैंने देखा कि आप आबू में शान्तिदेव निवास की छत पर खड़े थे और मुझे अपने पास आने को ऊपर बुला रहे हैं। मैंने कहा मैं ऊपर नहीं चढ़ सकता। फिर भी आपने कहा, ''आजा, ऊपर आजा।'' उसके बाद मई, 1957 में एक बार शाम को उसी मकान की छत पर से आपने मुझे ऊपर बुलाया। मुझे स्वप्न की बात याद आ गई।

सभी मंत्र ठीक हैं

पूज्य गुरुदेव हमारे मन के विचार जानते हैं। एक बार 1992 में देवनिकेतन में मैं गुरुदेव के सामने बैठा कुछ सोच रहा था। गुरुदेव सामने कुर्सी पर बैठे कुछ पढ़ रहे थे। मैं सोच रहा था कि यह समय श्रीराम के जप के योग्य है या श्रीकृष्ण के मंत्र जाप के योग्य? तब पूज्य गुरुदेव ने मुझे बिना पूछे ही फरमाया, ''जिसको जिस समय जो मंत्र उचित लगे, वही ठीक है।'' मुझे आश्चर्य हुआ।

सेठ किशनचन्द

सेठ किशनचन्द ने गुरुदेव की सेवा के लिए अपना सब कुछ छोड़ दिया। मैंने सेठजी की जवानी और बुढ़ापा दोनों को देखा है। सेठजी बहुत ही विनम्र थे। वे नारायण स्वरूप गुरुदेव के भक्त थे जब कि हम लोग नारायण की पत्नी 'लक्ष्मीजी' के पुजारी हैं और हमने उनके साथ कैसा व्यवहार किया !!!...भगवान हमारे दिल देखते हैं, दौलत नहीं, क्योंकि दौलत तो उनकी दासी है।

कसौटी

कसौटी हमारी भगवान अवश्य लेते हैं। सोने को आग में तपाया जाता है। बड़े गुरुदेव के निर्वाण के बाद मेरे पिताजी आबू में अस्थिकलश के पास अखंड दीप की देखभाल करते थे। बाद में घर पर वर्षा के अभाव के कारण हालत बिगड़ गई। पर पिताजी विचलित नहीं हुए। आबू में शांतिसदन के मैनेजर के रूप में उनकी 75 रुपये मासिक तनख्वाह थी। उस समय खेत बेचकर घर से पैसा लाना पड़ता था। सुदामा, नरसी मेहता, नामदेव, तुकाराम धनवान नहीं थे। परन्तु भगवान ने उनके सभी कार्य पूरे किये। बड़े गुरुदेव कहते थे कि

धनवान का लड़का सोने की तार से पतंग नहीं चढ़ा सकता। तुम्हारी भौतिक लक्ष्मी तो इस दुनिया के लिए है। ऊपर जाना हो तो सबको अमीर, गरीब को हल्के फर की तरह बनना पड़ेगा। अमीर, गरीब सभी सूत की डोरी से ही पतंग चढ़ाते हैं।''

पूज्य गुरुदेव के पास केवल बैठे रहने से ही परम शान्ति मिलती थी। आपने जिनको अपनी पहचान कराई, (जैसे गीता में विश्वरूप दर्शन), वे ही आपको पहचान सके। महापुरुषों के जीवन की कई घटनाएँ असामान्य दिखाई देती हैं, जिन्हें लोग चमत्कार कहते हैं। मैं जब आबू में था तब मुझे इस प्रकार के कई अनुभव हुए। मैंने देखा कि गुरुदेव भगवान कई बार भक्तों का कष्ट अपने ऊपर लेते, इस वजह से बीमारी भुगतते थे। आपने भक्तों को मार्गदर्शन दिया और बड़े गुरुदेव के अधूरे रह गये कार्य पूरा करने में लगे रहे।

वादा पूरा किया

पूज्य गुरुदेव ने क्या किया? एक महान् योगी की क्रिया योगी ही जान सकते हैं। हम साधारण लोग इस रहस्य को नहीं जान सकते कि :-

1. क्या बड़े गुरुदेव ने देवाजी महाराज में आत्म ज्योति प्रकटाई ?
2. क्या बड़े गुरुदेव ने देवाजी महाराज में शक्तिपात किया ?
3. क्या उन्होंने जगतगुरु शंकराचार्य की तरह पर-काया प्रवेश किया ?

पर यह निश्चित है कि मांडल (गुजरात) में हमारे घर पधारने का वादा जो बड़े गुरुदेव ने अपने शरीर से पूरा नहीं किया, वह पूज्य श्री देवाजी महाराज के रूप में हुआ। बाद में पिताजी की बीमारी के कारण मुझे आबू छोड़ना पड़ा। जाते समय पूज्य गुरुदेव ने मुझे कहा : ''अपने कर्मों के भोग तो सबको भोगने पड़ते हैं। यहाँ तक कि तीर्थंकरों को भी भोगने पड़े। संसार में तुमको तकलीफें (कसौटी) जरूर होंगी। लेकिन प्रगति भी होगी। दुखी मत होना। सहन करते रहना।''

उस समय मैं मैट्रिकुलेट ही था। धीरे-धीरे प्रगति हुई। 1976 में मैंने गुजरात विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. पास किया। बाद में मैं अपने पूज्य गुरुदेव के पास नहीं रह पाया। फिर भी मुझे समय-समय पर दर्शन का लाभ मिलता रहा।

आप दीक्षा क्यों नहीं लेते ?

कुछ पुराने गुरुभक्तों ने देवाजी महाराज से पूछा कि आप दीक्षा क्यों नहीं लेते? मोतीलाल कोठारी, चुनीलाल जवेरी, स्वरूपभाई श्राफ, कुल 6-7 लोग गुरुदेव के पास आये। आबू पर यह बात हुई। उन्होंने गुरुदेव से दीक्षा का अनुग्रह किया। तब पूज्य देवाजी महाराज ने कहा: ''यह बहुत अच्छी बात है। आप सब गुरुदेव के भक्त हैं। गुरुदेव के सभी भक्त संसारी थे। उन्होंने किसी को कपड़ा बदलवा कर दीक्षित नहीं किया। आप तो बहुत पुराने गुरुभक्त हो। अब आप कोई अपने घर मत जाना। अब आपके ऊपर घर की कोई

जिम्मेदारी भी नहीं है। यहाँ तक कि आप सब लोग दादा-नाना बन चुके हो। संसार के सभी सुखों का आपने उपभोग कर लिया है। अब आप और हम सब आबू में ही दीक्षा लेलें।'' उस शाम को ये सभी भक्त मिले और आपस में बहुत बातें की। कोई वृद्ध, पुराना भक्त, दीक्षा लेने को तैयार नहीं हुआ। सुबह होते ही सब चुपचाप अपने घर चले गये।

लोग दूसरों को दीक्षा दिलवाना चाहते हैं। खुद दीक्षित होना नहीं चाहते। सब जानते हैं कि गुरुदेव का उपदेश था कि ''कपड़ों में साधुता नहीं है'' फिर भी कपड़े को ही नमते हैं। दीक्षा लेने में त्याग की भावना कम दिखाई देती है। कई लोग तो संसार की उलझन में फंस कर बाहर न निकल सकने के कारण, कई दुखी या देनदार, या पति और पत्नी के मर जाने पर, आदि कारणों से जब कठिनाईयों का मुकाबला नहीं कर सकते, तो दीक्षा का सरल मार्ग अपना लेते हैं।

कपड़ा नहीं बदलो तो चलेगा। अपना मन बदलो। अपनी दृष्टि बदलो। साधु की तरह अपने घर रहो। उपदेश से अधिक उसका पालन करने में धर्म की सार्थकता होती है। साधु को किस तरह से रहना चाहिये यह तो पूज्य श्री देवाजी महाराज ने दुनिया को सिखाया है। सेठजी के पास अलग निवास में एक त्यागी की तरह रहे। बड़े गुरुदेव ने दीक्षा देकर किसी को भी शिष्य नहीं बनाया। सैकड़ों देशी-विदेशी अपना सिर मुंडवाने को तैयार थे। पर बड़े गुरुदेव कहते थे कि कपड़े में साधुता नहीं है।

सब के साथ रहते हुए भी (देवाजी महाराज) कमल की तरह निर्मल, निस्पृहीभाव, संसार रूपी कीचड़ का स्पर्श भी नहीं। सादगी का खाना। सादगी की पोशाक। अब कोई बताए कि दीक्षा में क्या कमी रही!

लोग कपड़े को ही देखते हैं। महात्मा को पहचान नहीं सकते। हिन्दू समाज में कई महात्मा हुए। उनमें से कई समाज में ही रहे जैसे मीरा, नरसी, तुलसीदास, नाभाजी, पीपाजी, तुकाराम, एकनाथ। हमारे गुरुजी श्री देवाजी महाराज ने अपना घर छोड़ दिया। सब कुछ छोड़ देने पर भी लोग उन्हें दीक्षा लेने पर मजबूर करना चाहते थे।

पूज्य श्री देवाजी महाराज ने कभी किसी से नहीं कहा कि 'तुम मेरे पास आओ।' हम गये। मैं तो दोनों गुरुदेव के समय का साक्षी हूँ। मांडोली चातुर्मास के समय गुरुदेव शान्तिविजयजी ने पंच महाजनों के सामने देवाजी को पूछा: ''देवा, गुरु बणी के चेलो ?'' तब उस लड़के ने जवाब दिया : 'बापसी, मैं तो गुरु बणु।' तब गुरुदेव ने सब के सामने कहा था कि 'ये (देवा) गुरु बनेगा।' उस वक्त मेरे पिताजी और सेठ किशनचन्दजी वहाँ पर उपस्थित थे। यह बात मेरे पिताजी ने मुझे बताई।

कुछ पुराने भक्तों में उन्हें पहचानने में समझ की फेर हो गई है। कुछ लोग जो गुरुदेव शान्तिविजयजी के बहुत नजदीक रहे थे, उन्होंने अपने स्वार्थ सिद्धि से अपनी पात्रता उनके समय में ही खो दी और कुछ ने गुरुदेव के निर्वाण के बाद खो दी जब गुरुदेव ने श्री देवाजी महाराज के रूप में उनकी कठोर परीक्षा ली। गुरुदेव शान्तिविजयजी कहते थे कि ''जो हीरा

लेने आया है, वह काच लेकर जायगा। जो हीरा वापर ने आया है, वह हीरा ले जायेगा।''

भगवान आदिनाथ से लेकर आज तक विश्व के कई देशों में महापुरुष हुए हैं। वे करोड़ों लोगों के धार्मिक प्रेरणा के स्त्रोत बन गये हैं। उन सब में गुरुदेव शान्तिविजयजी और देवाजी ने जो कार्य करके दिखाया है, वह बेमिसाल है। आपका उपदेश सर्वधर्म समभाव, विश्वप्रेम था।

श्री देवाजी महाराज ने तो जीसस क्राइस्ट की तरह विरोधियों के लिए यही कहा: ''हे प्रभु, ये रास्ता भटके हुए क्या कर रहे हैं। भगवान उनको भी माफ करना क्योंकि वे अज्ञानी हैं।'' पूज्य शान्तिविजयजी महाराज शिव स्वरूप थे तो श्री देवाजी महाराज उनकी शक्ति-स्वरूप थे।

अन्तिम दर्शन :

जुलाई 2000 में गुरुपूर्णिमा पर आबू में मुझे अंतिम दर्शन हुए। मेरे साथ कई विषयों पर बात हुई। मुझे कहा : ''राग द्वेष नहीं रखना। इस संसार में कोई अपना न मित्र है, न शत्रु। इस शरीर को मरा हुआ समझ कर जीना।... राग द्वेष के बिना समभाव से देखता है, वह देव है।''

मैंने कहा : ''भगवान, अब मेरी जिन्दगी दो साल तक दिखती है।'' तब गुरुदेव ने फरमाया 'कि उसके बाद भी कुछ साल और जीना है। शेष जीवन में प्रभु भक्ति करो।'

महापुरुष क्या कर सकते हैं यह तो रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द में शक्ति डाल कर बता दिया। देवाजी भगवान की शक्ति और कार्य के पीछे शान्तिविजयजी ही कार्यरत थे, यह भविष्य में माना जायेगा। जगत देखेगा। वह समय अब दूर नहीं। कई भक्तों को इसकी स्पष्ट झलक मिल चुकी है। गुरुदेव शान्तिविजयजी शक्तिमान थे और उन्होंने अपने शेष कार्यों के लिए शक्तिपात किया हो, या परकाया प्रवेश किया, यह मेरी मान्यता है। श्री देवाजी भगवान स्वयं अन्तिम समय तक एक गुप्त अवतारी पुरुष की तरह रहे और दिसम्बर 2000 में विश्राम की अवस्था में चले गये।

* * *

छुपा रत्न

सुमन, सुशील मोतीवाले, पूना

परम पूज्य, महान योगेश्वर श्री शान्तिसूरीश्वरजी का दुर्लभ सत्संग हमें 1933 से ही प्राप्त होता रहा है। 1943 में गुरु निर्वाण के समाचार ने तो हमारे माता-पिता का दिल तोड़ दिया। 1945 में प्रतिष्ठा महोत्सव पर हमारे पिताजी श्री चतुरभाई रणछोड़दास तथा माताजी अ.सौ. बसन्तबहिन के साथ हम तीनों बहनें - सुमन, सुशील व सरोज मांडोली गये। उस अवसर पर परम पूज्य श्री देवाजी महाराज के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

1946 की गुरुपूर्णिमा के पवित्र अवसर पर आबू में पूज्य देवाजी महाराज के सत्संग का लाभ हमें लगातार नौ दिनों तक प्राप्त होता रहा। कोई चमत्कार उस वक्त हमने नहीं देखा। पर वहाँ से खिसकने का मन तक नहीं होता था। चमत्कार हो तो ही नमस्कार हो – यह लोकोक्ति भूलभरी है। चमत्कार तो कोई जादूगर भी कर सकता है, पर यह है आध्यात्मिक आकर्षण जो हमें वहाँ से दूर होने न देता था।

यह अलभ्य सत्संग आज दिन तक हमें जीवन की उलझनों में योग्य मार्गदर्शन करता रहा है। आपके शुभाशीर्वाद से बीमारी से मुक्ति पाना या आपके वचनानुसार ही प्रसंग होते रहना, इसका अनुभव हमने भी किया है। आपके सम्पर्क में आने वालों को समय-समय पर योग्य मार्गदर्शन कर आप उन्हें धर्म का यथार्थ मर्म बता कर आध्यात्मिक जीवन में प्रगति पथ पर आगे बढ़ाने में सहायभूत होते रहे हैं।

श्री देवाजी महाराज छुपा रत्न है। आपको पहचानना बड़ा मुश्किल कार्य है। आप गाढ़े विद्वान तथा प्रकांड पंडित हैं। सोलह वर्ष की आयु में तो आपने भौतिक शिक्षार्जन का श्रीगणेश किया। काशी के पंडितों के पास आप कुछ समय ही रहे। जिसने सभी तरह की विद्या को धारण करके ही जन्म लिया है - उसे कोई क्या पढ़ा सकते हैं ? तो भी आपने लोक व्यवहार के लिये सीनियर केम्ब्रिज और बाद में साहित्यरत्न, नव्यन्यायाचार्य और एम.ए.की।

श्री देवाजी महाराज का सान्निध्य ही इतना प्रभावशाली है कि कुछ भी न बोलते हुए, मौन बैठे रहने पर भी, अपने मन की दूषित भावनाएँ या विचार अपने आप दूर हो जाते हैं और उनका स्थान पवित्र विचार और सद्भावनाएँ ले लेती हैं जो हमें सत्कार्य करने को प्रेरित करती हैं। मन उमंग से ऐसा भरपूर हो जाता है कि खूब-खूब भक्ति करते रहें और जीवन का परम ध्येय जो मोक्ष प्राप्ति है उसे इसी जन्म में हासिल करें।

* * *

वीरेन्द्र राज बोहरा C.A.

अहमदाबाद, जोधपुर

सडक के मोड़ पर स्थित निशान वाहनचालक को संभावित हानि/परेशानी से बचाते हैं। ठीक उसी प्रकार शायद पूज्य गुरुदेव ने मेरे जीवन में दिशा निर्देश किया है। जब कभी गुरुदेव ने याद किया, मेरे जीवन में कुछ परिवर्तन हुआ चाहे वे आनंददायक हो या कष्ट दायक। हमारा दुर्भाग्य है कि जब तक यह सच्चाई समझ में आई पूज्य गुरुदेव मूर्त रूप छोड़कर चले गए। उन्होंने निस्वार्थ भाव से हमारा दिशा-निर्देश कर अपने गुरु होने का दायित्व निभाया। ये सभी कार्य उन्होंने परोक्ष में किए। अत: हमें समझने में समय लगा। ना किसी को ज्यादा करीब आने देना व ना ही अपने से दूर जाने देना, शायद यह ही उनकी पद्धति थी।

मुझे विश्वास है कि वे मूर्त रूप में नहीं रहते हुए भी हमारा मार्ग दर्शन करते रहेंगे। उनकी असामान्य क्षमताएँ कई बार अचंभित कर देती थी। एक बार मेरी पत्नी बच्चों के स्कूल अवकाश पर बच्चों सहित पीहर गई। दूसरे दिन मैंने गुरुदेव को फोन किया। संयोगवश गुरुदेव ने स्वयं ही फोन उठाया। प्रारंभिक परिचय के बाद उन्होंने मेरी पत्नी के बारे में पूछा तो मैंने उन्हें उनके एक दिन पूर्व पीहर जाने की बात कही। तब गुरुदेव बोले ''...फिर पहले बात करनी थी। मुझे तो उससे बात करनी है। मुझे उसकी चिन्ता है...'' गुरुदेव के इन शब्दों ने मुझे चिन्ता में डाल दिया। उसके बाद पता चला पीहर में ही मेरी पत्नी की तबियत बहुत खराब हो गई। ऐसी कई घटनाएँ उनकी विलक्षण प्रतिभाओं की तरफ इशारा करती है।

व्यावसायिक कार्यों हेतु मैं अहमदाबाद में रहता था। 13 वर्ष के प्रवास के बाद मैं वापस जोधपुर आना चाहता था। गुरुदेव से कई बार आज्ञा मांगी, परन्तु टाल गए। अपने अंतकाल के कुछ दिन पहले उन्होंने आबू में मेरे आने का प्रयोजन पूछने के बाद स्वयं बोले ''जोधपुर क्यों नहीं चले जाओ....? छोटी जगह है.... परन्तु सब हो जाएगा। ....अब जाओ, वापस मुड़कर नहीं आना, सीधे चले जाओ....। कुछ ही दिन में गुरुदेव का देहान्त हो गया। गुरुदेव के वचन याद आते हैं जो मन को भरोसा देते हैं।

उस विराट् व्यक्तित्व की विवेचना थोड़े शब्दों में संभव नहीं है। न ही हमारा उनके व्यक्तित्व का ज्ञान पूरा है। मुझे इन्तजार है कि गुरुदेव के अमूर्त स्वरूप से मुझे मार्गदर्शन मिलता रहेगा। जय गुरुदेव।

* * *

महेन्द्र सिंघवी M.B.A. (Miami, U.S.A.)

C-103, नताशा हिल व्यू, पूना

मेरे जीवन में मुझे पूज्य देवाजी महाराज की कृपा और आशीर्वाद का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और मेरी उनके प्रति गहन श्रद्धा है।

20 नवम्बर, 1964 को गुरुदेव आबू से जोधपुर पधारे। उनके साथ कुछ अन्य लोग भी थे। मेरे जीजाजी डॉ. कोठारी के घर पर सबका खाने का प्रोग्राम था परन्तु वे बीमार थे इसलिये गुरुदेव ने व्यवस्था के लिए मुझे बुलाने का आदेश दिया जिससे थोड़े समय के लिए मुझे सेवा का लाभ मिला। उस समय मेरा स्वास्थ्य ठीक था। परन्तु 3-4 दिन में ही एक किडनी खराब हो गया और मुझे बहुत बुरे दिनों से होकर गुजरना पड़ा। इस दौरान मुझे कई आश्चर्यजनक अनुभव हुए। अन्तत: ऑपरेशन से एक किडनी निकलाना पड़ा।

1972 में मैं जोधपुर विश्वविद्यालय के वाणिज्य संकाय में व्याख्याता बना। मेरे मित्रों की सलाह थी कि मैं कोई बड़ी निजी क्षेत्र की कम्पनी में जाऊं। 1973 में Pfizer नाम की अमेरिकन फार्मास्यूटिकल कम्पनी ने मेरा चयन किया। मैंने सोचा यह अच्छा अवसर है और इससे मेरा अमेरिका जाने का रास्ता खुलेगा। मैं गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त करने वालकेश्वर (बम्बई) गया। परन्तु गुरुदेव ने बात टाल दी। शाम को फिर गया, पर दर्शन नहीं हुए। दूसरे दिन फिर गया। गुरुदेव ने मना तो नहीं किया परन्तु यह कहा कि फिलहाल जोधपुर विश्वविद्यालय में ही काम करना ठीक रहेगा। गुरुदेव की इच्छा के अनुसार मैं वापिस जोधपुर लौट आया।

मैं यहां पढ़ने पढ़ाने के काम को मेरी योग्यता के लायक नहीं समझता था। मैंने यह बात गुरुदेव को कही तब गुरुदेव ने फरमाया कि महेन्द्र दुनिया में लाखों लोगों को अपनी योग्यता के लायक काम नहीं मिलता। तुम अमेरिका तो जोधपुर से ही चले जाओगे। अभी जोधपुर की नौकरी ही ठीक है।

1976 में रोटरी फाउन्डेशन ने अमेरिका जाने और वहाँ अध्ययन करने के लिए मेरा चयन किया। मैंने गुरुदेव को इस चयन से अवगत कराया तब गुरुदेव खुश हुए और मुझे लिखा कि तुम जरूर जाओ और विदेश से उच्च अनुभव प्राप्त करके वापिस जल्दी ही स्वदेश लौट आना। मैं 1977 में अमेरिका गया।

गुरुदेव के संदेश से यह स्पष्ट था कि गुरुदेव नहीं चाहते थे कि मैं वहां अधिक समय तक रहूं। पर मैंने इस पर ध्यान नहीं दिया। गुरुदेव की इच्छा व आज्ञा के विपरीत मैं वहाँ साढ़े तीन साल तक रहा जिसके दौरान मुझे काफी कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। आखिर 1981 के शुरू में मैं भारत लौटा। बम्बई में गुरुदेव के दर्शन किये। गुरुदेव ने कहा: "आ गये वापिस, महेन्द्र। चलो अच्छा हुआ।"

1981 के जुलाई में 'टाटा कन्सलटेन्सी सर्विसेज' (बम्बई) ने मेरा चयन किया।

गुरुदेव ने इसके लिए सहर्ष आशीर्वाद दिया। बम्बई में रहने के कारण मुझे गुरुदेव के दर्शन होते रहते थे।

1986 में बम्बई के डाक्टरों ने मुझे हार्ट के By-pass का सुझाव दिया। मैंने गुरुदेव को बताया। मेरा लड़का आदित्य उस समय दो साल का था। अतः मुझे मेरे परिवार के भविष्य की चिन्ता थी। सरोजबहन हमारे पास बैठी थी। गुरुदेव ने कहा उसकी चिन्ता तुम क्यों करते हो? फिर दीवार पर लगी गुरुदेव शान्तिविजयजी के फोटो की तरफ इशारा करके कहा: ''गुरुदेव सबका ध्यान रखते हैं।''

ऑपरेशन के लिए जसलोक अस्पताल में भरती होने के पहिले देर रात मेरे फ्लेट के बाहर बरामदे की लाइट अपने आप लग गई। वहां और कोई नहीं था। मैंने लाइट बन्द की और सो गया। सुबह उठने पर एक अद्‌भुत चीज देखी। मेरे दायें हाथ की हथेली में एक मेहंदी के रंग का चक्र बना पाया। हमारे कुछ समझ में नहीं आया कि यह क्या माया है? दूसरे दिन मैं अस्पताल में भर्ती हो गया और 12 दिन वहाँ रहा। हथेली का चक्र धीरे धीरे फीका पड़ता गया और अस्पताल से छुट्टी मिलने के दिन बिल्कुल साफ हो गया। बाद में जब मैं गुरुदेव के दर्शन करने गया तब मैंने इस चक्र के बारे में बताना शुरू किया ही था कि गुरुदेव ने मुझे रोक दिया और आगे बोलने नहीं दिया। फिर गुरुदेव ने केवल इतना ही कहा: ''ईश्वर की लीला''। हमारी बुद्धि इस प्रकार के अनुभवों को नहीं समझ सकती।

1988 में बम्बई से मेरा तबादला Tata Management Training Centre, Pune में हो गया। इससे मैं आफिस के काम बम्बई आता रहता और गुरुदेव के दर्शन होते थे। एक बार मुझे बम्बई में TCS के अधिकारियों की मीटिंग में भाग लेना था। मैं सपरिवार गुरुदेव के दर्शन करने गया। गुरुदेव ने काफी देर तक हमसे बातें की। मीटिंग का समय होने को था। मैं बार-बार घड़ी की तरफ देख रहा था और रवाने होने की आज्ञा मांगी। परन्तु गुरुदेव ने जाने की आज्ञा नहीं दी। बातें करते रहे। फिर मुझे कहा कि तुम्हें देर हो जायेगी इसलिए खाना यहीं खालो। फिर हमारे लिये खाना बनवाया। देर होती गई। खाना गले नहीं उतर रहा था। फिर भी कुछ लिया। फिर चलने की आज्ञा मांगी। तब गुरुदेव ने कहा: ''तुम काफी थक गये हो। कुछ देर आराम करो।'' आराम करते समय मुझे लम्बी नींद आ गई। जब उठा तो मीटिंग का समय कभी का समाप्त हो गया था। अब गुरुदेव ने कहा ''जाओ''। बहुत ही तनाव की स्थिति में मैं TCS पहुंचा। TCS के निदेशक का सचिव मेरे पास आया और कहा कि साहब का फोन आया कि वे कोई कारणवश आज नहीं आ सकेंगे। इसलिए आज मीटिंग नहीं होगी और कहा कि आपको यहाँ आने का जो कष्ट हुआ है उसके लिए उन्हें खेद है।'' हमारे पूना के टिकट थे। हम उसी समय टैक्सी से वी.टी. चले। मैंने सोचा कि गाड़ी नहीं मिलेगी। परन्तु गाड़ी हमारे वी.टी. पहुँचने और बैठने के बाद ही चली। उस घटना पर सारे रास्ते हम आश्चर्य करते रहे। ऐसा लगा कि ट्रेन भी उस दिन हमको लिये बिना पूना जाना नहीं चाहती थी। मैंने कई बार अनुभव किया कि गुरुदेव जब आशीर्वाद

देते तो इसका अर्थ था कि कोई चीज बिगड़ कर सुधरेगी।

गुरुदेव के अंतिम दर्शन शरीर छोड़ने के साल भर पहले हुए। गुरुदेव ने मुझे पूछाः ''पूजा, पाठ करते हो?'' मैंने कहाः ''गुरुदेव मैं सदैव सुबह लक्ष्मी की पूजा, ध्यान करता हूँ।'' गुरुदेव ने कहाः ''ठीक है, लक्ष्मी की पूजा करते रहना।'' फिर जाते समय मुझे कहाः ''गुरुदेव को याद करते रहना।'' गुरुदेव ने जिस तरह से यह बार-बार कहा, उससे मुझे लगा कि गुरुदेव का वह मेरे लिए अंतिम आदेश था जिसमें मेरी सम्पूर्ण भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं का समन्वय था। इसके आगे मेरे लिए कुछ भी नहीं था। इसके बाद मैं कई बार गुरुदेव के दर्शन के लिए गया, पर गुरुदेव ने दर्शन नहीं दिये। मैंने फोन पर भी बात करने की कोशिश की पर गुरुदेव ने बात नहीं की। गुरुदेव मुझे बतलाना चाहते थे कि आत्मिक सम्बन्ध बनने के बाद भौतिक शरीर से मिलने का महत्व नहीं रहता। मुझे जो देना चाहते थे, वे मुझे दे चुके थे। इस प्रकार की आध्यात्मिक तकनीकी केवल ऐसे महापुरुषों के स्तर पर ही मिल सकती है।

* * *

भोपालचन्द भंडारी

Joint Director (Retd.), Agriculture Dept., Rajasthan

मेरे सिरोही के कार्यकाल में मेरा प्रायः आबू जाना होता था। मेरे कई मित्रों से मैंने गुरुदेव श्री देवाजी महाराज के बारे में सुना था। 1972 में डा. कोठारी के आग्रह पर मैं शांति-सदन गया और मैनेजर शंभूलालजी से मिला। मैंने बताया कि मैं गुरुदेव के दर्शन करना चाहता हूँ। गुरुदेव उस समय शांतिसदन आफिस में मेरी दाहिनी तरफ कुर्सी पर विराजमान थे। शंभूलालजी ने मुझे हाथ से इशारा किया। मैंने चरण स्पर्श किये। मेरा परिचय दिया। गुरुदेव से कुछ देर बात हुई और जाते समय मैंने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आप मेरे लायक कोई सेवा फरमावें। गुरुदेव ने कहा पीछे बतायेंगे। बाद में भी मैंने आबू पर गुरुदेव के दर्शन किये। शुरू की मुलाकातों में गुरुदेव ने मुझे कुछ शिक्षाप्रद बातें कही जो धर्म का मर्म बताती थी। जैसे- गृहस्थी की हर आवश्यकता पूरी की जाय पर अति में नहीं जाना। बुरे की बुराई नहीं करना। भक्ति से ही कर्म काटना।

संसार कर्मभोग के लिये ही है। अपने ध्येय से विचलित नहीं होना। गुरुदेव ने कहा कि मैं स्वयं विरोध और अस्वस्थता सहन कर रहा हूँ। भगवान से कुछ भी चाहना (अर्थात् मांगना) सही नहीं है।

गुरुदेव ने बताया कि भगवान भक्त को अपने में समा लेता है। मीरा का उदाहरण देते हुए कहा कि उसकी भक्ति का विरोध राणा नहीं करते थे। उनके दूसरे लोग करते थे। एक बार राणा ने राजपुरोहित को मीरा को लाने के लिए भेजा। मीरा ने उसका सत्कार किया। मीरा ने कहा कि वह कृष्ण के मन्दिर में दर्शन करेगी। वहां आ जाना। मीरा मन्दिर में कृष्ण के दर्शन कर रही थी कि भगवान ने उसे अपने में समा लिया। जब राजपुरोहित मन्दिर में ढूंढ़ने गया, तब मीरा की केवल साड़ी ही मिली।

एक अन्य उदाहरण अरब देश की एक महिला का दिया जो कृष्ण का जप करती थी। मौलवी बहुत कट्टर होते हैं। पता पड़ने पर ऐसे लोगों को मरवा डालते हैं। कुछ लोगों ने सलाह दी कि भारत में अकबर बादशाह हिन्दू धर्म की बहुत कदर करता है, अतः उससे इसका विवाह कर दो। उसे भारत ले जाकर अकबर से विवाह की प्रार्थना की गई। अकबर ने उसे स्वीकार कर लिया। शादी के दूसरे दिन बेगम ने कहा कि मैं श्रीनाथजी के दर्शन करूंगी। अकबर मान गया और उसने राणा प्रताप को यह संदेश भेजा। राणा ने अकबर और बेगम की बात का आदर किया। बेगम मन्दिर में भगवान के लिपट गई। उन्हीं में समा गई। अकबर ने कहा: जो चीज जिसकी थी उसको मिल गई।

मैंने देखा कि गुरुदेव मुझे ऐसा शिक्षाप्रद उपदेश देते जो मुझ पर घटित होता था। उन्हें मेरे आन्तरिक और बाह्य व्यक्तित्व की पूरी जानकारी हो गई थी।

सामायिक, प्रतिक्रमण, देव पूजन सभी भक्ति का ही अंग है। किसी तरह की अशांति में विचलित न होने की सलाह दी और कहा कि हर (कलह की) बात को एकदम पूर्ण रूप से

सही नहीं मानना।

सरोजबहन ने कहा कि गुरुदेव कर्मभोगा कर भक्ति का मार्ग दिखाते हैं।

मैं 1989 में अपने पद से सेवानिवृत्त हो गया। उस समय मुझे जो राशि मिली उसमें से लगभग 2 लाख की लागत से शास्त्रीनगर में मैं गुरुदेव का मन्दिर बनवाना चाहता था। उसकी मैंने तैयारी भी कर ली। इन्जीनियर से नक्शा भी बनवा लिया। तब गुरुदेव का संदेश मिला कि मन्दिर नहीं बनावें तो ठीक रहेगा। डॉ. कोठारी को पत्र लिखा जिसमें मेरे लिए कहलाया कि गुरुदेव का मन्दिर हृदय में बनाकर उसमें गुरुदेव की मूर्ति स्थापित करो। बाह्य मन्दिर अपना कल्याण नहीं कर सकता।

16-7-92 को आबू में दर्शन किये। गुरुदेव ने कहा कि अब वे नये भक्त बनाना नहीं चाहते। मैंने कहा: भगवान मेरे परिवार के लोगों को भी भक्ति दीजिये। तब मौन रहे।

मेरे बड़े लड़के रवि की इच्छा व्यापार के लिए बाहर जाने की थी। गुरुदेव ने फरमाया कि उसे जोधपुर में ही रखना। वहीं सफल हो जायेगा।

मैं जोधपुर में काफी समय तक स्वयंसेवी संस्थाओं के संघ का अध्यक्ष था। अब मैं इस पद पर कार्य करना नहीं चाहता था क्योंकि इससे मेरे ध्यान करने में बाधा आती थी। परन्तु भगवान ने इस पद पर कार्य करते रहने की आज्ञा दी। मैंने निस्वार्थ सामाजिक सेवाओं से सम्बन्धित संस्थाओं के कार्यों में अपने आप को लगाए रखा। सन् 2001 में मैगनम फाउण्डेशन, नागपुर ने मुझे राष्ट्रीय मैगनम गौरव पुरस्कार ''मानव मित्र'' से सम्मानित किया। वीसनगर में गुरुपूर्णिमा पर दर्शन किये। मैंने कहा कि कुछ लोग कहते हैं कि वास्तुशास्त्र के अनुसार मेरे मकान में कुछ दोष है। गुरुदेव ने मकान का नक्शा देखकर बताया कि इसमें कोई अड़चन नहीं है।

मांडोली में सेठजी के देहान्त के बाद ट्रस्ट युद्ध चलने लगे। जब प्राथमिक चिकित्सालय को मांडोली से हटाकर रामसीन ले जाने की योजना बनी तब गुरुदेव ने इस विवाद को हल करने की जिम्मेदारी शांतिदेव सेवा समिति के श्यामजीभाई और मुझे सौंपी। गुरुदेव अस्पताल को रामसीन ले जाने के विरुद्ध थे। गुरुदेव की आज्ञा से काफी लम्बे समय तक संघर्ष चला जिसके बारे में गुरुदेव ने स्वयं 1993 में ''मांडोली का संक्षिप्त इतिहास'' लिख कर भक्तों को जानकारी दी। गुरुदेव की कृपा से मांडोली का अस्पताल और स्कूल दुर्घटनाग्रस्त होने से बच गये। बाद में शान्तिदेव सेवा समिति के आर्थिक सहयोग से माध्यमिक विद्यालय में एक हॉल और चार कमरे बनाए गए जिसके फलस्वरूप राजस्थान सरकार ने माध्यमिक विद्यालय को उच्च माध्यमिक विद्यालय में क्रमोन्नत कर दिया।

कुछ लोगों ने फिर प्राथमिक चिकित्सालय को मांडोली से चार किलोमीटर दूर ले जाने और उसकी जगह एक अतिथि-गृह बनाने की साजिश रची। परन्तु शान्तिदेव सेवा समिति ने इसे विफल कर दिया। राज्य सरकार के निर्देशानुसार अस्पताल में कई नये कक्षों का निर्माण करा दिया गया और अस्पताल को सरकार को सौंप दिया गया।

गुरुदेव ने मुझे बाद में याद दिलाया कि आप जब पहली बार मिले थे तब आपने काम बताने के लिये कहा था। उसी के अनुसार आपको मांडोली सम्बन्धी काम सौंप दिया गया। श्यामजी भाई और मैं इस सम्बन्ध में कई बार गुरुदेव से मिलते रहते। फोन पर भी इस सम्बन्ध में बात होती रहती थी।

शरीर छोड़ने की पूर्व संध्या में मैंने गुरुदेव से फोन पर काफी देर तक बात की। फिर मांडोली के विषयों पर विस्तार से चर्चा की। गुरुदेव ने मुझे उनके और शान्तिविजयजी के बारे में बताया कि गुरुदेव के शरीर छोड़ने के 3 माह बाद वे सेठजी के पास गये और सेठजी ने गुरुदेव की आज्ञा के अनुसार उन्हें अपने पास रखा और पढ़ाया।

बड़े गुरुदेव के शिष्य या उत्तराधिकारी का प्रश्न काफी समय से भक्तों को परेशान कर रहा था। इसलिए अंतिम समय में उनका स्पष्टीकरण बहुत महत्व रखता है क्योंकि इससे शान्तिविजयजी और देवाजी महाराज के बीच एक स्पष्ट निरन्तरता का एहसास होता है। बाद में इस सम्बन्ध में जो विवाद उठे उन पर भी गुरुदेव ने प्रकाश डाला। मांडोली में काफी समय से चल रही कुछ असामाजिक तत्त्वों की गतिविधियों पर मुझे विस्तार से जानकारी दी। अन्त में मुझे पूछा कि क्या अब फोन रख दूं? उनके अन्तिम शब्द थेः ''सबको आशीर्वाद कहना।'' गुरुदेव ने मुझे अपूर्व शांति दी है। मुझ पर ऐसे महापुरुष की कृपा होना मेरे जीवन की असाधारण उपलब्धि है।

C-164, शास्त्री नगर, जोधपुर

* * *

नरेन्द्र ललवाणी, Tax Consultant, पूना

हम पूज्य गुरुदेव भगवान श्री देवाजी महाराज द्वारा कई सालों से समय-समय पर सहज में लिखे एवं दिये गये संदेशों का महत्त्व किसी न किसी प्रकार से अपने जीवन में स्पष्ट रूप से महसूस कर रहे हैं।

मेरे पिताजी 1947 से टैक्स कनसल्टेन्ट के व्यवसाय में थे। पढ़ाई समाप्त होने के बाद मेरी इच्छा पिताजी के साथ काम करने की हुई। पूज्य गुरुदेव ने मुझे उस समय सर्विस करने की सलाह दी और कहलाया कि बाद में वक्त आने पर ऑफिस का काम देखना। मैंने सर्विस करली पर कुछ समय में जोर की पेट की बीमारी हो गयी। कुछ समझ नहीं आता था कि क्या करें? बाद में गुरुदेव ने आशीर्वाद कहलाया और पहले दिन से ही हालत ठीक होने लगी। बाद में मालूम पड़ा कि वही बीमारी उसी समय 3-4 दिन तक पूज्य गुरुदेव को रही।

1979 में मेरे पिताजी का देहान्त हो गया। तब गुरुदेव ने सलाह दी कि अब पिताजी के आफिस का काम संभालो। मैंने जो काम संभाला उसका A.B.C. ज्ञान याने कुछ भी ज्ञान मुझे नहीं था। परन्तु गुरुदेव की कृपा से इतनी कठिन जिम्मेदारी आज 22-23 साल से सफलतापूर्वक चल रही है। 1997 में गुरुदेव भगवान ने मुझे फरमाया कि तन-मन-धन से मां की सेवा करना। 1999 तक मेरी माताजी ने मेरे साथ रहने का सोचा भी नहीं था जिसकी वजह से मातृ-सेवा का लाभ हम नहीं पा सके थे। लेकिन सन् 2000 से कुछ परिस्थिती ऐसी बन गई कि पूज्य गुरुदेव के वचन के मुताबिक मुझे मेरे माताजी की पूरी तरह से सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जो मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। परन्तु ऐसा मौका आया और गुरुदेव का वचन सार्थक हुआ।

पूज्य गुरुदेव भगवान के अनुभव सभी भक्तों को हर घड़ी, हर पल प्रभावित करते हैं। गुरुदेव भगवान शरीर रूप में अपने साथ नहीं हैं लेकिन हर समय अपने भक्तों को संभालते हैं। पूज्य देवाजी दादा के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

* * *

दमयन्ती ललवाणी, पूना

विजय ललवाणी और मैं बम्बई में गुरुदेव भगवान के पास थे। विजय को थोड़ा दम हो रहा था। मेरे पीहर से तीन-चार फोन आये थे। तब भगवान ने पूछा ''दमयन्ती, आज क्या बात है?'' तब मैंने भगवान से कहा कि आज मेरा जन्म दिन है। तब भगवान ने मुझे अखंड सौभाग्यवती का आशीर्वाद दिया। बराबर एक घंटे बाद विजय की तबियत बहुत बिगड़ गई। भगवान ने खुद पल्स और बी.पी. देखा। चेतना को बी.पी. लेने को कहा। चेतना भी घबरा गई। उसने भगवान को कहा कि विजय के हाथ-पैर ठंडे पड़ रहे हैं। भगवान ने भी देखा कि हाथ-पैर नीले पड़ रहे हैं। फौरन डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने देखा और तुरन्त अस्पताल में भर्ती करने का बोला। जाते समय गुरुदेव ने मुझे फिर अखंड सौभाग्यवती का आशीर्वाद दिया।

अस्पताल के डॉक्टरों ने जब विजय को देखा तो बोले कि यह लाश (dead body) ले कर यहाँ आये हो ! इसे वापिस ले जाओ। ये तो डेड बॉडी है। मुझे भगवान पर विश्वास था। हमने एक-दूसरे डाक्टर को कहा कि आप चेक-अप तो करो। तब उन्हें ICU में ले गये और Pumping चालू किया। तब डाक्टर को थोड़ा response मिला। उसने इलाज शुरू कर दिया। उसने 24 घंटे का बोला था।

हम जब विजय को लेकर अस्पताल गये उसके बाद गुरुदेव भगवान चादर ओढ़ कर सो गये। 8 बजे विजय को होश आ गया। अब डाक्टर ने कहा: "He is out of danger. अब यह खतरे से बाहर है।'' इस प्रकार गुरुदेव भगवान गुप्त रूप से भक्तों को बचाते थे।

एक बार हम बम्बई में भगवान से आज्ञा ले कर महालक्ष्मी के मन्दिर गये। तब भगवान ने कहा: ''बसन्त को संभालना।'' मन्दिर में दर्शन करके हम नीचे आये। बसन्त मेरे साथ था। मालूम नहीं पड़ा वह गुम गया। सब जगह ढूंढा। कहीं दिखाई नहीं दिया। ऊपर जाने का एक ही रास्ता है। विजय और मैं ऊपर गये। हम चकित हो गये जब हमने देखा कि एक आदमी बसंत को लेकर माताजी के मंदिर में खड़ा था। थोड़ी देर में देखा तो वह आदमी नहीं था। हम घर आये तब भगवान ने हमें डांटा कि एक बच्चे को भी संभाल नहीं सकते। ऐसे हमारे पूज्य अन्तर्यामी देवाजी भगवान थे। भक्तों की रक्षा करते थे और मालूम भी नहीं पड़ता था।

* * *

पल्लवी सोमण, पूना

वैसे तो गुरुदेव भगवान के बारे में हमने अपने माता, पिता, दादा, दादी और अन्य वरिष्ठों से सुने हैं, लेकिन स्वयं को जो अनुभव होते हैं वो अविस्मरणीय होते हैं। वे याद आने पर ऐसा लगता है कि यदि देवाजी भगवान न होते तो हमारा क्या होता? मुझे यकीन है कि सभी भक्तों के मन में भी यही विचार आते होंगे।

26 जनवरी 1994 को मेरे पुत्र मंदार का जन्म हुआ। सब खुश हुए। गुरुदेव को फोन पर बताया। उन्हें भी खुशी हुई। रात को बाबा की तबियत सीरियस हो गई। इनकूबेटर में रखना पड़ा। सुबह कई टेस्ट किये। डाक्टर ने जवाब दे दिया। मेरे पिताजी ने गुरुदेव को फोन किया। गुरुदेव ने कहा: ''सब ठीक हो जाएगा''। जब माँ और पिताजी अस्पताल में वापिस पहुंचे तब मंदार हंसने-खेलने लगा था। डाक्टर ने कहा: ''यह तो कोई चमत्कार ही है।'' सभी आश्चर्य चकित हो गये। गुरुदेव की असीम कृपा है कि हम सब इससे भी भयानक घटनाओं से पार निकल जाते हैं। 'जो तुम तोड़ो गुरुदेव, मैं नहीं तोडूंगी, तो से प्रीत लगाई है, वो मरते दम तक नहीं छोडूंगी।'

शाह सेवन्तिभाई, वीसनगर

परम पूज्य गुरुदेव श्री शान्तिविजयजी ने कई बार मेरे बारे में मेरे माता-पिता को कहा कि ''उसे बड़ा होने दो''। बाद में वीसनगर के गुरुभक्त रतीलाल संघवी को पूज्य गुरुदेव ने स्वप्न में बताया कि ''सेवन्ती का केस मैं देवाजी को सौंप रहा हूँ।'' पूज्य गुरुदेव श्री देवाजी ने संवत् 2014 में मुझे स्वप्न में दर्शन दिये और कहा कि ''शादी करले। यह मेरी आज्ञा है।'' कुछ ही समय में मैं उनके दर्शन के लिए आबू गया।

एक बार मैंने पूज्य देवाजी गुरुदेव से मेरी आयु के बारे में पूछा। उन्होंने बताया कि ''तेरी आयु कम तो नहीं है।'' मुझे आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दी। तब से मैं उनके दर्शनार्थ आबू जाने लगा।वीसनगर में सुथारमाड में हमारा एक पुराना मकान था। संवत् 2032 में मेरे पिताजी ने इसका पुनर्निर्माण कराना शुरू किया, परन्तु उसी साल उनका देहान्त हो गया। मकान धीरे-धीरे पूर्ण हो गया। लेकिन मैंने मन में यह दृढ़ संकल्प लिया था कि इस मकान में सबसे पहले पूज्य गुरुदेव पधारेंगे, बाद में मैं निवास हेतु जाऊँगा। मकान पूर्ण होने के दो साल बाद पूज्य गुरुदेव उस मकान में पधारे और परिवार को वहाँ निवास करने की आज्ञा दी। दो साल तक मेरे संकल्प की कसौटी की।

बम्बई से आबू और आबू से बम्बई आते जाते गुरुदेव वीसनगर रुकते और इस प्रकार भक्तों को अनुग्रहित करते। गुरुपूर्णिमा और बसन्त पंचमी पर गुरुदेव कई बार वीसनगर पधारे और दूर-दूर से भक्त आते और ये त्यौहार मनाते। मुझे यह बताते अति आनन्द हो रहा है कि पूज्य गुरुदेव श्रीदेवाजी महाराज मेरी और मेरे परिवार के जीवन की हर बात में संभाल लेते रहे हैं।

निर्मल कुमार हस्तीमलजी राठौड़

आदिनाथ शोपिंग सेन्टर, पूना

सन् 1967 में मेरी आर्थिक स्थिति बहुत विकट थी। मेरी शादी हो चुकी थी। आमदनी बिल्कुल नहीं थी। कर्ज हो गया था। किसी का सहारा नहीं था।

जब सब तरफ से मनुष्य थक जाता है तब उसे प्रभु ही याद आते हैं। वैसे भी मुझे अपने गुरुदेव श्री देवाजी का ही सहारा था।

मैं वालकेश्वर (बम्बई) में प्रभु के पास गया। गुरुदेव ने बड़े प्यार से मुझे बिठाया और परिवार के बारे में पूछा। मैंने मेरा हाल बताया और कहा ''भगवान्, अब आप ही मुझे बचा सकते हो। गुरुदेव ने सब शान्ति से सुना और कहा ''निर्मल मेरे पास तो पैसे नहीं है। मैं तो कुछ नहीं कर सकता।'' गुरुदेव दिलासा दे रहे थे कि सब ठीक होगा।

अचानक मैंने कहा कि दमन से मेरा एक मित्र सोने के बिस्कुट स्मगल करता था जिसमें उसने अच्छा कमाया और मैंने गुरुदेव से यह धंधा करने की आज्ञा मांगी। मैं एक बार कर्जा उतार कर कुछ पैसे कमाकर दूसरा बिजनेस शुरू कर दूंगा और यह धंधा छोड़ दूंगा। मैं यह धंधा कायम नहीं रखूंगा।''

गुरुदेव यह सब सुनकर सुन्न हो गये। भगवान ने कहा : ''निर्मल क्या कहता है? इसमें कितना खतरा है ? ये धंधा नहीं करना।'' मैं हठ पकड़ कर बैठ गया। भगवान ना कहते गये और मैं हां कहलाने की विनती करता गया। भगवान कहते गये ''तुझे कुछ हो गया तो कौन बचाएगा ?'' मैंने कहा, ''आप ही बचायेंगे।''

मैंने यह धंधा शुरू कर ही दिया। चार महीने में मेरा कर्ज चुकता हो गया। एक दिन मैं दमन की एक चौकी के पास स्पेशल पुलिस के चक्कर में आ गया। मेरे मित्रों ने भी छुड़ाने की कोशिश की। मैंने बड़े अफसर को चार बिस्कुट की रिश्वत देने का कहा। वह अफसर नहीं माना और उल्टा यह कहा कि ''तुम्हारे जैसी छोटी मछलियां ही हमें पकड़नी है। बड़ी मछलियाँ तो हमें पोस्ती हैं। तुम्हारे जैसों को पकड़कर ही हमें हमारी नौकरी पक्की करनी पड़ती है। इसलिए तुम्हें नहीं छोड़ सकते।'' मेरे माल के साथ पंचनामा करवा दिया। मुझे पकड़कर बस स्टेण्ड पर ले गये। मुझे अदालत में ले जाना था।

मैं रो रहा था। गुरुदेव भगवान् की सभी बातें सामने आई। हम सब सुनसान सड़क पर बस की राह देखते खड़े थे। मैं नीचे जमीन पर बैठा रो रहा था। गुरुदेव से प्रार्थना की ''भगवान् मैंने आपका कहना नहीं माना। आप मुझे बचाइए। अगर मुझे जेल हो गई तो मैं वापिस घर नहीं जाऊंगा। आत्महत्या कर लूंगा।'' अचानक इन्सपेक्टर मेरे पास आया और बड़े प्यार से बोला ''तुम कोई बड़े घर के लगते हो। अगर यह धंधा छोड़ दो, तो मैं तुम्हें छोड़ देता हूँ। ... जा भाग जा। अब कभी इस एरिया में नहीं आना।''... मैं भागा। वहाँ से वापी स्टेशन नजदीक था। मैं दौड़कर गाड़ी में छिपकर बैठ गया। घर पहुँच गया। सुबह जल्दी

बम्बई गया। मैं गुरुदेव के दर्शन करने त्रिवेणी गया। भगवान् ने ही दरवाजा खोला और बोले : 'निर्मल आ गये।' मैं भगवान के चरणों में पड़कर बहुत रोया। भगवान ने कहा : 'सब ठीक होगा। यह धंधा अपना नहीं है।' अगर भगवान ने मुझे नहीं बचाया होता तो मेरे और मेरे परिवार का क्या हाल होता! गुरुदेव इतने महान और साक्षात् भगवान ही हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। बाद में मैंने कोई ऐसा धंधा नहीं किया।

* * *

श्रीदेवाजी महाराज : कुछ रोचक अनुभव

पूरणचन्द जैन डायरेक्टर ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन, कानपुर

बनारस के पंडित मूलशंकर शास्त्री मेरे मित्र थे। श्रीदेवाजी महाराज काफी समय तक बनारस में रहे और उनके पास विद्याध्ययन किया। वहाँ मेरा उनसे परिचय हुआ और बाद में मिलना होता रहता था। मैं उनसे बहुत प्रभावित हुआ।

ऐसी जल्दी क्या थी ?

कुछ वर्ष पहले मैं मेरे मित्र काशी के पंडित मूलशंकर शास्त्री के साथ बम्बई गया। हमें वहां थोड़ा ही ठहरना था और हवाईजहाज से लौटना था। हम जल्दी में थे इसलिए शास्त्रीजी का गुरुदेव से मिलने का प्रोग्राम नहीं था। हमारा कोई काम नहीं हुआ। कई फालतू चक्कर में समय चला गया और हम प्लेन चूक गये। शास्त्रीजी ने कहा: ''अरे हम बम्बई आये और गुरुजी से मिले बिना ही जा रहे हैं। चलो गुरुजी से मिलें।'' गुरुदेव बाहर आये और मुस्करा रहे थे। ''आप आ गये। रास्ते में तकलीफ तो नहीं हुई ?'' हमने हमारी तकलीफ बताई और कहा कि हम जल्दी में थे। पर प्लेन चूक गये। तब गुरुदेव ने कहा ''ऐसी जल्दी क्या है ? 1-2 रोज रहो।'' हमें ठहरना पड़ा।

तुम उसूलों के पक्के हो

अगले दिन गुरुदेव हमारे साथ कई जगह चले। दोपहर को मैं अकेले ही मेरे बचपन की सहेली अभिनेत्री निम्मी से मिलने अंधेरी गया। उसने कुछ खाने का कहा पर मैंने मना कर दिया क्योंकि वह मुस्लिम थी। वह नाराज हुई। मैंने कहा देखो सब के अपने उसूल होते हैं। कुछ मेरे उसूल हैं। कुछ तुम्हारे हैं। इसलिए तुम बुरा नहीं मानना।'' जब मैं लौट कर गुरुदेव के पास गया तो गुरुदेव ने कहा: ''पूरणचन्दजी एक बात है। तुम उसूलों के बड़े पक्के हो।'' उनसे यह सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। फिर कहा: ''अंधेरी हो के आये?'' इस पर मुझे फिर आश्चर्य हुआ क्योंकि मैंने तो उन्हें कुछ भी नहीं बताया था।

मैं केशरियाजी गया था। वहाँ मेरी एकदम आबू जाने की इच्छा हुई हालांकि आबू

जाना मेरे प्रोग्राम में नहीं था। मैं देलवाड़ा ठहरा था और देवाजी महाराज के दर्शन करना चाहता था। 17 अक्टूबर 1964 की शाम को मैं शान्ति सदन गया और वहाँ गुरुदेव के दर्शन हुए। उस समय डॉ. एम. एम. कोठारी भी वहीं थे। मैंने अपने कई रोचक अनुभव सुनाये और गुरुदेव को बम्बई की घटनाओं का जिक्र किया। गुरुदेव मुस्कराते रहे। फिर हमारी बात का विषय हो गया—पैसा, सोना, सम्पत्ति। मैंने कहा: पैसे का क्या करें। सरकार कई तरह के कर लेती है। मैं तो खर्चता हूं, इकट्ठा नहीं करता। तब गुरुदेव ने कहा: ''हाँ, चोरी का भी खतरा रहता है।''

चोर भाग गये

गुरुदेव का इशारा कितना सही होता था। आप को जान कर आश्चर्य होगा कि जिस रात को हम आबू में गुरुदेव के पास बैठे थे तब देहली में मेरे मकान में तीन चोर घुसे। उन्होंने मेरे साले को क्लोरोफॉर्म दे दिया और टेलीफोन के तार काट दिये। वे कई घंटों तक हमारे घर में ऊधम करते रहे ? पर इस माहौल में मैंने क्या गंवाया ? केवल एक रोमर घड़ी और कुछ कश्मीरी सेव ! आपने कभी ऐसी चोरी का सुना ! चोर भाग गये। यह एक बड़ा चमत्कार था।

दुबारा क्यों कहा ?

करीब 9 बजे हम देलवाड़ा जाने लगे। तब गुरुदेव ने डॉ. कोठारी से कहा कि इनको टैक्सी करा के भेज देना। फिर डाक्टर कोठारी को गेट से वापिस बुलाकर दूसरी बार कहा कि उन्हें पैदल नहीं जाने देना। टैक्सी करवा देना।'' दूसरे दिन मैंने डा. कोठारी से पूछा कि गुरुदेव ने आपको वापिस बुलाकर दुसरी बार टैक्सी के लिए क्यों कहा ? इस पर उन्होंने कहा : ''वैसे ही कह दिया होगा ?'' मैंने कहा : 'नहीं, इसमें भी प्रयोजन था।' कल हम लोग दिन भर खूब घूमे। इसलिए बहुत थक चुके थे। टैक्सी में जाने पर भी वहाँ पर पैरों में बहुत दर्द हो गया। यदि चल कर जाते तो क्या हाल होता ? सोते समय हम समझे कि गुरुदेव ने टैक्सी करने के लिए दुबारा क्यों कहा। गुरुदेव के भक्तों से कई रोचक अनुभव सुनते ही रहते हैं।

* * *

एक सुदामा पर कृपा

पूज्य देवाजी महाराज बहुत दयालु थे। धनी लोगों से तो गरीबों की सेवा करने का उपदेश सभी देते हैं। परन्तु गुरुदेव तो साधारण स्थिति के भक्तों को भी सेवा का अवसर देते थे। मैं उनमें से एक हूँ।

मेरी आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी। परन्तु गुरुदेव की कृपा से मुझे साधारण नौकरी मिल गई। मेरे मन में तीव्र इच्छा थी कि मैं मेरी आय में से कुछ गुरुदेव को अर्पित करूं। कहते हैं कि गुरु के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये। परन्तु सुदामा क्या ले जा सकता है ?

मैं गुरुपूर्णिमा के दिन एक लिफाफे में एक तुच्छ भेंट लेकर गुरुदेव के दर्शन करने गया। परन्तु मेरी स्थिति सुदामा की तरह हो गई। जो मेरा है, वह तो गुरुदेव का ही दिया है, मैं गुरुदेव को क्या दूँ। मुझे शर्म आ रही थी। परन्तु भगवान कृष्ण की तरह गुरुदेव मेरी मानसिक व्यथा को जान गये। उन्होंने स्वयं मुझे पूछ लिया कि इसमें क्या लाये हो? मैंने लिफाफा गुरुदेव के चरणों में रख दिया। तब गुरुदेव ने मुझसे अधिक गरीब भक्त को अन्दर बुलाया और वह बन्द लिफाफा उसे दे दिया।

* * *